Digitization: HHFA(USA) Funding: Shastry Family Mattur, Shivamogga KN

वाल्मीकिरचनामृत - ४

योगवासिष्ठ के आख्यानक

लेखक एवं सम्पादक

आचार्य श्रीकुबेरनाथ शुक्ल

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय

वाराणसी

CSU-Jaipur Campus Collection

KN

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

UNIVERSITY-SILVERJUBILEE-GRANTHAMĀLĀ

[Vol. 13]

VĀLMĪKIRACANĀMṚTA—4

YOGAVĀSIṢṬHA KE ĀKHYĀNAKA

BY

ĀCĀRYA ŚRĪ KUBERANĀTHA ŚUKLA

Ex-Vice-Chancellor

Sampurnanand Sanskrit University

Varanasi

VARANASI

1991

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

Research Publication Supervisor—
Director, Research Institute,
Sampurnanand Sanskrit University
Varanasi.

Published by—
Dr. Harish Chandra Mani Tripathi
Publication Officer,
Sampurnanand Sanskrit University
Varanasi—221 002.

Available at—
Sales Department,
Sampurnanand Sanskrit University
Varanasi—221 002.

First Edition, 1000 Copies
Price Rs. 100·00

Printed by—
MADHO PRINTERS
K. 18/46, Narayan Dixit Lane,
Varanasi.

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

विश्वविद्यालय-रजतजयन्ती-ग्रन्थमाला

[१३]

वाल्मीकिरचनामृत—४

योगवासिष्ठ के आख्यानक

लेखक एवं सम्पादक

आचार्य श्रीकुबेरनाथ शुक्ल

भू० पू० कुलपति

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय

वाराणसी

वाराणसी

२०४८ वैक्रमाब्द | १९१३ शकाब्द | १९९१ खैस्ताब्द

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

अनुसन्धानप्रकाशनपर्यवेक्षक—
निदेशक, अनुसन्धान-संस्थान
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी ।

□

प्रकाशक—
डॉ० हरिश्चन्द्र मणि त्रिपाठी
प्रकाशनाधिकारी,
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी—२२१ ००२.

□

प्राप्तिस्थान—
विक्रय-विभाग,
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी—२२१ ००२.

□

प्रथम संस्करण, १००० प्रतियाँ
मूल्य १००= ०० रूपये

□

मुद्रक—
माधो प्रिन्टर्स
के० १८/४६, नारायण दीक्षित-लेन
वाराणसी ।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

प्ररोचना

'योगवासिष्ठ के आख्यानक' आध्यात्मिक दृष्टि से बड़े महत्त्वपूर्ण हैं; क्योंकि इनके द्वारा सामान्य जीवन जीते हुए कैसे अध्यात्म की ओर उन्मुख हुआ जाता है, और लोक से परमार्थ की ओर किस प्रकार क्रमिक यात्रा अग्रसर होती है, इसका मनोरम चित्रण इस ग्रन्थ में दृष्टिगोचर होता है। आचार्य श्रीशुक्ल ने इन आख्यानों के अभिप्राय को ऐसे सहज ढंग से सुबोध भाषा में रख दिया है कि गूढ़ चेतना के स्तरों को समझने में कोई आयास नहीं होता। इन आख्यानों में कुछ आख्यान सृष्टि-प्रक्रिया से सम्बद्ध हैं, कुछ आख्यान ज्ञान-वैराग्य से सम्बद्ध हैं, कुछ आख्यान मनोजगत् के रहस्यों के उन्मीलन से सम्बद्ध हैं तथा कुछ आख्यान जीवन-गति से सम्बद्ध हैं। संक्षेप में ये आख्यान अध्यात्म-चिन्तन का समग्र आयाम प्रस्तुत करते हैं।

इस मनोरम प्रस्तुति के लिए मैं पण्डित श्रीकुबेरनाथ शुक्ल जी के प्रति हार्दिक धन्यवाद प्रस्तुत करता हूँ।

वाराणसी
शारद-नवरात्र,
२०४८ वैक्रमाब्द

विद्यानिवास मिश्र
कुलपति,
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

प्राक्कथन

'योगवासिष्ठ के राम' शीर्षक ग्रन्थ के प्राक्कथन में जो सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय से प्रकाशित है, योगवासिष्ठ के महत्त्व, ग्रन्थ का रचना-काल, ग्रन्थ की हस्तलिखित तथा मुद्रित प्रतियाँ, ग्रन्थ की वर्णन शैली आदि के सम्बन्ध में प्रकाश डालने की चेष्टा की गई है और विषय प्रवेश में योगवासिष्ठ के दर्शन एवं सिद्धान्तों पर संक्षिप्त टिप्पणी प्रस्तुत की गई है। प्रस्तुत ग्रन्थ में योगवासिष्ठ के आख्यानकों का वर्णन किया जा रहा है। उनके पठन से ग्रन्थ के दर्शन एवं सिद्धान्त पाठकों को सरल एवं सुबोध रूप में अवगत हो जायँगे।

इस ग्रन्थ में ३८ आख्यानकों का वर्णन किया गया है, जिनके सम्बन्ध में संक्षिप्त टिप्पणी विषय-प्रवेश में अङ्कित की गई है। आख्यानकों में उपाख्यान एवं आख्यायिकायें भी सम्मिलित हैं। कर्कट्युपाख्यान तथा बालाख्यायिका को अनुपयोगी समझकर स्थान नहीं दिया गया है। मणिकाचोपाख्यान तथा हस्तिकोपाख्यान चूडा-लोपाख्यान के अन्तर्गत आ गए हैं। अतः उनको स्वतन्त्र स्थान नहीं दिया गया है। महर्षि अगस्ति एवं सुतीक्ष्ण, अग्निवेश्य एवं कारुण्य, राजा अरिष्टनेमि तथा देवदूत, देवदूत एवं अप्सरा सुरुचि, महर्षि वाल्मीकि एवं भरद्वाज के आख्यान सर्वथा महत्त्व पूर्ण हैं। वे परस्पर सम्बद्ध हैं और एक दूसरे पर आश्रित हैं। उनका सह-अस्तित्व अधिक समीचीन है। अतः उन्हें स्वतन्त्र शीर्षक नहीं दिया गया है। उनका उल्लेख यहाँ किया जा रहा है।

सुतीक्ष्ण ब्राह्मण नाना प्रकार के संशयों से आक्रान्त था। उसने महर्षि अगस्ति के आश्रम में जाकर पूछा—"भगवन्! मैं जानना चाहता हूँ कि मोक्ष-प्राप्ति ज्ञान से होती है अथवा कर्म से? क्या ज्ञान और कर्म दोनों मोक्ष के साधक हैं?"

महर्षि ने कहा—"जैसे आकाश में पक्षी दोनों पक्षों से उड़ते हैं, वैसे ज्ञान और कर्म दोनों से परम पद मोक्ष प्राप्त होता है। केवल कर्मों से अथवा ज्ञान से मोक्ष प्राप्त नहीं होता है।' इस प्रसङ्ग में उन्होंने प्राचीन इतिहास सुनाया।

प्राचीन काल में अग्निवेश्य के पुत्र कारुण्य ने वेदादि शास्त्रों के अध्ययन के अनन्तर गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया। उसने घर पर सन्ध्यावन्दन आदि नित्य-कर्मों का त्याग कर दिया। वह संशयाक्रान्त हो अकर्मण्य बन गया।

अग्निवेश्य ने कहा—"पुत्र! तुमने नित्य कर्मों का त्याग क्यों किया है? अकर्मण्य मनुष्य कभी भी सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता। तुम्हें कर्मों से विरक्ति क्यों है?"

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

कारुण्य ने कहा—"पूज्यपाद ! श्रुतियों और स्मृतियों में जीवन-पर्यन्त सन्ध्या वन्दन, अग्नि होम आदि करने का विधान है। श्रुति में यह भी लिखा है कि धन से, कर्म से, प्रजोत्पादन से मोक्ष प्राप्त नहीं होता। त्याग से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। ऐसी स्थिति में मैं किंकर्तव्यविमूढ़ सा हो गया हूँ।

अग्निवेश्य ने कहा—"पुत्र ! मैं एक आख्यान सुना रहा हूँ। उसका आशय समझकर यथाभिमत कार्य करो। सुरुचि नाम की एक अत्यन्त सुन्दरी अप्सरा थी। वह हिमालय पर्वत पर जगत्पावनी भागीरथी के तट पर बैठी थी। उसने आकाश के मार्ग से जाते हुए इन्द्र के दूत को देखा। सुरुचि ने कहा—"महाभाग ! आप कहाँ जा रहे हैं ? कहाँ से आ रहे हैं ? कृपया मुझे बतलाइए।"

दूत ने कहा—"सुन्दरि ! राजा अरिष्टनेमि अपने पुत्र को राज्य देकर तप करने के लिए गन्धमादन पर्वत पर चले गए। वह राजा वहाँ तप कर रहा है। उनसे मिल कर मैं आ रहा हूँ। उनका वृत्तान्त कहने के लिए देवराज इन्द्र के पास जा रहा हूँ।"

अप्सरा ने कहा—"भगवन् ! वहाँ पर क्या हुआ ? कृपया मुझे बतलाइए। मैं विनीत होकर पूछ रही हूँ। कृपया मेरी अवज्ञा न कीजिए।"

देवदूत ने कहा—सुन्दरि! सुनो। राजा अरिष्टनेमि के तप का वृत्तान्त सुन कर देवराज इन्द्र ने मुझे आज्ञा दी कि तुम विमान लेकर अप्सराओं के साथ गन्ध-मादन पर्वत पर जाओ और राजा को विमान पर बैठाकर स्वर्गीय सुखों को भोगने के लिए अमरावती में ले आओ।"

तदनुसार मैं गन्धमादन पर्वत पर गया। मैंने राजा से देवराज का सन्देश कह सुनाया। तब राजा ने मुझसे पूछा कि—"आप पहले स्वर्ग के गुण और दोष का वर्णन करें, तब विचार कर मैं यथोचित कार्य करूँगा।" मैंने विस्तार से स्वर्ग के गुणों और दोषों का वर्णन किया। स्वर्ग में उत्तम, मध्यम, अधम कर्मों के अनुसार सुख-सामग्री प्रस्तुत की जाती है। वहाँ ईर्ष्या, स्पर्धा, द्वेष आदि की भावना विभिन्न श्रेणियों के स्वर्गवासियों में बनी रहती है। कर्म के अनुसार फल भोगने के पश्चात् पुण्य क्षीण हो जाता है और तब वहाँ से मर्त्यलोक में पुनः जाना पड़ता है।

राजा ने कहा—"दूत ! मैं ऐसे स्वर्ग में नहीं जाना चाहता। मैं घोर तपस्या करके अपना शरीर-त्याग करूँगा। आपको नमस्कार, आप कृपया विमान के साथ लौट जायँ।"

देवदूत ने कहा—मैंने देवराज इन्द्र के पास जाकर राजा अरिष्टनेमि ने जो कुछ कहा था निवेदन किया। तब देवराज ने कहा—"तुम पुनः राजा के पास जाओ और उस विरक्त राजा को महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में ले जाओ। महर्षि राजा को तत्त्वज्ञान का उपदेश करेंगे, जिससे वह मुक्त हो जायगा।"

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

देवराज के आदेश से मैं पुनः राजा के पास गया और उन्हें महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में पहुँचा दिया।

महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में कुशल-प्रश्न के अनन्तर राजा ने कहा—"भगवन्! मैं आर्त्त हूँ, जिज्ञासु हूँ। मैं जानना चाहता हूँ कि संसार-बन्धन रूप दुःख की पीडा से मैं कैसे मुक्त हो सकता हूँ?"

महर्षि ने कहा—"राजन्! मैं रामायण की कथा कहूँगा, जिसको सुनकर आप जीवन्मुक्त हो जायेंगे। उक्त रामायण वसिष्ठ-राम-संवाद रूप है। वह मोक्ष प्राप्त करने का उत्तम साधन है।"

राजा ने कहा—"भगवन्! राम कौन हैं? उनका स्वरूप कैसा है? किस वंश में उनका जन्म हुआ? वह बद्ध थे अथवा मुक्त?"

वाल्मीकि ने कहा—"राजन्! श्रीराम साक्षात् नारायण हैं। शापवश उन्होंने राजवंश में जन्म लिया। सर्वज्ञ होने पर भी भक्तों के वचन को सत्य प्रमाणित करने के लिए वह अल्पज्ञ से हो गए थे।"

राजा ने कहा—"भगवन्! सच्चिदानन्दघन परमेश्वर को किसने और क्यों शाप दिया?"

वाल्मीकि ने कहा—"राजन्! ब्रह्मा के मानस पुत्र सनत्कुमार एक समय ब्रह्मलोक में बैठे थे। उसी समय बैकुण्ठ से विष्णु भगवान् वहाँ आ गए। समस्त देवताओं के साथ ब्रह्मा जी ने अभ्युत्थान आदि से उनका सत्कार किया। केवल सनत्कुमार ने उनका अभिनन्दन नहीं किया। तब क्रुद्ध होकर विष्णु भगवान् ने कहा—"सनत्कुमार तुम अहङ्कारी हो। तुम कार्तिकेय नाम से विख्यात और कामार्त हो जाओगे"।

सनत्कुमार ने कहा कि—"आप सर्वज्ञ हैं; परन्तु कुछ काल के लिए साधारण जन के समान अल्पज्ञ हो जायँगे।"

भृगुपत्नी ख्याति घोर तप कर विष्णु भगवान् में लीन हो गईं। भृगु जी को दुःख हुआ कि भगवान् ने मेरी पत्नी का विनाश कर दिया। अतः उन्होंने शाप दिया कि—"भगवन्! आपको भी कुछ काल के लिए स्त्री-वियोग का दुःख भोगना पड़ेगा।"

उक्त कारणों से विष्णु भगवान् ने मनुष्य रूप धारण किया और भक्तों के शाप को पूर्ण किया। राजन्! मैंने यह रामायण कथा अपने प्रिय शिष्य भरद्वाज को सर्व प्रथम सुनाई। मेरे शिष्य ने (पूर्व रामायण रूप) इस कथा को सुमेरु पर्वत पर आसीन पितामह ब्रह्मा जी को सुनाया। ब्रह्मा जी कथा सुनकर अति प्रसन्न हुए। उन्होंने भरद्वाज मुनि से कहा—"तुम वर माँगो।"

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

भरद्वाज जी ने कहा—"भगवन् ! आप कृपया वह उपाय बतलायें, जिससे लोक सर्वविध दुःखों से विमुक्त हो जाय।"

ब्रह्मा जी ने कहा—"वत्स भरद्वाज ! अपने गुरु महर्षि वाल्मीकि से प्रार्थना करो कि आपने जो रामायण-कथा प्रारम्भ की है, उसे कृपया पूर्ण करें। उत्तर-रामायण (वसिष्ठ-राम-संवाद रूप) को आप लिखें। उसके श्रवण मात्र से मनुष्य संसार-सागर को पार कर जायेगा।"

महर्षि वाल्मीकि ने कहा कि ब्रह्मा जी भरद्वाज से उक्त बातें कहकर मेरे आश्रम में स्वयं पधारे। उन्होंने मुझे आदेश दिया कि "आप लोक-कल्याण के निमित्त रामायण को पूर्ण करें।' तदनुसार मैंने रामायण लिखना प्रारम्भ किया। मैंने अपने प्रिय शिष्य भरद्वाज को रामायण-कथा सुनाई।"

राजा अरिष्टनेमि ने महर्षि वाल्मीकि से समस्त राम-कथा सुनी और अन्त में वह कृतार्थ हो गये। उन्होंने महर्षि वाल्मीकि से कहा—"भगवन् ! आपकी कृपा से मैंने भवसागर को पार कर लिया है।" ऐसा कहकर राजा ने मुझे धन्यवाद देकर विदा किया।

देवदत्त ने सुरुचि से कहा—"भद्रे ! मैंने ऐसा सुन्दर प्रसङ्ग जीवन में कभी नहीं सुना था। मैं कृतार्थ हो गया हूँ। महर्षि की आज्ञा से मैं इन्द्रलोक जा रहा था। तुमने जो कुछ पूछा, उसका मैंने उत्तर दिया। अब मैं तुमसे पूछकर देवराज के समीप जाना चाहता हूँ।"

सुरुचि ने कहा—"देवदूत ! आपको कोटिशः नमस्कार है। आपने मुझे अध्यात्म शास्त्र सुनाकर कृतार्थ कर दिया है। मुझे पूर्ण विश्रान्ति प्राप्त हो गई है। मेरे जन्म-जन्मान्तर के मोहजन्य क्लेश दूर हो गए हैं। अब आप यथेच्छ देवराज इन्द्र के पास जाँय।"

अग्निवेश्य ने कहा—"वत्स ! वह सुरुचि नाम की अप्सरा गन्धमादन पर्वत के समीप हिमालय पर बैठकर देवदूत द्वारा उपदिष्ट ब्रह्मात्मैक्य रूप अर्थ का चिन्तन करने लगी। पुत्र ! तुमने भी महर्षि वसिष्ठ द्वारा उपदिष्ट शास्त्र सुन लिया है। आशा है उससे कर्म और ज्ञान विषयक तुम्हारे संशय का निवारण हो गया होगा। अब तुम जैसा चाहो, वैसा करो।"

कारुण्य ने कहा—"पूज्यपाद ! मेरे सभी संशय दूर हो गए हैं। मुझे न कर्म से प्रयोजन है और न ज्ञान से। ब्रह्मज्ञान से मैं कृतकृत्य हो गया हूँ। फिर भी मुझे लोक-व्यवहार का त्याग अभीष्ट नहीं है। श्रीरामचन्द्र जी के समान मैं वर्ण और आश्रम-धर्मों का पालन करूँगा। हठात् कर्म त्याग में मेरा कोई आग्रह नहीं है।"

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

अगस्ति ने कहा—"सुतीक्ष्ण ! कृतकृत्य होकर अग्निवेश्य के पुत्र कारुण्यने विवाहादि सम्पन्न कर शास्त्रानुसार वर्णाश्रमोचित स्नान, दान, अतिथि-सत्कार, अग्निहोत्र आदि कार्य करना प्रारम्भ किया। वत्स ! संशय नहीं करना चाहिए, क्योंकि संशय से विनाश हो जाता है। तुमने मोक्ष-संहिता सुन ली है। अब यथेच्छ जो चाहो करो।"

सुतीक्ष्ण ने कहा—"भगवन् ! मेरा अज्ञान नष्ट हो गया। मैंने दिव्य ज्ञान प्राप्त कर लिया है। जैसे कटक, अङ्गद, केयूर, नूपुर और काञ्चन में भेद नहीं है, वैसे ही ब्रह्म और दृश्य जगत् में कोई भेद नहीं है। मैं यथाप्राप्त का अनुवर्त्तन कर रहा हूँ। महापुरुषों के वचनों का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। आपके प्रसाद से मैंने ज्ञातव्य तत्त्व को जान लिया है। आपको बारंबार प्रणाम है। गुरु के ऋण से शिष्य कभी भी उऋण नहीं हो सकता। मैं काय, मन और वाणी से आपके शरणागत हूँ। आपके प्रसाद से मैंने भवसागर को पार कर लिया है। मेरे सभी सन्देह दूर हो गये हैं और मैं अपने कर्तव्य-मार्ग पर दृढ़ हूँ। यह समस्त जगत् अखण्ड ब्रह्म स्वरूप है। उस ब्रह्म को नमस्कार है।"

योगवासिष्ठ के प्रायः सभी आख्यानक दार्शनिक तत्त्वों से ओत-प्रोत हैं। आशा है कि वे दार्शनिक तत्त्वों को सरलता से हृदयङ्गम कराने में सफल सिद्ध होंगे।

इस ग्रन्थ के द्वारा वे प्रस्तुत किए जा रहे हैं। यदि सहृदय एवं विज्ञ पाठकों को रुचिकर प्रतीत हुए तो मैं अपना श्रम सफल समझूँगा।

वैशाखशुक्लतृतीया, संवत् २०४५
शुक्लभवन
धूपचण्डी, वाराणसी

विनीत—
कुबेरनाथ शुक्ल

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

विषयानुक्रमणिका

क्रम-संख्या	विषय	पृष्ठ
१.	विषय-प्रवेश	३–२२
२.	आकाशज-आख्यान	२३–२४
३.	लीलोपाख्यान (मण्डपाख्यान)	२५–३९
४.	ऐन्दवोपाख्यान	४०–४३
५.	अहल्या और इन्द्र का आख्यान	४४–४६
६.	लवणाख्यान	४७
७.	राजा लवण का भीलों की बस्ती में जाना	५१
८.	भार्गवाख्यान	५३
९.	भार्गव–मनोराज्य	५३–५४
१०.	भार्गव-कलेवरवर्णन	५४–५६
११.	संसार-प्रवृत्तिदर्शन	५६–५८
१२.	काल और भृगु का समङ्गा-तट पर जाना	५८–५९
१३.	शुक्र का जन्मान्तरस्मरण	५९–६०
१४.	पुनर्जीवन	६१
१५.	मनोरूप-वर्णन	६२
१६.	दाशूरोपाख्यान	६३
१७.	सङ्कल्प का त्याग	६४–६५
१८.	राजा जनक का आख्यान	६६
१९.	राजा जनक का निश्चय	६८–७०
२०.	चित्तानुशासन	७०
२१.	प्रज्ञा-माहात्म्य	७०–७२
२२.	राजा बलि का आख्यान	७३
२३.	विरोचन-स्मरण	७३
२४.	विरोचन-वचन	७३–७४
२५.	चित्त-विजय का प्रयास	७४–७५
२६.	बलि की अनुभूति	७५
२७.	बलि को उपदेश	७५–७६
२८.	बलि की मुक्ति (विश्रान्ति)	७६–७७
२९.	बलि-समाधान	७७–७८

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

३०.	बलि-विज्ञानप्राप्ति	७८–७९
३१.	पावन-बोधनाख्यान	८०–८१
३२.	प्रह्लाद का आख्यान	८२
३३.	प्रह्लाद का नारायणीभाव	८२–८३
३४.	प्रह्लाद का आत्मोपदेश	८३–८४
३५.	प्रह्लाद का ब्रह्मात्मलाभ	८५–८७
३६.	प्रह्लाद का आत्मस्तवन	८७–८८
३७.	श्रीराघवेन्द्र का प्रश्न	८८–८९
३८.	गाधि का आख्यान	९०
३९.	श्वपच का राज्यलाभ	९०–९१
४०.	राज्यभ्रंश	९१
४१.	गाधि का प्रत्यक्षावलोकन	९१–९३
४२.	माया-महत्त्व-कथन	९३–९५
४३.	गाधि की ज्ञान-प्राप्ति	९५ –९६
४४.	उद्दालक मुनि का आख्यान	९७
४५.	मुनि का मनोरथ	९७
४६.	उद्दालक–विचार	९८–१००
४७.	उद्दालक-विश्रान्ति	१००–१०२
४८.	उद्दालक-निर्वाण	१०३–१०४
४९.	सुरघु-परिघ-आख्यान	१०५
५०.	समाधि-निश्चय	१०५–१०६
५१.	राजा सुरघु का आख्यान	१०७
५२.	राजा सुरघु का वृत्तान्त	१०७
५३.	सुरघु की विश्रान्ति	१०७–१०९
५४.	सुरघु-निर्वाण	१०९
५५.	वीतहव्य मुनि का आख्यान	११०
५६.	वीतहव्य मुनि का मनोजगत्	११०–१११
५७.	वीतहव्य की समाधि	१११–११२
५८.	इन्द्रियवर्ग-निराकरण	११२–११३
५९.	वीतहव्य की विश्रान्ति	११३
६०.	सद्विलास-विचार	११४
६१.	जीवन्मुक्तों की आकाश-गमनादि में इच्छा नहीं	११४

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

६२.	हिंसक पशु आत्मज्ञानी के शरीर को धर्षित नहीं कर सकते	११४–११५
६३.	चित्ताख्यान	११६–११७
६४.	भगीरथोपाख्यान	११८–१२०
६५.	विलास–भासाख्यान	१२१–१२२
६६.	कागभुशुण्डोपाख्यान	१२३
६७.	कागभुशुण्ड–दर्शन	१२३–१२४
६८.	आलय-लाभ	१२५–१२६
६९.	चिरजीवित–वृत्तान्त–कथा	१२६–१२९
७०.	चिरजीवित-वर्णन	१२९–१३२
७१.	समाधान की प्रशंसा	१३२–१३३
७२.	प्राणविचारण	१३३–१३४
७३.	चिरंजीवी होने का कारण	१३४–१३६
७४.	भुशुण्ड-प्रशंसा	१३६
७५.	बिल्वोपाख्यान	१३७–१३८
७६.	जीवटोपाख्यान–भिक्षुसंसार	१३९–१४२
७७	अर्जुनोपाख्यान	१४३–१४४
७८.	वेतालोपाख्यान	१४५–१४६
७९.	चूडालोपाख्यान	१४७
८०.	शिखिध्वजविलास	१४७
८१.	चूडाला का प्रबोध	१४७–१५०
८२.	चूडालात्मलाभ	१५०–१५१
८३.	चूडाला को सिद्धियाँ प्राप्त हुई	१५१–१५२
८४.	शिखिध्वज का वनगमन	१५२–१५४
८५.	चूडाला राजा के पास गई	१५४–१५५
८६.	चूडाला और राजा का संवाद	१५५–१५६
८७.	कुम्भ से उत्पत्ति	१५७–१५८
८८.	शिखिध्वज–चूडाला–संवाद	१५८–१५९
८९.	मणिकाचोपाख्यान	१५९–१६०
९०.	हस्तिकोपाख्यान	१६०–१६१
९१.	चिन्तामणि साधक की समीक्षा	१६१–१६२
९२.	हस्तिकाख्यान का तात्पर्य	१६२–१६३
९३.	सर्वत्यागकरण	१६३–१६४

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

९४.	शिखिध्वज का अवबोधन	१६४–१६९
९५.	शिखिध्वज–विश्रान्ति	१७०–१७१
९६.	शिखिध्वजावबोधन	१७१–१७३
९७.	शिखिध्वज-प्रबोधन	१७४–१७८
९८.	शिखिध्वज–परभावबोधन	१७८–१८१
९९.	शिखिध्वज–बोधन	१८१–१८४
१००.	शिखिध्वज की समाधि	१८४
१०१.	कुम्भ (चूडाला) का पुनरागमन	१८४–१८६
१०२.	कुम्भ रमणी बन गये	१८७–१८८
१०३.	मदनिका का (कुम्भ का) विवाह	१८८–१९०
१०४.	शक्रागमन	१९०–१९१
१०५.	चूडाला का स्वरूपदर्शन	१९१–१९२
१०६.	चूडाला–प्रकटीकरण	१९२–१९६
१०७.	शिखिध्वज–निर्वाण	१९६–१९७
१०८.	कचोपाख्यान	१९८
१०९.	परमार्थोपदेश	१९९–२००
११०.	मिथ्यापुरुषोपाख्यान	२०१
१११.	मनु-इक्ष्वाकु-आख्यान	२०२
११२.	आध्यात्मिक सात भूमिकायें	२०३–२०४
११३.	इक्ष्वाकु–प्रबोधन	२०४–२०६
११४.	तुर्यपद में स्थिति	२०६–२०७
११५.	परमार्थस्वरूप–वर्णन	२०७–२११
११६.	भरद्वाजाख्यान	२१२–२१४
११७.	विद्याधरोपाख्यान	२१५–२१६
११८.	मङ्कि–उपाख्यान	२१७
११९.	मङ्कि–वैराग्य	२१८
१२०.	मङ्किबोधन	२१९–२२२
१२१.	मन–हरिणकोपाख्यान	२२३–२२५
१२२.	पाषाणाख्यायिका	२२६
१२३.	सर्ग ही ब्रह्म है	२२७
१२४.	जगज्जाल का वर्णन	२२७–२३२
१२५.	जगत् आकाश रूप ब्रह्म है	२३३–२३४
१२६.	विद्याधरी द्वारा परिचय-प्रदान	२३४–२३६

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

१२७. विद्याधरी का जन्म-व्यवहारवर्णन २३६–२३७
१२८. शिला के मध्य का वर्णन २३८
१२९. अभ्यास-प्रशंसा २३८–२४०
१३०. दृश्य की अनुपपत्ति २४०–२४२
१३१. अन्य जगत् के ब्रह्मा जी के वचन २४२–२४३
१३२. वासनादेवी (विद्याधरी) के वैराग्य का कारण २४३–२४४
१३३. कल्पक्षोभ-वर्णन २४५–२४७
१३४. आकाश में बारह सूर्यों का उदित होना २४७–२४८
१३५. प्रलयकालिक मेघ पुष्करावर्त्त का उदय २४८–२५०
१३६. एकार्णव-वर्णन २५०–२५२
१३७. विधाता के निर्वाण का वर्णन २५२
१३८. प्रलय-क्रम का वर्णन २५२–२५५
१३९. कालरात्रि का वर्णन २५५–२५८
१४०. शिवस्वरूप-वर्णन २५८–२६०
१४१. विश्वरूप-दर्शन २६०
१४२. विविध जगत् का वर्णन २६०–२६१
१४३. अविद्योपाख्यान २६२
१४४. विपश्चितों का निर्णय २६४–२६५
१४५. विपश्चितों का दिग्विहरण २६५
१४६. विपश्चितों की दुःस्थिति २६५–२६६
१४७. जीवन्मुक्त-कलना २६७–२६८
१४८. विपश्चितों के जन्मान्तरीय आचरण २६८–२७०
१४९. विपश्चित् मृग बन गया २७०–२७१
१५०. मृग का वह्निप्रवेश २७१–२७२
१५१. भास-संसार-वर्णन २७२–२७४
१५२. भासजन्म-परम्परा २७४–२७५
१५३. महाशव-वर्णन २७६–२७७
१५४. देवपरिदेवन २७७–२७९
१५५. मशकव्याध-बोधन २७९–२८२
१५६. व्याध राजा सिन्धु बन गया २८२–२८३
१५७. शवनिर्णय २८३–२८४
१५८. विपश्चित् संसारभ्रमण २८४–२८७
१५९. शिलोपाख्यान २८८–२८९

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

१६०. ब्रह्माण्डोपाख्यान २९०–२९१
१६१. कुन्ददन्तोपाख्यान २९२
१६२. तापसोपाख्यान २९२–२९३
१६३. गौर्याश्रमवर्णन २९३–२९५
१६४. सप्तद्वीपेश्वरोपाख्यान २९५–२९७
१६५. वर–शाप–निरूपण २९७–२९८
१६६. द्वीपसप्तकाष्टक–वर्णन २९८–२९९
१६७. कुन्ददन्तोपदेश २९९–३००
१६८. कुन्ददन्त–प्रबोध ३००–३०१
१६९. कीरवैवधिकोपाख्यान ३०२

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

वाल्मीकिरचनामृत

[योगवासिष्ठ के आख्यानक]

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

विषय-प्रवेश

इस ग्रन्थ में निम्नाङ्कित अड़तीस (३८) आख्यानक प्रस्तुत किए गए हैं—

१. आकाशज-आख्यान
२. मण्डपाख्यान (लीलोपाख्यान)
३. ऐन्दवोपाख्यान
४. कृत्रिम इन्द्र और अहल्या के आख्यान
५. लवणाख्यान
६. भार्गवाख्यान
७. दाशूरोपाख्यान
८. राजा जनक का आख्यान
९. राजा बलि का आख्यान
१०. पावनबोधनाख्यान
११. प्रह्लाद का आख्यान
१२. गाधि का आख्यान
१३. उद्दालक मुनि का आख्यान
१४. सुरघु-परिघ आख्यान
१५. राजा सुरघु का आख्यान
१६. वीतहव्य मुनि का आख्यान
१७. चित्ताख्यान
१८. भगीरथोपाख्यान
१९. विलास और भास का आख्यान
२०. कागभुशुण्डोपाख्यान
२१. बिल्वोपाख्यान
२२. जीवटोपाख्यान
२३. अर्जुनोपाख्यान
२४. वेतालोपाख्यान
२५. चूडालोपाख्यान
२६. कचोपाख्यान
२७. मिथ्यापुरुषोपाख्यान
२८. मनु-इक्ष्वाकु-आख्यान
२९. भरद्वाजाख्यान
३०. विद्याधरोपाख्यान
३१. मङ्कि-उपाख्यान
३२. मन-हरिणकोपाख्यान
३३. पाषाणाख्यायिका
३४. अविद्योपाख्यान
३५. शिलोपाख्यान
३६. ब्रह्माण्डोपाख्यान
३७. कुन्ददन्तोपाख्यान
३८. कीरवेवधिकोपाख्यान

उपर्युक्त आख्यानकों के सम्बन्ध में संक्षिप्त टिप्पणी प्रस्तुत की जा रही है।

(१) आकाशज-आख्यान—

आकाशज-ब्राह्मण आकाश से उत्पन्न हुआ। वह आकाश के समान निर्मल है। उसके प्राक्तन एवं संचित कर्म नहीं हैं। इस समय भी वह कर्म नहीं कर रहा है। वह स्वयम्भू है। उसकी आकृति नहीं है। उस पर कोई आक्रमण नहीं कर सकता। उसमें कर्तृत्व की भावना नहीं है। वह विशुद्ध चिदाकाश और विज्ञानघन है। वासना का सर्वथा अभाव होने से वह अवध्य है।

(२) मण्डपाख्यान (लीलोपाख्यान)—

रानी लीला के पूछने पर भगवती जी ने कहा—"समस्त लौकिक पदार्थ—भूमि, भवन, वन, नदी, पर्वत, समुद्र आदि चिदाकाशरूप हैं। उस मृत ब्राह्मण के

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

जीवाकाश में यह समस्त भूमण्डल एवं लौकिक पदार्थ स्थित हैं। एक अणु के भीतर अनेक ब्रह्माण्ड स्थित हैं। ऐसी स्थिति में ब्राह्मण के मण्डपाकाश में तुम्हारे साम्राज्य के अन्तःस्थित होने में कौन सी अनुपपत्ति है।

इसी प्रकार चिदाकाश में काल की दीर्घता भी अप्रयोजक है। दिन, मास, वर्ष, युग, कल्प आदि सब काल्पनिक हैं। राजा हरिश्चन्द्र की एक रात्रि बारह वर्षों की हुई थी। राजा लवण को कुछ घण्टों में ही अनेक वर्षों की अनुभूति हुई थी। वियोगियों को एक दिन वर्ष के समान प्रतीत होता है। सुख-दुःख की स्थिति में काल की ह्रस्वता एवं दीर्घता सर्वजनानुभूत है। यह समस्त दृश्यजगत् चिद्रूप है, चित् से अतिरिक्त कुछ नहीं है।

माता सरस्वती ने राजा विदूरथ से कहा—"राजन्! मरणरूपी मूर्च्छा के अनन्तर उसी क्षण में उसी ब्राह्मण-गृह में उसी मण्डप में तुम्हारे जीव का भूतल है। उसी गृह के मध्य यह परिदृश्यमान पाद्म संसार-मण्डल है। वहीं पर तुम्हारा यह समृद्धिशाली भवन स्थित है। वहीं पर तुम्हारे निर्मल चित्त में व्यावहारिक भ्रम का प्रसार करने वाला यह दृश्य-प्रपञ्च प्रातिभासिकरूप से प्रतीयमान हुआ। जैसे यह मेरा जन्म है। अमुक मेरे माता-पिता हैं। जब मैं दस वर्ष का था, मेरे पिताजी मुझे राज्य देकर वन चले गए। मैंने दिग्विजय कर अखण्ड राज यप्राप्त किया। ये सब मेरे मन्त्री एवं अनुचर हैं। इस समय मैं भयङ्कर स्थिति में युद्ध कर रहा हूँ। सौभाग्यवश दो देवियों ने मुझ पर कृपा की है, इत्यादि।

जैसे स्वप्न के एक क्षण में सैकड़ों वर्षों की भ्रान्ति होती है, वैसे ही मरणकाल में प्रातिभासिक-ज्ञान मनुष्य की प्रतिभा को प्राप्त होता है और फलस्वरूप विविध घटनाओं की स्मृति होती है। वस्तुतः यह सब असत् और मायाजाल है। जैसे स्वाप्निक जगत् में जीवन एवं मरण है, जैसे गन्धर्वनगर में भित्ति और उसको अलङ्कृत करने वाले चित्रों की प्रतीति है, जैसे नौका के चलने पर उसके दोनों ओर वृक्ष और पर्वत में गतिशीलता प्रतीत होती है, वैसे ही यह दृश्य-प्रपञ्च मिथ्या एवं मायिक है।

वस्तुतः जीव न कभी उत्पन्न होता है और न मरता है। वह विशुद्ध विज्ञान-स्वरूप, शान्त, सच्चिदानन्दरूप है। ये सब भूतल, पर्वत, ग्राम, मन्त्री, अनुचर, सेना-प्रभृति सब कुछ असत् हैं। जो ज्ञातज्ञेय हैं और जिन्हें बोध हो गया है, उनकी दृष्टि में जगत् में कुछ भी सत्य नहीं है, केवल सच्चिदानन्द परब्रह्म परमात्मा ही एकमात्र सत्य है। यही इस आख्यान का तात्पर्य है।'

(३) ऐन्दवोपाख्यान—

ऐन्दव-ब्राह्मण ब्रह्मा बनना चाहते थे। उनके मन में ब्रह्मा बनने की कामना अतितीव्र हो गई। वे कल्पान्त तक तपस्या करते रहे। वे अपने को कमलासन पर स्थित ब्रह्मा मानकर जगत् की मानस-सृष्टि करने लगे। वे अपने को देवताओं, सूर्यादि

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

नवग्रहों तथा इन्द्रादि दश-दिक्पालों का स्वामी मानने लगे। अन्त में उनका मनोरथ सफल हुआ। वे दस ब्रह्माण्डों के रचयिता दस ब्रह्मा हो गए। उनके ब्रह्माण्ड में सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, अग्नि, यम आदि देव, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, राक्षस, मानव आदि तथा वन, पर्वत, नदी, समुद्र, बड़े-बड़े नगर, ग्राम आदि निर्मित थे। उनकी सृष्टि मानस थी, अतः स्थूल इन्द्रियों द्वारा दृश्य नहीं थी। उसे सूक्ष्म-दृष्टि से देखा जा सकता है। मानस होने के कारण वह सृष्टि नश्वर नहीं थी।

(४) कृत्रिम इन्द्र और अहल्या का आख्यान

कल्पित इन्द्र और अहल्या के वृत्तान्त से संसार की अनित्यता एवं काल्पनिकता प्रमाणित होती है। मानसभाव अविनाशी हैं। उन्हींकी प्रधानता है। अहल्या एवं इन्द्र का प्रेम विशुद्ध था। यद्यपि उनके शरीर दो थे, पर दोनों का मन एक था। उनको पृथक् करने के लिए नाना प्रकार का दण्ड-विधान किया गया, विविध चेष्टायें की गईं; परन्तु उनका प्रेम-भाव अक्षुण्णरूप में बना रहा। दोनों का मन एक हो गया था, अतः जन्म-जन्मान्तर में भी उनका प्रेम-भाव बना रहा। पशु-पक्षियों की योनि में भी वे साथ-साथ रहते थे और उनके प्रेम-भाव में किञ्चिन्मात्र भी परिवर्तन नहीं होता था। वे दोनों मनोमय हो गए थे। शरीर के नष्ट हो जाने पर भी मन का कुछ नहीं बिगड़ता। वह अतिसूक्ष्म, चिन्मात्र, दुर्लक्ष्य एवं अविनाशी है।

मायाशबलित, असीम, सर्वशक्तिमान् आत्मा का सङ्कल्पात्मक रूप मन है। उस मन ने इस नानाविध विश्व का, जो मायामय विविध रचनाओं से युक्त और वासना की कल्पनाओं से ओतप्रोत है, विस्तार कर रखा है। मन को कर्म भी कहा जाता है; यतः वह जिसका अनुसन्धान करता है, कर्मेन्द्रियवृत्तियाँ उसका अनुमोदन करती हैं। मन जड और चेतन का सम्मिश्रण है। उसी मन के अहङ्कार, चित्त, बुद्धि जीव आदि अनेक नाम हैं, जैसे नर अनेक रूपों को धारण करता है, वैसे मन विविध क्रियाओं को करता हुआ अनेक नामों को धारण करता है। एक ही व्यक्ति विविध क्रियाओं को करने के कारण याचक, अध्यापक, दाता आदि विविध संज्ञाओं को धारण करता है। स्पर्श, दर्शन, श्रवण आदि क्रियाओं की अनुभूति मन से ही होती है।

यह ब्रह्माण्डरूपी आडम्बर मन से ही आविर्भूत हुआ है। अतः जगत् मन का कार्य है। समस्त जगत् का विस्तार मन से ही हुआ है। आत्मा विकाररहित है। अतः जन्म, मरण, बन्ध, मोक्ष आदि क्रियायें मनोमूलक हैं। मन के विलीन हो जाने पर यह समस्त जगत् विलीन हो जाता है और जीव मुक्त हो जाता है।

(५) लवणाख्यान—

लवणाख्यान से स्पष्ट है कि जगद्रूपी इन्द्रजाल मन के आयत्त है। यह जिज्ञासा प्रत्येक पाठक और श्रोता को होती है कि वह ऐन्द्रजालिक कौन था, जिसने मोहान्धकार में डालकर राजा को चाण्डाल बना दिया था। महर्षि वसिष्ठ के शब्दों में जिज्ञासा

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

का उत्तर यह है कि देवराज इन्द्र ने राजा लवण को दण्ड देने के निमित्त उस ऐन्द्र-जालिक को भेजा था, जिसने अपना कार्य सम्पन्न कर इन्द्रलोक के लिए प्रस्थान कर दिया। मन ही कर्त्ता और भोक्ता है। विवेक से मन को परिष्कृत कर परम-सुख प्राप्त किया जा सकता है। जैसे वृक्ष शाखा, प्रशाखा, पुष्प, फल, पल्लव आदि के द्वारा उत्कर्ष को प्राप्त करता है, वैसे मन आत्मस्वरूप को छिपाकर अपना उत्कर्ष दिखाया करता है। आत्मज्ञान हो जाने पर मन की वासनायें दूर हो जाती हैं। वह शान्त होकर आत्मभाव में लीन हो जाता है और परम-पद को प्राप्त करता है। आत्मज्ञान हो जाने पर मन और उसके कार्यों का अस्तित्व ही नहीं रह जाता। स्वप्न में दृष्ट पदार्थों को वन में तथा भीलों की बस्तियों में प्रत्यक्षरूप से कैसे देखा जा सका? इसका उत्तर मन्त्रियों ने स्पष्टरूप में दिया है। उसे मायाजन्य अर्थात् प्रातिभासिक कहा है। वासनापूर्ण चित्त जिस वस्तु की जैसी भावना करता है, उस वस्तु को शीघ्र वैसे ही देखता है और पाता है। जबकि वह वस्तु न सत् है और न असत्। अधिष्ठानभूत चेतन की सत्ता चराचर समस्त जगत् में व्याप्त है। उससे अतिरिक्त कुछ नहीं है।

(६) भार्गवाख्यान—

आख्यान के अवलोकन से स्पष्ट है कि यह पाञ्चभौतिक स्थूल-शरीर नश्वर और अकिञ्चित्कर है। शरीरस्थ सूक्ष्म-शरीर नित्य और प्रभावी है। शुक्राचार्य आकाशमार्ग से जाती हुई अलौकिक-सौन्दर्ययुक्त दिव्य अप्सरा को देखकर काम-मोहित हो गए। ध्यानस्थ होकर उन्होंने मनःशरीर से उसका अनुसरण किया। उन्होंने अपने स्थूल-शरीर को पिता जी के आश्रम पर छोड़ दिया। मानस-शरीर से अप्सरामय होकर स्वर्लोक चले गए। वहाँ उन्होंने मन्दराचल के निकुञ्जों में, पारिजात वृक्षों के अन्तस्तल में, नन्दनवन के उद्यानों में और लोकपालों के नगरों में युगयुगान्त तक स्वर्गीय सुखों का उपभोग किया।

पुण्य क्षीण हो जाने पर वह मर्त्यलोक में आ गए। वहाँ अनेक योनियों में जन्म लेकर उन्होंने विविध सांसारिक सुख-दुःख का भोग किया। महाकाल की कृपा से वह अपने पिता जी महर्षि भृगु से सङ्गत हुए। महाकाल के आदेश से उन्होंने अपने प्राचीन शरीर में प्रवेश किया और चिरकाल तक अपने पिता जी के साथ सुखपूर्वक जीवन व्यतीत किया। अन्त में तप के फलस्वरूप उन्होंने दैत्यों का आचार्यत्व तथा महत्त्व का श्रेष्ठ पद प्राप्त किया।

(७) दाशूरोपाख्यान—

इस उपाख्यान का तात्पर्य यह है कि मनुष्य कितना भी यज्ञ, तप, दान आदि पुण्य करे, मर्त्यलोक, पाताललोक अथवा स्वर्लोक में वास करे, ब्रह्मा, विष्णु अथवा शिव ही उसके गुरु क्यों न हों; परन्तु उसका उद्धार तब तक न होगा, जब तक वह सङ्कल्पों का उपशम नहीं कर लेगा। सङ्कल्पों का त्याग करने पर ही मनुष्य सब प्रकार के दुःखों से मुक्ति प्राप्त कर सकता है और मोक्ष का अधिकारी हो सकता है।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

(८) राजा जनक का आख्यान—

राजा जनक ने बड़ी गम्भीरता के साथ महात्माओं के गीतों (शुभवचनों) पर विचार किया। आत्मविवेक के अनुसन्धान से उन्हें सम्यक् ज्ञान हो गया। जैसे आकाश में सूर्य उदित होते हैं, वैसे उनके हृदयाकाश में चिदात्मा उदित हो गया। फलतः उन्होंने समस्त सांसारिक पदार्थों को आत्मा में अध्यस्त देखा। वह दिव्य आकाश के समान निर्मल-चित्त से अपने कार्यों को करने लगे। उन्हें हर्ष और विषाद की कोई अनुभूति नहीं। वह सदा समभाव में स्थित रहते थे। वह न कभी प्रसन्न होते थे और न अप्रसन्न। उनकी रागद्वेष की भावना निवृत्त हो गई थी। वह अतीत और अनागत की चिन्ता नहीं करते थे। उन्होंने प्राप्तव्य परब्रह्म को प्राप्त कर लिया था। साधु-पुरुषों की सङ्गति से जो अभ्युदय प्राप्त होता है, वह अन्य प्रकार से प्राप्त नहीं हो सकता।

(९) राजा बलि का आख्यान—

राजा बलि ने दस करोड़ वर्षों तक त्रैलोक्य का राज्य किया। देवराज इन्द्र तक उनकी सेवा में तत्पर रहते थे। उन्होंने विचार किया कि ऐसे नश्वर राज्य और विषय-भोगों से केवल क्षणिक सुख एवं शान्ति मिलती है। अतः वह स्पृहणीय नहीं हो सकता। शाश्वत सुख और शान्ति का मार्ग अन्वेष्टव्य है।

तदनुसार उन्होंने अपने तत्त्वज्ञ पिता श्रीविरोचन से पूछा—"पूज्य तात ! शाश्वत सुख की प्राप्ति का साधन क्या है ? सब प्रकार की एषणाओं पर विजय और विशुद्ध विश्रान्ति कैसे प्राप्त हो सकती है ?

श्रीविरोचन ने कहा—"पुत्र ! आत्मज्ञान और मनोजय एक दूसरे के आश्रित हैं, उनके विना अविनाशी शाश्वत सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। विषयों के प्रति अनास्था होने से वैराग्य होता है और वैराग्य से सुदुर्लभ मनोजय प्राप्त किया जा सकता है।

राजा बलि को पिताजी के उपदेश से केवल आंशिक बोध हुआ, जिससे उन्हें प्रसन्नता हुई। उनको अपने पूर्वकर्मों के लिए पश्चात्ताप हुआ। अतीत को भूलकर सुन्दर वर्तमान एवं भविष्य के लिए वह सचेष्ट हुए।

ब्रह्मानुभूति में शाश्वत आनन्द की प्राप्ति होती है। वह कैसे हो, एतदर्थ उन्होंने अपने कुलगुरु श्रीशुक्राचार्य का स्मरण किया।

शुक्राचार्य तुरन्त आ गए। राजा बलि की जिज्ञासा पर उन्होंने कहा—"यह समस्त जगत् चिद्रूप है। इसकी ऐकान्तिक अनुभूति से विशुद्ध आत्मज्ञान प्राप्त होता है। फलतः सब प्रकार के दुःख और ताप निवृत्त हो जाते हैं और मोक्ष की प्राप्ति होती है। तुम उस चित् की उपासना सर्वात्मना करो। तुम्हें शाश्वत आनन्द प्राप्त हो जायेगा। गुरु के उपदेश का पूर्णरूप से मनन करने के पश्चात् राजा बलि की दृष्टि विशुद्ध हो गई। उन्हें अनुभव होने लगा कि "मैं सर्वव्यापक, नित्य-आनन्दस्वरूप

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

चित् हूँ। मैं समत्वभाव में प्रतिष्ठित हूँ। मुझे न हर्ष है और न विषाद। मैं सब प्रकार के बन्धनों से मुक्त हूँ। मैं चिद्रूप में प्रतिष्ठित हूँ"।

ऐसी स्थिति में मैं यथाप्राप्त कर्मों का पालन करूँगा। मुझे किसी वस्तु की आकांक्षा नहीं है। राजा बलि आत्मज्ञानी तथा जीवन्मुक्त हो पाताल-लोक में राज्य करने लगे। वे सर्वथा निःस्पृह तथा परमपद में प्रतिष्ठित थे।

(१०) पावनबोधनाख्यान—

दीर्घतपा मुनि के पुण्य और पावन दो पुत्र थे। पुण्य ज्ञानी था और पावन अर्धप्रबुद्ध था। माता-पिता की मृत्यु के अनन्तर पावन उनके लिए विलाप करने लगा। तब पुण्य ने वन्धु पावन को समझाया और कहा—"बन्धुवर! क्यों वृथा विलाप कर रहे हो? कौन पिता है और कौन माता है? हमारे, तुम्हारे सहस्रों जन्म हो चुके हैं और अगणित माता-पिता हो चुके हैं। उनमें से किसके लिए विलाप कर रहे हो? जगत् में कुछ भी सत्य नहीं है। केवल चिदात्मा सत्य है। जगत् उसी में प्रतिष्ठित है। उस स्वरूप का ध्यान करना चाहिए और मायाजाल में नहीं पड़ना चाहिए"।

वन्धु पुण्य के उद्बोधन पर पावन को ज्ञान हो गया और वह प्रसन्न हो गया।

(११) प्रह्लाद का आख्यान—

प्रह्लाद ने अनुभव किया कि मेरे पाताललोक की स्थिति नितान्त दयनीय हो गई है। विष्णु-भगवान् के प्रसाद से देवगण आनन्द मना रहे हैं और दानवलोक विनष्ट हो रहा है। विष्णु-भगवान् के प्रसाद से ही कल्याण सम्भव है। अतः मैं उनकी शरण में हूँ। नारायण की भक्ति नारायण बने विना नहीं हो सकती। अतः प्रह्लाद स्वयं नारायण बन गए। उन्होंने लक्ष्मी और गरुड़ को अपने समीप स्थित देखा। वह शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मधारी चतुर्भुज त्रिष्णुस्वरूप हो गए। वह अपने को समस्त ब्रह्माण्डों का निर्माता एवं रक्षक मानने लगे।

भगवान् का वर देना—

प्रह्लाद की लोकोत्तर श्रद्धा-भक्ति से विष्णु-भगवान् प्रसन्न हो गए। उन्होंने वर दिया—"तुम भ्रमों की शान्ति एवं मुक्ति प्राप्त करने के निमित्त ब्रह्म-साक्षात्कार-पर्यन्त विचारवान् बनो"।

प्रह्लाद का आत्मस्तवन—

बड़े भाग्य से आत्मदर्शन हुआ है। आत्मा की सत्ता विश्वजनीन है और वह सब का पालन-पोषणकर्त्ता है। शास्त्रों में विस्तार से आत्मा की महिमा का वर्णन किया गया है। आश्चर्य है कि ऐसे जगद्वन्द्य आत्मतत्त्व को लोग कैसे भूल जाते हैं? आत्मदर्शन से मेरे सब प्रकार के ताप, दुःख, बन्ध आदि नष्ट हो चुके हैं। मैं सम्राट् के समान विराजमान हूँ। मैंने मन-सहित इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर ली है। अतः मेरा सांसारिक बन्धन सर्वथा नष्ट हो गया है। अब मैं जीवन्मुक्त हो चिदात्मा के

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

विशाल साम्राज्य में निश्चिन्त अवस्थित हूँ, जहाँ शोक, मोह, दुःख आदि का अस्तित्व ही नहीं है। वह सर्वोत्तम स्थिति है और एकमात्र भगवत्कृपा से लभ्य है।

(१२) गाधि का उपाख्यान—

गाधि-नामक ब्राह्मण धीमान् और धर्ममूर्त्ति था। उसने आठ मास तक घोर तप किया और विष्णु-भगवान् प्रसन्न हो प्रकट हो गए। उसने भगवान् से वर माँगा— "भगवन्! मैं आपके मायाजाल को देखना चाहता हूँ"। तदनुसार उसे वर मिल गया। अल्प समय में ही वह भगवान् के मायाजाल में फँसकर व्याकुल हो गया। उसे अपनी मूर्खता पर हार्दिक ग्लानि हुई। वह मुक्ति के लिए भगवान् से प्रार्थना करने लगा।

भगवान् प्रसन्न होकर बोले—"ब्राह्मण! तुम पुनः तप करो। यह संसार माया-जाल है। मन विविध प्रकार की आश्चर्यमयी घटनाओं की रचना करता रहता है। जो स्वप्न तुमने जल में देखा था, वैसा ही स्वप्न भूत-देश तथा कीर-देश के वासियों ने भी देखा था। कटंज का वृत्तान्त तुमको पूर्व से ही विदित था। जल के भीतर कटंज के समस्त वृत्तान्त तुम्हें प्रतिभासित हुए। अज्ञजनों को ऐसी भ्रान्तियाँ होती रहती हैं। ज्ञानीजन सर्वथा उनसे मुक्त हैं। उन्हें ऐसी भ्रान्ति कदापि नहीं हो सकती। तुम पुनः तप करो, जिससे तुम्हें ज्ञान प्राप्त हो जाय। ज्ञान की प्राप्ति हो जाने पर इस प्रकार का प्रतिभास कभी न होगा"। ऐसा कहकर विष्णु-भगवान् अन्तर्हित हो गए।

गाधि ने दस वर्षों तक घोर तप किया और आत्मज्ञान प्राप्त किया। फलतः उनके समस्त संशय दूर हो गए और वह संसार के मायाजाल के बन्धनों से सर्वदा के लिए मुक्त हो गए।

(१३) उद्दालक मुनि का आख्यान—

उद्दालक मुनि ने अपने उदात्त विचार, धारणा, ध्यान और समाधि से इन्द्रिय-गण, मन, बुद्धि और अहंकार पर विजय प्राप्त की। पश्चात् पर्णासन पर बैठ कर उन्होंने मलद्वारों का अवरोध किया और वायु के नवद्वारों को संयत किया। इन्द्रिय, मन, चित्त आदि की समस्त क्रियाओं का अवरोध कर और चिदात्मा के साथ सम्बन्ध स्थापित कर चित्सामान्यता प्राप्त की। पश्चात् चित् के अनुसन्धान एवं अभ्यास द्वारा सर्वोत्कृष्ट आनन्द का अनुभव किया।

इस आनन्द की अनुभूति होने पर लौकिक एवं पारलौकिक वैषयिक-सुख अतितुच्छ प्रतीत होते हैं। उनकी ओर उच्च महानुभावों का ध्यान आकृष्ट नहीं होता। मुनि ने चित्सामान्यता का भी अतिक्रमण कर सर्वोच्च सत्ता-सामान्यता को प्राप्त किया। चित्त की वृत्तियों में अभिव्यक्त अखण्ड चैतन्य जब सब विषयों का अपलाप कर अपने पारमार्थिक स्वरूप से स्वप्रकाशात्मक सत्ता-सामान्यात्मक चित्स्वरूप होता है, तब सत्ता-सामान्यता प्राप्त होती है। इस प्रकार मुनि ने सर्वोत्कृष्ट आनन्द

फा० —२

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

प्राप्त कर लिया। इस उच्च स्थिति को प्राप्त कर मुनि उद्दालक ने जन्म-मरण बन्धन से विमुक्त हो ब्राह्मीभाव प्राप्त कर लिया और यथासमय अपने पार्थिव शरीर को त्याग दिया।

(१४) सुरघु-परिघ आख्यान—

किरात-देश के राजा सुरघु और पारस देश के राजा परिघ घनिष्ठ मित्र थे। पारस देश में अवर्षण तथा अकाल पड़ने के कारण राजा परिघ अपना देश छोड़कर जङ्गल में तप करने के लिए चले गए। चिरकालिक समाधि से उन्हें आत्मज्ञान हो गया। वह पर्वतों, वनों एवं ऋषियों के आश्रमों में भ्रमण करते थे। अकस्मात् एक दिन राजा सुरघु से उनकी भेंट हो गई। दोनों मित्र मिलकर आनन्द से फूले न समाये और नाना प्रकार के प्रेमालापों, कथाओं एवं आख्यानों की चर्चा में वे अपने को भूल से गए।

एक दिन राजा परिघ ने वार्त्ता के प्रसङ्ग में अपने मित्र से कहा—"राजन्! समाहित चित्त वाले पुरुषों को सांसारिक कर्म भी सुखदायक हो जाते हैं। क्या आप दुःखों का उपशमन करने वाली, विश्रान्ति का उत्तम साधन जो समाधि है, उसका अनुष्ठान करते हैं" ?

राजा सुरघु ने कहा—" मित्र! समाधि अवश्य प्रशस्त है; परन्तु तत्त्वज्ञानी पुरुषों को समाधि की आवश्यकता नहीं है, उनका चित्त समाधि में लीन रहता है। अतः वे सब प्रकार के व्यवहारों को करते हुए भी उनमें लिप्त नहीं होते। वे समाधिस्थ-से ही हैं। समस्त आशाओं का परित्याग कर अपरोक्ष आत्मतत्त्व का साक्षात्कार ही समाधि है। मनीषीगण परा-प्रज्ञा को समाधि कहते हैं। तत्त्वज्ञानियों की समाधि बराबर लगी रहती है। यतः वे सांसारिक प्रपञ्चों से सदा दूर रहते हैं। वे आत्मस्वरूप को कभी विस्मृत नहीं करते। वस्तुतः आत्मज्ञान और समाधि में कोई भेद नहीं है"।

राजा परिघ अपने मित्र के उत्तर से सन्तुष्ट हो गए। उन्होंने अपने मित्र के तत्त्वज्ञान की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

(१५) राजा सुरघु का आख्यान—

किरातेश राजा सुरघु हिमालय के कैलाश-पर्वतशिखर पर राज्य करते थे। वे पराक्रमी और धर्मात्मा राजा थे। उनके मन में यह शंका बनी रहती थी कि हमारी प्रजा का जीवन यों ही क्लेशमय है, उसको दण्ड देना कहाँ तक वाञ्छनीय है। शास्त्रों के अनुसार निग्रहानुग्रह-समर्थ व्यक्ति ही राजा हो सकते हैं।

वह इस प्रकार के ऊहापोह में पड़े रहते थे। अकस्मात् माण्डव्य मुनि उनके आवास पर आ गए। राजा ने प्रसन्न होकर उनकी विधिवत् पूजा की और मुनि जी से शंका-निवारण के लिए प्रार्थना की।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

मुनि ने कहा—"राजन् ! विचार से सभी संशय दूर हो सकते हैं। मनुष्य को विचार करना चाहिए, जिससे तत्वज्ञान हो जाय। 'आत्मा ही सर्वस्व है' ऐसा ज्ञान हो जाने पर सब प्रकार के संशयों का निवारण हो जाता है"।

ऐसा कहकर मुनि जी अपने स्थान पर चले गए। राजा ने मुनि के वचनों पर गम्भीरता से विचार किया। सोते, बैठते, उठते, जागते वह सदा आत्मचिन्तन में लगा रहता था। उसने सैंकड़ों वर्षों तक अनासक्तिभाव से राज्य किया और अन्त में वह ब्रह्म में लीन हो गया।

(१६) वीतहव्य मुनि का आख्यान—

वीतहव्य मुनि विन्ध्यक्षेत्र की एक कन्दरा में अवस्थित थे। तीन सौ वर्षों के बाद वह समाधि से विरत हुए। उनका शरीर वर्षा-ऋतु की जलमिश्रित पङ्कराशि से आकीर्ण हो गया था। वह पृथ्वी में गड़ सा गया था। मुनि ने विचार किया—"मेरा शरीर घोर कष्ट में है, चलने फिरने में असमर्थ है। अतः इसका उद्धार करना चाहिए। मैं सूक्ष्म-शरीर से भगवान् सूर्य के शरीर में प्रवेश करूँ और उनका परिचारक पिङ्गल मेरे शरीर का उद्धार कर देगा"।

तदनुसार मुनि ने सूर्य के शरीर में प्रवेश किया। सूर्यदेव ने उनका आशय समझकर पिङ्गलक को आदेश दिया—"मुनि के शरीर का उद्धार करो"। आज्ञा पाते ही पिङ्गलक ने अपने तीक्ष्ण नखों से शरीर पर जमी हुई मृद्राशि को दूर फेंक दिया। मुनि ने प्रसन्न होकर अपने शरीर में प्रवेश किया और पिङ्गलक को धन्यवाद दिया।

अपने शरीर को पाकर मुनिवर ने सरोवर में स्नान किया और सूर्य-भगवान् की पूजा की। उन्हें प्रसन्नता हुई कि अब मैं अपने शरीर से चल-फिर सकता हूँ।

जीवन्मुक्त वीतहव्य मुनि उच्चकोटि के महात्मा थे। वह परम-पद में प्रतिष्ठित थे। उन्होंने जीवन्मुक्त पुरुषों के समान अपने आयुष्य का अवशिष्टभाग बिताया-और अन्त में वह ब्रह्म में लीन हो गए।

(१७) चित्ताख्यान—

आख्यान में जो गम्भीर और अनन्त लोकों से परिपूर्ण संसार कहा गया है, वह महाटवी है। वह विचाररूपी आलोक से प्राप्य है। ये जो विशाल पुरुष देखे गए हैं, वे क्लेशों में मग्न मन हैं। मेरे उपदेश से कुछ मन तत्त्वज्ञान को प्राप्त कर मुक्त हो गए हैं, कुछ अज्ञानवश मोह में ही पड़े रह गए। वे अन्धकूप (नरक) से बाहर नहीं निकले। जो अन्धकूप कहे गए हैं, वे घोर नरक हैं। कदलीवन स्वर्ग है, वहाँ रहने वाले चित्त पुण्यराशि से सम्पन्न हैं। करञ्जवन में प्रविष्ट चित्त मानवभाव में परिणत हैं। करञ्जवन स्त्री-पुत्रादि के सुखों तथा विविध सांसारिक दुःखरूप कण्टकों से आकीर्ण है। जिन्होंने मेरा तिरस्कार किया, वे अनात्मज्ञ मन हैं, उन्होंने विवेक का तिरस्कार किया। "तुम्हारे देखने से मैं नष्ट हो गया और तुम मेरे शत्रु हो" ऐसा

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

तत्वज्ञान से गल रहे मन का परिदेवन हैं। पुरुषों का जो महान् रोदन था, वह योग-समूह का त्याग कर रहे चित्त का विलाप है। जिस चित्त को विवेक प्राप्त नहीं हुआ है, उसको भोग-त्याग करने में महान् परिताप होता है, फलतः उसका रोदन और विलाप स्वाभाविक है। जिस पुरुष ने विवेकज्ञान प्राप्त कर लिया था, उसका आनन्दमय ह्रास नैसर्गिक है। पुरुष ने अपने अङ्गों को देखा, इसका आशय यह है कि ज्ञान हो जाने पर विकल्पों से कल्पित विषयों द्वारा वञ्चित होने का ज्ञान दृढ़ हो जाने पर उपहास से चित्त ने अपने अङ्गों को देखा।

'मैंने योगबल से पुरुषों को पकड़ा' इसका आशय यह है कि विवेक ने चित्त को आयत्त किया। अङ्गों के अन्तर्हित होने का तात्पर्य यह है कि विवेक से चित्त के नष्ट हो जाने पर तृष्णा (आशा) शान्त हो गई। पुरुष के जो सहस्र नेत्र और भुजायें वर्णित हैं, उनका तात्पर्य है कि चित्त की असंख्य आकृतियाँ हैं। मुग्दर से अपने ऊपर प्रहार करने का आशय है कि कुतर्करूपी आघातों से मन अपने ऊपर प्रहार करता है। प्रहार के साथ पुरुषों के भागने का आशय यह है कि वासनारूपी प्रहारों से चित्त भाग रहा है। मन अपने आप स्वयं प्रहार करता है और भागता है। यह अज्ञान की महिमा है, उसका विजृम्भण है, यही चित्ताख्यान का तात्पर्य है।

(१८) भगीरथोपाख्यान—

राजा भगीरथ परमधार्मिक, यशस्वी, शूर-वीर, त्यागी तथा दानी थे। अपने लोकोत्तर पराक्रम से शत्रुओं को जीतकर उन्होंने एकच्छत्र राज्य किया। अपने पूर्वजों (राजा सगर के पुत्रों) का इतिवृत्त सुनकर उन्होंने उनके उद्धार का निश्चय किया। घोर तपस्या करके उन्होंने भूमण्डल पर गङ्गावतरण कराया और गङ्गाजल स्पर्श कराकर अपने पूर्वजों का उद्धार किया।

राजा के मन में दृढ़ वैराग्यभाव जागृत हुआ और फलस्वरूप मन्त्रियों को राज्यभार सौंपकर, वह जङ्गल में तप करने के निमित्त चले गए। वहाँ उन्होंने निष्ठापूर्वक तपोमय जीवन व्यतीत किया। समस्त एषणाओं का त्याग कर समता एवं आत्मविश्रान्ति प्राप्त की। अन्त में शत्रु को अयोध्या का राज्य देकर तथा निजी सम्पत्ति को ब्राह्मणों, याचकों एवं दीनों में वितरित कर वे अकिञ्चन हो गए।

राजा ने भिक्षावृत्ति से जीवन-यापन करना प्रारम्भ किया। अनेक वर्षों तक वे इतस्ततः भ्रमण कर जीवन बिताने लगे। प्रारब्धवश वे पुनः किसी देश के राजा हो गए।

इसकी सूचना अयोध्या के विशिष्ट नागरिकों एवं मन्त्रिमण्डल के सदस्यों को प्राप्त हुई। अयोध्या के राजा की मृत्यु हो गई थी। मन्त्रिमण्डल के सदस्यों तथा नागरिकों एवं सामन्तों के विशेष आग्रह पर राजा भगीरथ ने अयोध्या का साम्राज्य पुनः स्वायत्त किया। जीवन्मुक्त होकर उन्होंने चिरकाल तक अयोध्या का राज्य किया और अन्त में परम-पद (मोक्ष) प्राप्त किया।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

(१९) विलास और भास का आख्यान—

सह्य-पर्वत पर महर्षि अत्रि के आश्रम में भास और विलास नामक दो ब्राह्मण-पुत्र रहते थे। उनमें परस्पर प्रगाढ़ प्रेम था। उनके माता-पिता का यथासमय स्वर्गवास हो गया। उन्होंने उनकी और्ध्वदैहिक क्रियायें सम्पन्न कीं और दुखी होकर वहाँ से अन्यत्र किसी सुदूर जङ्गल में चले गए। वे दोनों अपनी रुचि के अनुसार विभिन्न पर्वतीय प्रदेशों में रहने लगे, उनका साथ छूट गया।

चिरकाल के अनन्तर अकस्मात् वे दोनों किसी जङ्गल में मिल गए। मिलकर वे अतिप्रसन्न हुए और आनन्दविभोर हो कुछ समय के लिए अपने को भूल-से गए। एक दिन विलास ने भास से पूछा—"बन्धुवर! क्या तुम्हारी तपस्या पूर्ण हो गई? क्या तुमने आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया"?

भास ने कहा—"मान्यवर! आपके दर्शन से मुझे महान् आनन्द प्राप्त हुआ है। अभी तक न मेरी तपस्या पूर्ण हुई है और न मुझे आत्मज्ञान हुआ है। मैं मोह में पड़ा रहता हूँ। अभी तक मैं तृष्णा का उपशम नहीं कर सका हूँ। मेरे चित्त में काम, क्रोध, राग, द्वेष, लोभ आदि अधिकार जमाए हुए हैं। फलस्वरूप मुझे शान्ति नहीं मिलती"।

विलास ने विविध आख्यानों, उपाख्यानों, इतिवृत्तों तथा अध्यात्म-प्रकरणों के द्वारा भास का उद्बोधन किया। सत्सङ्ग और अध्यात्मचिन्तन का प्रभाव गहरा पड़ता है। कुछ ही समय में भास को बोध हो गया। उन्होंने आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया। जीवन्मुक्त हो दोनों मित्र साथ-साथ रहने लगे और अन्त में उन्होंने परमपद प्राप्त किया।

(२०) कागभुशुण्डोपाख्यान—

भुशुण्डचरित में शरीरगृह का वर्णन किया गया है। शरीर केवल आभासमात्र है और विना निर्माण के अवभासित होता है। जैसे रोगग्रस्त नेत्रवालों को आकाश में चन्द्रद्वय का विभ्रम होता है, वैसे अज्ञानियों को यह देह प्रतीयमान होता है, जो कि वस्तुतः असत् है। चैसे चन्द्रमा एक है, द्वित्व का भान असत् है। अधिष्ठान-सत्ता को लेकर यह देह सत् कहा गया है, वस्तुतः यह असत् है। स्वप्नकाल में स्वप्न सत् प्रतीत होता है; परन्तु जागरण में वह मिथ्या सिद्ध होता है। बुद्बुद जल में सत्य प्रतीत होता है; परन्तु तरङ्गों के शान्त हो जाने पर वह असत् सिद्ध हो जाता है। मृगतृष्णिका का जल प्रतिभासकाल में सत् प्रतीत होता है, पर अन्यकाल में सर्वथा असत् है। स्वप्नदेह, जिसके द्वारा विविध क्रियाकलाप सम्पन्न होते हैं तथा जागरण-काल में मनोराज्य का देह, जिसके द्वारा विविध लोकों का भ्रमण होता है, वस्तुतः मिथ्या है, आभासमात्र है। स्वप्नकाल में विलासिनी रमणी के साथ सङ्ग की कल्पना जिस देह से की जाती है, वह सर्वथा अलीक है। इसी प्रकार यह मेरा धन है, यह मेरा शरीर है, यह मेरा देश है, इस प्रकार की जो प्रतीति है, वह भी भ्रमात्मक है और सङ्कल्प का विजृम्भणमात्र है।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

यह संसार वस्तुतः दीर्घस्वप्न, दीर्घचित्तविभ्रम अथवा दीर्घमनोराज्य है। भगवत्कृपा से आत्मज्ञान हो जाने पर यह संसार आत्मस्वरूप दृष्टिगोचर होता है। जैसे कमल से ब्रह्मा जी की उत्पत्ति मानस है, वैसे इस संसार की उत्पत्ति भी मानस है। आत्मज्ञान हो जाने पर यह जगदाकार सङ्कल्प चिद्रूप हो जाता है। संसार की प्रतीति भावनाजन्य है। सूर्यताप से संतप्त मरुभूमि में जैसे मृगतृष्णा नदी दृष्टिगोचर होती है, वैसे अविद्याजन्य मोह से यह पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा त्रैलोक्य दिखाई देते हैं। तत्त्वज्ञान से आत्मा शुद्ध हो जाता है और पुनः मलदूषित नहीं होता। तत्त्वज्ञानियों की दृष्टि में यह समस्त जगत् चैतन्यमात्र है।

तत्त्वज्ञान हो जाने पर न मन अस्त होता है और न उदित। वह विषय-कामना से शून्य, शान्त, शीतल एवं सत्य हो जाता है। वह न किसी की स्तुति करता है और न निन्दा। वह न प्रसन्न होता है और न अप्रसन्न। वह मृत्यु के अवसर पर शोक नहीं करता। जीवन में सुख-दुःख, सम्पत्तियाँ और विपत्तियाँ आती जाती रहती हैं, अतः उनके लिए शोक निरर्थक है। आसक्ति बन्धन में डालती है, अतः उसका त्याग कर विचरना चाहिए। शास्त्रविहित कर्मों का अनुष्ठान तथा निन्दित कर्मों का त्याग करने से मनुष्य निर्मल चिदाकाश हो जाता है।

(२१) बिल्वोपाख्यान—

इस उपाख्यान में जिस विशाल बिल्व-फल का वर्णन किया गया है और जिसे चन्द्र के समान सुधा-रसधार बहाने वाला सब सुखों का आकर, पर्वत के समान अमृतपिण्ड को धारण करने वाला आदि बतलाया गया है, वह वस्तुतः आत्मा है। रूपक-शैली में आत्मा को बिल्व-फल बनाकर उसकी विशेषतायें वर्णित की गई हैं।

उस आत्मचमत्कृति ने चैतन्यात्मक स्वकीय पारमार्थिकस्वरूप का त्याग किए विना अविद्या का आश्रयण कर इस जगद्रूप विविध प्रपञ्च की भावना की है। ब्रह्माण्ड में जो कुछ दृश्यमान है, वह सब उसी आत्मचमत्कृति (चित्शक्ति) का स्फुरण है।

(२२) जीवटोपाख्यान—

यह उपाख्यान भिक्षु का संसार है, जो कि मनोराज्य के समान काल्पनिक है। भिक्षु का चित्तपुरुष जीवट नाम से विख्यात हुआ। स्वप्न में उसने अपने को एक ब्राह्मण के रूप में देखा, जो कि वेदाध्ययन एवं सत्कर्मानुष्ठान में निरत था। उसने स्वप्न में अपने को सामन्तरूप में देखा और उस सामन्त ने चक्रवर्ती सम्राट् की भावना की और बन गया। उस सम्राट् ने सुरस्त्रीत्व की भावना की और वह एक अप्सरा बन गया। इस प्रकार स्वप्नपुरुष मृगी, लता, भ्रमर, गजराज, हंस, ब्रह्महंस आदि रूपों की भावना करता हुआ अन्त में, रुद्रपुर में भगवान् शङ्कर की कृपा से रुद्ररूप में परिणत हो गया। उसने अपनी दिव्यशक्ति एवं ऐश्वर्य के प्रभाव से शतरुद्रता का अनुभव किया और तत्तत्स्थानों एवं योनियों में जाकर अपने अंशरूप

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

जीवों को उद्बोधित किया। इस प्रकार वे सब रुद्ररूप में परिणत हो गए और महाप्रलय के बाद जन्म-मरणरूप संसारबन्धन से मुक्त हो गए। ज्ञान हो जाने पर अन्त में शतरुद्रता समाप्त हो गई और वे सब रुद्ररूप हो गए। इस संसार की प्रतीति मानस-सङ्कल्पजन्य है और सङ्कल्पों के क्षय हो जाने पर विशुद्ध चिद्रूपता अवशिष्ट रह जाती है। ज्ञानी-पुरुष समस्त संसार को चिदाकाशरूप ही देखता है। इस उपाख्यान का प्रयोजन उद्बोधनमात्र है, जो कि समस्त मायाजगत् का भेदन कर परमपद में प्रतिष्ठित करा देता है।

(२३) अर्जुनोपाख्यान—

महाभारत-युद्ध के प्रारम्भ में गाण्डीवधारी अर्जुन को युद्धार्थ समागत बन्धुओं, मित्रों, सम्बन्धियों को देखकर व्यामोह हो गया और वे युद्ध से विरत हो गए।

भगवान् श्रीकृष्ण ने मार्मिक शब्दों में उद्बोधन किया और कर्त्तव्यपालन पर बल दिया। आत्मा की अमरता का प्रतिपादन करते हुए उन्होंने कहा कि न कोई मरता है और न कोई मारता है, प्रकृति के नियमानुसार लौकिक कार्य होते रहते हैं, उनमें आसक्ति नहीं होनी चाहिए। कर्तृत्वाभिमान से रहित हो कर्म करना चाहिए। भगवान् को समर्पित कर कर्म करने से किसी प्रकार का बन्धन नहीं होता। कर्त्तव्यपालन न करने पर महान् प्रत्यवाय होता है और लोक में निन्दा भी होती है। अतः अनिवार्यरूप से कर्म करना चाहिए। अतः क्षात्रधर्म के पालन के निमित्त उठो।

भगवान् श्रीकृष्ण के उद्बोधन से अर्जुन का व्यामोह नष्ट हो गया और वे युद्धार्थ समुद्यत हो गए।

महर्षि वाल्मीकि की ऋतम्भरा-प्रज्ञा जागृत् थी। उन्हें भविष्य का पूर्ण ज्ञान था और उन्होंने भविष्य में होने वाली महाभारत की घटना को वर्त्तमान के समान अर्जुनोपाख्यान के रूप में लिख दिया। इससे यह नहीं समझना चाहिए कि योगवासिष्ठ महाभारत के बाद का है। महर्षि ने अर्जुन के सम्बन्ध में भविष्यकाल का प्रयोग किया है।

(२४) वेतालोपाख्यान—

विन्ध्याटवी में एक वेताल था, जो कि सज्जन-नामक राजा के देश में रहता था। वह अपराधियों को ही मारकर खाता था, निर्दोष व्यक्तियों पर प्रहार नहीं करता था।

वह वेताल किसी दूसरे देश में गया। संयोगवश उसका उस देश के राजा के साथ रात्रि में साक्षात्कार हो गया, जो कि दुष्टों एवं तस्करों की खोज में रात्रिचर्या के निमित्त निकला था। वेताल ने राजा से छः प्रश्न किए और कहा कि समुचित उत्तर न मिलने पर मैं तुम्हें खा जाऊँगा।

राजा ने सभी प्रश्नों का समुचित उत्तर दिया, जिसे सुनकर वेताल प्रसन्न हो गया। उसे ज्ञान हो गया और वह समाधिस्थ हो गया। उसे विदित हो गया कि

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

चिदात्मारूप अणु में यह जगत् विद्यमान है। यह विश्व विचार के द्वारा विलीन हो जाता है। चित्त को विषयों से हटाकर परमात्मतत्त्व में लगाना चाहिए।

(२५) चूडालोपाख्यान—

यह उपाख्यान योगवासिष्ठ के सर्वोत्तम आख्यानों में अन्यतम है। महारानी चूडाला ने जो प्रशंसनीय एवं अलौकिक कार्य किए हैं, उनकी उपमा अन्यत्र दुर्लभ है। वह नहीं चाहती थी कि महाराज युवावस्था में वनवास करें; परन्तु राजा शिखिध्वज दृढ़ वैराग्य के कारण वनवास के लिए चले गए। चूड़ाला राज्य-कार्यों की देखभाल स्वयं करती थी। राजा के वनवास के अठारह वर्ष व्यतीत हो गए। रानी ने समाधिस्थ हो राजा के भावी-जीवन का ज्ञान प्राप्त किया और उनको जङ्गल से राजधानी में लाने के निमित प्रवृत्त हुई।

रानी को सब सिद्धियां प्राप्त थीं और वह अव्याहत गति से आकाश में उड़ सकती थी और इच्छानुसार रूप धारण कर सकती थी, तदनुसार वह राजा के पर्ण-कुटीर के समक्ष ब्राह्मणकुमार के रूप में प्रकट हुई।

यथोचित शिष्टाचार के अनन्तर दोनों में संवाद हुआ। ब्राह्मणकुमार (चूडाला) ने सारगर्भित भाषण किया। मणिकाचोपाख्यान एवं हस्तिकोपाख्यान का तात्पर्य सुनाकर उसने अकाट्य तर्कों एवं युक्तियों से राजा को प्रबुद्ध करने की चेष्टा की। अन्त में सर्वत्याग की व्याख्या की गई और राजा को बतलाया गया कि सर्वत्याग (मनोजय) के विना तत्त्वज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। यह संसार मन की रचना है और मन पर विजय प्राप्त करने के अनन्तर ही संसार का मिथ्यात्व सिद्ध हो सकता है। तत्वज्ञानी जन इस संसार को ब्रह्मरूप ही मानते हैं। उनकी दृष्टि में जगत् मिथ्या है। महती प्रश्नोत्तरपरम्परा के अनन्तर राजा को तत्त्वज्ञान हुआ और वह पुलकित हो गए। उन्होंने ब्राह्मणकुमार के प्रति श्रद्धाभाव प्रकट किया और उन्हें गुरु के रूप में स्वीकार किया।

रानी चूडाला (ब्राह्मणकुमार) ने मायाजाल फैलाकर राजा की परीक्षा ली और उनके उत्तीर्ण हो जाने पर हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव किया। अन्त में वह अपने वास्तविक रूप में प्रकट हो गई। राजा के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वह आश्चर्यचकित और पुलकित हो बारंबार रानी का आलिङ्गन करने लगे। उन्होंने कहा—"प्रिये! तुमने जिस बुद्धि, कौशल एवं युक्ति से अपने पति को संसारसागर से पार कराया है, उसकी उपमा दुर्लभ है, तुम्हारे गुणों के उत्कर्ष से शची, अरुन्धती, गौरी, गायत्री, लक्ष्मी, सरस्वतीप्रभृति बड़ी-बड़ी देवियाँ चकित हो गई हैं। अलौकिक सौन्दर्य के कारण सुप्रसिद्ध ह्री, श्री, कान्ति, क्षमा, मैत्री, करुणाप्रभृति सर्वोत्तम कान्ताओं में तुम्हारा नाम प्रथम स्थान पर होगा। मैं समझता हूँ कि कुलाङ्गनाओं में तुम्हारा सर्वश्रेष्ठ स्थान है"।

चूडाला ने अपने सङ्कल्प से सातों समुद्रों के जल से परिपूर्ण रत्नकुम्भों से राजा का अभिषेक किया। राजोचित सैन्यव्यूह आदि की व्यवस्था की और गजराज

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

पर आरूढ़ होकर उन्होंने (राजा, रानी ने) धूमधाम से राजधानी के लिए प्रस्थान किया। उज्जैन में उनका अभूतपूर्व स्वागतसमारोह एक सप्ताह तक मनाया गया। नागरिकगण आनन्दविभोर हो गए।

राजा शिखिध्वज ने दस-सहस्र वर्षों तक महारानी चूडाला के साथ राज्यसुख भोगा और अन्त में जीवन्मुक्त के समान परमपद (कैवल्य) प्राप्त किया।

(२६) कचोपाख्यान—

देवगुरु बृहस्पति के पुत्र कच ने पिताजी से पूछा—"तात ! हमारे जैसे साधारण मनुष्य संसार-सागर को कैसे पार कर सकते हैं ?"

बृहस्पति ने कहा—"पुत्र ! सर्वत्याग से संसार-सागर को पार किया जा सकता है ?"

कच घर एवं सम्पत्ति को छोड़कर जङ्गल में चला गया। वहाँ आठ वर्षों तक रहा; परन्तु उसे विश्रान्ति नहीं मिली।

अकस्मात् पिताजी को जङ्गल में देखकर कच ने कहा—"पूज्यपाद ! सब कुछ छोड़कर मैं जङ्गल में आया; परन्तु मुझे विश्रान्ति नहीं मिली"।

बृहस्पति ने कहा—"पुत्र ! सर्वत्याग से आशय चित्तत्याग से है। चित्त-त्याग के विना मुक्ति नहीं मिल सकती"। यह पूछने पर कि चित्त क्या है ? बृहस्पति ने समझाया कि चित्त अहङ्कार है, उसका त्याग आवश्यक है। अहङ्कार मोहजन्य है। अतः मोह के नाश के विना अहङ्कार का नाश नहीं हो सकता। मोह कहाँ से आया ? वह अज्ञानजन्य है। जीव देश, काल आदि से अपरिच्छिन्न, स्वच्छ, नित्य, उदार-स्वभाव, व्यापक, सर्वत्र भासमान, निर्मल, अद्वय चिन्मात्र है। उससे अतिरिक्त जगत् कुछ नहीं है। आत्मस्वरूप का ज्ञान हो जाने पर जगत् के भ्रम विनष्ट हो जाते हैं। अपने विशुद्ध स्वरूप को समझना चाहिए। उसके ज्ञात हो जाने पर सब कुछ ज्ञात हो जाता है।

कच ने गुरु के उपदेश का चिन्तन एवं मनन किया। वह समाधिस्थ हो गया। उसका मोह नष्ट हो गया और वह शान्त, अहंग्रन्थिविमुक्त, परमपद में अवस्थित हो गया।

(२७) मिथ्यापुरुषोपाख्यान—

मिथ्यापुरुषोपाख्यान का तात्पर्य यह है कि मिथ्यापुरुष आकाश से उत्पन्न हुआ है और वह अहङ्कार है। जिस आकाशकोश में यह जगत् स्थित है, वह सृष्टि से पूर्व भी असीम, असत् और शून्यरूप ही रहता है। ब्रह्माकाश से सर्वप्रथम अहङ्कार उत्पन्न होता है, जैसे वायु से स्पन्द और आकाश से शब्द। वह अहङ्कार आत्मा नहीं है, पर वह अपने को आत्मा समझकर इष्टानिष्ट की कल्पना करता है और इष्ट की प्राप्ति तथा अनिष्ट के परिहार के निमित्त सचेष्ट होता है। अनात्मभूत वह अहङ्कार

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

आत्मा की रक्षा में व्याकुल हो कर्म एवं वासना के अनुसार नाना प्रकार के शरीरों की रचना करता है। वह अहङ्कार मायापुरुष है और वही मिथ्यापुरुष है। वह मिथ्यापुरुष अनर्गलरूप से सुख-दुःख का अनुभव करता हुआ निराधार अवस्थित है।

(२८) मनु-इक्ष्वाकु-आख्यान—

महाराज इक्ष्वाकु ने अपने पूज्य पितामह मनु जी से प्रश्न किया—"भगवन् ! यह संसार कहाँ से आया है ? किसने इसकी रचना की है और कैसे इससे छुटकारा मिल सकता है ?"

मनु जी ने कहा—"राजन् ! यह संसार कुछ नहीं है। जैसे आकाश का वर्ण नीला दृष्टिगोचर होता है; परन्तु वह सर्वथा असत् है, जैसे मरुभूमि की नदी का जल दृश्य होने पर भी मिथ्या है, जैसे स्वप्न के नगर एवं विविध क्रिया-कलाप मिथ्या एवं भ्रमोत्पादक हैं, वैसे ही यह संसार मिथ्या एवं भ्रमोत्पादक है। जैसे जल तरङ्ग, फेन, बुद्बुद् आदि विविध नामों को धारण करता है; परन्तु वस्तुतः वह जल है, वैसे ही शुद्ध-चैतन्य की संवित्तियाँ जीव और जगत् के रूप में प्रतिभासित होती हैं, जो वस्तुतः असत् है।

जब जीव में विषयभोग की आकांक्षा क्षीण होती है, तब वह शनैः शनैः जीव-भाव को छोड़कर आत्मतत्त्व को समझने लगता है। आत्मतत्त्व का ज्ञान हो जाने पर अविद्या स्वतः नष्ट हो जाती है। माया के नष्ट हो जाने पर यह मायाजन्य संसार भी नष्ट हो जाता है। ज्ञानी-जन इस संसार को ब्रह्मरूप समझते हैं और अज्ञानी-जन जगत् को सत्य समझकर उसके माया-जाल, जन्म-मरण, सुख-दुःख आदि के बन्धनों में पड़े रहते हैं।

ब्रह्म स्वेच्छया मायाशबलित हो जीव-जगत् के रूप में दृश्य होने लगता है और वही ब्रह्म मायाजाल का त्याग कर ब्रह्म हो जाता है। इस तथ्य को हृदयङ्गम करने पर स्पष्ट हो जायगा कि जगत् की उत्पत्ति भ्रान्तिमूलक है। वस्तुतः जगत् का अस्तित्व ही नहीं है। मनु जी ने अनेक दृष्टान्तों द्वारा उक्त तथ्य को समझाया और महाराज इक्ष्वाकु का संशय समूल नष्ट हो गया।

(२९) भरद्वाजाख्यान—

भरद्वाज मुनि ने अपने गुरु महर्षि वाल्मीकि से पूछा—"भगवन् ! मुझे विश्रान्ति कैसे मिलेगी ? मैं भवसागर को कैसे पार कर सकूँगा ?"

महर्षि वाल्मीकि ने उत्तर में कहा—"भरद्वाज ! चैतन्य से अतिरिक्त संसार कुछ नहीं है। तुम इस रहस्य को समझो और अध्यात्मशास्त्र के अभ्यास से अपने को विशुद्ध करो"।

जगत् की सत्ता तब तक है, जब तक आत्मज्ञान नहीं हो जाता। अविद्याजन्य यह जगत् ज्ञान होने पर नष्ट हो जाता है। जन्मजन्मान्तरीय संचित कर्म अत्यन्त

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

प्रबल हैं। अतः महेश्वर के प्रसाद की कामना करनी चाहिए, जिससे वाञ्छित अर्थ की सिद्धि हो।

आत्मज्ञान जन्मजन्मान्तरीय-सुकृतजन्य-पुण्यराशि से अवाप्त होता है। वह कभी न कभी अवश्य प्राप्त होगा, ऐसी दृढ़ भावना करनी चाहिए और साथ ही भगवान् की उपासना करनी चाहिए, जिससे सत्त्व का उद्रेक हो और कल्याण हो।

भरद्वाज मुनि ने गुरु के उपदेश का पूर्णरूप से पालन किया। उनके संशय दूर हो गए और उन्हें तत्त्वज्ञान भी प्राप्त हो गया।

(३०) विद्याधरोपाख्यान—

लोकालोकपर्वत के शिखर पर एक विद्याधर रहता था। उसे वैराग्य हुआ और वह गुरु की खोज में निकला। संसार से मुक्ति कैसे प्राप्त होगी, यही उसका मुख्य विषय था। अन्त में उसे कागभुशुण्ड के दर्शन हुए।

विद्याधर के पूछने पर कागभुशुण्ड ने कहा—"विद्याधर! संसार का बन्धन अहङ्कार है। अहङ्कार से जगत् की उत्पत्ति होती है। जगत् और अहङ्कार में कोई भेद नहीं है। अहङ्कार के नष्ट हो जाने पर जगत् स्वतः नष्ट हो जाता है और शुद्ध ब्रह्म अवशिष्ट रह जाता है।

विद्याधर पर कागभुशुण्ड के उपदेश का गहरा प्रभाव पड़ा। वह समाधिस्थ हो गया। उसके भवबन्धन शनैः-शनैः छिन्न-भिन्न हो गए और वह परमपद में प्रतिष्ठित हो गया।

(३१) मङ्कि-उपाख्यान—

मङ्किनामक एक ब्राह्मण था, जो जन्म-मरण एवं आवागमन के दुःख से मुक्ति प्राप्त करने के लिए ज्ञानी गुरु की खोज में निकला था। अकस्मात् मार्ग में उसे महर्षि वसिष्ठ के दर्शन हुए। वसिष्ठ जी को देखकर वह बड़ा प्रसन्न हुआ। उसे आभास हुआ कि भाग्यवश मुझे ज्ञानी गुरु का दर्शन हो गया है।

ब्राह्मण तथा महर्षि वसिष्ठ ने अपना-अपना परिचय दिया। प्रसन्न होकर ब्राह्मण ने पूछा—"भगवन्! क्षणभङ्गुर जीवन से मुझे वैराग्य हो गया है। मेरा मन संसारजाल में पड़ गया है। वासना के कारण अभिलाषायें बढ़ती जा रही हैं। मैं भवसागर में डूबता जा रहा हूँ। कृपया मेरे उद्धार का मार्ग प्रदर्शित करें"।

महर्षि वसिष्ठ ने कहा—"ब्राह्मण! संवेदन, भावन, वासना एवं कलना ये चार अनर्थों के मूल हैं। ये सब अविद्या में स्फुरित होते हैं। वह अविद्या परमात्मरूप तत्त्वज्ञान के प्रकाश से क्षण-भर में नष्ट हो जाती है। जैसे वायु स्पन्दरूप है, समुद्र जलरूप है, आकाश शून्यरूप है, वैसे यह जगत् बोधरूप है। बोध से मोह, अज्ञान एवं तज्जन्य वासनाओं का विनाश हो जाता है। वासना के कारण लोग नाना प्रकार के दुःखों को भोगते हैं। बोध से ज्ञात होता है कि चिदात्मा के अतिरिक्त संसार कुछ नहीं है। मायाशबलित चिदात्मा का कथन संसार है और विशुद्ध चिदात्मा की

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

अनुभूति ज्ञान है, बोध है और परमपद है। ब्रह्म की अनुभूति से जगत् समूल नष्ट हो जाता है और समस्त जगत् चिदात्मा (ब्रह्मरूप) हो जाता है। ज्ञानियों को ऐसी ही अनुभूति होती है।

महर्षि वसिष्ठ के उपदेश से मङ्कि-ब्राह्मण को बोध हो गया। वह समाधिस्थ हो गया और भवबन्धन से मुक्त हो गया।

(३२) मनहरिणकोपाख्यान—

विवेक से ध्यानस्थ होने पर ज्ञानरूपी वृक्ष उत्पन्न होता है, जिससे मोक्षरूप फल प्राप्त होता है, जो आत्मविश्रान्ति का प्रदाता है, भूमारूप अलौकिक, दिव्य, अविनाशी आनन्द को देने वाला है। ज्ञान हो जाने पर मन आत्मतत्त्व में विलीन हो जाता है और मन के विनष्ट हो जाने पर मानव के समस्त सङ्कट दूर हो जाते हैं। वासना मनरूप मृग है। वह विचार से नष्ट हो जाती है और तब मोक्ष प्राप्त होता है।

(३३) पाषाणाख्यायिका—

चिति का विवर्त्त जगत् है। चिदाकाश-ब्रह्म समष्टि-जीव (हिरण्यगर्भ) के रूप में स्फुरित हो अथवा स्थूल दृश्य-जगत् के रूप में, वह अपने विशुद्धस्वरूप को नहीं छोड़ता। जैसे सुवर्ण, कटक, केयूर आदि में भेद नहीं है, जैसे स्वप्ननगर एवं स्वप्नद्रष्टा में भेद नहीं है, वैसे चिति और सृष्टि में कोई भेद नहीं है। जैसे चिति स्वप्न में पर्वतादि के रूप में भासती है, वैसे ही निराकार, निर्विकार ब्रह्म सृष्टि के रूप में भासता है। चिदाकाश की सत्ता से ही यह शरीर स्थित है, अन्यथा यह शव है। चिदाकाश अच्छेद्य, अदाह्य तथा अविनाश्य है। एक ही आत्मा सब प्राणियों में स्थित है। यदि भूतात्मा का मरण होता, तो एक प्राणी की मृत्यु से समस्त जगत् मर जाता। 'मैं चेतनस्वरूप हूँ, शरीर आदि से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है' ऐसा ज्ञान दृढ़ हो जाने पर जन्म-मरण का प्रश्न उपस्थित नहीं होता। 'मैं आकाश से भी अधिक स्वच्छ हूँ, मैं चित्, नित्य, अनन्त, निरामय हूँ' इस प्रकार का ज्ञान दृढ़ हो जाने पर मनुष्य सब प्रकार की आपत्तियों से मुक्त हो जाता है। आधि-व्याधियाँ स्वतः उससे दूर हो जाती हैं। ज्ञाननिष्ठा से मनुष्य का बल, बुद्धि और तेज उत्तरोत्तर बढ़ता है। 'मैं चिदाकाश हूँ' इस प्रकार का ज्ञान जब दृढ़ हो जाता है, तब मनुष्य वज्रपात एवं प्रलयकालिक पुष्करावर्त्त मेघ के गर्जन तथा अनवरत जलधारा-सम्पात से भी नहीं डरता।

आश्चर्य है कि विज्ञजन भी शरीरपात आदि के अवसर पर 'मैं नष्ट हो गया' इस प्रकार का आक्रोश करने लगते हैं। वस्तुतः न कोई मरता है और न मारता है। चिति जैसा अनुभव करती है, तत्काल वैसा घटित हो जाता है। वह देश, काल, वस्तु आदि से लेशमात्र भी परिच्छिन्न नहीं होती। चिति अपने स्वरूप को न जानकर संसार का अनुभव करने लगती है और अपना वास्तविक स्वरूप समझकर मुक्त हो

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

जाती है। ऐसा वह अपने स्वभाववश करती है। वह सर्व-शक्तिशालिनी है और सब कुछ विशुद्ध चितिमात्र है।

(३४) अविद्योपाख्यान—

राजा विपश्चित् ने माया का अन्त देखने के लिए घोर तप किया। अग्निदेव से एतदर्थ वर प्राप्त किया, सहस्रों जन्म लेकर त्रैलोक्य में भ्रमण किया; परन्तु क्या उसने अविद्या का अन्त देखा ? यह अविद्या अतिप्रबल है, असत् होती हुई भी सत् के समान है। जब तक अधिष्ठानरूप ब्रह्म से उसका ज्ञान नहीं होगा, तब तक देश, काल, वस्तु से वह अनन्त दृष्टिगोचर होती रहेगी। ब्रह्मज्ञान होने पर वह तुरन्त नष्ट हो जाती है। सर्वशक्तिमान्, सर्वात्मक, सर्वव्यापक ब्रह्म में क्या नहीं हो सकता ? सब कुछ सम्भव है। जीवन का ध्येय ब्रह्म-ज्ञान है, उसके प्राप्त हो जाने पर सब कुछ प्राप्त हो जाता है।

महर्षि वसिष्ठ की अनुकम्पा से महाराज दशरथ की विशिष्ट सभा में विपश्चित् को आत्मज्ञान हो गया और वह सब प्रकार के सङ्कटों से मुक्त हो गया।

(३५) शिलोपाख्यान—

इस आख्यान में जिस विशाल शिला का वर्णन किया गया है, वह वस्तुतः शिला नहीं है, अपितु परमात्म-महासत्ता है। उसके अन्तराल में समस्त त्रैलोक्य है। आकाश आदि पञ्च-महाभूत उसके अङ्ग हैं। वह शिला चिद्रूप है और उससे अन्य जगत् कुछ नहीं है।

उस शिला में जगत्समूह की उत्प्रेक्षा कमलवन से की गई है। उसमें कुछ कमल परस्पर सम्बद्ध हैं और कुछ असम्बद्ध। कुछ प्रकट हैं, कुछ गुप्त हैं, कुछ अधोमुख हैं, कुछ ऊर्ध्वमुख हैं और कुछ तिर्यङ्मुख हैं। स्वर्ग आदि लोक ऊर्ध्वमुख हैं; क्योंकि आश्रय उपरिस्थ ध्रुवमण्डल है। भूलोक, पाताल आदि लोक अधोमुख हैं; अतः उनका आश्रय कूर्म है। तिर्यङ्मुखवाले लोक तिर्यग्गति पवन के आश्रित हैं। विष्णुलोक, शिवलोक आदि नित्यलोक है। वे मूलरहित हैं। नक्षत्र, ग्रह, तारामण्डल आदि शङ्ख के समान हैं और द्वीपसमूह चक्राकार प्रतीत होते हैं। उस शिला के भीतर समस्त जगत्प्रपञ्च विद्यमान है।

(३६) ब्रह्माण्डोपाख्यान—

चिदणु ने अपने विशुद्ध स्वरूप का त्याग किए विना अपने निद्रारूप स्वप्न में समष्टिजीवत्व को देखा। पश्चात् अपने को अहङ्कार से समन्वित देखा। अहङ्कार ने बुद्धितत्त्व को और बुद्धितत्त्व ने मनस्तत्त्व को देखा। समष्टि मन ने चराचर सम्पूर्ण जगत् को देखा।

तत्त्वज्ञ महानुभावों को विदित है कि चित्परमाणु के अतिसूक्ष्म उदर में असंख्यजगत् विविधताओं से परिपूर्ण विद्यमान हैं। वे अविद्या के स्वरूप को भी जानते

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

हैं, जो कि उनकी दृष्टि में तत्त्वतः ब्रह्मरूपिणी है। अज्ञानियों की दृष्टि में वह अज्ञानमयी है और जगद्रूप से अनन्त है।

(३७) कुन्ददन्तोपाख्यान—

तप से मनोरथ की सिद्धि होती है। ब्रह्मा जी के वरदान से आठों भाई अपने गृह के मध्य में सप्तद्वीपा वसुन्धरा का राज्य-सुख भोग सकेंगे। वसुन्धरा एक है और उसका उपभोग आठ आदमी एक साथ अपने छोटे से गृह के मध्य कैसे कर सकेंगे? इसका समाधान शास्त्रानुसार यह है कि समस्त जगत् चित्परमाणु के मध्य में स्थित है, जिसका अनुभव ज्ञानियों को होता है। जब एक अणु के अन्तराल में असंख्य ब्रह्माण्डों की अनुभूति हो सकती है, तब गृह के मध्य में वसुन्धरा की अनुभूति होने में क्या वाधा है। जगत् चित्स्वरूप है। चित् जगद्रूप से भासती है। अतः जगत् का पृथक् अस्तित्व नहीं है। जगत् का मूर्तरूप भी नहीं है। अतः वह गृह के मध्य में क्यों नहीं भासमान हो सकता? चितिरूप ब्रह्माकाश में अनन्त ब्रह्माण्ड भासते हैं। ऐसी स्थिति में सप्तद्वोपा वसुन्धरा के भासने में कोई अनुपपत्ति नहीं है। पारमार्थिक-दृष्टि से जगत् का अस्तित्व नहीं है, व्यावहारिक-दृष्टि से चिद्रूप ब्रह्म ही जगद्रूप से भासता है।

(३८) कीरवैंवधिकोपाख्यान—

इस उपाख्यान में वैवधिकों से तात्पर्य भूतलवर्त्ती मानवों से है। उनका दुःख-दारिद्र्य अज्ञान है, महावन गुरुशास्त्र आदि हैं। जैसे काष्ठसंग्रह के निमित्त वन में गए वैवधिकों (लकड़ी ढोने वालों) को मणि प्राप्त हो गयी, वैसे भोगार्थ शास्त्रचर्चा करने वाले पुरुषों को भोग के साथ परमपद प्राप्त हो जाता है। शास्त्राध्ययन से लोक और परलोक दोनों वनते हैं। जैसे वैवधिकों को काष्ठसंग्रह के साथ-साथ सुवर्ण, रत्न, मणि आदि प्राप्त हुए, जैसे वैवधिकों में किसी को चन्दन की लकड़ी, किसी को बहुमूल्य पुष्प और फल, किसी को चिन्तामणि तथा किसी को सामान्य रत्न प्राप्त हुए, वैसे ही मानवों में शास्त्रपरिशीलन से किसी को अर्थ, किसी को काम, किसी को धर्म, किसी को धर्मार्थ-काम तीनों तथा किसी को मोक्ष प्राप्त होता है।

❋❋❋

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

योगवासिष्ठ के आख्यानक

१. आकाशज-आख्यान

आकाशज-नामक एक परमधार्मिक ब्राह्मण था, जो सदा ध्यानस्थ तथा लोकहित में संलग्न रहता था। उसकी चिरजीविता को देखकर मृत्यु ने विचार किया—"मैं सब प्राणियों का भक्षण करता हूँ, इस आकाशज ब्राह्मण को क्यों न खा जाऊँ"।

ऐसा विचार कर मृत्यु ब्राह्मण के घर गया। वह ब्राह्मण के वध की इच्छा से ज्यों हो ब्राह्मण-गृह में प्रविष्ट हुआ, प्रलयाग्नि के सामन देदीप्यमान अग्नि ने उसको जलाना प्रारम्भ किया। अग्निज्वाला में प्रविष्ट होकर मृत्यु ने ब्राह्मण को पकड़ना चाहा; परन्तु सैकड़ों हाथों से भी वह ब्राह्मण को न पकड़ सका।

तब उसने यमराज के पास जाकर निवेदन किया—"प्रभो मैं आकाशज ब्राह्मण को पकड़ने में समर्थ क्यों न हो सका"?

यमराज ने कहा—"मृत्यु! तुम अपने बल से किसी का भी वध नहीं कर सकते। प्राणियों के कर्म ही उनका वध करते हैं। तुम उस ब्राह्मण के कर्मों को खोजो, कर्मों की सहायता से ही तुम ब्राह्मण का वध कर सकोगे"।

तदनुसार मृत्युदेव ब्राह्मण के कर्मों को खोजने लगे। समस्त भूमण्डल को छान डालने पर भी आकाशज ब्राह्मण के कर्म न मिले। मृत्यु को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह पुनः यमराज के पास गए और बोले—"भगवन्! कृपया बतलायें कि आकाशज ब्राह्मण के कर्म कहाँ हैं"?

यमराज ने कहा—"मृत्युदेव! उस ब्राह्मण के कर्म नहीं हैं। वह आकाश से उत्पन्न है और आकाश के समान निर्मल है। वह आकाररहित है। उसके प्राक्तन कर्म भी नहीं हैं। इस समय भी वह कर्म नहीं करता। वह विशुद्ध विज्ञानाकाश-रूप है। प्राणस्पन्द होने पर भी कर्तृत्व-बुद्धि न होने के कारण वह कर्म नहीं करता। जैसे जल में द्रवत्व, आकाश में शून्यता, वायु में स्पन्दन है, वैसे आकाशज विप्र परमपद में स्थित है। उसके न प्राक्तन कर्म हैं, न सञ्चित कर्म हैं और न आधुनिक कर्म हैं। सहकारी कारणों के अभाव में जो उत्पन्न होता है, वह अपने कारण से भिन्न नहीं होता, अतः वह स्वयम्भू है। उसमें कर्तृत्व न पहले था और न आज है। अतः तुम उस पर कैसे आक्रमण कर सकते हो?" वह आकाश के समान आकृतिरहित है। अतः किसी से भी वध्य नहीं है।

मृत्यु ने कहा—"भगवन्! शून्य आकाश से आकाशज की उत्पत्ति कैसे होती है"?

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

यमराज ने कहा—"आकाशज विप्र न कभी उत्पन्न होता हैं और न विनष्ट होता है। वह प्रकाशात्मक विज्ञानघन है, महाप्रलय के समय सब कुछ नष्ट हो जाता है, एकमात्र शान्त, अज, नित्य, अनन्त ब्रह्म ही उपाधिरहित अवशिष्ट रह जाता है। पश्चात् जीवों के अदृष्टवश तथा मायावश स्वयम्भू ब्रह्म स्फुरित होते हैं, जिनके न देह है और न कर्म। उनमें न कर्तृत्व है और न वासना, वे विशुद्ध चिदाकाश और विज्ञानघन हैं। उनमें प्राक्तन वासनायें नहीं हैं। अतः तुम उन पर आक्रमण नहीं कर सकते। क्या कोई आकाश पर आक्रमण कर सकता है" ?

मृत्यु यमराज के वचन सुनकर आश्चर्यचकित हो अपने स्थान पर चले गए।

———

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

२. लीलोपाख्यान (मण्डपाख्यान)

भूमण्डल में पद्म-नामक राजा था, जो महाप्रतापी, धार्मिक, शत्रुनाशक और राजोचित विविध गुणगण से अलङ्कृत था। उसकी राजमहिषो महारानी लीला सौन्दर्य एवं कौशल की मूर्त्ति थी। वह पतिव्रता, मधुरभाषिणी, गुणगणालङ्कृत एवं भूमण्डल की महालक्ष्मी थी। उन दोनों में प्रगाढ़ स्नेह था और वे सुखपूर्वक विहार करते थे। रानी ने सोचा कि "हमारे प्राणों से भी प्रिय पति कैसे अमर होंगे, जिससे कि हम दोनों युगों तक राजसुख भोग सकें और कभी भी हम दोनों का वियोग न हो"।

अपने मनोरथ की सिद्धि के लिए रानी ने जप, तप, यम, नियम आदि प्रारम्भ किया। उसने ज्ञानवृद्ध, तपोवृद्ध एवं विद्यावृद्ध ब्राह्मणों को बुलवाया और आदर-भाव से कहा—"पूज्यवर! कृपया बतलायें कि मैं और मेरे पतिदेव कैसे अमर हो सकेंगे ?"

ब्राह्मणों ने कहा—"महारानी! तप, जप, यम, नियम आदि से सब सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं; पर अमरत्व प्राप्त नहीं हो सकता"।

ब्राह्मणों के वचन सुनकर रानी ने विचार किया—"यदि महाराज के शरीर छूटने से पूर्व मेरा शरीर छूट जाय, तब तो मैं सर्वविध दुःखों से मुक्त हो जाऊँगी, अन्यथा मुझे प्रयास करना चाहिए, जिससे उनके प्राण घर से बाहर न जायँ"।

तदनुसार रानी ने उग्र तपस्या प्रारम्भ कर दी। उसने देव, द्विज, गुरु, ब्राह्मण की पूजा के साथ शास्त्रीय विधि से माता सरस्वती की आराधना प्रारम्भ कर दी। श्रद्धा-भक्ति के साथ अर्घ्य, पाद्य, गन्ध, पुष्पादि के द्वारा माना सरस्वतो की पूजा होने लगी।

रानी की श्रद्धा-भक्ति से प्रसन्न हो माता सरस्वतो प्रकट हुईं और बोलीं—"पुत्रि! मैं तुम्हारी तपस्या एवं भक्ति-भाव से प्रसन्न हूँ, ईप्सित वर माँगो"।

रानी ने कहा—"माता जी! कृपया मुझे दो वर दीजिए। प्रथम—मेरे पूज्य पति के प्राण गृहमण्डप से बाहर न जायँ तथा द्वितीय—जब मैं प्रार्थना करूँ, आप मुझे दर्शन देने की कृपा करें"।

'तथास्तु' कहकर भगवती जी अन्तर्हित हो गईं। माता सरस्वती से वर प्राप्त कर रानी अत्यन्त प्रसन्न हुई। कुछ समय पश्चात् राजा पद्म युद्ध में आहत होकर दिवङ्गत हो गए। रानी शोक-विह्वल हो विलाप करने लगो और मरणोन्मुख सी हो गई। उसने माता सरस्वती का स्मरण किया और देवी जी सम्मुख उपस्थित हो गयीं।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

देवी जी ने कहा—"वत्से ! मैं तुम्हारा आशय समझती हूँ। अपने पति के शव को पुष्पमालाओं से आच्छादित कर मण्डप में रख दो। पुनः तुम पति को प्राप्त करोगी। ये पुष्प म्लान नहीं होंगे और तुम्हारे पति का शव नष्ट नहीं होगा। कुछ समय पश्चात् वह पुनः तुम्हारा स्वामी होगा"।

रानी ने तदनुसार व्यवस्था करायी। उसी रात्रि में परिजनादि के सो जाने पर उसने माता सरस्वती का पुनः स्मरण किया।

माता सरस्वती जी आकर बोलीं—"वत्से ! तुमने क्यों मेरा स्मरण किया है ? तुम्हारे दुःखों का कारण यह संसार मृगतृष्णा के समान मिथ्या है"।

लीला ने कहा—"माता जी ! मेरे पति कहाँ हैं ? कैसे हैं ? क्या कर रहे हैं ? मुझे उनके पास ले चलिए। मैं उनको देखे विना जीवित नहीं रह सकती"।

देवी जी ने कहा—"वत्से ! तुम्हारे पति चिदाकाशरूप हैं। उसी में उनका परलोक कल्पित है। यद्यपि उक्त तत्त्व का ज्ञान जगत् के अत्यन्ताभाव से प्राप्त होता है, मेरे वर के प्रभाव से तुम उसे शीघ्र प्राप्त कर सकोगी"।

ऐसा कहकर भगवती जी अन्तर्हित हो गयीं। रानी लीला तत्काल निर्विकल्पक समाधि में स्थित हो गयी। उसने चिदाकाश में स्थित होकर अपने प्रासाद के भीतर अपने मृत पति को देखा। वह अपनी वासना के अनुसार सभामण्डप में सिंहासन पर आसीन थे। सभी जन जय-जयकार कर रहे थे और वह विविध राज-कार्यों में व्यस्त थे। वह चारों ओर से सामन्त-नृपगण एवं मन्त्रिमण्डल के सदस्यों से घिरे थे। दरबार लगा हुआ था। रानी लीला आकाशवासियों तथा वासनामय शरीरधारिणी सभा में प्रविष्ट हुई, परन्तु उसे किसीने नहीं देखा, जबकि वह सबको देख रही थी। वहाँ उसने अपने पुराने सदस्यों को सभा में बैठे देखा। वे पहले जहाँ और जैसे बैठते थे, वहाँ और वैसे ही बैठे मिले। उसने कुछ नवीन सभासदों, पण्डितों, मित्रों एवं नागरिकों को भी देखा। उसने षोडश वर्ष के राजा को देखा, जो पूर्वजन्म की जरा से मुक्त था। पूर्व-जन्म के समस्त नागरिकों को देखकर वह चिन्तित हुई कि क्या वे सब नागरिक मर गए हैं ?

सरस्वती देवी के प्रसाद से वह कुछ क्षणों में ही अपने अन्तःपुर में लौट आई। वहाँ उसने अपने अनुचरों को सोए देखा, जैसा कि वह देखकर गई थी। उसने अपने सखीजन को जगाया और कहा कि "मैं आस्थान (सभामण्डप) में बैठना चाहती हूँ। मैं सभी सदस्यों को देखना चाहती हूँ"। तदनुसार सभामण्डप सजाया गया और सभी सदस्य आकर यथास्थान बैठ गए। रानी सिंहासन के समीप बिछाये गए नूतन स्वर्णमय आसन पर बैठ गई। उसने यथायोग्य स्थानों पर बैठे राजाओं, गुरुओं, मित्रों, सदस्यों, सम्बन्धियों एवं बन्धु-बान्धवों को देखा। सबको देखकर वह प्रसन्न हो गयी।

कुछ समय पश्चात् रानी लीला सभा-भवन से उठ गई। अन्तःपुर में जाकर पुष्पों से आच्छादित अपने पति के शव के निकट बैठ गई और विचार करने

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

लगी—"आश्चर्य है, विचित्र माया है, हमारे पुरवासी लोग समाधि में देखे गए प्रदेश में तथा वाह्य हमारे नगर में भी स्थित हैं। विभिन्न वृक्षों से सुशोभित पर्वत जैसे वहाँ दिखाई देते थे, वैसे यहाँ भी दृष्टिगोचर हो रहे हैं, इसमें कौन भ्रान्तिमयी सृष्टि है और कौन वास्तविक है। इस सन्देह का निराकरण माता सरस्वती ही कर सकती हैं"।

तदनुसार उन्होंने देवी जी का ध्यान किया और वह कुमारीरूप में सामने प्रकट हुईं। लीला ने पूछा—"माता जी! कृपया वतलाइये कि मैंने समाधि में जो सृष्टि देखी है और अपने नगर में जो सृष्टि देखी है, उनमें कौन कृत्रिम है और कौन अकृत्रिम अर्थात् वास्तविक है"।

देवी जी ने कहा—"पुत्रि! तुम यह वतलाओ कि सृष्टि की कृत्रिमता और अकृत्रिमता से तुम्हारा क्या आशय है?"

लीला ने कहा—"देवि! जैसे मैं यहाँ बैठी हूँ, आप भी यहाँ स्थित हैं। इसे मैं अकृत्रिम सृष्टि समझती हूँ। इस समय जहाँ मेरे पति हैं, उस सृष्टि को मैं कृत्रिम समझती हूँ, अतः वहाँ देश, कालादि का विचार (व्यवस्था) नहीं है।

भगवती जी ने कहा—"पुत्रि! सृष्टि का कारण चिद्ब्रह्म का जीवभाव भ्रम है। अतः भ्रममूलक होने से सभी सृष्टियाँ भ्रान्तिमात्र ही हैं। कोई भी सृष्टि वास्तविक नहीं है"।

इस तथ्य को हृदयङ्गम कराने के लिए भगवतो जी ने वक्ष्यमाण आख्यान को प्रस्तुत किया। चिदाकाश के एक कोण में गिरिग्राम नामक एक छोटा सा ग्राम है, जो नदी, पर्वत, जङ्गलादि से घिरा है। उस ग्राम में वसिष्ठ नामक एक स्वस्थ ब्राह्मण सपरिवार रहता था। वह विद्या, वय, कर्म, वैभव आदि की दृष्टि से महर्षि वसिष्ठ के तुल्य था; परन्तु इक्ष्वाकु वंश के कुलगुरु वसिष्ठ जी की चेष्टाओं से रहित था। अरुन्धती नामक उसकी सुन्दर भार्या थी, जो भूलोक की अरुन्धती थी। वह ब्राह्मण किसी समय पर्वत के शिखर पर बैठा था। उसने एक राजा को देखा, जो आखेट के निमित्त वन में आया था। राजा की विशाल सेना और उसके वैभव को देखकर ब्राह्मण का चित्त बड़ा आकृष्ट हुआ। उसने राजा वनने का सङ्कल्प किया। वह सोचता रहा कि सेना, रथ, गज, अश्व, छत्र, चामर, पताका आदि से विभूषित नृपना कब मुझे प्राप्त होगी? कालान्तर में वार्धक्य के कारण वह ब्राह्मण दिवङ्गत हो गया।

ब्राह्मण की भार्या पतिव्रता थी। उसे पतिवियोग का महान् क्लेश हुआ। धैर्य धारण कर उसने मेरी आराधना की और मुझसे वर माँगा कि "मेरे पतिदेव के प्राण गृहमण्डप से बाहर न जायँ"। मैंने वर दिया और ब्राह्मण का प्राण गृह के मण्डपाकाश से बाहर नहीं गया। वह ब्राह्मणी भी कालधर्म से दिवङ्गत हुई और पातिव्रत्य के कारण सूक्ष्म-शरीर से पतिलोक में जाकर अपने पति से मिल गई। उस ब्राह्मण को मरे आज आठ दिन हुए। वही ब्राह्मण राजा पद्म बनकर तुम्हारा पतिं हुआ है और तुम वही अरुन्धती नाम की ब्राह्मणी हो।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

श्री देवी जी के वचन सुनकर रानी लीला आश्चर्यचकित हो गईं और बोलीं—"माता जी ! आपका वचन मिथ्या कैसे हो गया ? कहाँ ब्राह्मण का प्राण अपने छोटे से घर में है और कहाँ हम लोग इतने बड़े प्रासाद एवं प्रदेश में स्थित हैं। यह विशाल भूमि, ये पर्वत, ये दिशायें छोटे से गहरे अन्तराल में कैसे समाविष्ट हो सकती हैं ? इसमें महान् असमञ्जस है। कृपया निवारण करें"।

भगवती जी ने कहा—"पुत्रि ! हम लोग अलीक नहीं बोलते । उस ब्राह्मण के गृहाकाश में स्थित तुम्हारा यह विशाल प्रासाद, मैं, तुम और ये सब दृश्य-पदार्थ चिदाकाशरूप हैं। उस ब्राह्मण के जीवाकाश में समुद्र, नद, नदीसहित सम्पूर्ण पृथिवी स्थित है। एक अणु के भीतर अनेक ब्रह्माण्ड स्थित हैं। अतः उस ब्राह्मण के गृहाकाश में तुम लोगों के समाविष्ट होने में लेशमात्र भी अनुपपत्ति नहीं है।"

लीला ने कहा—"देवि ! आज से आठ दिन पूर्व उस ब्राह्मण की मृत्यु हुई थी और हमें उत्पन्न हुए अनेक वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। वे ही दम्पति हम हैं, यह कैसे हो सकता है ?"

श्री देवी जी ने कहा—"सुन्दरि ! जैसे देशदैर्घ्य नहीं है, वैसे कालदैर्घ्य भी नहीं है। जैसे यह जगत् प्रातिभासिक है, वैसे दिन, मास, वर्ष, युग, कल्प आदि भी कल्पनामात्र हैं, वास्तविक नहीं हैं। राजा हरिश्चन्द्र की एक रात्रि बारह वर्षों की हुई थी। वियोगियों को एक दिन वर्ष के समान प्रतीत होता है। वस्तुतः कुछ भी उत्पन्न नहीं हुआ है। जो कुछ दृश्यरूप से प्रतीत होता है, वह चित् ही है, चिदाकाश स्वात्मभूत चिदाकाश में स्थित है"।

लीला ने कहा—"देवि ! आप कृपा कर मुझे ब्राह्मण-ब्राह्मणी की सृष्टि में ले चलें, मैं उसे देखना चाहती हूँ"।

देवी जी ने कहा—"पुत्रि ! तुम इस शरीर को त्याग कर परम-पावन चिन्मय स्वरूप का अवलम्बन करो, तभी तुम हमारे साथ उस सृष्टि को देख सकोगी। इस देह से वह सृष्टि नहीं देखी जा सकती"।

लीला ने पूछा—"माता जी ! इस देह से वह सृष्टि क्यों नहीं दृश्य है ? इसमें क्या युक्ति है ?"

देवी जी ने कहा—"वत्से ! यह जगत् वस्तुतः अमूर्त्त हैं; परन्तु अज्ञजन इसे समूर्त्त (मूर्तिमान्) समझते हैं। यह जगत् ब्रह्मरूप है। ब्रह्म ही ब्रह्म को देखता है। जब तक भेदबुद्धि नष्ट नहीं होती, तब तक ब्रह्म दृश्य नहीं होता। अभ्यास से जिनकी बुद्धि परिष्कृत हो चुकी है, ऐसे लोग उस परमपद का साक्षात्कार कर सकते हैं। अतः तुम चिद्ब्रह्मरूपिणी हो जाओ, जिससे उसको देख सको। अविचार से बुद्धि भ्रान्त हो जाती है। विचार से अविचार को दूर कर प्रबुद्ध हो जाओ। प्रबुद्ध हो जाने पर वासना क्षीण हो जाती है और विशुद्ध ज्ञान जागृत हो जाता है, जिससे ब्रह्म का साक्षात्कार सुलभ हो जाता है"।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

पर्वतग्राम जाने को समुद्यत ज्ञानदेवी सरस्वती ने ज्ञानदेह से विचरण किया और राजमहिषी लीला ने मानवदेह के अभिमान का त्याग कर दिव्य-देह का अवलम्बन किया। "गृहमण्डप से हम लोग आकाश में संचरण करें" इस सङ्कल्प से उन्होंने कोटियोजन विस्तीर्ण आकाश में संचरण किया। उन्होंने सुमेरु-पर्वत के शिखरों पर विश्राम किया। आकाशमण्डल का दृश्य बड़ा भव्य एवं आकर्षक था। कहीं पर चन्द्रोदय की छटा दृष्टिगोचर हो रही थी, तो कहीं सूर्योदय का दृश्य देखते बनता था। कहीं प्रगाढ़ अन्धकार था, तो कहीं मेघ जल बरसा रहे थे, कहीं पर देव, दैत्य आदि भ्रमण कर रहे थे। उन्होंने समुद्रों एवं द्वीपों से परिवेष्टित अनेक भुवनों को पार किया।

इस प्रकार वे दोनों देवियाँ राजा पद्म के ब्रह्माण्ड से निकलकर वसिष्ठ नामक ब्राह्मण के ब्रह्माण्ड एवं मण्डपाकाश में पहुँची। वहाँ उन्होंने देखा कि गृहस्वामी के मरण के कारण चारों ओर उदासो छाई हुई है। दासियाँ व्याकुल हैं, स्त्रियों का मुख मलिन है और उनके नेत्रों से आँसू वह रहे हैं? घर के सभी जन हतप्रभ हैं और उनकी मुखकान्ति धूमिल है।

वे देवियाँ सबको देख रही थीं, पर उन्हें कोई भी नहीं देख रहा था, अतः लीला ने, जो सत्यसङ्कल्पा हो चुकी थी, यह सङ्कल्प किया कि ये मेरे बन्धु-बान्धव मुझे तथा माता सरस्वती को साधारण स्त्री के रूप में देखें। तदनुसार घर के लोगों ने लक्ष्मी और पार्वती के तुल्य दो महिलाओं को देखा। वे दोनों दिव्य पुष्पमालाओं से अलङ्कृत थीं, उनका सौन्दर्य लोकोत्तर था, उनका शरीर अत्यन्त मनोहर, दिव्य एवं आकर्षक था।

ज्येष्ठशर्मा ने गृह के अन्य सदस्यों के साथ उनका नमस्कार किया और पुष्पाञ्जलि समर्पित की। उन्होंने कहा—"हे वनदेवियों! आप लोगों की जय हो। आपके दर्शन से हम लोगों का दुःख निवृत्त हो जायेगा; क्योंकि सज्जनों का स्वभाव आर्त्तजनों के दुःख का निवारण करना है"।

देवियों ने कहा—"आप लोग क्यों दुःखो हैं, कारण बतलाएँ?"

ज्येष्ठशर्मा ने कहा—"देवियों! हमारे माता-पिता ब्राह्मण-दम्पति बड़े धार्मिक एवं मर्यादापालक थे। वे हम लोगों को छोड़कर स्वर्ग चले गए। उनके वियोग में यह जगत् शून्य प्रतीत होता है। हम सब दुःखी हैं और रो रहे हैं। कोई भी अन्न ग्रहण नहीं कर रहा है। सब दीन, हीन, मरणोन्मुख हैं। यहाँ तक कि पशु-पक्षी भी उनके वियोग में रो रहे हैं। आप कृपा कर हमारे दुःखों को दूर करें। आपका दर्शन बड़े भाग्य से हुआ है"।

पुत्र के ऐसा कहने पर लीला ने अपने हाथ से उसके मस्तक का स्पर्श किया। उससे उसका दुःख, दौर्भाग्य आदि दूर हो गया। देवियों के दर्शन से सभी जन शोक-रहित एवं प्रसन्न हो गए।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

दोनों देवियाँ अन्तर्हित हो गयीं । कौतुकवश लीला ने माता सरस्वती से पूछा—"देवि ! हमारे मृत पति के राज्य में लोगों ने हमें क्यों नहीं देखा ? और हमारे पुत्र ज्येष्ठशर्मा ने हमें कैसे देख लिया ?"

भगवती जी ने कहा—"पुत्रि ! उस समय तुम्हारी द्वैत-भावना बनी हुई थी । 'मैं लीला हूँ' ऐसी प्रतीति तुम्हें हो रही थी, तुम उस समय तक सत्यसङ्कल्पा नहीं हुई थी । अतः पति के राज्य में तुम्हें किसी ने नहीं देखा । पश्चात् तुम प्रबुद्ध हो गई । तुमने यह इच्छा की कि परिवार के लोग हमें देखें । अतः तुम्हारे पुत्र ने तुम्हें देखा । अब यदि तुम अपने पतिलोक में जाओ, तो तुम्हें सब देख सकेंगे और पूर्ववत् व्यवहार हो सकेगा" ।

लीला ने कहा—"माता जी ! इसी मण्डपाकाश में मेरे पति ब्राह्मण-देवता थे, यहीं मृत होकर वह राजा बन गए । मैं उनकी राजमहिषी हूँ । यहीं पर मेरे पतिदेव राजा की मृत्यु हुई और इसी मण्डपाकाश में वह राज्य कर रहे हैं । मैं समझती हूँ कि मेरे पतिदेव का राज्य-स्थल सन्निकट में ही है । आप कृपया मुझे उनसे मिला दीजिए" ।

श्रीदेवी जी ने कहा—"पुत्रि ! इस मण्डपाकाशरूप चिदाकाश में भूत, भविष्य एवं वर्तमान के असंख्य ब्रह्माण्ड हैं । तुम्हारे पति भी बहुत हो चुके हैं । उनके शरीर यहाँ उपलब्ध हो सकेंगे । तुम किसे देखना चाहती हो ? अत्यन्त सन्निकट के तीन पतियों में वसिष्ठ ब्राह्मण जलकर भस्म हो गए हैं । राजा पद्म पुष्पमालाओं से आच्छन्न हो अन्तःपुर में विराजमान हैं । तुम्हारा तीसरा पति वसुधाधिप हो संसार-सागर में भ्रान्त है । तुम किस पति के पास जाना चाहती हो ? जहाँ कहो, ले चलूँ । पारमार्थिक दृष्टि से संसार-मण्डल मण्डपाकाश के समीप ही स्थित है; परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से कोटि-कोटि योजनों की दूरी है । जैसा कहो किया जाय" ।

लीला ने कहा—"माता जी ! आपकी कृपा से मुझे अतीत जन्मों की स्मृति हो गई है । विभिन्न योनियों में मेरे आठ सौ (८००) जन्म हो चुके हैं । उन्हें मैं देख रही हूँ । मैं यहाँ वृद्धा ब्राह्मणी थी । मेरा शरीर कृश था और केश स्वच्छ थे । मैं पतिदेव की भक्त थी । मेरा परिवार बड़ा था और मैं अतिथिसत्कार करती थी । साधु, सन्त महात्माओं की सेवा किया करती थी । मैं सदा गृह-कार्य में संलग्न रहती थी । यहाँ मेरी पुष्पवाटिका थी, यहाँ उद्यान था, यह मेरा सरोवर है, यह हमारी दाई है, जो हम लोगों के वियोग से दुःखी हो रो रही है । आज हमें मरे आठ दिन हो गए हैं । यहाँ मैं भोजन करती थी, यहाँ सोती थी । मेरे पतिदेव ने राज्य की कामना की थी और वह विशाल साम्राज्य के स्वामी बन गए । माता जी ! मैं पति के नगर में जाना चाहती हूँ, जहाँ वह राज्य कर रहे हैं ।"

ऐसा कहकर लीला नतमस्तक हुई और भगवती जी के साथ आकाश में चिड़ियों के समान उड़ गयी । उसने विशाल आकाशमण्डल में मेघ और वायु के मार्गों

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

का अतिक्रमण किया। तदनन्तर सूर्य-चन्द्र-मार्ग का अतिक्रमण कर ध्रुवलोक के ऊपर गई। पश्चात् साध्यों और सिद्धों के लोक का उल्लंघन कर स्वर्गमण्डल से ऊपर ब्रह्मलोक में गई। तदनन्तर वैकुण्ठ पहुँचकर क्रमशः गोलोक, शिवलोक तथा पितृ-लोक का अतिक्रमण किया। सदेह-विदेहयुक्त लोगों के लोक को पार कर लीला ने प्रगाढ़ अन्धकार से आच्छन्न आकाश को देखा। वहाँ अनेक ब्रह्माण्ड दिखाई दिए; उन ब्रह्माण्डों के रचयिता ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, भैरव, दुर्गा, विनायक आदि हैं। उन ब्रह्माण्डों का आकार विचित्र है। कहीं पशु-पक्षी भरे हैं, कहीं समुद्र ही समुद्र दिखाई पड़ते हैं, कहीं देवताओं का आवास है, तो कहीं मानव-समाज प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं।

उन असंख्य ब्रह्माण्डों को लाँघती हुई वे दोनों जम्बू-द्वीप के उस भू-भाग में पहुँचीं जहाँ पद्म का शव पुष्पमालाओं से आच्छादित रखा था। वहाँ कुछ क्षणों तक विश्राम कर वे लीलानाथ के दूसरे संसार को देखने के लिए प्रवृत्त हुईं।

चिदाकाशमय उन दोनों देवियों ने विभिन्न लोकों, पर्वतों, समुद्रों एवं विशाल आकाशमण्डल का उल्लंघन किया। वे विविध पर्वतों एवं समुद्रों से परिपूर्ण, सुमेरु-पर्वत से सुशोभित, नवखण्डों में विभक्त जम्बू-द्वीप में जाकर भारतवर्ष में लीला के स्वामी के राज्य में पहुँचीं।

उस समय लीला के स्वामी एवं सिन्धुराज में घोर सङ्ग्राम छिड़ा था, जिसमें विभिन्न देशों का सैन्यबल एकत्र था। उन देवियों ने उस संग्राम को देखा, जिसमें भू-मण्डल के असंख्य वीर एवं नृपगण शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित हो भाग ले रहे थे। सायंकाल होने पर दोनों पक्षों के सैनिक एवं नृपगण विश्राम के लिए अपने-अपने शिविरों में चले गये थे।

लीलानाथ राजा विदूरथ अपने राजभवन के अन्तःपुर में शयन कर रहे थे, उन देवियों ने वहाँ प्रवेश किया। उनके प्रविष्ट होने पर वह भवन दिव्य प्रकाश से प्रकाशित हो गया। देवियों की दिव्य-शरीर की कान्ति से आह्लादित होकर राजा उठकर बैठ गया। देवियों के प्रभाव से वहाँ के अन्य परिचारक सोते ही रह गए। राजा ने दो आसनों पर बैठी हुई दो देवियों को देखा।

राजा आश्चर्यचकित हो अपने आसन से उठकर खड़ा हो गया। उसने देवियों का जय-जयकार किया और उनके चरण-कमलों पर पुष्पाञ्जलि अर्पित की।

माता सरस्वती ने अपना तथा लीला का परिचय देने के लिए समीपस्थित मन्त्री को अपने सङ्कल्प से जगाया। जागने पर मन्त्री ने दोनों देवियों को प्रणाम किया और उनके चरण-कमलों पर पुष्पाञ्जलि अर्पित की। परिचय पूछने पर मन्त्री ने राजा का परिचय दिया और कहा—"इक्ष्वाकु वंश के प्रसिद्ध राजा नभोरथ के पुत्र महाराज विदूरथ हैं, जो हम लोगों के स्वामी हैं। इनकी माता का नाम सुमित्रा है। इनके पूज्य पिता जी ने विरक्त होकर राज्य-त्याग किया और अपने पुत्र महाराज

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

को १० वर्ष की आयु में राज्य देकर तप करने के निमित्त वन में चले गए। उस समय से हमारे स्वामी धर्मपूर्वक राज्य कर रहे हैं। आज हम लोगों का परम सौभाग्य है, जो आप देवियों ने कृपा कर दर्शन दिया है। आप लोगों का दर्शन दुर्लभ है और अमोघ फल को देने वाला है"।

मन्त्री के चुप हो जाने पर सरस्वती देवी ने राजा के मस्तक का स्पर्श किया। फलस्वरूप राजा का मोह विनष्ट हो गया। उन्हें अपने पूर्वजन्मों का वृत्तान्त उद्बुद्ध हो गया। उन्हें माता सरस्वती की कृपा, रानी लीला की समुन्नति, पूर्वजन्मों का वृत्तान्त सब प्रत्यक्ष-सा दृष्टिगोचर होने लगा। वह आश्चर्यचकित हो गए। उन्होंने कहा—"देवि! मेरी मृत्यु एक ही दिन पूर्व हुई थी; परन्तु मुझे अनुभव हो रहा है कि मैं सत्तर (७०) वर्ष का हूँ। मुझे अपने पूर्व-जीवन के सभी वृत्तान्त स्मृतिगोचर हो रहे हैं। अपने बन्धु-बान्धवों, इष्ट-मित्रों आदि सबकी स्मृति हो रही है। यह कैसी माया है, समझ में नहीं आता।

देवी जी ने कहा—"राजन्! मरणरूपी मूर्च्छा के अनन्तर उसी क्षण में उसी ब्राह्मण-गृह में, उसी मण्डप में तुम्हारे जीव का भूतल है। उसी गृह के मध्य यह परिदृश्यमान बाह्य संसार-मण्डल है। वहीं पर तुम्हारा यह समृद्धिशाली भवन स्थित है। वहीं पर तुम्हारे निर्मल चित्त में व्यवहार-परम्परा का प्रसार करने वाला यह दृश्य-प्रपञ्च प्रातिभासिकरूप से प्रतीयमान हुआ, जैसे—"यह मेरा जन्म है, मेरा इक्ष्वाकुवंश है और अमुकामुक नाम के मेरे पिता-पितामह आदि थे। मैं जब १० वर्ष का था, मेरे पिताजी राज्य देकर वन में चले गए। मैंने दिग्विजय कर अकण्टक राज्य प्राप्त किया और ये सब मेरे मन्त्री और अनुचर हैं। प्रजापालन करते हुए मेरे ७० वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। इस समय शत्रु-सेना ने आक्रमण किया है और मैं युद्ध करके घर आया हूँ और रात्रि में शयन कर रहा था। इसी बीच ये देवियाँ मेरे घर में आ गई हैं और मैं उनका पूजन कर रहा हूँ। उनमें से एक देवी ने मुझे दिव्यज्ञान प्रदान किया है, जिससे मैं अपने अतीत-जन्मों के क्रिया-कलाप को प्रत्यक्ष-सा देख रहा हूँ। इस समय मैं कृतकृत्य हूँ। मुझे ज्ञान प्राप्त हो गया है और मेरे दुःखों का अवसान हो गया है"।

सरस्वती देवी ने कहा—"जैसे स्वप्न में एक क्षण में सैकड़ों वर्षों की भ्रान्ति होती है, वैसे ही मरणकाल में प्रातिभासिक-ज्ञान तुम्हारी प्रतिभा को प्राप्त हुआ और फलतः उक्त सभी घटनाओं की स्मृति प्रत्यक्ष-सी हो रही है। वस्तुतः वह सब असत् है और मायाजाल है। जैसे स्वप्न में जीवन एवं मरण है, जैसे गन्धर्वनगर में भित्ति और उसको शोभित करने वाले चित्र हैं, जैसे नौका के चलने पर नदी-तट के दोनों भागों के वृक्षों एवं भवनों में गतिशीलता है, वैसे ही यह दृश्यमान प्रपञ्चजाल मिथ्या एवं मायिक है। वस्तुतः न तो तुम कभी उत्पन्न हुए, न मरे; किन्तु विशुद्ध विज्ञानस्वरूप, शान्त, सच्चिदानन्दस्वरूप स्थित हो। न यह भूतल सत् है, न तुम सत् हो, न ये पर्वत सत् हैं, न ये ग्राम सत् हैं, न तुम्हारे शत्रु और परिजन सत् हैं, न हम

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

लोग सत् हैं। यह जो कुछ सत् दिखाई दे रहा है, वह वस्तुतः असत् है। जो ज्ञात-ज्ञेय हैं और जिनको बोध हो गया है, उनकी दृष्टि में जगत् में कुछ भी सत्य नहीं हैं। यतः उनके सांसारिक आवरण भङ्ग हो गए हैं, उनकी दृष्टि में सच्चिदानन्द परब्रह्म परमात्मा ही एकमात्र सत्य है, जगत् की प्रतीति भ्रान्तिमूलक एवं मिथ्या है। जिस पुरुष को आत्मज्ञान नहीं है, उसको यह जगत् परमार्थ सत् प्रतीत होता है"।

माता सरस्वती ने कहा—"राजन् ! यह तत्त्वज्ञान मैंने लीला की प्रतीति के लिए तुमको दिया है। तुम्हारा कल्याण हो। अब हम अपने लोक में जा रहे हैं"।

राजा विदूरथ ने कहा—"देवि ! मैं साधारण मनुष्य हूँ। मेरे पास जो अर्थी आता है, कभी विफल-मनोरथ नहीं होता। आप तो उत्तमोत्तम फल देने वाली हैं। आपका दर्शन अमोघ है, मैं शरणागत हूँ, आपकी दया चाहिए। मैं जिस देश में जाऊँ, उस देश में मेरा यह मन्त्री और यह अविवाहित कन्या जायँ, ऐसा वर देने की कृपा करें।"

भगवती जी ने 'तथास्तु' कहा और यह भी कहा कि "इस युद्ध में आपकी मृत्यु होगी और मण्डपाकाश में जहाँ राजा पद्म का शव है, वहाँ आपका पुनर्जन्म होगा। आप लीला के साथ विशाल राज्य का सुखभोग चिरकाल तक करेंगे"। ऐसा कहकर भगवती जी जाने को उद्यत हो रही थीं, उसी समय एक भयत्रस्त पुरुष वहाँ आया और बोला—"महाराज ! शत्रु की विशाल सेना शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित राजधानी के समीप आ गई है और युद्ध करने को प्रस्तुत है"।

इसी बीच महान् कोलाहल हुआ और नगर में आग लग गई। राजा ने और उन देवियों ने गवाक्ष के मार्ग से देखा कि—"शत्रुओं ने नगर पर भयङ्कर आक्रमण किया है और नगर आग की लपट में जल रहा है। शत्रु नगर को लूट रहे हैं और चारों ओर हाहाकार मच गया है। रोने और चिल्लाने का भीषण शब्द सभी दिशाओं में सुनाई पड़ रहा है"।

उसी समय राजमहिषी जिसके शरीर से (रोम-रोम से) यौवन छलक रहा था, लक्ष्मी के समान वहाँ प्रविष्ट हुईं, जहाँ देवी जी और रानी लीला पूर्व से स्थित थीं। राजमहिषी की माला और वस्त्र चञ्चल थे, उसकी हारलता छिन्न-भिन्न हो गई थी। सखियाँ और दासियाँ उनके पीछे-पीछे चल रही थीं और वे नितान्त भयविह्वल थीं। उनकी एक सखी ने राजा से निवेदन किया—"महाराज ! देवी जो अन्तःपुर से भागकर हम लोगों के साथ आपकी शरण में आई हैं। शत्रुओं ने अन्तःपुर के रक्षार्थ नियुक्त अधिकारियों को मार डाला है और नगर के साथ-साथ अन्तःपुर को भी लूट लिया है। इस भीषण विपदा का निवारण आप ही कर सकते हैं"।

राजा विदूरथ ने देवियों को देखकर कहा—"देवियों ! इस समय हमारे ऊपर विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ा है। अतः मैं युद्धभूमि में जा रहा हूँ। आप क्षमा करें। मेरी अनुपस्थिति में मेरी भार्या आपके चरणों की सेवा करेगी"।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

ऐसा कहकर राजा विदूरथ क्रुद्ध होकर शत्रुओं से लड़ने चला गया। प्रबुद्ध लीला ने अपनी आकृति के समान आकृतिवाली सुन्दरी लीला को दर्पण में प्रतिबिम्ब के समान देखा। उसने कहा—"देवि! जो मैं हूँ, वही यह कैसे? जो मैं युवावस्था में थी, वही मैं इस रूप में कैसे स्थित हूँ? ये मन्त्री आदि नागरिक तथा योद्धागण सभी वे ही हैं? ये लोग जैसे वहाँ पर स्थित थे, वैसे ही यहाँ पर भी हैं, यह कैसे?"

देवी जी ने कहा—"पुत्रि! भीतर जैसा ज्ञान उदित होता है, वैसा ही क्षण-भर में बाहर अनुभव होने लगता है। जैसे मन स्वप्न में जाग्रत् पदार्थों के आकार का भासने लगता है और तदनुसार क्रियाकलाप होने लगते हैं। स्वप्नजगत् और बाह्यजगत् में कोई मौलिक भेद नहीं है। दोनों का कालान्तर में बोध हो जाता है। तुम्हारे पति ने मृत्यु के समय जो कल्पना की थी, तदनुसार बाह्यजगत् में अनुभूति हो रही है। ये सैनिक, नागरिक आदि अवश्य भिन्न हैं; परन्तु उक्त कल्पना के अनुसार समान प्रतीत हो रहे हैं। तुमको तदनुसार समता और एकता की प्रतीति हो रही है।

सर्वव्यापक संविद्रूपी आदर्श में प्रतिमा प्रतिबिम्बित होती है। वह जहाँ जैसी उदित होती है, वहाँ वैसी ही सदा उदित होती रहती है। उसका अन्यथाभाव कदापि नहीं होता। पूर्वोक्त रीति से प्रतिभा के प्रतिबिम्ब से उत्पन्न लीला तुम्हारे सदृश शील, सदाचार, कुल और शरीर से युक्त प्रतीत होती है। यह आकाश, भुवन, धरा, तुम, मैं और राज्य भी सब प्रतिभासमात्र हैं। चिदाकाश ही इन रूपों में कचित हो रहा है और एकमात्र वही परमार्थ सत् है। ऐसा समझकर तुम शान्त होकर रहो। तुम्हारा पति यह विदूरथ रणभूमि में शरीर-त्याग कर उसी अन्तःपुर में पहुँच कर राजा पद्म होगा"।

देवी जी का वचन सुनकर सामने बैठी हुई नगर की लीला ने हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक भगवती जी से कहा—"देवि! मैं माता सरस्वती की सदा पूजा-अर्चा आदि करती रहती हूँ। स्वप्न में वह दर्शन भी देती हैं। जैसी वह हैं, वैसी ही आप हैं। कृपा कर मुझे वर दीजिए"।

भगवती जी ने नगर-लीला के भक्ति-भाव का स्मरण कर कहा—"वत्से! तुम्हारे भक्ति-भाव से मैं प्रसन्न हूँ, तुम अभिमत वर प्राप्त करो।"

नगर-लीला ने कहा—"माता जी! रणभूमि में शरीर-त्याग कर मेरे पति जहाँ रहें, वहाँ मैं इसी शरीर से उनकी पत्नी होऊँ"।

भगवती जी ने 'तथास्तु' कहा और नगर-लीला वरप्राप्ति से सन्तुष्ट हो गई।

प्रबुद्ध लीला को इस पर आश्चर्य हुआ; क्योंकि वह स्थूल-शरीर से पतिलोक में नहीं गई थी, अपितु सूक्ष्म शरीर से वहाँ गई थी। उसने कहा—"देवि! जब आप में सब सामर्थ्य है, तो आप मुझे पतिलोक में स्थूल-शरीर से क्यों नहीं ले गईं?"

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

भगवती जी ने कहा—"पुत्रि! मैं स्वयं कुछ नहीं करती। जीव स्वयं अभिलषित पदार्थों को प्राप्त करता है। तुम्हारी इच्छा ज्ञान प्राप्त कर मुक्त होने को थी। अतः तुम्हें ज्ञान और मुक्ति दी गई। नगर-लीला ने सांसारिक सुख की इच्छा की, तदनुसार उसे सांसारिक सुख दिया गया"।

दोनों लीलाओं ने भगवती जी से पूछा—"माता जी! आपके प्रसन्न रहने पर भी हम लोगों के पतिदेव इस समर-भूमि में विजय क्यों नहीं प्राप्त कर रहे हैं?"

भगवती जी ने कहा—"पुत्रि! तुम्हारे पति के शत्रु राजा सिन्धु ने चिरकाल तक मेरी आराधना की है और युद्ध में विजयी होने का वर भी प्राप्त कर लिया है, तुम्हारे पति राजा विदूरथ ने मुक्त होने की इच्छा से मेरी आराधना की है। अतः उन्हें वैसा ही वर दिया गया है। इस प्रकार तुम्हारे पति शरीर-त्याग कर राजा पद्म होकर चिरकाल तक तुम लोगों के साथ राज्य-सुख का भोग करेंगे और अन्त में मुक्ति प्राप्त करेंगे। राजा सिन्धु विदूरथ को जीतकर यहाँ का राजा बनेगा"।

मरणासन्न पति को देखकर लीला ने माता सरस्वती जी से कहा—"देवि! मेरे पतिदेव देह-त्याग कर रहे हैं, उनका अन्तिम श्वास चल रहा है"।

भगवती जी ने कहा—"पुत्रि तुमने जो यह संग्राम और राष्ट्र-विप्लव देखा है, वह सब भ्रमात्मक है। यह जगत् स्वप्नरूप है। गिरिग्राम के वसिष्ठ ब्राह्मण के गृह के मण्डपाकाश में तुम्हारे पति का यह पृथिवीरूप राष्ट्र प्रतीत होता है, जा केवल प्रातिभासिक है। विन्ध्याद्रि के छोटे से ग्राम में गृह के मध्य आकाशकोश म सागर, पृथिवी, पर्वतादि दृष्टिगोचर हो रहे हैं, यह सब केवल भ्रम है। वस्तुतः चिदात्मा ही इस रूप में कथित हो रहा है। जगत् की व्यावहारिक सत्ता सर्वथा असत् है। जैसे स्वप्न में देह के भीतर विशाल पर्वत, सागर, पृथिवी आदि दिखाई देते हैं, वैसे चिदणु में कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड और जगत् दृष्टिगोचर होते हैं। जिस जगत् में यह राजा पद्म शवरूप में स्थित है, वहीं तुम्हारी सौत नगर-लीला पूर्व में ही पहुँच गई है"।

लीला ने कहा—"देवि! नगर-लीला वहाँ देहधारिणी कैसे हो गई? वह मेरी सपत्नी कैसे हो गई? राजभवन के लोग उसे किस रूप में देखते हैं? और क्या कहते हैं? कृपया मुझे समझाइये"।

देवी जी ने कहा—"पुत्रि! यह सब तुम्हारा ही वृत्तान्त है। इसको सुनकर तुम्हें मरण, परलोकगमन आदि का ज्ञान हो जायगा, जो कि बड़ा कठिन है। तुम्हारा पति राजा पद्म शवगृह में नगर आदि रूप से दृश्यमान इस जगद्भ्रान्ति को देखता है। तुमने जो यह युद्ध देखा है, वह स्वप्न-युद्ध के समान काल्पनिक है। वह लीला भी भ्रान्ति है, जिसके विषय में तुमने पूछा है, वे नागरिक, मन्त्री, परिजन आदि सब भ्रान्तिमात्र हैं। तुम दोनों लीला, राजा पद्म और यह संसार सब भ्रमात्मक हैं। तत्त्व-ज्ञान होने पर सत्य की अनुभूति होती है। यह लीला, जो अतिसुन्दर महारानी, विविध अलङ्कारों से अलङ्कृत, मधुरभाषिणी, सुशील, आकर्षक बनी है, तुम्हारे

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

विषय में राजा पद्म की मनोवृत्ति और वासना के अनुसार तुम्हारे सदृश आकार-वाली चैतन्यरूप चमत्कार मे स्थित हो गई। तुम्हारे पति के मरण के अनन्तर तुम्हारे सङ्कल्परूप पति ने उसे अपने सामने देखा। मरणज्ञान से पुनर्जन्मरूप भ्रम होने से इस राजा ने तुमको पत्नीरूप से जाना और वासनाजन्य अन्य लीलारूपता को प्राप्त हुई तुमसे संगत हुआ। इस प्रकार इस राजा ने तुमको वासनारूप ही देखा और तुमने राजा को वासनामय देखा। ब्रह्म सर्वव्यापक है। अतः जब जहाँ जैसी वासना होती है, तब वहाँ वैसा ही रूप वासनानुसार बन जाता है"।

इस लीला ने मेरी आराधना की थी और 'मैं विधवा न होऊँ' ऐसा वर भी प्राप्त कर लिया था। अतः उसकी मृत्यु पहले हुई और वह राजमहिषी बनने की इच्छा से वस्त्रालङ्कारों से विभूषित लावण्यमयी, दिव्य-महिला बनकर पद्म-ब्रह्माण्ड-मण्डल के भीतर जाकर पति से संयुक्त हुई। वह लीला मृत्यु के अनन्तर वासना-शरीर से आकाश में पक्षी के समान उड़ गई। मार्ग-दर्शन के लिए मार्ग में उसे कुमारी मिली। वे दोनों मेघ-मार्ग को लाँघकर वायुसमूह के मार्ग में पहुँचीं। पश्चात् सूर्य-मार्ग, नक्षत्र-मार्ग लाँघकर वायु, इन्द्र, सिद्धगण, ब्रह्मा, विष्णु और शिव के लोकों का अतिक्रमण कर वे ब्रह्मकपाल में पहुँचीं। ब्रह्माण्ड से बाहर निकलकर उन्होंने जल आदि आवरणों को पार किया। वे विशाल चिदाकाश के मध्य में पहुँच गयीं, जिसकी महत्ता एवं विशालता का वर्णन नहीं हो सकता। उसमें कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड हैं, जिनकी गणना नहीं हो सकती। उसमें एक ब्रह्माण्ड के भीतर पहुँचकर वे राजा पद्म के भूमण्डल में पहुँच गयीं। लीला ने वहाँ कुमारी को नहीं देखा। वह अदृश्य हो गई। राजा के शव के निकट पहुँचकर लीला को असीम आनन्द प्राप्त हुआ। "श्री देवी जी की कृपा से मैं यहाँ सदेह आ गई। यह मेरा परम सौभाग्य है"। ऐसा विचार कर हाथ में चँवर लेकर वह अपने पति के ऊपर चँवर डुलाने लगी।

प्रवुद्ध लीला ने कहा—"देवि! वे नौकर-चाकर, वे दासियाँ और राजा उसे कैसे पहचान सके? वे उसे क्या कहते थे?"

भगवती जी ने कहा—"पुत्रि! हम लोगों के प्रसाद से और चिदाकाश की स्फूर्ति से राजा और उनके परिचारकों ने ऐकमत्य से समुचित दृष्टि से देखा। जैसे राजा और भृत्यों को महारानी के प्रति व्यवहार करना चाहिए, वैसे ही सब लोगों ने उचित व्यवहार किया। इस रहस्यमय वृत्तान्त को केवल तुम जान सकोगी, अन्य-जन नहीं समझ पायेंगे"।

प्रवुद्ध लीला ने पुनः पूछा—"माता जी! आपने नगर-लीला को वर दिया था, तदनुसार वह इस स्थूल-शरीर से ही अपने पति के पास क्यों नहीं चली गई?"

भगवती जी ने कहा—"पुत्रि! जिन लोगों को आत्मज्ञान नहीं है, वे इस स्थूल-शरीर से सिद्धलोक में नहीं जा सकते। जैसे छाया आतप को नहीं प्राप्त कर सकता। 'मेरा पार्थिव-शरीर है और मुझमें आकाशगमन की शक्ति नहीं है' ऐसा विचार करने

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

वाला अन्यथा-आचरण कैसे कर सकता है? जिनको तत्त्वज्ञान हो गया है, वे श्रेष्ठ और पुण्यात्मा सज्जन ही स्थूल-शरीर से परलोक में जा सकते हैं। देखो यह राजा विदूरथ मर-कर पुष्पमालाओं से आच्छादित शवभूत राजा पद्म के हृदय में स्थित पद्म-कोष में प्रवेश करने जा रहा है"।

प्रबुद्ध लीला ने कहा—"देवि! किस मार्ग से वह शव-मण्डप में जा रहा है। हम उसका अनुसरण करें"।

राजा विदूरथ की जीव-संवित् गगनमण्डल में प्राणवायु से मिलकर वासना के अनुसार जाने लगी। उन देवियों ने दिव्य-दृष्टि से उसे देखा और उसका अनुसरण किया। उस जीव-संवित् ने यम के दूतों को देखा, जो उसके वासनामय शरीर को ले जा रहे थे। उसने बन्धुओं के पिण्डदान से निर्मित अपने स्थूल-शरीर को भी देखा। तदनन्तर वह दक्षिण-मार्ग में स्थित सुदूर वैवस्वत्-पुरी (यमपुरी) में पहुँच गई। उसे देखकर यमराज ने कहा—"इसके कर्म उत्तम हैं। इसने कोई अशुभ कर्म नहीं किया है। यह पुण्यात्मा है। भगवती सरस्वती जी के प्रसाद से इसका शरीर पुष्पमाला से आच्छादित राजा पद्म के मण्डपाकाश में सुरक्षित है। यह वहाँ जाकर उसमें प्रवेश करे। तुम लोग इसे छोड़ दो"।

जैसे आकाश में उपल छोड़ा जाय, वैसे वह जीवसंवित् छोड़ी गई। वह जीव-संवित्, प्रबुद्ध-लीला और भगवती जी, तीनों वहाँ से चलकर राजा पद्म के नगर में लीला के अन्तःपुर के मण्डप में प्रविष्ट हुए। वहाँ उन्होंने नगर-लीला को देखा। उसकी आकृति, वेष-भूषा आदि पूर्ववत् थी। वह पूर्वजन्म के आभूषणों आदि से विभूषित थी और हाथ में चँवर लेकर सुरुचि से राजा के शव के ऊपर चँवर डुला रही थी। वे दोनों देवियाँ सत्यसङ्कल्पा थीं, अतः उन्होंने उसे देखा, परन्तु उस लीला ने उन देवियों को नहीं देखा।

प्रबुद्ध-लीला ने भगवती जी से पूछा—"माता जी! कृपया बतलायें कि राजा पद्म की शवावस्था में कितना समय व्यतीत हुआ है?"

श्री देवी जी ने कहा—"पुत्रि! इस सृष्टि में केवल एक मास व्यतीत हुआ है। ये दोनों दासियाँ, जो तुम्हारी सेवा के लिए नियुक्त थीं, सो रही हैं। तुम्हारा शरीर सूखकर शुष्क पल्लव के समान जीर्ण हो पृथ्वी पर गिर पड़ा। तब मन्त्रियों ने 'रानी मर गई है' ऐसा विचार कर शास्त्रीय दृष्टि से अन्त्येष्टि-संस्कार और और्ध्वदैहिक क्रियायें सम्पन्न करायीं। इस समय तुम्हें देखकर बड़ा आश्चर्य होगा कि रानी जी परलोक से यहाँ आयीं हैं। आज ३१वाँ दिन है। आओ, सत्यसङ्कल्प से लीला को अपना स्वरूप दिखायें, जिससे अग्रिम व्यवहार सम्पन्न हो। विदूरथ की स्त्री लीला हमको (देवी जी तथा प्रबुद्ध-लीला को) देखे, इस प्रकार चिन्तन करने पर दोनों देवियाँ दृश्य हो गईं। लीला ने देखा कि मण्डप तेजःपुञ्ज से देदीप्यमान हो गया है और दोनों देवियाँ वहाँ विराजमान हैं। लीला उनके चरणों पर गिर पड़ी और उसने कहा—

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

"देवियों ! आप लोग मेरे कल्याण के लिए आई हैं । आप लोग जीवनदायिनी हैं, आप की जय हो । आपके प्रसाद से मैं, आपकी सेविका, यहाँ पहले से ही उपस्थित हूँ" । पश्चात् वे तीनों सुवर्ण के आसन पर बैठ गईं ।

माता सरस्वती ने पूछा—"पुत्रि ! तुम यहाँ कैसे आई ? मार्ग में तुमने क्या देखा ? और कौन सी घटना घटी" ?

लीला ने कहा—"देवि ! मूर्च्छित होने के बाद मैं आकाश में उड़ी और वायु के रथ पर बैठकर यहाँ आई । मैंने इस भवन को देखा, जो बड़ा अलङ्कृत था और जिसमें दीप जल रहे थे, यह स्वच्छ और महार्ह (बहुमूल्य) शयनों से सुसज्जित था । मैंने देखा कि राजा विदूरथ पुष्पों से आच्छादित होकर शयन कर रहे हैं । वे युद्ध में विशेष श्रान्त थे, अतः मैंने उनको जगाया नहीं । अब मैं आप देवियों का शुभदर्शन कर रही हूँ" ।

श्री देवी जी ने कहा—"हंसगामिनी एवं ललित लोचनायें दोनों लीलाओं ! हम शवशय्या से राजा को उठायें" । ऐसा कहकर माता सरस्वती ने पूर्व से रोके गये राजा विदूरथ के प्राणों को छोड़ा । उसने राजा पद्म के नासिकारन्ध्र में प्रवेश किया । जैसे मुरझाया हुआ पौधा जलवृष्टि से हरा-भरा एवं कान्तिमान् हो जाता है, वैसे राजा पद्म का शुष्क मुख जीव के प्रवेश से कान्तिमान् हो गया । उनके जड शरीर में स्फूर्ति एवं गति आ गई । उन्होंने गम्भीर स्वर में कहा—"कौन है ?"

दोनों लीलाओं ने आगे जाकर "महाराज ! जो आज्ञा" कहा ।

महाराज पद्म ने दो लीलाओं को अपने सामने देखा । दोनों आकार, रूप, मर्यादा, वचन, उद्योग, आनन्द एवं अभ्युदय में समान थीं ।

राजा ने पूछा—"तुम कौन हो ? यह कौन है ? और कहाँ से आई है ?"

लीला ने कहा—"राजन् ! मैं आपके पूर्वजन्म की सहधर्मिणी लीला हूँ । यह लीला आपकी दूसरी पत्नी है, जिसे मैंने आपके उपभोग के लिए अर्जित किया है । आप इसकी रक्षा करें । यह माता सरस्वती हैं, जो तीनों लोकों की जननी हैं । यह हम लोगों के भाग्य से उपस्थित हैं । यही हम लोगों को परलोक से ले लायी हैं" ।

यह सुनते ही राजा आसन से उठकर खड़ा हो गया और देवी जी के चरणों पर गिर पड़ा उसने, कहा—"भगवती जी ! आप जगत् का कल्याण करने वाली हैं । आपको पुनः पुनः नमस्कार है । आप हमें बुद्धि, दीर्घायुष्य एवं वैभव प्रदान करें" ।

देवी जी ने अपने हाथ से राजा के मस्तक का स्पर्श किया और कहा—"पुत्र ! दीर्घायुष्य, धन-धान्य आदि विविध अभिलषित पदार्थों से सम्पन्न हो जाओ । समस्त आपत्तियाँ एवं पाप-बुद्धियाँ विनष्ट हो जायें । तुम्हें सब सुख प्राप्त हों और तुम्हारे राज्य में जनता आनन्दित रहे ओर समस्त सिद्धियाँ एवं सम्पत्तियाँ स्थिर होकर सदा विलास करें" ।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

राजा को उक्त वर देकर माता सरस्वती अन्तर्हित हो गईं।

प्रातःकाल सब लोग जगे। राजा ने प्रबुद्ध-लीला का बार-बार आलिङ्गन किया और उन्होंने भी राजा का आलिङ्गन किया, जो मृत होकर पुनरुज्जीवित हुए थे। उस समय राजभवन का दृश्य अद्भुत् था। सभी लोग आनन्दविभोर थे। गानों एवं वाद्यों से राजभवन गूँज रहा था, जय जयकार की ध्वनि एवं माङ्गलिक पुण्याहवाचन से वह मुखरित हो रहा था। सन्तुष्ट एवं हृष्ट-पुष्ट जनों से वह आकीर्ण था, पुष्पवृष्टियाँ हो रही थीं। ढोल, पखाउज, कार्णाल, शङ्ख एवं नगाड़े बज रहे थे। शुण्डों को उठाकर गजराज चिग्घाड़ कर रहे थे। भवन नर्तकियों एवं गायकों से भर गया था। उपहार देने वाले नागरिकों एवं सामन्त-राजाओं की अपार भीड़ थी। पुष्प, फल, लावा आदि प्राङ्गण में बिखेरे जा रहे थे। लोगों में चर्चा थी कि महारानी लीला परलोक से एक और रानी लेकर आई हैं।

महाराज पद्म ने अपने मरण आदि की कथा सुनी। चारों समुद्रों के जल से उन्हें स्नान कराया गया। ब्राह्मणों, मन्त्रियों एवं राजाओं ने उनका अभिषेक किया।

राजा पद्म प्रबुद्ध-लीला और रानी लीला के साथ सानन्द राज्य करने लगे। माता सरस्वती जी के प्रसाद से उनका कल्याण हुआ, उन्होंने माता के प्रसाद एवं पौरुष से पुनर्जीवन एवं राज्य प्राप्त किया। राजा पद्म ने दोनों लीलाओं के साथ चिरकाल तक (८०,००० वर्ष तक) राज्य किया, उनका राज्य प्रजावर्ग के लिए अभ्युदयकारी, शास्त्रानुकूल, कुलपरम्परा एवं मर्यादा का रक्षक, लोकरञ्जक तथा जन-साधारण को सुख एवं शान्ति प्रदान करने वाला था। माता सरस्वती की कृपा से उन्हें आत्मज्ञान हो गया था, अतः सुदीर्घकाल तक राज्य-सुख भोगकर राजा पद्म विदेहमुक्त हो गए।

———

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

३. ऐन्दवोपाख्यान

महर्षि वसिष्ठ जी ने पितामह ब्रह्मा जी से पूछा—"भगवन्! ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति कैसे होती है?"

ब्रह्मा जी ने कहा—"वत्स वसिष्ठ! शक्तिशाली मन ही जगद्रूप से स्फुरित होता है, जैसे कि जलाशय विशाल जलराशि से स्फुरित होता है। किसी कल्प के आदि में मैं जगत् की सृष्टि करने जा रहा था। मैंने विशाल आकाश को देखा, जो शून्य, असीम एवं अन्तरहित था। वह न तो अन्धकार से व्याप्त था और न तेज से। सृष्टि की रचना से पूर्व मैंने सूक्ष्म-दृष्टि से निरीक्षण करना प्रारम्भ किया। मैंने विशाल आकाश में पृथक्-पृथक् स्थित, विविध व्यापारों से युक्त एवं सुव्यस्थित ब्रह्माण्डों को देखा। उनमें मेरे समान पद्मकोष में रहने वाले तथा राजहंसों पर बैठे हुए दस ब्रह्मा विराजमान थे। इन ब्रह्माण्डों में महानदियाँ बहती हैं, सागर गरजते हैं, सूर्य तपते हैं, वायु आकाश में इतस्ततः बहता है, स्वर्ग में देवता क्रीड़ा करते हैं, पृथिवी पर मनुष्य निवास करते हैं, दानव और नाग पातालों में रहते हैं। कालचक्र के अनुसार सब ऋतुएँ अपने-अपने समय पर फूल-फलादि से सम्पन्न होकर पृथ्वी को चारों ओर से विभूषित करती हैं। प्रत्येक दिशा में विहित और निषिद्ध आचार का प्रतिपादन करने वाली, स्वर्ग और नरक की व्यवस्था करने वाली स्मृतियाँ उपलब्ध हैं। समस्त प्राणी भोग और मोक्षरूप फल की प्राप्ति की कामना से यथासमय अपने-अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हैं। चतुर्दशभुवन, सप्त द्वीप, विविध नगर-ग्राम आदि कोलाहल-युक्त दृष्टिगोचर हो रहे हैं। अन्धकार कहीं पर न्यूनता की ओर जा रहा है, कहीं पर अत्यन्त स्थिर है और कहीं पर तेज के कणों से मिश्रित है। मेरु, पर्वत पर घना नीहार फैला हुआ है। लोकालोक-पर्वत, गर्जते हुए अपूर्वमेघ-घना अन्धकार, विविध सस्य, फल, मूलादि एवं प्राणियों के शब्दों से मुखरित पृथिवी सुशोभित हो रही है। तीन प्रवाहों वाली, ऊर्ध्व एवं अधोलोक में गमन करने वाली, चन्द्रकला के समान निर्मल गङ्गा-नदी यज्ञोपवीत के समान शोभायमान हो रही है। मेघमाला इधर-उधर भ्रमण कर रही है। कभी वह अदृश्य हो जाती है और कभी नेत्रों के समक्ष प्रकट हो जाती है"।

"समुद्र, भूमि और आकाश का आश्रयभूत जगत् गन्धर्व-नगर के समान शोभायमान है। उन भुवनों में देव, असुर, नर यक्ष, नाग आदि अपने-अपने स्थानों पर विराजमान हैं। उन लोकों में युग, कल्प, क्षण, लव, कला, काष्ठा आदि से युक्त जगत् का विनाश करने वाला काल विचर रहा है"।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

यह सब देखकर और शुद्ध चित्त से विचार कर मैं अत्यन्त चकित हो गया कि यह क्या है और कैसे है ? जिस मायाजाल को मैं चर्मचक्षु से नहीं देख सका, उसको मैं मन से आकाश में कैसे देख रहा हूँ ? यह कैसे हुआ" ?

चिरकाल तक उस मायाजाल को देखकर मैंने उस ब्रह्माण्ड के सूर्य को सत्य-संकल्प से अपने पास बुलाया और पूछा—"सूर्यदेव ! तुम्हारा स्वागत है, तुम कौन हो ? तुम्हारा जगत् कैसे उत्पन्न हुआ ? इसके अतिरिक्त जो नौ और जगत् हैं, वे कैसे उत्पन्न हुए ? मेरे पूछने पर उन्होंने मुझे इस लोक का ब्रह्मा समझकर नमस्कार किया और सुन्दरवाणी में कहा—"भगवन् ! आप इस दृश्य-प्रपञ्च के रचयिता हैं। क्या आप इस वृतान्त को नहीं जानते, जो मुझसे पूछ रहे हैं ? यदि आप मेरे मुख से सुनना चाहते हैं, तो सुनिए" ।

"ब्रह्मन् ! जम्बूद्वीप में कैलास पर्वत की घाटी में सुवर्णज-नामक एक प्रदेश है । वहाँ कश्यप गोत्र में उत्पन्न धर्मात्मा, ज्ञानी एवं शान्त इन्दु-नामक ब्राह्मण रहते थे । उनकी प्रिय भार्या भी साथ रहती थी—उनके कोई सन्तान नहीं थी । अतः वे दोनों बड़े खिन्न रहते थे, वे दोनों पुत्र-प्राप्ति की लालसा से तपस्या करने के लिए कैलास पर्वत के शिखर पर गए । अञ्जलि-भर जल पीकर वे तप करने लगे । वे वृक्ष के समान खड़े होकर तप करते थे, उन्होंने सुदीर्घ काल तक तप किया फलतः त्रेता और द्वापर दो युग बीत गये ।

भगवान् चन्द्रशेखर उन पर प्रसन्न होकर प्रकट हुए । उस दम्पत्ति ने बड़े आदर के साथ शंकर-भगवान् को प्रणाम किया और उनकी पूजा की। शंकर जी ने कहा—"हे विप्र ! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ, यथेच्छ वर मांगो" ।

विप्र ने कहा—"भगवन् ! श्रेष्ठ कर्म करने वाले एवं बुद्धिमान् मेरे दस पुत्र हों, जिससे मुझे पुनः शोकाभिभूत न होना पड़े" ।

"तथास्तु" कहकर शंकर जी अन्तर्हित हो गए ।

वे ब्राह्मण-दम्पति प्रसन्न होकर घर गए । यथाकाल (दशम मास में) उनके दस पुत्र हुए । संस्कारसम्पन्न वे ब्राह्मण-पुत्र अल्पकाल में ही तपस्वी और ज्ञानसम्पन्न हो गए । सात वर्ष की अवस्था में उन्होंने शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त कर लिया ।

कालान्तर में उनके माता-पिता उत्तम गति को प्राप्त हुए । उन बालकों को माता-पिता के वियोग का महान् शोक हुआ और दुःखी होकर वे घर छोड़कर कैलास पर्वत के शिखर पर चले गए । वहाँ उन्होंने विचार किया कि "सबसे बड़ा ऐश्वर्य क्या है ? सामान्य जन के ऐश्वर्य की अपेक्षा सामन्त-राजा अधिक ऐश्वर्यशाली हैं । उसकी अपेक्षा राजा अधिक ऐश्वर्यवान् और सम्पतिशाली है । राजा की अपेक्षा सम्राट् कहीं अधिक शक्तिशाली एवं ऐश्वर्यवान् है । देवराज इन्द्र के ऐश्वर्य के सामने सम्राट् का ऐश्वर्य भी कुछ नहीं है । इन्द्र का इन्द्रत्व भी क्या है, जो ब्रह्मा के मुहूर्त्त में नष्ट हो जाता है" ।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

वे दसों भ्राता इस प्रकार विचार कर रहे थे कि उनके ज्येष्ठ भ्राता जो सबसे अधिक बुद्धिमान् और गम्भीर थे, बोल उठे—"बन्धुओं ! ब्रह्मा का ऐश्वर्य कल्पपर्यन्त स्थिर रहता है, वह नष्ट नहीं होता। वही ब्रह्मा का पद मुझे रुचिकर है, मुझे और कोई वस्तु अभीष्ट नहीं है।

ज्येष्ठ भ्राता के सुन्दर वचन को सुनकर सब भाइयों ने "साधु, साधु" कहकर उसका समर्थन किया। उन्होंने कहा—"तात ! जरा-मरण आदि दुःखों से रहित, नितान्त रुचिकर ब्रह्मा का पद कैसे प्राप्त होगा, वह उपाय बतलाइये" ?

ज्येष्ठ भ्राता ने कहा—"बन्धुओं ! पद्मासन लगाकर तुम लोग 'मैं ब्रह्मा हूँ', 'अपने तेज से मैं सृष्टिकर्ता एवं संहारकर्ता हूँ' ऐसा ध्यान चिरकाल तक करो।

पद्मासन लगाकर वे दसों भाई तप करने लगे। उन्होंने मन में यह विचार किया—"कमल मेरा आसन है, मैं ब्रह्मा हूँ, मैं जगत् का रचयिता, कर्ता, भोक्ता, महेश्वर हूँ, मेरे आयत्त गायत्री एवं सरस्वती के साथ वेद मूर्तिमान् होकर स्थित हैं। लोकपालों से सेवित, सिद्धमण्डलों के संचार से सुशोभित, उत्कृष्ट सौभाग्यशाली एवं देवाङ्गनाओं के गान आदि से विभूषित स्वर्ग मेरे अधीन है, पर्वत, द्वीप एवं समुद्र से वेष्टित यह पृथिवी मेरे आयत्त है। त्रैलोक्य का पालन करने वाले, यज्ञभोक्ता, देवराज इन्द्र मेरे अधीन हैं। प्रचुर किरणों वाले सूर्य चैत्र आदि मासों के क्रम से मेरे अधीन तप रहे हैं। ये लोकपाल, जो मर्यादा से लोक की रक्षा कर रहें हैं, मेरे आयत्त हैं। प्रजा प्रतिदिन उत्पन्न होती है, वैभवसम्पन्न होती है और विनष्ट होती है। यह संवत्सर बीता, यह युग भी समाप्त हो रहा है, यह संहार का समय है, यह कल्प बीत चुका है, मैं पूर्णात्मा हूँ, परमेश्वर हूँ और ब्रह्मा हूँ"।

वे दस ऐन्दव-ब्राह्मण बद्धासन होकर अटलरूप से स्थित थे। अन्त में अपनी आत्मनिष्ठा एवं भावना के कारण उन्होंने ब्रह्मा का पद प्राप्त कर लिया।

सूर्यदेव ने कहा—"हे पितामह ! उनका पार्थिव शरीर सूर्य के आतप एवं वायु के झकोरों से सूखकर जीर्ण-शीर्ण पत्तों के समान भूमि पर गिर पड़ा। वन में रहने वाले मांसभक्षी पशु-पक्षियों ने उसे खा डाला। तब भी उनका मानस-व्यापार नहीं रुका। कल्पान्त तक वे ब्रह्मा जी के विविध कार्यों में मनसा आसक्त रहे"।

"कल्पान्त में बारह आदित्यों के तपने पर, पुष्करावर्त्त-नामक प्रलयङ्कर मेघों के गर्जन-तर्जन के साथ धारासम्पात वृष्टि के होने पर, कल्पान्त वायु के प्रचण्ड झोंकों के बहने पर, ब्रह्माण्ड के समस्त प्राणियों के विनाश एवं एकमात्र महार्णव के गर्जन पर भी वे ऐन्दव अपने कल्पित ब्रह्माण्ड के विविध मानस-सृष्टिकार्यों में व्यस्त थे"।

"आज जबकि आप कल्पान्त में जगकर नवीन सृष्टिरचना करने की इच्छा कर रहे हैं, तब भी वे उसी क्रम में स्थित हैं"।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

"हे भगवन् ! उक्त प्रकार से वे दस ऐन्दव-ब्राह्मण दस ब्रह्मा हो गए। उन दसों के दस ब्रह्माण्ड उनके मनोमय आकाश में स्थित हैं। उन दस ब्रह्माण्डों में से एक ब्रह्माण्ड में सूर्य-पद पर कार्य करने को मैं नियुक्त हूँ। प्रभो ! मैंने इस प्रकार दस ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति एवं सृष्टि का वर्णन किया। अब आपकी जैसी आज्ञा।

सूर्य की वातें सुनकर ब्रह्मा जी बोले—"सूर्यदेव ! जब ऐन्दव-ब्राह्मणों ने दस ब्रह्माण्डों की सृष्टि कर दी है, तब मुझे अब और ब्रह्माण्डों के सर्जन का क्या प्रयोजन है ?"

सूर्यदेव ने विचार कर कहा—"भगवन् ! आप निरीह हैं, अतः आपको चेष्टा करने को आवश्यकता नहीं। जो आप सृष्टि करते हैं, वह तो केवल आपका मनोविनोद है। आप में न राग है और न द्वेष। "जगत् की सृष्टि करना कर्त्तव्य है" इस भाव से आप सृष्टि करते हैं, जिसमें न तो आपकी कोई आसक्ति है और न कोई स्वार्थ। अपना नित्यकर्म समझकर आप जगत् की सृष्टि करते हैं। ऐन्दव-ब्राह्मणों की मानस-सृष्टि से आपकी सृष्टि गतार्थ नहीं है; क्योंकि उन ब्राह्मणों की सृष्टि नेत्रों से दृश्य नहीं है, जबकि आपकी सृष्टि दृष्टिगोचर होती है। उन ब्राह्मणों की मानस-सृष्टि को कोई नष्ट भी नहीं कर सकता; क्योंकि वे चित्त की दृढ़ता से चिरकाल से स्थित हैं। इन्द्रियों द्वारा किये गये कर्मों का विनाश हो सकता है; परन्तु मन के दृढ़-विश्वास से जो कर्म बद्धमूल हैं, उनका विनाश कोई भी नहीं कर सकता"।

बद्धमूल मन की अविनाश्यता—

श्रीसूर्यदेव ने कहा—"भगवन् ! मन ही जगतों का रचयिता है, मन ही समष्टिभावनापन्न हिरण्यगर्भ है। मन से जो किया गया है, वही कृत है, शरीर द्वारा किया गया कार्य कृत नहीं है। मन को शक्ति को देखिए। ऐन्दव सामान्य ब्राह्मण होकर भी मन की दृढ़ भावना से ब्रह्मा के पद को प्राप्त हो गए"।

———

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

४. अहल्या और इन्द्र का आख्यान

सूर्य ने कहा—"भगवन् ! मगध देश में किसी समय इन्द्रद्युम्न-नामक राजा राज्य करता था ! उसकी अहल्या नामक रानी थी, जो रोहिणी के समान सुन्दर थी। उस नगर में इन्द्र-नामक एक ब्राह्मणकुमार रहता था, जो विट्-कार्य में बड़ा निपुण था। राजमहिषी ने कथाप्रसंग में कहीं सुना था कि अहल्या (गौतमपत्नी) इन्द्र की इष्ट हुई थी। पटरानी अहल्या इन्द्र पर अनुरागिणी हो गई। उसको सब राजसुख व्यर्थ प्रतीत होने लगा। वह सब सखियों के समक्ष इन्द्र-इन्द्र कहने लगी। उसने लज्जा का परित्याग कर दिया और अपने मनोभाव को सखियों से कहा। तदनुसार उसकी एक सखी ने कहा—"मैं तुम्हारे इष्ट को तुमसे मिला दूँगी"।

तदनुसार इन्द्र-नामक विट् का उसके साथ साक्षात्कार हुआ। अहल्या उस विट् पर इतना अनुरक्त थी कि उसको समस्त संसार इन्द्रमय दिखाई देने लगा। समस्त गुणों से युक्त अपने पति को भी वह उपेक्षा से देखने लगी।

कालान्तर में राजा को उसकी इन्द्रानुरागिता ज्ञात हुई और उन दोनों के गुप्त क्रिया-कलाप का भी ज्ञान हो गया।

तदनुसार राजा ने उन दोनों को दण्डों से पिटवाया, शीतकाल में तालाब में छोड़वा दिया, तथापि वे सन्तुष्ट थे। उन्हें किसी प्रकार का क्लेश न हुआ, वे हँसते रहे।

राजा ने उन दोनों को अपने पास बुलवाया और पूछा—"दुर्मतियो ! तुम खिन्न हो कि नहीं"।

उन दोनों ने कहा—"राजन् ! हम लोगों का सम्बन्ध दृढ़ मन से है। उसका विच्छेद नहीं हो सकता। अतः आप कितना भी दण्ड दें, हम लोगों को कोई कष्ट न होगा"।

राजा ने उन दोनों को भाड़ में झोकवा दिया। फिर भी एक दूसरे का मुख देखकर वे प्रसन्न रहे। राजा ने उन्हें हाथी के पैरों में बँधवा दिया, कोड़ों से पिटवाया और भी कितने प्रकार के दण्ड दिए। अन्त में राजा ने उन दोनों को बुलवाया और पूछा—"दुष्टों ! तुम लोग दुःख का अनुभव करते हो कि नहीं"।

उन दोनों ने कहा—"राजन् ! एक दूसरे का मुख देखकर हम लोग प्रसन्न रहते हैं। आप कितना भी दण्ड दें, हम लोगों को कोई कष्ट न होगा"।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

इन्द्र ने कहा—"राजन् ! सम्पूर्ण जगत् मेरे लिए अहल्यामय हो गया है और अहल्या का जीवन इन्द्रमय हो गया है। आप कितना भी दण्ड दें, हम लोगों को कष्ट नहीं होगा; क्योंकि हम लोगों का मन एक हो गया है। हम लोग मनोमय हो गये हैं। मन ही पुरुष है, यह देह आदि मन का विस्तारमात्र है। देह को कष्ट देने पर भी मन में कोई विकार उत्पन्न नहीं होगा। मन के स्थिर हो जाने पर शारीरिक उत्पीडन आदि अकिञ्चित्कर हो जाते हैं। यह सुन्दरी अहल्या हमारे मन में देवी के समान प्रतिष्ठित है। हम लोगों का शरीर दो है, पर मन एक है। हम लोगों का प्रेम-भाव विशुद्ध है, सर्वात्मना ऐक्यसूत्र में आवद्ध है। अतः उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन सम्भव नहीं है, आप कुछ भी कर डालें"।

राजा ने विट् के कथन को भरतमुनि से, जो समीप में थे, कहा—"महर्षे ! आप धर्म के मर्मज्ञ हैं। मेरी स्त्री का अपहरण करने वाले इस दुष्ट ने जो धृष्टतापूर्वक कहा है, आपने सुना है। अपराधी को दण्ड न देना भी पाप है। अतः आप इसके पाप को देखते हुए तदनुरूप शाप दीजिए"।

भरत मुनि ने राजा की बात पर यथोचित विचार किया और शाप दिया कि "दुष्ट ! इस पापिनी के साथ विनष्ट हो जाओ"।

उन दोनों ने (इन्द्र और अहल्या) राजा और भरत मुनि से कहा—"तुम दोनों महामूर्ख हो; क्योंकि शाप से मुनि का संचित तप नष्ट हुआ है और हम लोगों का कुछ भी नहीं बिगड़ा है। हम लोग मनरूपी हैं। शरीर के नष्ट हो जाने पर भी मन का कुछ नहीं बिगड़ता। मन अतिसूक्ष्म है, चिन्मय है और दुर्लक्ष्य है, उसका विनाश नहीं होता"।

भानु ने कहा कि शापवश वे दोनों (इन्द्र और अहल्या) भूमि पर गिर पड़े और मर गये। तदनन्तर वे दोनों मृग-योनि में उत्पन्न हुए, पश्चात् पक्षी हो गए। वहाँ भी उन दोनों में प्रेम-भाव पूर्ववत् बना रहा। इस समय वे दोनों हमारे ब्रह्माण्ड में ब्राह्मणदम्पति हैं। भरत मुनि के शाप से उनके देह का विनाश हुआ, पर उनके मन पर शाप का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वे जहाँ कहीं भी उत्पन्न होते हैं, दम्पति होते हैं और उनमें प्रेम-भाव बना रहता है। उनके विशुद्ध प्रेम को देखकर वृक्ष भी प्रेमाभिभूत हो विलास की चेष्टा करने लगते हैं।

वसिष्ठ जी उक्त प्रसङ्ग में अनुपपत्ति दिखलाते हुए ब्रह्मा जी से बोले—"भगवन् ! आपने ही कहा है कि मन्त्र, शाप, वरदान आदि की शक्ति अमोघ है, फिर कृत्रिम इन्द्र ने उसे मोघ कैसे कहा ? देखा गया है कि मन्त्र, शापादि की शक्ति द्वारा मन, प्राण, बुद्धि, इन्द्रिय, शरीरादि सब प्रभावित हो जाते हैं। शाप से राजा नहुष अजगर बन गये थे और उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी; शाप से राजा सौदास राक्षस बन गये थे और व्यामोह से उनकी प्रवृत्ति पाप-कर्मों में हो गई थी। जैसे वायु और स्पन्दन अभिन्न हैं, तिल और तेल अभिन्न हैं, वह्नि और उष्णता अभिन्न हैं, वैसे शरीर

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

और मन अभिन्न हैं क्योंकि मन ही तो देह है। यदि मन्त्र, शापादि का प्रभाव शरीर पर पड़ता है तो मन पर भी पड़ना चाहिए''।

मनोमाहात्म्य-वर्णन—

ब्रह्मा जी ने कहा—''महर्षे! ब्रह्माण्ड में ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो शुभ-कर्मानुसारी शुभ-पौरुष से प्राप्त न हो सके। ब्रह्मा से लेकर स्थावर-पर्यन्त जितनी जातियाँ हैं, वे सब दो शरीर—वाली हैं। एक मनोमय शरीर है, जो चञ्चल और कार्यकारी है और दूसरा मांसमय शरीर है, जो अकिञ्चित्कर है। मांसमय शरीर मूक, अशक्त, दीन, क्षणिक एवं चञ्चल है। यदि मन अपने पौरुष का अवलम्बन कर धैर्य से खड़ा हो जाय, तो किसी प्रकार के दुःख उस पर आक्रमण नहीं कर सकते। वह अपने प्रयत्न के अनुसार फल-भाजन होता है। चित्त पवित्र विचार से जब स्मरण करता है, तब शापादि सब निष्फल हो जाते हैं, जैसे पत्थर पर पुष्प का प्रहार'।

''पौरुष-वल से अपने चित्त को प्रियामय बनाकर कृत्रिम इन्द्र को भीषणतम पीड़ा का तनिक भी अनुभव नहीं हुआ। शूल के अग्रभाग में स्थित माण्डव्य ऋषि ने पौरुष से अपने मन को रागरहित बनाकर सर्वविध क्लेशों पर विजय प्राप्त की। दीर्घतपा-नामक ऋषि ने अन्धकूप में गिर जाने पर भी मानस-यज्ञों से स्वर्ग प्राप्त किया। इन्दुपुत्र दस ब्राह्मणों ने अपने पौरुष और मन को दृढ़ता से ब्रह्मा का पद प्राप्त किया, जिसका खण्डन कोई भी नहीं कर सकता। अन्य देव तथा महर्षिगण, जिन्होंने अपनी उपासना का त्याग नहीं किया है, शारीरिक तथा मानसिक व्यथाओं, शापादि के प्रभाव एवं राक्षसादि के उपद्रवों से तनिक भी प्रभावित नहीं होते; जो ऋषि, महर्षि अथवा राजा लोग शापादि एवं काम, क्रोध, लोभादि से प्रभावित हुए हैं, वे अपनी मानसिक दुर्बलता के कारण अथवा उपासना में तीव्रता की कमी के कारण हुए हैं। इस संसार में सुदृढ़ मनवाला पुरुष कभी भी दोषों से जडीभूत नहीं होता''।

———

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

५–लवणाख्यान

इस भूमण्डल में उत्तरापाण्डवी नामक एक देश है, जो प्राकृतिक वैभवों से सम्पन्न तथा धन-धान्य से समृद्ध है; उस देश में हरिश्चन्द्र कुल में उत्पन्न, परमधार्मिक लवण नाम का एक राजा था। वह सूर्य के समान तेजस्वी और महान् यशस्वी था। वह किसी दिन सभामण्डप में सिंहासन पर विराजमान था। सामन्त-नृपगण वहाँ आने लगे, स्त्रियाँ मधुर गान करने लगीं, वीणा और बाँसुरी की मधुर ध्वनि मुखरित होने लगी, परिचारिकायें हाथों में चँवर लेकर राजा के ऊपर डुलाने लगीं और बुद्धिमान् मन्त्रीगण यथा-स्थान बैठ गये। राजकार्य मन्त्रियों द्वारा प्रस्तुत होने लगा, दूतगण विविध देशों की वार्त्ता सुना रहे थे, पवित्र ऐतिहासिक ग्रन्थ पढ़े जा रहे थे, उसी समय अकस्मात् एक ऐन्द्रजालिक ने सभा में प्रवेश किया। उसने बड़े आदर-भाव से राजा को प्रणाम किया। उसने कहा—"राजन्! आप सिंहासन पर बैठे हुए अद्‌भुत कौतुक देखिए, जैसे चन्द्रमा पृथ्वी को देखता है"। ऐसा कहकर उसने भ्रमोत्पादक मोर छल को, जो कि भगवान् की माया के तुल्य था, घुमाया। जैसे देव-विमान में आसीन देवराज इन्द्र अपने धनुष को देखता है, वैसे ही राजा ने तेज के कणों से देदीप्यमान उस मोरछल को देखा।

उसी क्षण सैन्धव-देश का सामन्त वहाँ प्रविष्ट हुआ और उसके पीछे एक बड़ा सुन्दर अश्व, जो कि उच्चैःश्रवा के समान था, सभामण्डप में लाया गया। अश्व-पाल ने राजा से कहा—"प्रभो? यह अश्वरत्न उच्चैःश्रवा के समान है, इसको देखिए। यह वायु के समान उड़ता है, मेरे प्रभु ने इसे आपके पास भेजा है। अतः आप इस अश्वरत्न के अधिकारी हैं"।

उसके ऐसा कहने पर ऐन्द्रजालिक ने कहा—"प्रभो! आप सुन्दर घोड़े पर सवार होकर भूमण्डल में विचरण करें, जैसे सूर्य भगवान् अपने प्रताप से आकाशमार्ग में विचरते हैं"।

उसके ऐसा कहने पर राजा ने उस घोड़े को देखा और निर्निमेष दृष्टि से घोड़े को देखता हुआ वह भित्ति में अङ्कित चित्र के समान स्तब्ध सा हो गया।

दो मुहूर्त्त तक राजा ध्यानावस्थित हो गया, जैसे कोई वीतराग मुनि परमानन्द में ध्यानस्थ हो; किसी ने राजा को जगाया नहीं, सभी सभासद आश्चर्यमग्न हो गये। बुद्धिमान् मन्त्रीगण चिन्तित हुए कि क्या बात है।

दो मुहूर्त्त के बाद राजा को बोध हुआ, उसने अपने शरीर को कँपाया, जैसे भूकम्प के समय पर्वत अपने शरीर को कँपाता है। गिरते हुए उस राजा को सम्मुख-

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

स्थित मन्त्री ने संभाला। राजा ने धीरे से कहा—"यह कौन प्रदेश है और यह किस की सभा है"।

सभा ने वड़े आदरभाव से कहा—'देव ! यह आप क्या कह रहे हैं ?' मन्त्रियों ने राजा से कहा—"महाराज ! आपकी ऐसी स्थिति देखकर हम लोग अत्यन्त व्याकुल हो गये थे, आपातरमणीय और परिणाम में नीरस भोगों में आपका मन कैसे मुग्ध हो गया। आपका निर्मल चित्त मोह में कैसे पड़ गया ? साधारण जन ऐसे विषयों में आसक्त हो जाते हैं; परन्तु आपके सदृश विवेकशील महापुरुष कदापि मोह को प्राप्त नहीं होते"।

आत्मीयजनों की मधुरवाणी सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। उसने हँसते हुए ऐन्द्रजालिक से कहा—"ऐन्द्रजालिक तुमने यह क्या किया जो सागर के समान गम्भीर मेरा मन क्षण-भर में चिन्तित और मुग्ध हो गया। मेरा ज्ञान और विवेक नष्ट हो गया और मैं तुम्हारे जाल में फँस गया"।

राजा ने कहा—"सभासदों ! आप लोग इस आश्चर्यमय आख्यान को सुनें, जिसे इस ऐन्द्रजालिक ने मुझे क्षण-भर में दिखाया है। आप सबको विदित है कि ऐन्द्रजालिक इस सभामण्डप में आया था। उसने मेरे समक्ष मोरछल घुमाया था। उसको देखते ही मैं आखेट के लिए एक अश्व पर आरुढ़ हो गया, जिसने वायु की गति से मुझे एक भीषण वन में पहुँचाया। वहाँ पशु-पक्षी नाममात्र को भी न थे, न वृक्ष थे और न जल था। वह वन विशाल था, मेरा घोड़ा थक गया था। अतः मैं वहीं रुक गया। मैं वहाँ वड़ा दुःखी था। मैंने सूर्यास्त तक सारा दिन वहीं बिताया। पश्चात् घोर परिश्रम कर किसी प्रकार उस जङ्गल को पार किया। मैं ऐसे स्थान पर पहुँचा, जहाँ जामुन और कदम्ब के वृक्ष थे और पक्षीगण मधुर-कलरव कर रहे थे। सूर्य-भगवान् अस्त हो गये थे। मैं पक्षियों के समान वृक्ष के खोखले में किसी प्रकार छिप गया। मेरी वह रात्रि कल्प के समान वैसे व्यतीत हुई, जैसे प्रलयकालीन सागर में वह रहे मार्कण्डेय जी की प्रलयरात्रि बीती थी। मैंने स्नान, देवार्चन, भोजन आदि कुछ भी नहीं किया, केवल किसी प्रकार रात्रि बिताई।

प्रातःकाल पूर्वदिशा में उदीयमान सूर्य को देखकर मुझे वही आनन्द प्राप्त हुआ, जो एक दरिद्र को सुवर्णराशि प्राप्त होने पर होता है। मैं उस विस्तीर्ण वनस्थली में विहार करने को उद्यत हुआ, वहाँ घूमते हुए मैंने सिर पर भात की थाली रखकर जाती हुई एक कन्या को देखा, जैसे कि दानवों ने कुम्भ में अमृत लेकर जाती हुई माधवी को देखा था। मैंने उस कन्या के पास जाकर कहा—"बाले ? मैं घोर सङ्कट में पड़ा हूँ। मुझे शीघ्र खाने को अन्न दो, इससे तुम्हारा कल्याण होगा"।

उस कन्या ने मेरी प्रार्थना पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। मैं अन्नप्राप्ति की आशा में उसके पीछे-पीछे चलता रहा। अन्त में उसने कहा—"हे हारकेयूर-धारी भद्रपुरुष ! आप मुझे मनुष्य, अश्व और गज का भक्षण करने वाली राक्षसी के तुल्य

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

क्रूर चाण्डालिन समझें। जैसे ग्राम्यपुरुष से सौजन्य नहीं मिल सकता, वैसे केवल याचनामात्र से मुझसे भोजन नहीं मिल सकता। हाँ यदि तुम मेरे पति बन जाओ, तो मैं तुम्हें भोजन दे सकती हूँ। पामरजन प्रेम के विना उपकार नहीं कर सकते। यह देखो, खेत में भूखा, धूलि-धूसरित चाण्डाल मेरा पिता हल चला रहा है। उसके लिये मैं अन्न लेकर जा रही हूँ''।

आपत्तिकाल में वर्ण, धर्म और आचार का पालन कौन करता है। मैंने कहा—''बाले, मैं तुम्हारा पति हो रहा हूँ, मुझे अन्न दो''। जैसे प्राचीनकाल में मोहिनीरूपधारी विष्णु-भगवान् ने आधा अमृत इन्द्र को दिया था, वैसे ही उस बाला ने आधा भात मुझे दे दिया। मैंने वहाँ भात खाया, जामुन का रस पिया और कुछ विश्राम किया।

मुझे वहाँ छिपाकर वह कामिनी अपने पिता के पास, जो काले रंग का था और हल जोत रहा था, गई। वह मुझ पर अनुरक्त थी और उसने अपना अभिलाष अपने पिता (चाण्डाल) से कहा। उसने स्वीकृति दे दी। सायंकाल हम तीनों उस वनस्थली से निवास-स्थान को चले। हम लोग भीलों की बस्ती में पहुँचे। वहाँ पर कटे हुए बन्दर, मुर्गे तथा कौए टुकड़े-टुकड़े करके रखे थे, भूमि रक्त से रञ्जित थी और मक्खियाँ भिनभिना रही थीं। वहाँ का दृश्य वीभत्स और नारकीय था। बालकों के हाथ में मांसपिण्ड थे, जिन पर मक्खियाँ भिनभिना रही थीं। वहाँ पर मेरे चाण्डाल श्वसुर और चाण्डालिन सासु ने मेरा बड़ा सत्कार किया और एक शुभ दिन उस चाण्डाल-कन्या के साथ मेरा विवाह हो गया।

उस भील-बस्ती में मैंने साठ वर्षों तक नारकीय जीवन व्यतीत किया। मेरे अनेक पुत्र और पुत्रियाँ भी उत्पन्न हुईं। वहाँ भयङ्कर अनावृष्टि हुई और उसके कारण भीषण दुर्भिक्ष पड़ा, जिसमें सैकड़ों नर-नारी एवं पशु-पक्षी काल-कवलित हुए। जब बच्चे भूखों मरने लगे, तब मैंने परिवार के साथ देशान्तर के लिए प्रस्थान किया। मेरे साथ मेरी स्त्री और बच्चे थे। उस देश की सीमा पार कर हम बाहर आये और एक वृक्ष के नीचे विश्राम करने लगे।

भोजन की समस्या बड़ी जटिल थी। मेरा छोटा बच्चा, जिसका नाम पृच्छक था, बड़ा प्रिय था, उसको सब लोग स्नेह की दृष्टि से देखते थे। वह रो-रोकर ''मांस दीजिए, मांस दीजिए'' ऐसा कहता था। अन्त में मैं अपने शरीर का मांस देने को उद्यत हुआ। चिता सजाई गई और मैं उसमें कूदने ही जा रहा था, कि आप लोगों ने तूरी-वाद्य के घोष एवं जय-जयकार से मुझे जगा दिया। इस ऐन्द्रजालिक की यह सब माया है।

राजा के ऐसा कहते ही वह ऐन्द्रजालिक अदृश्य हो गया।

आश्चर्यचकित सदस्यों ने कहा—''राजन्! यह ऐन्द्रजालिक नहीं है; क्योंकि वे धन के लोभी होते हैं। यह कोई दैवी माया है, जो संसार की स्थिति को

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

बतला रही है। यह संसार मनोविलासमात्र है। सर्वशक्तिमान् भगवान् विष्णु का विलासरूपी मन ही जगत् है, यह भगवान् की विचित्र माया है, जो ज्ञानी और विवेकी मन को भी मोहित कर लेती है। कहाँ लोकव्यवहार में निष्णात महाराज और कहाँ इस प्रकार का सम्भ्रम। यह भगवान् की अघटित घटना है। ऐन्द्रजालिक तो द्रव्य के लिए खेल करते हैं और सब प्रकार से द्रव्य अर्जित करना चाहते हैं। वे कभी अदृश्य नहीं होते। अतः निस्सन्देह यह दैवी माया है"।

वसिष्ठ जी ने कहा—"हे रामभद्र! यह आख्यान कल्पित नहीं है; अपितु वास्तविक है, मैं स्वयं उस सभा में उपस्थित था और मैंने अपनी आँखों से यह सब वृत्तान्त देखा और सुना। जैसे पुष्प, पल्लव, फल, शाखा आदि के द्वारा वृक्ष उत्कर्ष को प्राप्त होता है, वैसे ही मन आत्मस्वरूप को छिपाकर अपना उत्कर्ष दिखाता है। आत्मज्ञान हो जाने पर मन की वासनायें दूर हो जाती हैं और वह शान्त होकर आत्मस्वभाव में परिणत हो जाता है और परम-पद को प्राप्त होता है। तब मन के समस्त उपद्रव शान्त हो जाते हैं; क्योंकि उसका और उसके कार्यों का अस्तित्व ही नहीं रह जाता।

श्रीरामचन्द्र जी लवणाख्यान को सुनकर आश्चर्यचकित हो गए। उन्होंने कहा—"मुनिवर! कृपया यह बतलायें कि राजा लवण इस प्रकार की विपत्ति में कैसे पड़ गए"?

वसिष्ठ जी ने कहा—"वत्स राघवेन्द्र! राजा लवण मन के भ्रम से जिस प्रकार चाण्डालत्व को प्राप्त हुए, उस वृत्तान्त को मैं कहूँगा। आप सावधान होकर सुनें। इक्ष्वाकु कुल में उत्पन्न राजा लवण ने एकान्त में विचार किया कि "मेरे पूर्वजों ने राजसूय यज्ञ किया था। मैं उनके कुल में उत्पन्न हुआ हूँ। मैं मन से राजसूय यज्ञ करूँगा"।

ऐसा विचार कर उन्होंने मन में यज्ञ-सामग्रियों को एकत्र कर यज्ञ की दीक्षा ली। उन्होंने ऋत्विजों को बुलाया, मुनियों की पूजा की, देवताओं का आवाहन किया और अग्नि प्रज्वलित की। मन से यज्ञ का अनुष्ठान कर रहे राजा का प्रायः एक वर्ष व्यतीत हो गया। उन्होंने यथाविधि देवगण, ऋषियों और ब्राह्मणों की पूजा की। ब्राह्मणों एवं अन्य प्राणियों को दक्षिणा में सर्वस्व दान कर दिया। इस प्रकार राजा लवण ने राजसूय यज्ञ का फल प्राप्त किया"।

श्रीरामचन्द्र जी ने कहा—"गुरुवर! इसमें क्या प्रमाण है कि मानस-राजसूय यज्ञ करने के कारण राजा लवण को दण्ड भोगना पड़ा"।

वसिष्ठ जी ने कहा—"प्रिय वत्स! जब वह ऐन्द्रजालिक राजा लवण की सभा में आया, उस समय मैं वहाँ उपस्थित था। मैंने अपनी आँखों से सब कुछ देखा। वहाँ सभासदों ने और स्वयं राजा लवण ने मुझसे पूछा कि यह सब क्या है? मैंने योग-बल से विचार किया और कहा कि—"राजसूय यज्ञकर्ताओं को बारह वर्ष तक दण्ड भोगना पड़ता है"। देवराज इन्द्र ने राजा लवण को दण्ड देने के लिए उस ऐन्द्रजालिक

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान
जयपुर परिसर, जयपुर
पुस्तकालय
क्रमांक..........

को भेजा था, जो अपना कार्य सम्पन्न कर इन्द्रलोक चला गया। हे राम ! इसमें कोई सन्देह नहीं है कि मन विलक्षण कार्यों का कर्ता और भोक्ता है। विवेक से उस मन का परिष्कार कर परम-सुख प्राप्त किया जा सकता है''।

राजा लवण का पुनः भीलों की वस्ती में जाना—

राजा लवण उस घटना से वहुत चकित थे। उन्होंने पुनः अरण्य में जाकर उस भील-वस्ती को देखना चाहा। राजा मन्त्रियों के साथ दक्षिण दिशा में गए। पुनः उस महावन में गए, जहाँ पूर्वोक्त घटनायें घटित हुई थीं। वहाँ पहुँचकर राजा ने उन सव स्थानों को देखा, पहचाना और लोगों से बातें भी कीं। अब उनके आश्चर्य की कोई सीमा न थी। कौतूहलवश वह इधर-उधर घूमते रहे और व्याधों एवं चाण्डालों को देखते रहे। अन्त में वह उस वस्ती में उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ वह चाण्डाल वने थे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने पूर्वपरिचित पुरुषों, स्त्रियों और छोटी-छोटी झोपड़ियों को देखा। दुर्भिक्ष के समय के वृक्षों, साथियों, व्याधों और अपने पुत्रों को भी देखा।

एक वृद्ध चाण्डालिन अपने कुटुम्ब और वस्ती के लोगों के साथ करुणक्रन्दन कर रही थी, वह दुर्भिक्ष का वर्णन कर रही थी। अपनी लड़की और परिवार के छोटे-छोटे वच्चों को दुर्भिक्ष का रोमाञ्चकारी वर्णन करती हुई वह सिसक-सिसककर रो रही थी। उसने अपने दामाद राजा का भी वर्णन किया।

वहाँ का दृश्य देखकर राजा के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। राजा ने उस वृद्धा चाण्डालिन के मुख से वे सारी बातें सुनीं, जिनका उन्हें स्वयं अनुभव था। वह अत्यन्त विस्मित हुए और मन्त्रियों के मुख को देखकर चित्रलिखित के समान स्तब्ध हो गए।

राजा ने उन दीन-दुःखियों के दुःखनिवारण के लिए पुष्कल द्रव्यराशि दी और प्रिय वचनों एवं सम्मान से उनको आश्वस्त किया। वहाँ कुछ समय तक रहकर तथा दैव की गति-विधि का विचार कर वह अपनी राजधानी लौट आए।

प्रातःकाल सभाभवन में राजा ने मन्त्रियों से पूछा—''मन्त्रिगण स्वप्न में दृष्ट वस्तुओं को मैंने वन में और भीलों की बस्तियों में प्रत्यक्ष कैसे देखा''? मन्त्रियों ने उनकी शङ्का का निवारण किया और कहा कि ''अविद्या (माया) बड़ी प्रबल है। वह असत् को सत् और सत् को असत् बना देती है। उसकी महिमा अपरम्पार है।

स्वप्न तथा सम्भ्रम आदि में नितान्त विपरीत बातें घटित होती हैं। घट पट हो जाता है और पट घट अथवा कुछ अन्य हो जाता है। जैसे दर्पण में दूरस्थ वस्तु निकटस्थ हो जाती है, वैसे अत्यन्त दूरस्थ वस्तु निकटस्थ हो जाती है। सुख की निद्रा में दीर्घकाल भी लघु हो जाता है और दुःखकाल में अल्प समय भी दीर्घ हो जाता है। असम्भव बातें सम्भव हो जाती हैं, जैसे स्वप्न में मरण, आकाशगमन आदि। रेलगाड़ी, नौका आदि से चलते समय स्थिर वस्तुएँ—पृथिवी, वृक्ष आदि—चलते, दौड़ते से प्रतीत होते हैं। मद से विक्षुब्ध चित्त को स्थिर पदार्थों में गतिशीलता की मिथ्या-

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

प्रतीति होती है। वासनामय चित्त जिस वस्तु की जैसी भावना करता है, उस वस्तु को शीघ्र वैसा ही पाता है, जबकि वह वस्तु न सत् है और न असत्। जब से तू, तेरा, मैं, मेरा इत्यादि अविद्या मिथ्या होकर उत्पन्न हुई, तब से आदि, मध्य और अन्त से रहित असंख्य भ्रम उत्पन्न हो गए हैं। मानसिक प्रतिभास से सब वस्तुयें विपरीत हो जाती हैं। जैसे—क्षण कल्प के समान हो जाता है और कल्प क्षण के समान"।

भीलों की वस्ती में किसी चाण्डाली का पहले जो विवाह हुआ था, वही राजा लवण के मन में प्रतिभासित हुआ, वह सत् हो अथवा असत्।

जैसे स्वप्न में पूर्व की कथा प्रतिभा में आ जाती है, वैसे राजा लवण की प्रतिभा में विन्ध्यपर्वत के भीलों की बस्ती में चाण्डाली विवाहादि आ गये थे अथवा राजा लवण को जो स्वप्न-भ्रम हुआ था, वही भ्रम भीलों की बस्ती में रहने वाले चाण्डालों के चित्त की संविद् को हुआ था। राजा लवण के चित्त की प्रतिभा विन्ध्यपर्वत के चाण्डालों के हृदय में आरूढ़ हुई अथवा विन्ध्यपर्वत के चाण्डालों को प्रतिभा राजा लवण के हृदय में आरूढ़ हुई। जैसे कवियों की उत्प्रेक्षामूलक उक्तियों में शब्द और अर्थ की समता होती है वैसे ही राजा लवण एवं विन्ध्य के चाण्डालों के भ्रान्तिरूपी स्वप्न में देश, काल और क्रिया की समता हो गयी। सब पदार्थों की सत्ता अधिष्ठान-भूत चेतनसामान्य की सत्ता से अतिरिक्त नहीं है, अधिष्ठान चेतन की सत्ता ही भूत, भविष्य तथा वर्त्तमान के प्रपञ्चों में व्याप्त रहती है। इस प्रकार प्रपञ्च की सत्ता से भिन्न प्रतीति होती है, जैसे जल में तरङ्ग तथा वृक्ष में वृक्ष उससे भिन्न भासित होते हैं।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

६. भार्गवाख्यान

महर्षि भृगु मन्दराचल पर्वत के शिखर पर घोर तपस्या कर रहे थे। उनके पुत्र शुक्राचार्य पुष्पों की शय्याओं एवं बड़े-बड़े हिंडोलों पर खेलते थे और पिता जी की सेवा शुश्रूषा करते थे। किसी समय उनके पिता जी समाधिस्थ थे, उन्होंने आकाशमार्ग से जा रही एक अप्सरा को देखा। वह मन्दार की मालाओं से विभूषित थी और अलौकिक सुन्दरी थी। उसे यदि सौन्दर्य की मूर्ति कहा जाय, तो अत्युक्ति न होगी। उसे देखकर शुक्राचार्य काममोहित हो गए और वह भी उन्हें देखकर मुग्ध हो गई। शुक्राचार्य ने शरीर से उस दिव्य अप्सरा का अनुसरण तो नहीं किया; परन्तु मन से उसका स्मरण और ध्यान करते-करते वह अप्सरामय हो गए।

भार्गव-मनोराज्य—

भार्गव ध्यानस्थ हो मन से उस दिव्य अप्सरा का अनुगमन करने लगे। वह स्वर्गलोक पहुँच गए, जहाँ यम, चन्द्र, इन्द्र, सूर्य, अग्नि, वरुण आदि देवगण विराजमान थे। उन्होंने मन्दाकिनी-तट को देखा, जहाँ पर हँस, सारस प्रभृति पक्षीगण विहार कर रहे थे और दोनों तटों पर देवगण विश्राम कर रहे थे। वहाँ देवराज का नन्दनवन दिखाई दिया, जो दिव्य पुष्पों एवं फलों से समृद्ध था। मन्द, सुगन्धित वायु बह रहा था और यत्र-तत्र देवाङ्गनाओं के नृत्य हो रहे थे। नारद और तुम्बुरु मधुर स्वर में वीणावादन के साथ-साथ गान कर रहे थे, कल्पवृक्ष दिव्य पुष्पों, फलों एवं लताओं से सुशोभित मन को आकृष्ट कर रहा था। इन्द्र का ऐरावत मदस्राव करता हुआ विचर रहा था।

मैं देवराज इन्द्र के पास पहुँचा और आदरपूर्वक उनका अभिवादन किया। देवराज इन्द्र ने सिंहासन से उठकर मेरा सम्मान किया और आदर से हाथ पकड़कर अपने पास बैठाया। इन्द्र ने कहा कि "आपके आने से स्वर्ग धन्य हो गया है। आप चिरकाल तक यहाँ वास करें।" वहाँ पर देवताओं ने मेरा अभिनन्दन किया और मैं बड़े सम्मान के साथ वहाँ रहने लगा।

कुछ समय के बाद मैं देवताओं के साथ स्वर्गभ्रमण के लिए निकला। भ्रमण करते समय मैंने अप्सराओं के मध्य में बैठी हुई उस सुन्दर अप्सरा को देखा। उसने भी स्नेहाई-भाव से मुझे देखा। हम दोनों की आँखें मिल गईं। हम दोनों कामान्ध थे और अवसर की प्रतीक्षा में थे।

अन्त में मैंने स्वर्ग के एक भाग में अन्धकार की कल्पना की और वह प्रदेश निबिड़ तम से आच्छन्न हो गया। उसकी सहेलियाँ अपने-अपने इष्ट स्थानों पर चली गईं और हमारे साथ के देवगण भी अपने-अपने अभीष्ट स्थानों पर चले गए।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

एकान्त में हम दोनों का मिलन हुआ। एक सुन्दर भवन में उत्तम आस्तरण पर बैठकर हन दोनों में सरस प्रेमालाप हुआ। चिरकाल तक स्वर्ग के दिव्य-प्रदेशों में घूम-घूम कर हम दोनों ने क्रीड़ायें की और वैषयिक सुखों का उपभोग किया। पुण्य क्षीण होने पर हम दोनों स्वर्ग से भूमण्डल पर गिर पड़े। शरीर छिन्न-भिन्न हो गया। और विविध योनियों में भ्रमण के पश्चात् मैं तपस्वी ब्राह्मणकुल में जन्म लेकर समङ्गा नदी के तट पर घोर तप करने लगा।

भार्गव-कलेवरवर्णन—

महर्षि भृगु जी के आश्रम में भी भार्गव ने चिरकाल तक मनोराज्य में भ्रमण किया। उस काल्पनिक राज्य में स्वर्गीय सुखों की अनुभूति में वह अपने पूर्व शरीर को भूल-से गए। स्वर्ग से मर्त्यलोक में आकर उनके चित्तरूपी सूक्ष्म-शरीर ने विविध योनियों में भ्रमण किया और अन्त में समङ्गा नदी के तट पर उसे विश्रान्ति मिली।

इति चिन्तयतस्तस्य शुक्रस्य पितुरग्रतः।
जगामातितरां कालो बहुसंवत्सरात्मकः॥

योगवासिष्ठ स्थिति-प्र० सर्ग ९, श्लो० १

उन्होंने सुदीर्घकाल तक अपने स्थूल-शरीर की किञ्चिन्मात्र भी चिन्ता न की। फलस्वरूप सूर्य की किरणों से और वायु के झोंकों से उनका शरीर सूखकर जर्जर हो गया। जैसे वृक्ष के मूल के कट जाने से वृक्ष गिर पड़ता है, वैसे ही वह शरीर भूमि पर गिर पड़ा।

अथ कालेन महता पवनातपजर्जरः।
कायस्तस्य पपातोर्व्यां छिन्नमूल इव द्रुमः॥
मनस्तु चञ्चलाभोगं तासु तासु दशासु च।
बभ्रामातिविचित्रासु वनराजिष्विवैणकः॥

योगवासिष्ठ स्थिति-प्र० सर्ग ९, श्लो० २, ३

मन्दराचल के शिखर पर स्थित शुक्राचार्य का शरीर (स्थूल) बाहर से मात्र चर्ममय और भीतर से अस्थिमय ही रह गया था। वह बड़ा शोचनीय और बीभत्स लगता था। वह शरीर महर्षि भृगु के आश्रम में था, जो कि परम-पवित्र स्थान था और राग-द्वेष से रहित था। अतः हिंसक पशुओं ने उस शरीर को नहीं खाया।

रागद्वेषविहीनत्वात् तस्य पुण्याश्रमस्य तु।
महातपस्त्वाच्च भृगोर्न भुक्ता मृगपक्षिभिः॥

योगवासिष्ठ स्थिति प्र० सर्ग ९, श्लो० १५,

महर्षि भृगु देवताओं के दिव्य वर्ष से एक सहस्र वर्ष तक समाधिस्थ होने के पश्चात् उठे। उन्होंने अपने विनीत, गुणवान् पुत्र श्रीशुक्र को सामने नहीं देखा; अपितु उसके विशाल देहपञ्जरको देखा। उस शुष्क कङ्काल को देखकर महर्षि भृगु घबड़ाकर

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

उठ खड़े हुए। उन्होंने तर्क किया कि क्या मेरे पुत्र की अकालमृत्यु हो गई? क्रूर काल ने मेरे पुत्र को अकाल में ही मार डाला? ऐसा कुतर्क कर वह काल को शाप देने के लिए उद्यत हुए।

अकाल एव मत्पुत्रो नीतः किमिति कोपितः।
कालाय शापमुत्स्रष्टुं भगवानुपचक्रमे।

योगवासिष्ठ स्थिति-प्र० सर्ग १०, श्लोक १६

मुनि को शाप देने के लिए उद्यत देखकर संसार को कवलित करने वाला काल आधिभौतिक शरीर धारण कर मुनि के सम्मुख उपस्थित हुआ। उसने कहा—"भगवन्! आप परमतपस्वी ब्राह्मण हैं। हम नियम का पालन करने वाले हैं। आपको पूज्य समझकर आपके पास आये हैं, आपके शाप के भय से नहीं। मैं प्रलयकाल की प्रचण्ड अग्नि में नहीं जला, तो मुझे आप क्या जला पायेंगे। हमने विशाल ब्रह्माण्ड को निगल लिया है, करोड़ों रुद्रों को कवलित कर लिया है, सहस्रों विष्णुओं को ग्रस डाला है, तो हम किसका विनाश नहीं कर सकते"।

मा तपः क्षपयाबुद्धे कल्पकालमहानलैः।
यो न दग्धोऽस्मि मे तस्य किं त्वं शापेन धक्ष्यसि।
संसरावलयो ग्रस्ताः निगीर्णा रुद्रकोटयः।
भुक्तानि विष्णुवृन्दानि क्व न शक्ता वयं मुने॥

योगवासिष्ट स्थिति-प्र० सर्ग १०, श्लोक २६, २७

"जैसे अग्नि की ज्वाला अपने आप ऊपर की ओर उठती है, जैसे जल निम्न स्थल की ओर बहता है, वैसे ही काल समस्त सृष्टिप्रपञ्च की ओर जाता है। अतः आप व्याकुल होकर मुझ पर क्रोध न करें। आपत्तियाँ समय-समय पर आती हैं, और विवेकी जन उनका सामना करते हैं, घबड़ाते नहीं हैं। आपकी वह ज्ञानमयी दृष्टि कहाँ है? वह महत्त्व कहाँ है? वह धैर्य कहाँ है? आप प्राज्ञ पुरुषों के मार्ग से परिचित हैं, फिर क्यों अज्ञानी जन के समान मोह में पड़े हैं?"

"मुनिवर! प्राणियों के शरीर दो प्रकार के होते हैं—(१) स्थूल-शरीर और (२) सूक्ष्म—मानसशरीर। स्थूल शरीर अत्यन्त जड़ तथा विनाशी है, जब कि सूक्ष्म मानसशरीर मोक्ष तक स्थायीरूप में रहने वाला है, जैसे योग्य सारथि रथ को चलाता है, वैसे सूक्ष्म मानसशरीर स्थूल पाञ्चभौतिक शरीर को चलाता है। वस्तुतः चित्त ही पुरुष है। वह विद्यमान शरीर का विनाश करता है और अविद्यमान शरीर का सङ्कल्प द्वारा निर्माण करता है"।

"आपके पुत्र श्रीशुक्र ने अपने स्थूल-शरीर को यहीं छोड़कर मानस शरीर से स्वर्गलोक में गमन किया और वहाँ मन्दराचल के निकुञ्जों में, पारिजात वृक्षों के अन्तस्तल, में नन्दन-वन के उद्यानों में और लोकपालों के नगरों में युग-युगान्त तक स्वर्गीय सुखों का भोग किया और विश्वाची अप्सरा के साथ स्वर्गीय जीवन व्यतीत किया। पुण्य के क्षीण हो जाने से वह पुनः मर्त्यलोक में आया। उसने दीर्घकाल तक

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

विविध योनियों में भ्रमण किया और इस समय ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर समङ्गा नदी के तट पर तपस्या कर रहा है। वह 'वासुदेव' नाम से प्रख्यात है।

वह जटा धारण कर, रुद्राक्ष की माला का कंकड पहनकर जितेन्द्रिय हो आठ सौ वर्षों से समङ्गा नदी के तट पर घोर तप कर रहा है। आप अपने पुत्र के मनोभ्रम को, जो स्वप्नतुल्य है, यदि देखना चाहते हों, तो योगदृष्टि से देख लीजिए।"

समदर्शी काल के कहने पर महर्षि भृगु ने योगदृष्टि से अपने पुत्र के चरित्र का ध्यान किया, क्षणमात्र में उन्हें सब कुछ विदित हो गया। तब उन्होंने महाकाल से कहा—"भगवन्! हम लोगों का चित्त रागादि दोषों से मलिन है। अतः हम अज्ञानी हैं, आपकी बुद्धि निर्मल है और आप त्रिकालज्ञ हैं। मानस-वृत्तियाँ इन्द्रजाल के सदृश माया और मोह की सृष्टि करती हैं, जिसे आप जानते हैं। इस महाकल्प में मेरे पुत्र की मृत्यु नहीं होनी थी, अतः उसे मृत देखकर मुझे व्यामोह हुआ। मैंने तदनुसार आप पर क्रोध किया, जो मुझे नहीं करना चाहिए था; क्योंकि आप विधान के अनुसार कार्य करते हैं। आप रागद्वेष से रहित हैं। अतः मैं अपराधी और दण्डार्ह हो गया हूँ।"

मत्पुत्रस्यास्य भगवन् मृत्युः किल न विद्यते।
तेनेमं मृतमालोक्य जातः सम्भ्रमवानहम्॥
केवलं तावकीं चिन्तामनालोक्य यदा वयम्।
भगवन् भवते क्रुद्धा याताः स्मस्तेन बाध्यताम्॥

योगवासिष्ठ स्थिति, प्र० सर्ग ११, श्लोक ११-१६

संसार-प्रवृत्तिदर्शन—

काल ने कहा—"ब्रह्मन्! आपने ठीक ही कहा है कि मन ही शरीर है। जैसे कुम्भकार घट का निर्माण करता है, वैसे ही मन सङ्कल्प से देह का निर्माण करता है। जैसे बालक अविद्यमान वेताल की कल्पना करता है, वैसे मन अनिर्मित आकार का क्षणभर में निर्माण कर देता है। जैसे अज्ञानवश आकाश में दो चन्द्रमा दिखाई पड़ते हैं, वैसे ही चित्त की विविध वासनाओं से इस जगत् का निर्माण हुआ है। नाना प्रकार की भावनाओं एवं कल्पनाओं से मन सांसारिक सुख-दुःख का भोग—जो कल्पित है, करता है।

मन की वास्तविक स्थिति एवं स्वरूप का जिन्हें ज्ञान हो गया है, उनका चित्त शान्त, सनातन ब्रह्म के रूप में अनुभूत होता है।

मननं कृत्रिमं रूपं ममैतन्न यतोऽस्म्यहम्।
इति तत्त्यागतः शान्तं चेतो ब्रह्म सनातनम्॥

योगवासिष्ठ स्थिति-प्र० सर्ग ११, श्लो० २७

जैसे समुद्र में छोटी-बड़ी तरङ्गें उठती हैं और फिर उसमें विलीन ही जाती हैं, वे समुद्र से भिन्न नहीं हैं, केवल जलमय हैं, समुद्र ही हैं, वैसे ही इस सर्वव्यापक, विशुद्ध, निर्विकार ब्रह्म में विविध व्यापारों से युक्त यह चञ्चल जगत् पृथक् स्थित-सा प्रतीत

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

होता है, जबकि वह ब्रह्म से पृथक् नहीं है। ब्रह्म से भिन्न जगत् नाम की कोई कल्पना न कभी थी, न है और न होगी। ब्रह्म और जगत् में लेशमात्र भी भेद नहीं है। यह जगत् ब्रह्ममय है। ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

कल्पनान्यज्जगन्नाम्नी नासीदस्ति भविष्यति।
ब्रह्मणो जगतो भेदो मनागपि न विद्यते॥
सम्पूर्णं खल्विदं ब्रह्म जगद् ब्रह्मैव केवलम्।
इति भावय यत्नेन ह्यन्यत् सर्वं परित्यज॥

योगवासिष्ठ स्थिति-प्र० सर्ग ११, श्लो० ४५, ४६

जैसे बीज में शाखा, पत्र, फल, लता, कली आदि स्थित हैं, वैसे ही ब्रह्म में यह सब आत्म-जगत् स्थित है। जैसे रेशम का कीड़ा तन्तुजाल की रचना कर स्वयं बन्धन में पड़ जाता है, वैसे ही यह आत्मा स्वेच्छया अपने स्वरूप को विस्मृत कर कठिन बन्धन की सृष्टि करता है। जैसे हस्ती अपने बन्धन-स्तम्भ से छुटकारा पाता है, वैसे ही यह आत्मा स्वेच्छया अपने स्वरूप का अनुभव कर संसार से मुक्त हो जाता है।

स्वेच्छयात्माऽऽत्मनो ब्रह्मन् भावयित्वा स्वकं वपुः।
संसारान्मोक्षमाप्नोति स्वालोकादिव वारणः॥

योगवासिष्ठ स्थिति-प्र० सर्ग ११, श्लो० ५८

जैसे ऋतु के अनुसार वृक्ष अपने स्वरूप को बना लेता है, वैसे ही जो शक्ति उदित होती है, आत्मा शीघ्र तन्मय हो जाता है। बन्ध और मोक्ष की कल्पना अज्ञ पुरुषों की दृष्टि से है। वस्तुतः न मोक्ष है और न बन्ध। जीव का न तो मोक्ष होता है और न बन्ध। न जाने बन्ध और मोक्ष कहाँ से आ गए? बन्ध-मोक्ष की प्रतीति भ्रम से होती है। नित्य-शुद्ध आत्मा अनित्य मायिक भावों से तिरोहित होकर जगत् का व्यवहार-सा करने लगता है। जब चित्त की कल्पना हुई, तब उसने आत्मा को वैसे अपने धर्मों से युक्त कर दिया, जैसे रेशम के कीड़े को रेशम के तन्तु लपेट लेते हैं। इस परमात्मा से विकल्पित आकारवाली करोड़ों मानसिक शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं। जैसे समुद्र से उत्पन्न एवं समुद्र में ही विलीन तरङ्गें समुद्र से पृथक्-सी प्रतीत होती हैं, जैसे चन्द्रमा से आविर्भूत किरणें चन्द्रमा से पृथक्-सी प्रतीत होती हैं, वैसे ही मन की शक्तिरूप सृष्टियाँ परमात्मा से उत्पन्न हैं और उसमें स्थित हैं, तथापि उससे भिन्न प्रतीत होती हैं। इस स्पन्दमय विशाल परमात्मारूप महासागर में ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रस्वरूप स्थिर-जीव प्रतीत होते हैं। कुछ पुरुषत्व को और कुछ देवत्व को प्राप्त हैं। बहुत से जीव जल-बुद्बुद के समान अल्पकाल के लिए स्फुरित होते हैं, जैसे कृमि, कीट, पतङ्ग, सर्प, गो, अजगर आदि। मृग, गृध्र, शृगाल आदि रूपवाली जीव-संवित् कुछ समय के लिए आविर्भूत होती है। इन जीव-संविदों में कुछ विशाल आकार की तथा कुछ लघु

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

आकार की होती हैं, जिनमें कुछ दीर्घकाल तक जीवित रहती हैं और कुछ अल्प-काल तक।

न मोक्षो मोक्ष ईशस्य न बन्धो बन्ध आत्मनः।
बन्धमोक्षदृशौ लोके न जाने प्रोत्थिते कुतः॥
यदैव चित्तं कलितं किलानेनाकलात्मना।
कोशकारवदात्मायमनेनाऽवलितस्तदा॥
अन्योन्यरूपास्त्वत्यन्तं विकल्पितशरीरकाः।
मनः शक्तय एतस्मादिमा निर्यान्ति कोटयः॥
अस्मिन् स्पन्दमये स्फारे परमात्ममहाम्बुधौ।
काश्चित् स्थिरा ब्रह्मविष्णू काश्चिद् रुद्रत्वमागता॥
काश्चित् पुरुषतां प्राप्ताः काश्चिद् देवत्वमागताः।
कृमिकीटपतङ्गाहिगोमशाऽजगरादिकाः॥
काश्चित्तस्मिन् महाम्भोधौ स्फुरन्त्येतेऽम्वुबिन्दुवत्।
सुदीर्घजीविताः काश्चित् काश्चिदत्यल्पजीविताः॥
अतुच्छकलनाः काश्चित् काश्चित्तुच्छशरीरकाः॥

योगवासिष्ठ स्थिति-प्र० सर्ग ११, श्लो० ६२, ६४, ६५, ६६, ६८-७१

काल ने फिर कहा—"ब्रह्मर्षे! जिस पुरुष ने मन पर विजय प्राप्त नहीं की है, वह मन के मोहजाल में अवश्य ही फँस जाता है। जैसे कुहरा आकाश को आच्छन्न कर लेता हैं, वैसे मन आत्मतत्त्व को आवृत कर विशेष शक्ति से इस विशाल जगत् की सृष्टि करता है। यह जो पाञ्चभौतिक मांसपिण्डमय शरीर है, वह मन की कल्पना है, वास्तविक नहीं है। मुनिवर! आपके पुत्र ने मन की कल्पना के अनुसार फल पाया। उसमें हमारा लेशमात्र अपराध नहीं है। मनुष्य अपनी वासना के अनुसार जो-जो कर्म करता है, तदनुसार वह फल प्राप्त करता है, अधिक क्या कहें, वहाँ चलें, जहाँ आपका पुत्र तपस्या कर रहा है"।

योऽयं मांसास्थिसंघातो दृश्यते पाञ्चभौतिकः।
मनोविकल्पनं विद्धि न देहः परमार्थतः॥
मनःशरीरेण तव पुत्रोऽयं कृतवान् मुने।
तदेव प्राप्तवानाशु वयं नात्रापराधिनः॥
बहुनाऽत्र किमुक्तेन शब्दसंग्रहकारिणा।
उत्तिष्ठ भगवन् यामो यत्र ते तनयः स्थितः॥

योगवासिष्ठ स्थिति-प्र० सर्ग १३, श्लो० ९, १०, १४

काल और भृगु का समङ्गा-तट पर जाना—

महाकाल और महर्षि भृगु दोनों मन्दराचल की कन्दरा से समङ्गा नदी के तट पर जाने को उद्यत हुए। वहाँ पहुँचने पर महर्षि भृगु ने अपने पुत्र को देखा।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

उसका शरीर परिवर्तित था। उसकी आकृति शान्त थी और शरीर की कान्ति कमनीय थी। समाधिस्थ होने के कारण वह निश्चेष्ट था। वह आत्मतत्त्व में विश्रान्त था।

उसे देखकर काल ने गम्भीर स्वर में भृगु जी से कहा—"यही आपका पुत्र है"। गम्भीर स्वर से "जागो" ऐसा कहने पर वह धीरे-धीरे जग गया। उसने आँखें खोलीं और सूर्य एवं चन्द्र के समान दीप्यमान दो महापुरुषों को देखा। आसन से उठकर उन्होंने उन दोनों को प्रणाम किया और यथोचित व्यवहार करने के अनन्तर मधुर वाणी में कहा—"भगवन्! आप महानुभावों के दर्शन से मैं परमसुख को प्राप्त हुआ हूँ। जो मन का मोह शास्त्र, तपस्या, ज्ञान और विद्या से नष्ट नहीं हुआ था, वह मोह आप लोगों के दर्शन से नष्ट हो गया। जो दिव्य सुख आप लोगों के दर्शन से प्राप्त हो रहा है, वह सुख अमृत की वर्षा से भी प्राप्त नहीं हो सकता। इस देश को अपने चरणों से पवित्र करने वाले आप महानुभाव कौन हैं" ?

"यो न शास्त्रेण तपसा न ज्ञानेनापि विद्यया।
विनष्टो मे मनोमोहः क्षीणोऽसौ दर्शनेन वाम्॥
न तथा सुखयन्त्यन्तर्निर्मलामृतवृष्टयः।
यथा प्रहर्षयन्त्येताः महतामेव दृष्टयः॥
चरणाभ्यामिमं देशं भवन्तौ भूरितेजसौ।
कौ पवित्रितवन्तौ नः शशाङ्कार्काविवाम्बरम्"॥

योगवासिष्ठ स्थिति-प्र० सर्ग १४, श्लो० ३१-३३

शुक्र के वैसा कहने पर भृगु जी ने कहा—"तुम अपने पूर्ववृत्त को स्मरण करो; क्योंकि तुम ज्ञानी हो"।

शुक्र का जन्मान्तर-स्मरण—

इस प्रकार प्रबोधित होने पर शुक्र ने ध्यानस्थ हो अपने पूर्वजन्मों का स्मरण किया। अत्यन्त प्रसन्न होकर उन्होंने कहा—"इस विशाल संसारचक्र को चलाने वाले परमात्मा की नियति का किसी का ज्ञान नहीं है। मेरे अनन्त जन्म हैं और मैंने दुर्दशाओं के फलस्वरूप अनेक प्रकार के दुःख, शोक, मोह, भय आदि भोगे हैं। मैंने स्वर्ग में दिव्य सुखों को भोगा है। ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसे मैंने न भोगा हो। ऐसी कोई क्रिया नहीं है, जिसे मैंने न किया हो। मैंने सब कुछ देखा है और भोगा है। मुझे अब तत्त्व का साक्षात्कार हो गया है और जो वस्तु ज्ञातव्य है, द्रष्टव्य है, उसे मैंने जान लिया है और देख लिया है। मेरे सभी भ्रम दूर हो गए हैं। पिताजी! अब हम लोग मन्दराचल पर चलें। मैं शुष्क वनलता के समान अपने पूर्व-तनु को देखना चाहता हूँ"।

"न तदस्ति न यद् भुक्तं न तदस्ति न यत् कृतम्।
न तदस्ति न यद् दृष्टमिष्टानिष्टासु वृत्तिषु॥

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

ज्ञातं ज्ञातव्यमधुना दृष्टं द्रष्टव्यमक्षतम्।
विश्रान्तोऽथ चिरं श्रान्तो गतो मे सकलो भ्रमः ॥"

योगवासिष्ठ, स्थिति-प्र० सर्ग १४, श्लो० ४२-४३

वे तीनों महानुभाव समङ्गा-तट से मन्दराचल की ओर चले और क्षणभर में मन्दराचल की कन्दरा में महर्षि भृगु के आश्रम पर पहुँच गए। वहाँ शुक्र ने अपने पूर्वशरीर को देखा जो सूख गया था और हरे पत्तों से ढका था। शुक्र ने कहा—"तात ! मेरा यह कृश और शुष्क शरीर है, जिसका आपने लालन-पालन किया था। स्नेहमयी दादी ने इस शरीर पर कर्पूर, अगरु और चन्दनादि का लेप बहुत दिनों तक किया था। इस शरीर से मैंने नित्य भोगों को भोगा है। देवाङ्गनायें इस शरीर का आदर करती थीं। वही शरीर आज कीटाणुओं से जर्जर होकर कङ्काल हो गया है। हे शरीर ! आज तुम कितना विकृत और भयावह हो गये हो ? जिस शरीर पर दिव्य हार चमकते थे, उस पर आज पिपीलिकायें एवं अन्य कीटाणु लोट रहे हैं। वह दिव्य शरीर आज शव हो गया है"। इस प्रकार श्रीशुक्र ने विलाप किया।

यह शरीर चित्तरूपी वेताल से मुक्त है, अतः चिन्तारहित है। इसे किसी प्रकार का भय नहीं हैं। चित्त के शान्त हो जाने पर शरीर को जो आनन्द मिलता है, वह समस्त जगत् के राज्य-सुख से भी नहीं प्राप्त हो सकता। वे शान्तचित्त महाबुद्धिमान् महानुभाव आनन्द की चरम सीमा का अनुभव करते हैं, जिन्होंने अपने मन का विनाश कर दिया है।

संशान्ते चित्तवेताले यामानन्दकलां तनुः।
याति तामपि राज्येन जागतेन न गच्छति ॥"
त एव सुखसम्भोगसीमान्तं समुपागताः।
महाधियः शान्तधियो ये याता विमनस्कताम् ॥

योगवासिष्ठ स्थिति-प्र० सर्ग १५, श्लो० २०, २५

श्रीरामचन्द्र जी ने पूछा—"भगवन् ! शुक्राचार्य ने अनेक जन्मों में अनेक शरीर धारण किए थे। उन्हें महर्षि भृगु से उत्पन्न शरीर पर इतना व्यामोह क्यों हुआ ?"

वसिष्ठ जी ने उत्तर दिया कि "यतः भृगु से उत्पादित शरीर प्रथम था और उसके ब्राह्मणोचित गर्भाधान आदि संस्कार विधिपूर्वक किए गए थे, अतः उस शरीर में भार्गव को विशेष आसक्ति थी। यद्यपि शुक्राचार्य वीत-राग थे, उन्हें किसी प्रकार की अभिलाषा नहीं थी, तथापि उन्होंने शरीर के लिए विलाप किया; क्योंकि देह का ऐसा ही स्वभाव है। विज्ञ और अज्ञ दोनों समानरूप से लोकव्यवहार करते हैं; परन्तु उनकी वासनाओं में भेद होता है। एक आसक्तिपूर्वक व्यवहार करता है और दूसरा अनासक्ति भाव से"।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

वीतरागोऽप्यनिच्छोऽपि समङ्गाविप्ररूपवान् ।
स शुशोच तनुं शुक्रः स्वभावो ह्येष देहजः ॥
व्यवहारे यथैवाज्ञस्तथैवाखिलपण्डितः ।
वासनामात्रभेदोऽत्र कारणं बन्धमोक्षदम् ॥

योगवासिष्ठ स्थिति-प्र० सर्ग १५, श्लो० ३४, ३७

पुनर्जीवन—

महाकाल ने भार्गव से कहा—"भार्गव आप इस शरीर का त्याग करें और राजा जैसे नगरी में प्रवेश करता है, वैसे अपने पूर्व तनु में प्रवेश करें। उस पूर्व शरीर से तप करके आप दैत्यों का आचार्यत्व करेंगे। महाकल्प के अन्त में उस शरीर का त्याग करेंगे; यतः उसके बाद आपको पुनर्जन्म नहीं लेना है"।

ऐसा कहकर भगवान् काल अन्तर्हित हो गए और वे दोनों पिता-पुत्र स्नेह-वश आँसू बहाते रहे। काल के चले जाने पर श्रीशुक्र ने नियति के विधान का विचार कर अपने शुष्क तनु में प्रवेश किया, महामुनि भृगु ने कमण्डलु के जल से उस शरीर का आप्यायन बढ़ाने वाला अभिषेक किया। कुछ ही क्षणों में वह शरीर दिव्यरूप में परिणत हो गया और शुक्राचार्य उठकर खड़े हो गए। उन्होंने नामोच्चारण-पूर्वक अपने पूज्य पिता जी का अभिवादन किया। मुनि भृगु जी ने पुत्र के सुन्दर शरीर को देखकर स्नेहवश आलिङ्गन किया। वे दोनों बड़े आनन्द से पुनः साथ रहने लगे। सदाचार और लौकिक-व्यवहार का आदर करने वाले पिता-पुत्र ने सभङ्गा नदी के तटवर्ती ब्राह्मणशरीर का दाह कर दिया। इस प्रकार उस पवित्र वन में वे दोनों पिता-पुत्र सानन्द रहने लगे, जैसे आकाश में चन्द्र और सूर्य रहते हैं। तत्त्वसाक्षात्कार कर लेने के कारण वे दोनों जीवन्मुक्त थे। कालान्तर में समय आने पर श्रीशुक्राचार्य ने दैत्यों का आचार्यत्व तथा ग्रहत्व स्वीकार किया। भृगु जी भी निरामय आत्मतत्व में स्थित हो गए।

कालकारणसंशुष्कां भाविपुष्पशुभोदयाम् ।
विवेशतां तनुं बालां सुलतामिव माधवः ॥
तस्यां प्रविष्टजीवायां पुत्रतन्वां महामुनिः ।
चकाराप्यायनं मन्त्रैः सकमण्डलुवारिभिः ॥
एवं तौ कानने तस्मिन् पावनौ भृगुभार्गवौ ।
संस्थितौ तापसौ दीप्तौ दिवीव शशिभास्करौ ॥
अथासुरगुरुत्वं स शुक्रः कालेन लब्धवान् ।
भृगुरप्यात्मनो योग्ये पदेऽतिष्ठदनामये ॥

योगवासिष्ठ स्थिति-प्र० सर्ग १६, श्लो० ९, ११, २३, २५

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

मनोरूप-वर्णन—

दृढ़ निश्चय वाला चित्त जिस वस्तु की भावना करता है, उसीके आकार का हो जाता है, जैसे अग्नि के सम्बन्ध से लोहे का गोला आग बन जाता है। भाव, अभाव, ग्रहण-त्याग आदि प्रवृत्तियाँ चेतन में कल्पित हैं। वे न सत्य हैं और न असत्य। मन की चपलता के कारण वे प्रतीयमान होती हैं। मन भ्रान्ति (मोह) का कर्त्ता है और जगत् का कारण है। मलिन मन ही समष्टि-व्यष्टिरूप से इस जगत् का विस्तार करता है। मन ही पुरुष है। उसके जीत लेने पर संसार की सब विभूतियाँ प्राप्त हो जाती हैं। मन के ही कारण शुक्राचार्य ने सैकड़ों शरीर धारण किए। मन से प्रयत्न करने पर मोक्ष तक प्राप्त हो जाता है।

दृढनिश्चयवच्चेतो यद्भावयति भूरिशः।
तत्तां यात्यनलश्लेषादयःपिण्डोऽग्नितामिव ॥
मनो हि पुरुषो नाम तन्नियोज्य शुभे पथि।
तज्जयैकान्तसाध्या हि सर्वा जगति भूतयः॥

योगवासिष्ठ, स्थिति-प्र० सर्ग २० श्लो० २, ५

जैसे मणियों का आकर सागर है, वैसे ही सब प्रकार की रीतियों का आकर मन है। मन ही के कारण निम्ब में कटुता की और इक्षु में मधुरता की अनुभूति होती है। चन्द्रलोक में रहने वाले लोगों को शीत और सूर्यलोक में रहने वाले लोगों को औष्ण्य की प्रतीति नहीं होती। उनको वैसा अभ्यास है। अतः मन को शुभ कार्यों में लगाना चाहिए, जिससे कल्याण हो।

———

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

७ दाशूरोपाख्यान

इस भूमण्डल में मगध-नामक एक विख्यात जनपद है। वहाँ अतिरमणीय कदम्ब वन है, जिसमें परम धार्मिक दाशूर-नामक मुनि वास करते थे। उनके पिता शरलोम विख्यात महात्मा और तपस्वी थे। यथासमय उनका स्वर्गवास हो गया और बालक दाशूर पिता जी के वियोग में विलाप करने लगा।

वहाँ की वनदेवता ने कृपा कर बालक को आश्वस्त किया और कहा—"ऋषि-पुत्र! आप अज्ञ के समान विलाप क्यों कर रहे हैं? क्या आप नहीं जानते कि संसार की गति ऐसी ही है? लोग जन्म लेते हैं और मरते हैं। कोई भी अमर नहीं है। ब्रह्मा आदि श्रेष्ठ देवताओं का भी समय निर्धारित है। आप वृथा शोक न करें"।

तदनुसार दाशूर ने पिता जी की और्ध्वदैहिक क्रियायें सम्पन्न कीं और पश्चात् तपस्या में लीन हो गए। उनको समस्त भूमण्डल अशुद्ध प्रतीत होता था। वृक्ष को शुद्ध मानकर वह उसी पर निवास करना चाहते थे। एतदर्थ उन्होंने अग्नि-देव की उपासना की। अपने शरीर का मांस काट-काट कर अग्नि में डालने लगे। यथासमय प्रसन्न होकर अग्निदेव प्रकट हुए और बोले—"कुमार! तुम अपना अभीप्सित वर माँगो?"

ऋषिकुमार ने विनीत भाव, से अग्निदेव के चरणों में पुष्पाञ्जलि समर्पित की और नमस्कार किया। उन्होंने पवित्रता की दृष्टि से वृक्ष की शाखा पर वास करने की इच्छा प्रकट की।

'तथास्तु' कहकर अग्निदेव अपने लोक में चले गए।

कुमार दाशूर कदम्ब-वृक्ष की शाखा पर वास करने लगे। उन्होंने घोर तप किया, लगभग दश वर्षों तक मानस-यज्ञ-क्रियायें सम्पन्न कीं।

एक समय उन्होंने वृक्ष की शाखा के अग्रभाग में खड़ी पुष्पवस्त्रों, से आवृत, विशालाक्षी वनदेवता को देखा और पूछा—"हे विशालाक्षि! तुम कौन हो? वृक्ष की शाखा को पकड़कर क्यों खड़ी हो?"

वनदेवी ने कहा—"ऋषिकुमार भूमण्डल में जितनी दुर्लभ वस्तुयें हैं, वे सब महात्माओं की कृपा से उपलब्ध हो जाती हैं? मैं इस कदम्ब वन की देवी हूँ। नन्दन-वन में चैत्रशुक्ल त्रयोदशी के दिन वनदेवियों का सम्मेलन हुआ था, जिसमें नृत्य, गान, वाद्य आदि का सुन्दर आयोजन किया गया था। उसमें सब वनदेवियाँ अपने-अपने पुत्रों के साथ सम्मिलित हुई थीं, मैं अकेली पुत्रविहीना थी, जिसका मुझे बड़ा क्लेश है। यदि मुझे पुत्ररत्न की प्राप्ति नहीं हुई, तो मैं अग्नि में जलकर भस्म हो जाऊँगी"।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

उसके ऐसा कहने पर मुनि ने हँसकर उसे एक पुष्प दिया और कहा—"शीघ्र तुम्हें एक पुत्ररत्न की प्राप्ति होगी"। वह मुनि की सेवा करना चाहती थी; परन्तु मुनि ने सेवा स्वीकार नहीं की और उसे विदा कर दिया।

वह अपने स्थान पर चली गई। यथासमय उसे पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। जब वह बालक बारह वर्ष का हुआ, तब वह उसे लेकर मुनि के पास आई और बोली—"मुनिराज! यह हम लोगों का पुत्र है। मैंने इसे शिक्षित एवं विविध कलाओं में दक्ष बना दिया है। इसे ब्रह्मविद्या का ज्ञान नहीं है, कृपया आप ब्रह्म का उपदेश करें, जिससे यह सांसारिक विविध दुःखों से मुक्त हो जाय"।

मुनि ने कहा—"ठीक है, तुम बालक को यहाँ रखकर चली जाओ"। मुनि ने उस बालक को विविध युक्तियों से चिरकाल तक अपरोक्ष आत्मज्ञान का उपदेश किया। उन्होंने आख्यानों, उपाख्यानों, दृष्टान्तों, इतिहासवृत्तों तथा वेद-वेदान्त के सिद्धान्तों से बालक को अवगत कराया और अनुभूत तत्त्वों एवं रहस्यों का उपदेश किया।

सङ्कल्प का त्याग —

मुनिवर ने कहा—"महाकाश से सङ्कल्प उत्पन्न हुआ है, जो कि प्रवृत्ति-वासना से आविर्भूत होता है तथा निवृत्ति-वासना से तिरोभूत हो जाता है। यह विशाल जगत् उसका परिणाम है। सङ्कल्प से जगत् उत्पन्न होता है और उसके अभाव से विनष्ट हो जाता है। उसने शून्य आकाश, में त्रिलोकी की रचना की है, जहाँ सूर्य आदि के प्रकाश से युक्त चौदह भुवन हैं, जहाँ वनों, उपवनों से युक्त उद्यानमालाएँ हैं, जहाँ सह्य, मेरु और मन्दर क्रीडाशैल हैं, जहाँ उष्ण और शीतलकान्ति वाले सूर्य और चन्द्र दीपक हैं, जहाँ विविध नदियाँ बह रही हैं, जहाँ इक्षु, क्षीर आदि के सात महार्णव हैं। जहाँ सुर, मानव और दानव वास करते हैं, जहाँ दीर्घजीवी, मध्यजीवी और अल्पजीवी निवास करते हैं। जैसे सागर में तरङ्ग उत्पन्न और विलीन होते हैं, वैसे ही देहरूपी घर में सङ्कल्प की वृत्तियाँ उत्पन्न और विनष्ट होती हैं"।

जैसे बालक यक्ष की कल्पना से दुःख उठाता है, वैसे ही सङ्कल्प विविध दुःखों का जन्मदाता है, उससे आनन्द की प्राप्ति नहीं होती। उस सङ्कल्प के सत्त्व, रज और तम, ये तीन शरीर हैं, जो जगत् के कारण हैं। तम से कृमि, कीट, स्थावर, जङ्गम आदि की उत्पत्ति होती है। सत्त्वरूप सङ्कल्प से स्वराज्य की प्राप्ति होती है और रज से मनुष्योचित व्यवहार प्रवृत्त होते हैं। स्त्री, पुत्र, मित्र, भृत्यादि व्यवहार-परम्परा उससे संचालित होती है। उक्त तीन प्रकार के सङ्कल्प का उच्छेद हो जाने पर मनुष्य मोक्ष का अधिकारी होता है।

मनुष्य सहस्रों वर्षों तक तप करे अथवा अपने शरीर को शिला पर पटक कर चूर्ण कर डाले, बडवानल के मुख में प्रविष्ट हो जाय अथवा विशाल गम्भीर गर्त में गिर पड़े, खड्गधारा के वेग में प्रविष्ट हो जाय अथवा स्वर्लोक, मर्त्यलोक, पाताललोक

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

में से किसी में वास करे; परन्तु सङ्कल्प के उपशम (शान्ति) के अतिरिक्त उद्धार का अन्य कोई मार्ग नहीं है। अनन्तसत्तासामान्यरूप चित्-तत्त्व की जो चेत्योन्मुखता है वह सङ्कल्परूपी वृक्ष का अङ्कुर है। सङ्कल्प से सङ्कल्प स्वयं उत्पन्न होता है और उससे दुःखों की वृद्धि होती है, उससे सुख कदापि नहीं होता। यह जगत् सङ्कल्परूप है, जैसे समुद्र जलरूप है। सांसारिक दुःखों का मूल कारण सङ्कल्प है। सङ्कल्प से सङ्कल्प का तथा मन से मन का विनाश कर आत्मनिष्ठ हो जाना चाहिए। सङ्कल्प के शान्त हो जाने पर सभी दुःख निवृत्त (शान्त) हो जाते हैं।

"सर्वा दृष्टीः परित्यज्य नियम्य मनसा मनः।
सबाह्याभ्यन्तरार्थस्य सङ्कल्पस्य क्षयं कुरु॥
यदि वर्षसहस्राणि तपश्चरसि दारुणम्।
यदि वा विलयात्मानं शिलायां चूर्णयस्यलम्॥
यदि वाग्निं प्रविशसि वडवाग्निमथापि वा।
यदि वा पतसि गर्ते खड्गधाराजवे तथा॥
हरो यद्युपदेष्टा ते हरिः कमलजोऽपि वा।
पातालस्थस्य भूस्थस्य स्वर्गस्थस्यापि तत्तव॥
नान्यः कश्चिदुपायोऽस्ति सङ्कल्पोपशमादृते।
संकल्प्यते यथा यद्यत्तत्तथा भवति क्षणात्॥
मा किञ्चिदपि तत्त्वज्ञ सङ्कल्पय कदाचन।
निःसङ्कल्पो यथाप्राप्तव्यवहारपरो भव॥
चिदचेत्योन्मुखत्वं हि याति सङ्कल्पसंक्षये"॥

योगवासिष्ठ, स्थिति-प्र० सर्ग ५३, श्लो० ३८-४२, ४६, ४७

———

फा० — ९

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

८. राजा जनक का आख्यान

विदेह देश के राजा जनक अत्यन्त विचारशील और पराक्रमी थे। वे अपने उपवन में अनुचरों के साथ भ्रमण कर रहे थे। उन्होंने पर्वतों की गुफाओं में निवास करने वाले सिद्ध-महात्माओं के निम्नाङ्कित गीत सुने—

(क) दृश्य और द्रष्टा का सम्बन्ध होने से विषयाकार वृत्ति में प्रकाशमान जो आनन्द है, तद्रूप आत्मतत्त्व के परिशोधन द्वारा निरतिशय भूमारूप से आविर्भूत आनन्द का हम निरन्तर अनुभव करते हैं। वही ब्रह्मानन्द अविद्या द्वारा विषयाकार वृत्ति के परिच्छेद से विषयानन्दरूप में विवर्त्त हो जाता है।

(ख) द्रष्टा, दर्शन और दृश्यरूप त्रिपुटी का वासना के साथ त्याग कर चाक्षुष-मानुष-वृत्तियों की उत्पत्ति में साक्षीरूप से भासमान आत्मतत्त्व की हम उपासना करते हैं।

(ग) जिसमें यह सब है, जिससे यह सब है, जिसका यह सब है, जिसके लिए यह सब है, जिसके द्वारा यह सब है, उस परम सत्य की हम उपासना करते हैं।

(घ) हृदय-गुफा में देदीप्यमान ईश्वर का त्याग कर जो अन्य की उपासना करते हैं, वे हस्तगत कौस्तुभमणि का त्याग कर अन्य रत्नों की चाह करते हैं।

(ङ) समस्त आशाओं का त्याग कर हृदय में स्थित ब्रह्म की अनुभूति से जटिल हृदय-ग्रन्थि छिन्न-भिन्न हो जाती है।

(च) समस्त इन्द्रियरूपी सर्पों को विवेकरूपी दण्ड से पुनः-पुनः मारना चाहिए, जैसे इन्द्र वज्र से पर्वतों पर प्रहार करते हैं।

(छ) जो दुर्बुद्ध-पुरुष भोग्य विषयों की नीरसता को जानकर भी उनमें आसक्त रहते हैं, वे नर नहीं पशु हैं।

उक्त सात गीतों को सुनकर राजा जनक अत्यन्त विचारमग्न हो गए। वह अपने भवन के ऊपर एकान्त में जाकर विचार करने लगे कि सिद्धों की उक्तियाँ वास्तव में सत्य प्रतीत होती हैं। हमारा जीवन कितना तुच्छ है, पर हम उसमें आस्था रखते हैं। ऐसी तुच्छ बुद्धि को धिक्कार है। मेरा यह राज्य कितना छोटा है, पर मैं इसीमें सन्तुष्ट हूँ; आगन्तुक भावी दुःखों के प्रतीकार की लेशमात्र भी चेष्टा नहीं करता। यह कितनी अज्ञता है कि मैं आदि और अन्त में अनन्त हूँ; पर मध्य में तुच्छ जीवनवाला हूँ। जैसे बालक चित्राङ्कित चन्द्रमा से प्रकाशादि की आशा रखता;

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

है, वैसे मैं इस देह से आश्वस्त हूँ। यह कैसी विडम्वना है। जैसे अज्ञजन ऐन्द्रजालिक की माया पर मुग्ध हो जाते हैं, वैसे मैं सांसारिक मायाजाल पर मुग्ध हूँ। संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो सत्य, रम्य, उदार एवं वास्तविक हो। सुखप्राप्ति की आशा से धनोपार्जनादि के निमित्त जो आवेश है, वह दुःखदायक है। अतः उससे सुख की आशा व्यर्थ है। शरीर में आत्मा की कल्पना असत् है। अहङ्काररूपी पिशाच के द्वारा आविष्ट हो मनुष्य अज्ञ के समान जीवन व्यतीत करता है।

हमारा आयुष्य क्षण-क्षण में नष्ट हो रहा है; परन्तु हम उस पर कुछ भी विचार नहीं करते। जब शङ्कर और विष्णु-भगवान्-सदृश महादेवों का समय निर्धारित है तब हम दीनजनों की क्या स्थिति है? दिन आते हैं और व्यर्थ ही नष्ट हो जाते हैं। ऐसा कोई दिन नहीं, जिसमें निर्दोष और आनन्ददायक वस्तु प्राप्त हो? प्रतिदिन हम विविध कष्टों को झेलते हैं; पर विरक्ति नहीं होती, यह महान् आश्चर्य है? जिन-जिन उत्तम वस्तुओं की आशा की गई, वे सब नष्ट हो गईं। इस जीवन से क्या आशा की जाय?

मनुष्य बाल्यावस्था में अज्ञानपीडित तथा युवावस्था में कामपीडित रहता है, वार्धक्य में कुटुम्ब के पालन-पोषण की चिन्ता में लगा रहता है। कभी भी उसे अपने उद्धार-मार्ग पर विचार करने का अवसर प्राप्त नहीं होता। राजसूय, अश्वमेधादि यज्ञों के अनुष्ठान से स्वर्गलोक की प्राप्ति अवश्य होती है; परन्तु वह सुख भी नश्वर है, सारहीन है। अतः स्वर्गीय सुख भी धूमिल-सा है। यह शरीर व्याधियों तथा आधियों का मन्दिर है। मनोहरता के ऊपर कुरूपता तथा सुख के ऊपर दुःख विद्यमान है। ऐसी स्थिति में किसका आश्रयण किया जाय? पृथिवी क्षुद्र जन्तुओं से परिपूर्ण है जो जन्म लेते हैं और मरते हैं। उच्चकोटि के महात्मागण दुर्लभ हैं। नील-कमल के समान नेत्रों वाली, अनुरागमयी स्त्रियाँ भी क्षण में विनष्ट हो जाती हैं, अतः वे भी निस्सार हैं।

जिन नेत्रों के उन्मीलन से सृष्टि और निमीलन से प्रलय होता है, वैसे महादेवों के रहते हमारी क्या गणना? असत्यभूत जगत् में ममता की अभिवृद्धि विपत्ति है और उसका परिक्षय सम्पत्ति है। अविचार से परिपूर्ण इस जगत्स्थिति में हेय और उपादेय की कल्पना व्यर्थ है। देश, काल और वस्तु की इयत्ता से परिच्छिन्न आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक कार्यों से संतप्त सुखों में कैसे आस्था की जाय। रौरव-नरक में वास अच्छा है; परन्तु सुख-दुःख के मिश्रण से युक्त सांसारिक जीवन में आस्था रुचिकर नहीं। संसार सब दुःखों की चरम-सीमा है, तब उसके मध्यपाती शरीर से सुख की क्या आशा हो सकती है? सङ्कल्परूपी अङ्कुरों, देह-भुवनरूपी शाखाओं, सुख-दुःखरूपी फलों, लोभरूपी पल्लवों से शोभित इस संसाररूप महावृक्ष का मूलभूत अंकुर मन है। सङ्कल्प ही मन है। उसके उपशम से मन का शोषण होता है और मन के शोषण से संसाररूपी वृक्ष सूख जाता है। मर्कट के समान चपलता

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

प्रदर्शित करने वाले मन की बात परिज्ञात हो गई है। अतः वह निष्प्रभ एवं प्रभाव-हीन हो गया है।

उत्थान और पतन का मूल कारण, आशाजाल में फँसाने वाली, विविध दुःखों की जननी सांसारिक वृत्तियाँ हैं। मैं विश्राम ले रहा हूँ। मेरे शोक का समय बीत गया। अब मैं शोक से मुक्त हूँ। मन-नामक चोर पकड़ लिया गया है। इस शत्रु-तस्कर को मार डालना है, जिससे मैं प्रबुद्ध और प्रसन्न हो सकूँ। यह परिष्कृत मन मुक्तामणि के समान गुणवान् और उपयोगी हो गया है। जैसे तुषारकणिका सूर्य के आतप से तप्त होकर वायु में लीन हो जाती है, वैसे ही यह मन विवेक और ज्ञान से ब्रह्मतत्त्व में लीन हो गया है,। सिद्ध-महात्माओं के उपदेश से मुझे वैराग्य हो गया है और अब मैं परमानन्दरूप आत्मा का अनुगमन कर रहा हूँ। आत्मारूपी मणि को पाकर मैं एकान्त में उसे देखता हूँ और शोक-मोह-चिन्ता से मुक्त हो शान्त एवं सुखी होकर स्थित हूँ।

"आशापाशशतप्रोताः पातोत्पातोपतापदाः।
संसारवृत्तयो भुक्ताः इदानीं विश्रमाम्यहम् ॥
हा हतोऽस्मि विनष्टोऽस्मि मृतोऽस्मीति पुनः पुनः।
शोचितं गतमेवाहमिदानीं नानुरोदिमि ॥
प्रबुद्धोऽस्मि प्रहृष्टोऽस्मि दृष्टश्चोरोऽयमात्मनः।
मनो नाम निहन्म्येनं मनसास्मि चिरं हृतः ॥
एतावन्तमिमं कालं मनो मुक्ताफलं मम।
अविद्धमासीदधुना विद्धं तु गुणमर्हति ॥
मनस्तुषारकणिका विवेकार्कातपेन मे।
चिरप्रवृत्तये नूनमचिराल्लयमेष्यति ॥
विविधैः साधुभिः सिद्धैरहं साधु प्रबोधितः।
आत्मानमनुगच्छामि परमानन्दसाधनम् ॥
आत्मानं मणिमेकान्ते लब्ध्वैवालोकयन् सुखम्।
तिष्ठाम्यस्तमिताधिर्हि शरदीवाचलेऽम्बुदः ॥"

योगवासिष्ठ, उपशम-प्र० सर्ग ९, श्लो० ५८-६४

जनक-निश्चय—

राजा जनक इस प्रकार विचार कर रहे थे कि मुख्य द्वारपाल ने प्रवेश किया और कहा—"देव! आपकी भुजा पर समस्त पृथिवी का भार है। आप उठिए और राजोचित कर्मों एवं व्यवहारों का सम्पादन कीजिए। पुष्प, कर्पूर और कुङ्कुम-मिश्रित जल-कलश को लेकर स्त्रियाँ स्नानभूमि में खड़ी हैं। पूजागृह पुष्पों, विविध पूजन-सामग्रियों एवं पक्वान्नों आदि से सुसज्जित है। दक्षिणार्थी ब्राह्मण लोग स्नान कर पवित्र-हस्त आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। भोजन-भूमि सुन्दर, परिष्कृत,

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

सुसज्जित है, जहाँ कान्तायें हाथ में चँवर लेकर आपकी प्रतीक्षा कर रही हैं। महाराज ! आप शीघ्र उठिए, अपने नित्य कार्यों को सम्पन्न कीजिए। महापुरुष काल का अतिक्रमण नहीं करते"।

प्रतीहार के कहने पर भी राजा जनक उसी प्रकार विचारमग्न रहे। कितना सुखकर यह राज्य है ? क्षणमात्र में नष्ट होने वाले राज्य से मेरा क्या प्रयोजन है ? मिथ्या आडम्बरयुक्त प्रपञ्च का त्याग कर प्रशान्त समुद्र के समान शान्त होकर मैं एकान्त में स्थित हूँ। इन असत् भोग-सामग्रियों से मेरा क्या प्रयोजन है ? मैं सब कुछ त्याग कर सुखपूर्वक स्थित हूँ। मन ! ये भोगसामग्रियाँ नाना प्रकार के कष्टों को देने वाली हैं, अतः उनका त्याग करो। तुम उनसे सुख की आशा रखते हो, यह तुम्हारी भ्रान्ति है, तुम्हें ज्ञात हो जायगा कि वे परम-दुःख को देने वाली है। भोग-भूमि में प्रवृत्त चित्त कभी सन्तुष्ट नहीं होता। शक्ति के कुण्ठित होने पर भी उसे भोग से तृप्ति नहीं होती। मुझे तुच्छ भोगों से कोई प्रयोजन नहीं है; जिससे वास्तविक तृप्ति हो, उसे प्राप्त करना चाहिए।

ऐसा विचार कर राजा जनक चित्त की चञ्चलता के शान्त हो जाने के कारण परमशान्त (मौन) हो गए। प्रतीहार भी राजा के गौरव को देखते हुए कुछ न बोला। राजा जनक ने शान्तचित्त से पुनः विचार किया। इस संसार में ऐसी कौन वस्तु है, जो अविनाशी और उपादेय है। मैं उसे प्राप्त करने की चेष्टा करूँ। मेरी क्रियाशीलता अथवा निष्क्रियता क्या है ? इस जगत् में उत्पन्न ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो विनश्वर न हो। यह असत् शरीर क्रियावान् हो अथवा निष्क्रिय हो, समभाव से स्थित विशुद्ध चिदात्मा पर उसका प्रभाव क्या पड़ सकता है ? मैं अप्राप्त वस्तु की इच्छा नहीं करता और प्राप्त वस्तु का त्याग नहीं करता। मैं स्वस्थ होकर अपने स्वरूप में स्थित हूँ। प्रारब्धप्राप्त जो मेरा है, वह रहे, अन्य कुछ नहीं चाहिए। मेरा न कर्म से प्रयोजन है और न अकर्म से, क्रिया अथवा उसकी उपेक्षा से जो कुछ प्राप्त है, वह सब मायामय है। अतः यह शरीर क्रमप्राप्त क्रिया-कलाप को सम्पन्न करे; क्योंकि शरीर निर्व्यापार होने पर सूख जाता है। मन के निष्काम, सम और रागरहित होने पर शरीर द्वारा क्रियमाण कर्म अथवा अकर्म फलोपधायक नहीं होते। कर्म से उत्पन्न फल-सम्पदा में कर्तृता और भोक्तृता मनःकल्पित है। मन के शान्त हो जाने पर कृत कर्म भी अकृत कर्म के समान हो जाता है।

"नाभिवाञ्छाम्यसम्प्राप्तं सम्प्राप्तं न त्यजाम्यहम्।
स्वस्थ आत्मनि तिष्ठामि यन्ममास्ति तदस्तु मे॥
न ममेह कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन।
क्रिययाऽक्रियया वापि यत्प्राप्तं तदसन्मयम्॥
तदुत्थाय क्रमप्राप्तां कायोऽयं प्रकृतां क्रियाम्।
करोत्वस्पन्दिताङ्गस्तु किमयं साधु शुष्यति॥
स्थिते मनसि निष्कामे समे विगतरञ्जने।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

कायावयवजौ कार्यौ स्पन्दास्पन्दौ फले समौ ॥
कर्मजासु फलश्रीषु मनसा कर्तृभोक्तृते ।
तस्मिन् प्रशान्तिमायाते कृतमप्यकृतं नृणाम् ॥

योगवासिष्ठ, उपशम-प्र० सर्ग १०, श्लो० २४, २५, २७-२६

चित्तानुशासन—

ऐसा विचार कर राजा जनक क्रमप्राप्त कर्म को सम्पन्न करने के लिए उठे। इष्टानिष्ट-भावना को त्याग कर उन्होंने यथाप्राप्त कर्मों को जाग्रत् अवस्था में ही सुषुप्ति के समान सम्पन्न किया; यतः उनमें स्थूल और सूक्ष्म देह का अभिमान नहीं रह गया था। उन्होंने देवता, ब्राह्मण आदि की पूजा, दान आदि सम्पन्न कर दिन का कार्य पूर्ण किया और एकाकी ध्यान-निष्ठ हो रात्रि व्यतीत की। उन्होंने अपने चित्त को समझाया कि "यह संसार तुम्हारे सुख के लिए नहीं है। तुम समभाव से शान्त रहो और तब सुख प्राप्त करोगे। जैसे-जैसे तुम विविध विकल्पों का संकल्प करते रहोगे, वैसे-वैसे यह संसार तुम्हारे चिन्तन से वृद्धि को प्राप्त होता रहेगा। जैसे जलसेक से बढ़कर छोटा वृक्ष सैकड़ों शाखाओं-वाला विशाल वृक्ष हो जाता है, वैसे ही भोग की इच्छा से तुम्हारी मानसिक व्याधियाँ बढ़ती जाती हैं। संसार की सृष्टि विषयों के विकल्प से होती है। अतः उसका त्याग कर उपशम को प्राप्त करना चाहिए। दृश्य-दर्शनलालसा को छोड़कर साक्षिभूत आत्मतत्त्व में विचरण करो। इस दृश्य-जगत् के उदय और अस्त से किञ्चिन्मात्र भी प्रभावित नहीं होना चाहिए; क्योंकि यह सर्वथा असत् है। तुम सद्रूप हो और इस असद्रूप संसार से तुम्हारा कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। मन ! तुम असत् हो और यह जगत् भी असत् है। आकाशपुष्प और वन्ध्यापुत्र का सम्बन्ध कैसा ? इसलिए विक्षेप में आविष्ट अमङ्गलमयी विक्षुब्ध स्थिति का त्यागकर मङ्गलमय आत्मस्वरूप में स्थिति दृढ़ करो। कौतुक के लिए व्यर्थ में अलात-चक्र के ज्वलन के समान अपने को मत जलाओ।

प्रज्ञामाहात्म्य—

राजा जनक इस प्रकार विचार कर समभाव से राज-कार्यों को सम्पन्न करते रहे। उनमें कोई हर्ष-विषाद नहीं था। जैसे आकाश रज के कलङ्क से कलङ्कित नहीं होता, वैसे राजा जनक अहम् (मैं) मम (मेरा) अभिमान से कलङ्कित नहीं हुए। आत्मविवेक के अनुसन्धान से राजा जनक का ब्रह्माकार सम्यग्ज्ञान अत्यन्त निर्मल हो गया। जैसे आकाश में सूर्य उदित होते हैं, वैसे ही उनके हृदयाकाश में चिदात्मा उदित हो गया। फलतः उन्होंने समस्त सांसारिक पदार्थों को आत्मा में अध्यस्त देखा, आत्मरूप देखा। उन्हें हर्ष और विषाद की कोई अनुभूति नहीं। वह सदा समभाव में स्थित रहते थे। ऐसे ज्ञानवृद्ध राजा जनक, जिनको परब्रह्म का पूर्ण-ज्ञान हो गया था, जीवन्मुक्त हो गए। विविध राजकार्यों के सम्पादन में हर्ष-विषाद के अवसर पर उन्हें लेशमात्र भी हर्ष-विषाद नहीं होता था, वह न कभी प्रसन्न होते थे और न

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

कभी अप्रसन्न। चिद्रूप में स्थित होकर समभाव से कार्य करते थे। उनकी राग-द्वेष-भावनायें निवृत्त हो गई थीं। वे अतीत और अनागत की चिन्ता नहीं करते थे। स्वाभाविक आनन्द की अनुवृत्ति से वर्तमान का अनुसरण करते थे। अपने विचार से ही उन्होंने प्राप्तव्य परब्रह्म को प्राप्त कर लिया था। आत्मतत्त्व का विचार तब तक करना चाहिए, जब तक आत्मज्ञानरूप फल प्राप्त न हो जाय।

साधु-पुरुषों की सङ्गति से प्राप्त विशद विचार से जो अभ्युदय प्राप्त होता है, वह किसी अन्य प्रकार से प्राप्त नहीं हो सकता। शास्त्रों के अभ्यास और विचार से परिष्कृत बुद्धि से जो परम-पद प्राप्त होता है, वह अन्यथा प्राप्त नहीं हो सकता। प्रज्ञारूपी दीपशिखा के जलने पर (जागरूक होने पर) अज्ञानरूपी अन्धकार क्लेश नहीं पहुँचा सकता। जो विपत्तियाँ दुस्तर हैं और दुःख-रूपी तरङ्गों से भरी हैं, उन आपत्तियों से निस्तार प्रज्ञारूपी नौका से ही हो सकता है। प्रज्ञाहीन पुरुष को छोटी-छोटी आपत्तियाँ भी पीडित करती हैं, जैसे साधारण वायु भी छोटे तृण को उड़ा देता है। प्रज्ञावान् पुरुष यदि असहाय है, तब भी वह कठिन से कठिन कार्यों में सफलता प्राप्त कर सकता है; परन्तु मूर्ख पुरुष असंख्य सहायकों और मित्रों के रहने पर भी विषमता के समय सफलता नहीं प्राप्त कर सकता। जैसे फल की प्राप्ति के लिए वृक्षों को सींचना पड़ता है, उनकी रक्षा करनी पड़ती है, वैसे सज्जन पुरुषों और शास्त्रों की सहायता से प्रज्ञा को बढ़ाना चाहिए, जिससे उत्तम फल की प्राप्ति हो।

जैसे चन्द्रमण्डल अन्धकार को दूर करने के लिए चन्द्रिका (चाँदनी) का प्रकाश फैलाता है, वैसे ही पूर्वजन्मकृत शुभ-कर्म प्रज्ञा की सहायता से अज्ञान की निवृत्ति कर आत्मज्ञान का प्रकाश फैलाते हैं। अर्थोपार्जन के लिए जो विविध प्रकार से यत्न किये जाते हैं, उन्हें न कर पहले प्रज्ञा की अभिवृद्धि के लिए यत्न करना चाहिए। बुद्धिमान्द्यता सब दुःखों की सीमा है, आपत्तियों का भाण्डार है, संसाररूपी वृक्ष का बीज है, अतः उसका विनाश नितान्त अपेक्षित है।

स्वर्ग से, पाताल से और राज्य से जो सुख मिलता है, वह सब सुख प्रज्ञा-कोश से प्राप्त होता है। संसाररूपी सागर से निस्तार दान से, तीर्थों से अथवा तप से नहीं हो सकता; परन्तु प्रज्ञा द्वारा संसारसमुद्र से निस्तार हो सकता है। प्रज्ञा के माहात्म्य से भूमिचरों ने नभश्चरत्व आदि दैवी-सम्पदा को प्राप्त किया है। अपने पञ्जों से मत्त गजेन्द्रों के कुम्भस्थल को विदीर्ण करने वाले सिंह भी प्रज्ञाबल से जम्बुकों द्वारा पराजित हो जाते हैं। प्रज्ञाबल से साधारण जन भी महान् हो जाते हैं। स्वर्ग और अपवर्ग प्राप्त करने की योग्यता प्रज्ञा से ही उपलब्ध होती है। विवेकी पुरुष के हृदय में स्थित प्रज्ञा चिन्तामणिरूप रत्न, कल्पवृक्ष के समान वाञ्छित फल प्रदान करती है। कुशल पुरुष प्रज्ञा से संसार-सागर को पार करता है और मूढ़ पुरुष डूब जाता है। शिक्षित नाविक नदी को पार कर लेते हैं, जबकि अशिक्षित पार नहीं कर सकते। प्रज्ञा यदि अच्छे कार्यों में लगाई जाय, तो उत्तम फल प्रदान करती है। इसके विपरीत

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

असत् मार्ग में लगाई गई प्रज्ञा संकट प्रदान करती है। विवेकशील प्राज्ञ पुरुष को लोभ, क्रोध, मोह अदि दोष पीडित नहीं कर सकते, जैसे कि कवचादि से सुरक्षित योद्धा को वाण विद्ध नहीं कर सकते। प्रज्ञा के प्रसाद से जगत् को यथाविधि देखा जा सकता है। परमार्थ-दृष्टि वाले पुरुष के पास सम्पदायें, अथवाआपदायें नहीं आ सकतीं। जैसे सूर्य को आवृत करने वाला काला मेघ वायु के वेग से छिन्न-भिन्न हो जाता है, वैसे परमात्मा को आच्छादित करने वाला मलिन एवं मत्त अहङ्कार प्रज्ञा से विनष्ट हो जाता है।

प्रज्ञया तीर्यते भीमात्तस्मात्संसारसागरात्।
न दानैन च वा तीर्थैस्तपसा न च राघव॥
यत्प्राज्ञाः सम्पदं दैवीमपि भूमिचरा नराः।
प्रज्ञापुण्यलतायास्तत्फलं स्वादु समुत्थितम्॥
सामान्यैरपि भूपत्वं प्राप्तं प्रज्ञावशान्नरैः।
स्वर्गापवर्गयोग्यत्वं प्राज्ञस्यैवेह दृश्यते॥
चिन्तामणिरियं प्रज्ञा हृत्कोशा विवेकिनः।
फलं कल्पलतैवैषा चिन्तितं सम्प्रयच्छति॥
भव्यस्तरति संसारं प्रज्ञयाऽपोह्यतेऽधमः।
शिक्षितः पारमाप्नोति नावा नाप्नोत्यशिक्षितः॥
धीः सम्यग्योजिता पारमसम्यग्योजितापदम्।
नरं नयति संसारे भ्रमन्ती नौरिवार्णवे॥
विवेकिनमसम्मूढं प्राज्ञमाशागणोत्थिताः।
दोषा न परिबाधन्ते सन्नद्धमिव सायकाः॥
प्रज्ञयेह जगत्सर्वं सम्यगेवाङ्ग दृश्यते।
सम्यग्दर्शनमायान्ति नापदो न च सम्पदः॥
पिधानं परमार्थस्य जडात्मा विततोऽसितः।
अहङ्काराम्बुदो मत्तः प्रज्ञावातेन बाध्यते॥

योगवासिष्ठ, उपशम-प्र० सर्ग १२, श्लो० २९, ३०, ३२-३९

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

९. राजा बलि का आख्यान

विरोचन-स्मरण—

जगत् में विख्यात पाताललोक है, जहाँ विरोचन के सुत राजा बलि राज्य करते थे। उनका प्रताप लोकोत्तर था। देवराज इन्द्र भी उनकी सेवा में तत्पर रहते थे। उस दैत्यराज ने लगभग दस करोड़ वर्षों तक राज्य किया। उसने विचार किया कि इस राज्य-भोग से क्या प्रयोजन है? यह भोग आपाततः मधुर है, विनश्वर है अतः स्पृहणीय नहीं है। धनोपार्जन और विषयोपभोग कब तक किया जायगा? यह सुख तुच्छ, क्षणिक तथा विनाशी है। अतः सच्चा सुख नहीं है। वह कार्य करना चाहिए, जिससे दिव्य, अविनाशी एवं शाश्वत आनन्द प्राप्त हो।

उन्होंने आत्मतत्त्वज्ञानी अपने पिता श्रीविरोचन से पूछा कि—"पूज्यतात! वह कौन सा स्थान एवं पद है, जहाँ संसार के सभी सुखों, दुःखों एवं भ्रमों की शान्ति हो जाती है और चित्त का मोह शान्त होजाता है? सब एषणायें दूर हो जाती हैं और शाश्वत विश्रान्ति प्राप्त हो जाती है?

विरोचन-वचन—

विरोचन ने कहा "पुत्र! अत्यन्त विशाल मोक्ष-नामक एक देश है जिसमें सहस्रों त्रैलोक्य समाविष्ट हो सकते हैं। वहाँ न तो समुद्र हैं, न पर्वत, न वन, न तीर्थ, न नदियाँ, न पृथ्वी, न आकाश, न अन्तरिक्ष, न वायु, न चन्द्र, न सूर्य, न लोकपाल, न देव, न दानव, न यक्ष, न राक्षस, न स्थावर, न जङ्गम, न जल, न दिशायें, न अग्नि, विष्णु, न इन्द्र, न शिव, न वहाँ पर एकाकी एक महान् राजा है। जो सर्वव्यापक और कूटस्थ है। उसका एक मन्त्री है जो सम्भव को असम्भव और असम्भव को सम्भव बना देता है। वह न कुछ भोग सकता है और न जान सकता है। वह सब कुछ राजा के लिए करता है। राजा तो एकान्त में स्वस्थ होकर स्थित रहता है"।

बलि ने पूछा—"भगवन्! आधिव्याधि से रहित वह कौन सा देव है? वह कैसे मिलता है? वह राजा और मन्त्री कौन है जिसे हम लोगों ने अब तक जीत नहीं लिया? पिता जी इस अपूर्व आख्यान को कृपया मुझे सुनायें और मेरे हृदय के संशय का निवारण करें"।

विरोचन ने कहा—"पुत्र! सुर और असुर मिलकर यदि असंख्य हों, तो भी उस बलवान् मन्त्री के ऊपर आक्रमण नहीं कर सकते। वह मन्त्री न इन्द्र है, न कुबेर, न यम, न कोई देवता और न असुर है। उस पर तलवार, मूसल, भाले, वज्र, चाकू, गदा और अस्त्र कुण्ठित होकर व्यर्थ हो जाते हैं। उसने सभी देवताओं और असुरों को

फा०—१०

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

अपने वश में कर लिया है। नारायणप्रभृति श्रेष्ठ देवताओं को भी उसने आयत्त कर रखा है। उसके प्रसाद से पञ्चशर (कामदेव) त्रैलोक्य पर आक्रमण करता है और सम्राट् के समान चमकता है। देवासुर-संग्राम, जो बार-बार होता रहता है, वह उस मन्त्री के वायें हाथ का खेल है। उस मन्त्री को केवल उसका प्रभु जीत सकता है और कोई नहीं। यदि तुम व्यामोहरहित, एकाग्र-बुद्धि से उसे जीत सको तो तुम निस्सन्देह त्रैलोक्य को जीत लोगे"।

बलि ने कहा—"पूज्यपाद ! किस उपाय से उस मन्त्री को जीता जा सकता है ? महाबलशाली वह कौन है ?"

विरोचन ने कहा—"पुत्र युक्ति से वह क्षणभर में विवश किया जा सकता है, युक्ति के विना तो वह भयङ्कर सर्प के समान उद्धत है। राजा का साक्षात्कार करने पर वह मन्त्री वश में हो जाता है और उस मन्त्री के वशीभूत हो जाने पर राजा का साक्षात्कार होता है। जब तक राजा को नहीं देखा जायगा, तब तक मन्त्री पर विजय प्राप्त न होगी और जब तक मन्त्री विजित न होगा, तब तक राजा का साक्षात्कार नहीं होगा। अतः अभ्यास से राजदर्शन और मन्त्री पर विजय दोनों को एक-साथ सम्पन्न करना चाहिए। दोनों को प्राप्त कर लेने पर वह सुन्दर देश सुलभ हो जाता है। उस देश में वे महानुभाव वास करते हैं जिनके सभी आयास शान्त हो गए हैं और जिनके सब सन्देह दूर हो गए हैं।

वह देश मोक्ष है, जहाँ सब प्रकार के दुःखों का विनाश हो जाता है। सर्व-पदातीत मन और वाणी के आधार, भगवान् आत्मा राजा हैं। प्राज्ञ-मन महामन्त्री है। यह समस्त ब्रह्माण्ड मन द्वारा निर्मित है। मन को जीत लेने पर सब कुछ जीता जा सकता है।

बलि ने कहा—"भगवन् ! चित्त विजय में जो युक्ति हो उसे स्पष्ट रूप से कहें जिससे उसको जीतने का प्रयास किया जाय"।

चित्तविजय का प्रयास—

विरोचन ने कहा—"पुत्र ! विषयों के प्रति अनास्था मन को जीतने के लिए उत्तम साधन है। अभ्यास के विना विषयों से विरक्ति नहीं हो सकती। वासना-त्याग के द्वारा भोगों से विरक्ति प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। पुरुषार्थ के विना कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता। अतः पुरुषार्थ से भोगों के प्रति वैराग्य उत्पन्न करना चाहिए। जब तक वैराग्य नहीं होगा तब तक विजयप्रदायिनी विश्रान्ति प्राप्त नहीं होगी"।

बलि ने कहा—"असुरों के स्वामी ! कृपया स्पष्ट करें कि जीवों के अन्तः-करण में भोगों से वैराग्य कैसे स्थिर होता है"।

विरोचन ने कहा—पुत्र ! जैसे लक्ष्मी कमल के भीतर निवास करती है वैसे ही वैराग्य आत्मसाक्षात्कार से होता है। अतः उत्तम विचार से परमात्मा का दर्शन

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

करना चाहिए। विचार से आत्मावलोकन और तृष्णात्याग इन दोनों कार्यों को साथ ही सम्पन्न करना चाहिए। आत्मदर्शन से वितृष्णता आती है और तृष्णा का अभाव होने पर आत्मदर्शन होता है। भोगों से विरक्ति होने पर परमोत्कृष्ट परब्रह्म का दर्शन होता है और असीम विश्रान्ति प्राप्त होती है। पौरुष से भोगों में अनास्था प्राप्त कर साधु-सङ्गम तथा शास्त्राभ्यास से ज्ञान प्राप्त करो। ज्ञान से परमपद की प्राप्ति होती है जिससे सब प्रकार के दुःखों का निवारण हो जाता है"।

पूर्वं दैवमनादृत्य पौरुषेण प्रयत्नतः।
दन्तैर्दन्तान् प्रसंपीड्य भोगेष्वरतिमाहरेत् ॥
ततो विचारस्तदनु ज्ञानं शास्त्रार्थसंग्रहः।
ततः क्रमेण परमपदप्राप्तिः प्रजायते ॥
यदा तूपरते काले विषयेभ्यो विरम्यते।
तदा विचारवशतः परमं पदमेष्यसि ॥
सम्यक् प्राप्स्यसि विश्रान्तिमात्मन्यत्यन्तपावने।
न पुनः कल्पनापङ्के दुःखाय निपतिष्यति ॥

योगवासिष्ठ, उपशम-प्र० सर्ग २४, श्लो ६४, ६७-६९

बलि की अनुभूति—

बलि को अपने पिता जी द्वारा उपदिष्ट आत्मतत्त्व की आंशिक अनुभूति हुई। फलस्वरूप भोगों में उनकी अरुचि हुई। धन प्राप्त करना और कान्ता का आवर्जन करना आदि सांसारिक कार्य वस्तुतः खेदजनक हैं। उन्होंने विचार किया कि उपशम-भूमि अति रम्य एवं शीतल है। उसमें सब प्रकार के सुख-दुःख शान्त हो जाते हैं। मैं इस स्थिति में अत्यन्त प्रसन्न हूँ। मुझे किसी प्रकार का सन्ताप अथवा क्लेश नहीं है। कामिनी-विलास का मेरा पूर्वजीवन अज्ञानमूलक ही था। मैंने जगत् के समस्त वैभवों को भोगा, असंख्य जनों को झुकाया; परन्तु क्या इससे मुझे शाश्वत आनन्द प्राप्त हुआ?

स्वर्गादि लोकों के तुच्छ सुखों को त्याग कर मैं स्वरूपबोध के कारण आत्मा में स्थित हूँ। स्वर्गादि लोकों के सुखसाधन रत्न, उपल, स्त्रियाँ आदि सब अनायास काल द्वारा कवलित हो जाते हैं। इतने समय तक देवलोक से द्वेष एवं संग्राम कर मैंने बड़ा तुच्छ कार्य किया। इस जगत् में अज्ञान-मदमत्त होकर मैंने अपने पश्चात्ताप की अभिवृद्धि के लिए कौन-कौन से कार्य नहीं किए? अब मैं अतीत की भ्रान्तियों को भूलकर वर्तमान को देखना चाहता हूँ। ब्रह्मानन्दानुभूति में शाश्वत्, अनवरत, दिव्य आनन्द प्राप्त होता है। वह कैसे प्राप्त हो एतदर्थ कुलगुरु श्रीशुक्राचार्य का ध्यान करता हूँ।

बलि को उपदेश—

बलि ने अपने गुरु का ध्यान किया और गुरु जी तत्काल वहां आ गए। बलि ने रत्नमय अर्घ्य प्रदान किया। मन्दार वृक्ष के पुष्पों से और पादाभिवन्दन से शुक्राचार्य

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

की पूजा की और पूछा—"गुरुवर ? आपके प्रसाद से मुझे जो प्रतिभा प्राप्त है वह यह पूछने को बाध्य कर रही है कि महामोह का नाश कैसे होता है ? भोगजाल के उत्कर्ष की अवधि क्या है ? मैं कौन हूँ ? आप कौन हैं ? यह संसार क्या है ? कृपया मुझे उद्‌बोधित करें"।

श्रीशुक्राचार्य ने कहा—"दानवेन्द्र ! मैं आकाश में गमन करने को उद्यत हूँ। संक्षेप में कह रहा हूँ, उसे सुनो। चैतन्य ही सब सिद्धियों को देने वाला है। सबकी अवधि चित् है। सब चिन्मय हैं। 'तुम', 'मैं' और समस्त जगत् चिद्रूप है। यदि तुममें श्रद्धा और विवेक हो तो तुम निश्चय ही सब कुछ प्राप्त कर सकते हो। अन्यथा सव कुछ कहना राख में आहुति के समान व्यर्थ है। चित् और चेत्य की कल्पना वन्ध है। उससे मुक्ति मोक्ष है। चेत्याकाररहित चित् पूर्ण आत्मा है। यह सब सिद्धान्तों का सार है। यदि तुम इस प्रकार आत्मदर्शन करो तो असीम आनन्द प्राप्त करोगे।"

ऐसा कहकर श्रीशुक्राचार्य देवलोक चले गए जहाँ सप्तर्षियों से उनकी भेंट होनी थी और देवकार्य के निमित्त उनकी उपस्थिति आवश्यक थी।

चिदिहास्ति हि चिन्मात्रमिदं चिन्मयमेव च।
चित्त्वं चिदहमेते च लोकाश्चिदिति संग्रहः॥
भव्योऽसि चेत्तदेतस्मात् सर्वमाप्नोषि निश्चयात्।
नो चेत्तद् बह्वपि प्रोनि त्वयि भस्मनि हूयते॥
चिच्चेत्यकलनाबन्धस्तन्मुक्तिर्मुक्तिरुच्यते।
चिदचेत्याखिलात्मेति सर्वसिद्धान्तसंग्रहः॥
एवं निश्चयमादाय विलोकयसि हेलया।
स्वयमेवात्मनात्मानमनन्तं पदमाप्स्यसि॥

योगवासिष्ठ, उपशम-प्र०, सर्ग २६, श्लो० ११-१४

बलि की मुक्ति (विश्रान्ति)—

वलि ने विचार किया कि गुरुदेव ने ठीक ही कहा है कि यह समस्त जगत् चित् ही है। मैं चित् हूँ। भीतर बाहर सब चित् ही है। चित् से अतिरिक्त कहीं कुछ नहीं है। यह सूर्य न होता तो सूर्य का अस्तित्व कैसे उपलब्ध होता ? इस प्रकार यदि चित् द्वारा भूमि चेतित न हों तो भूमि का भूमित्व कैसे व्यक्त होगा ? यदि दिशायें 'ये दिशायें हैं' इस प्रकार चित् द्वारा चेतित न होतीं तो दिशाओं का दिशात्व कैसे होता ? इसी प्रकार शैलों की शैलता, जगत् का जगत्त्व, नगर का नगरत्व, काय का कायत्व और शरीर का शरीरत्व कैसे प्रमाणित होता ? आकाश, भूतसंघ, सुरासुर, स्थावर एवं जङ्गम सब में चित् ही व्याप्त है। दूसरी कोई कल्पना नहीं है। ऐसी स्थिति में द्वित्व असम्भव है। फलतः लोक में कौन शत्रु है और कौन मित्र है ऐसी कल्पना ही नहीं हो सकती। वलि के शरीर के छिन्न-भिन्न हो जाने पर चित् का क्या बिगड़ा ? अधिक विचार करने पर भी चित् के अतिरिक्त कोई वस्तु

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

नहीं है। न द्वेष है, न राग है, न मन है और न उसकी वृत्तियाँ हैं। विशुद्ध चिन्मात्र में विकल्प की कल्पना कैसे हो सकती है ?

सर्वगामी, सर्वव्यापक, नित्य, आनन्दमय, विकल्प-कल्पना से शून्य, द्वैत-भावना से रहित मैं चित् हूँ। दृश्यदर्शन से मुक्त, निर्मल—स्वरूप, नित्योदित, साक्षी, परमेश्वर है।

चेत्य की रञ्जना से विमुक्त, चेतनरूप ब्रह्म को नमस्कार है। मैं चेत्य से मुक्त चिद्रूप, विश्व को पूर्ण करने वाला, सर्वव्यापक, सच्चिदानन्दरूप हूँ जिसमें सब ज्ञातव्य वस्तुएँ शान्त हो चुकी हैं। मैं सर्वव्यापक आकाश के समान अनन्त हूँ, अणु हूँ। ये सब दुःख-सुख की दशायें मुझे स्पर्श नहीं कर सकती हैं। असंवेद्य, अचेत्य, चेतनरूप, सर्वव्यापक मुझे ये जगत् के भाव देश,काल और वस्तु से परिच्छिन्न नहीं कर सकते। वस्तुतः ये जगद्भाव मुझसे अतिरिक्त नहीं हैं। सदा मैं ही सब कुछ, सबका कार्य और सर्वगत हूँ। यह चेत्य भी मैं हूँ। मैं ही चिद्रूप हूँ। मुझे सङ्कल्प और विकल्प से क्या प्रयोजन ? मैं अज्ञान से संक्षोभ को प्राप्त होता हूँ और तत्त्वज्ञान से आत्मा में विश्रान्ति को प्राप्त करता हूँ। ऐसा ध्यान करता हुआ परम ज्ञानी, दैत्यराज बलि ऊँकार की भावना करता हुआ समाधिस्थ हो गया। उनके सब सङ्कल्प शान्त हो गए, सब कलनायें नष्ट हो गईं, उनकी चेत्य, चिन्तक और चिन्तन की भावनायें नष्ट हो गयीं। वे निर्मल और वासनारहित हो गए। निर्वात दीप की प्रभा के समान कान्तिमान् होकर उन्होंने महान् पद प्राप्त किया। स्वनिर्मित (खचित झरोखे पर वह चिरकाल तक मूर्ति के समान स्थिर हो गए।

बलि-समाधान—

राजा बलि की उस अवस्था को देखकर मन्त्रिगण, सामन्त-नृपसमूह, सेनापति, सैनिक, बान्धव, मित्रादि, देवगण, यक्ष, विद्याधर, नागादि, अप्सरायें, उनके दर्शनार्थ आ गए। इसके अतिरिक्त बहुत से सिद्ध लोग भी आ गए। मन्त्रियों ने विचार-विमर्श के अनन्तर गुरुदेवश्रीभार्गव का ध्यान किया और वह तुरन्त वहाँ आ गए।

श्रीभार्गव ने समाधिस्थ राजा बलि को क्षणभर देखकर कहा—"दैत्यगण ! यह ऐश्वर्यशाली राजा बलि अपने विचार से विमल-पद को प्राप्त हुए हैं और विश्रान्ति का सुख ले रहे हैं। उनका सांसारिक भ्रम शान्त हो गया है। उन्हें छेड़ा न जाय। वे यथासमय स्वयं प्रबुद्ध हो जायेंगे, जैसे बीजकोश से अङ्कुर। आप लोग यथापूर्व राज्य की व्यवस्था करें। राजा एक सहस्र वर्ष के बाद समाधि से जागेंगे"।

गुरु की वाणी सुनकर सब दैत्य प्रसन्न हो गए। वे सब यथास्थान अपने-अपने कार्यों में लग गए। बाहर से आए हुए नृप-गण, बन्धु-बान्धव, मित्रादि भी अपने-अपने स्थानों पर चले गए।

"अतिमात्रमिदं दैत्याः स्वविचारणयैव यत्।
सम्प्राप्तविमलावासः सिद्धोऽयं भगवान् बलिः॥

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

अयं तदेवमेवेह तिष्ठन् दानवसत्तमाः ।
स्वात्मनि स्थितिमाप्नोतु पदं पश्यत्वनामयम् ॥
श्रान्तो विश्राममायातः क्षीणचित्ता भवभ्रमः ।
शान्तसंसारनीहारो वाचनीयो न दानवाः ॥
स्व एवालोक एतेन सम्प्राप्तोऽज्ञानसंकटे ।
शान्तेऽत्र संयुगे सौरो दिनेनेव करोत्करः ॥
स्वयमेव हि कालेन प्रबोधमयमेष्यति ।
बीजकोशात् स्वसंवित्त्या सुप्तमूर्तिरिवाङ्कुरः ॥
कुरुध्वं स्वामिकार्याणि सर्वे दानव-नायकाः ।
बलिर्वर्षसहस्रेण समाधेर्बोधमेष्यति ॥

बलि-विज्ञानप्राप्ति—

राजा बलि दिव्य एक सहस्रवर्ष की समाधि के बाद देवताओं की दुन्दुभि के तुमुलघोष से जागृत हुए। उन्होंने अनुभव किया कि समाधि में कितना अलौकिक (दिव्य) आनन्द है; उसके सामने त्रैलोक्य का राज्य-सुख तुच्छ है। ऐसा विचार कर वह पुनः अपने चित्त को विश्रान्ति-सुख में लगाने जा रहे थे कि चारों ओर से दानवों ने उन्हें घेर लिया। वे बलि के चरणों पर श्रद्धा-भक्ति के साथ गिर पड़े।

उन्हें देखकर राजा बलि ने विचार किया कि मैं चैतन्यरूप हूँ। मेरे सभी विकल्प नष्ट हो गये हैं। अतः मुझे क्या उपादेय है ? मन की मलिनता बाह्य पदार्थों को उपादेयबुद्धि से देखने पर ही होती है। मैं किसी प्रकार बद्ध नहीं हूँ। अतः मोक्ष की इच्छा क्यों करूँ ? बद्ध न होकर मोक्ष की इच्छा करना विडम्बनामात्र है। न मुझे वन्ध है और न मोक्ष है। मेरे अज्ञान का क्षय हो गया है। अतः मैं ध्यान करूँ अथवा न करूँ। प्रारब्धवश जो प्राप्त है, सामने आ जाय। मुझे न सुख है और न दुःख। मेरी बुद्धि समत्वभाव से व्याप्त है और सर्वथा सन्तापरहित है; न मुझे परमतत्त्व की अभिलाषा है, न जागतिक पदार्थों की इच्छा है। मुझे ध्यान एवं धन-सम्पत्ति से भी कोई प्रयोजन नहीं है। न मैं जीवित हूँ और न मृत हूँ। न मैं मूर्त हूँ और न अमूर्त। यह देह और लोकादि न मेरे हैं और न मैं उनका हूँ। मैं प्रत्यक्ष चैतन्यरूप हूँ। यह जगत् का राज्य रहे या न रहे, इससे मेरा कोई प्रयोजन नहीं है। मैं आत्म-तत्त्व में स्थित हूँ। मुझे ध्यान अथवा राज्य से कोई प्रयोजन नहीं है।

ऐसी स्थिति में मैं यथाप्राप्त राज्यकर्म का पालन क्यों न करूँ ? ऐसा विचार कर बलि ने दानवों को देखा, जैसे सूर्य-भगवान् कमलदल को देखते हैं। मन से ध्येय त्याग का आश्रयण कर राजा बलि सब राज-कार्यों को करने लगे। उन्होंने द्विजों, देवों और गुरुओं की पूजा की और मित्रों, बन्धु-बान्धवों और सामन्तों का सम्मान किया। भृत्यों और याचकों को यथेच्छ धन प्रदान किया और विविध वैभवों से ललनाजन को प्रसन्न किया।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

राजा बलि की इच्छा यज्ञ करने की हुई। गुरु शुक्राचार्य एवं प्रधानमन्त्रियों के परामर्श से उन्होंने अश्वमेधयज्ञ किया और समस्त जगत् को तृप्त किया। उन्होंने यथाविधि ऋषियों एवं देवताओं का पूजन किया।

बलि के मनोरथ को समझकर विष्णु-भगवान् उनके पास आए। उन्होंने तीनों लोकों को अपने चरण से नापकर बलि को पाताल में बाँध दिया और इन्द्र को त्रैलोक्य का राज्य दिया। जीवन्मुक्त बलि सम्पत्तियों और विपत्तियों को समभाव से देखने लगे। उनकी प्रज्ञा न तो अस्त होती है और न उदित, जैसे चित्रस्थ सूर्य-मण्डल। जगत् के आविर्भाव और तिरोभाव को देखकर उनका मन विरक्त हो गया। दस करोड़ वर्षों तक त्रैलोक्य का राज्य कर अन्त में वह विरक्त हो गए और उनका चित्त शान्त हो गया। वह भोगों की अभिलाषा को त्याग कर आत्मनिष्ठ हो पाताल में स्थित हो गए। कालान्तर में वह इन्द्रपद प्राप्त कर पुनः त्रैलोक्य का शासन करेंगे। उन्हें इन्द्र-पद की प्राप्ति से न तो कोई सन्तोष है और न अपने पद से च्युत होने का कोई असन्तोष। वह समभाव से विचरण कर रहे हैं और आकाशवत् निर्मल हैं।

राजा बलि के दृष्टान्त को प्रस्तुत कर महर्षि वसिष्ठ ने श्रीराघवेन्द्र को उपदेश दिया कि "आप भी बलि की विज्ञानदृष्टि का अवलम्बन कर समभाव में स्थित हो यथाप्राप्त कर्त्तव्यों का पालन करें"।

"चिदादित्यो भवानेव सर्वत्र जगति स्थितः।
कः परस्ते क आत्मीयः परिस्खलसि किं मुधा॥
त्वमनन्तो महाबाहो त्वमाद्यपुरुषोत्तमः।
त्वं पदार्थशताकारैः परिस्फूर्जसि चिद्वपुः॥
त्वयि सर्वमिदं प्रोतं जगत् स्थावरजङ्गमम्।
बोधे नित्योदिते शुद्धे सूत्रे मणिगणो यथा॥
सगस्तजन्मरोगाणां प्रविचार्य वलाबलम्।
तृष्णामुत्सृज्य भोगानां भोक्तैव भव केवलम्॥
त्वयि स्थिते जगन्नाथे चिदादित्ये सदोदिते।
इदमाभासते सर्वं संसारस्वप्नमण्डलम्॥
एवमभ्यागताभ्यासं मनो मत्तमतङ्गजम्।
निबध्य सर्वभावेन परं श्रेयोऽधिगम्यते॥

योगवासिष्ठ, उपशम-प्र० सर्ग २९, श्लो० ४५-४९, ५०, ५५

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

१०. पावनबोधनाख्यान

जम्बू-द्वीप में महेन्द्र-नामक पर्वत है जिसके एक भाग में मुनियों ने स्नान, पान आदि के निमित्त आकाशगङ्गा को अवतीर्ण किया था। उस नदी के तट पर दीर्घतपा-नामक मुनि रहते थे। उनके पुण्य और पावन नामक दो पुत्र थे। वह अपने पुत्रों और भार्या के साथ सानन्द रहते थे। उनके पुत्रों में ज्येष्ठ पुण्य बड़ा धार्मिक और ज्ञानवान् था। उसका भाई पावन अर्धप्रवुद्ध था और उसकी स्थिति दोलायमान थी।

यथासमय मुनि जी का स्वर्गमन हुआ और उनकी सहधर्मिणी भी अपने पति के साथ दिवङ्गत हो गई।

पुण्य ने माता-पिता का और्ध्वदैहिक यथाविधि सम्पन्न किया। पावन शोकार्त्त हो विलाप करने लगा। तब पुण्य ने पावन से कहा—"बन्धुवर! पिता जी ने माताजी के साथ मोक्ष प्राप्त कर लिया है। तुम उनके लिए वृथा शोक क्यों कर रहे हो? जिस माता-पिता के लिए तुम शोक कर रहे हो, वे तुम्हारे ही माता-पिता नहीं हैं। असंख्य पुरुषों के माता-पिता हैं और तुम्हारे समान उनके लाखों पुत्र हैं। यदि तुम माता-पिता के लिए शोक कर रहे हो तो अतीत पितरों के लिए शोक क्यों नहीं करते। ब्रह्मस्वरूप होने के कारण किसी का नाश नहीं होता। पारमार्थिक दृष्टि से विचार करने पर न तुम हो और न मैं हूँ। न कोई मृत है और न कोई जीवित है। मानस-सङ्कल्प के कारण सृष्टियाँ दृष्टिगोचर हो रही हैं। वस्तुतः उनका अस्तित्त्व नहीं। अतः शोक करना वृथा है।

प्रपञ्चोऽयं महाभाग! दृश्यते जागते भ्रमे।
परमार्थेन ते प्राज्ञ नास्ति मित्रं न बान्धवाः॥
न नाश इह हि भ्रातः परमार्थेन विद्यते।
दृष्ट्या तु पारमार्थिक्या पुत्र सत्यं विचारय॥
नैव त्वं न वयं चैव भ्रान्तिमन्तः परित्यज।
अयं गतो मृतश्चायमिति दुर्दृष्टयः पुरा॥
स्वसङ्कल्पोपतापोत्था दृश्यन्ते न तु सत्यतः॥

योगवासिष्ठ, उपशम-प्र० सर्ग १६, श्लो० ३६, ३७-४०

पावनबोधन—

पुण्य ने कहा—"बन्धुवर! कौन पिता है, कौन माता है, कौन बन्धु है, कौन शत्रु है। इसका विवेचन नहीं हो सकता। सर्वव्यापक परमात्मा में इस प्रकार की

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

मिथ्या-कलना कैसे हो सकती है ? तात्त्विक दृष्टि से न तुम हो और न मैं हूँ, न पुण्य है, न पावन है। अपने अतीतजन्मों के माता-पिता और बन्धु-बान्धवों का स्मरण क्यों नहीं करते हो ? हम लोगों के सहस्रों जन्म हो चुके हैं और सहस्रों माता-पिता हो चुके हैं, परन्तु उनका ध्यान किसे है ? पुण्य ने विस्तार से अतीतजन्मों की कथा कह सुनाई जिसे सुनकर पावन चकित हो गया। उसे बोध हो गया कि न कोई माता है और न पिता है, न जन्म है और न मरण है। एक आत्मा है, जो सर्वव्यापक है और वही सब कुछ है। अज्ञानी जन नटों के समान नाना प्रकार का व्यवहार करते हैं, जबकि ज्ञानी-पुरुष स्वरूपस्थ रहते हैं। जैसे दीपक रात्रि में सन्निधि-मात्र से आलोक प्रदान करता हुआ भी कर्त्ता नहीं है, वैसे ही ज्ञानी-पुरुष प्रारब्धप्राप्त कर्मों को करता हुआ भी कर्त्ता नहीं है।

न ते दुःखं न ते जन्म न ते माता न ते पिता।
आत्मैवासि न सद्बुद्धे त्वमन्यः कश्चिदेव हि ॥
अस्यां संसारयात्रायां नानाभिनयदायिनः।
अज्ञा एव नराः साधुरसभावसमन्विताः ॥
मध्यस्थदृष्टयः स्वस्थाः यथा प्राप्तार्थदर्शिनः।
तज्ज्ञास्तु प्रेक्षका एव साक्षिधर्मे व्यवस्थिताः ॥
कर्त्तारोऽपि न कर्त्तारो यथा दीपा निशागमम्।
आलोककर्मणामेवं तज्ज्ञा लोकस्थिताविव ॥

योगवासिष्ठ, उपशम प्र० सर्ग २०, श्लो० ३८-४१

———

फा०—११

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

११. प्रह्लाद का आख्यान

प्रह्लाद का नारायणीभाव—

अपने पिता हिरण्यकशिपु के मर जाने पर प्रह्लाद ने अपने देश और समाज की दयनीय स्थिति का अवलोकन किया। उन्होंने देखा कि जो देवगण पिता जी के समय में उनका चरणस्पर्श करते थे, वे पाताललोक के शत्रु एवं आक्रामक बन गए हैं। पाताललोक की यह दुर्दशा थी कि देवताओं ने अन्तःपुर में लगे चौखट और किवाड़ों तक को उखाड़ लिया था। दानव देवगण से अत्यन्त त्रस्त थे। दैत्यों की स्त्रियाँ सर्वथा डरती रहती थीं। देवताओं ने नन्दन-वन को पुनरुज्जीवित एवं अलङ्कृत कर दिया है और वहाँ कल्पवृक्ष सुशोभित हो रहे हैं। दानव-समाज पर जो आकस्मिक आपत्ति आ गई है, उसका कारण एकमात्र भगवान् हरि का कोप है। भगवत्-प्रसाद से देवगण निर्भय विचर रहे हैं और हम लोग घोर आपत्तियों का सामना कर रहे हैं। जैसे क्षीर-सागर में डूबे हुए मन्दराचल को कच्छप-भगवान् ने बचाया, वैसे आपत् सागर में डूबती हुई देवसेना को भगवान् नारायण ने बचाया है। उसी नारायण ने हमारे पिता हिरण्यकशिपु और पितामह आदि का वध किया। वह भगवान् नारायण अवध्य हैं। उनको कोई भी नहीं जीत सकता।

वह भगवान् एकमात्र शरण हैं। अन्य कोई गति नहीं है। त्रैलोक्य में उनसे बढ़कर कोई नहीं है। वही जगत् की सृष्टि, स्थिति और संहार के कर्त्ता हैं। अतः मैं उन्हीं नारायण की शरण में हूँ। मैं सर्वथा सब वस्तुओं में नारायण को देखता हूँ। जैसे आकाश से वायु कभी नहीं दूर होता, वैसे मेरे हृदय से "नमो नारायणा" यह मन्त्र कभी दूर नहीं हो सकता। हरि दिशायें हैं, हरि आकाश हैं, हरि पृथ्वी हैं, हरि जगत् हैं, हरि अभेदात्मा हैं, मैं भी भावनावश हरि हो गया हूँ। स्वयं विष्णु बने विना विष्णु की पूजा यथाविधि नहीं होसकती, अतः विष्णु होकर विष्णु की पूजा करनी चाहिए। मैं विष्णु बन. गया हूँ। "नाविष्णुः पूजयेद् विष्णुम्" ऐसा शास्त्रों में भी कहा गया है। जो हरि हैं, वही प्रह्लाद है। प्रत्यगात्मा से अन्य कोई प्रह्लाद नहीं है।

इस अनन्त आकाश में व्याप्त, सुवर्ण के समान कान्तिमान् गरुड़, मेरे शरीर का आसन बन गया है। शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म को धारण करने वाली मेरी चार भुजायें हैं। चन्द्रकला की राशि के समान सुन्दर, क्षीरसागर से उत्पन्न, चमर धारण करने वाली लक्ष्मी मेरे पार्श्व में स्थित है। तीनों लोकों में व्याप्त हरि की दिव्य कीर्ति मेरे पास स्थित है। इन्द्रजाल के समान जगत् का निर्माण करने वाली विष्णु की माया मेरे समीप है, त्रैलोक्य की वृक्षराशियों पर विजय करने वाली कल्पलता के समान

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

जया हमारे पार्श्व में स्थित है। भगवान् के नेत्रस्वरूप सूर्य और चन्द्र हमारे दोनों नेत्र हैं। मूर्तिमान् पाञ्चजन्य शंख मेरे हाथ में है। यह सुन्दर कमल हमारी हथेली पर विद्यमान है। सुवर्ण-रत्न से निर्मित, सुमेरुशिखरतुल्य विशाल यह गदा जो दैत्यों-दानवों का संहार करती है,मेरे हाथ में है। सूर्य के सदृश चमकने वाला यह सुदर्शन-चक्र मेरे हाथ में विराजमान है। दैत्यों और दुष्टों का विनाश करने वाला यह शार्ङ्ग-धनुष मेरे समीप स्थित है। यह पृथिवी चरण है, आकाश हमारा शिर है, त्रैलोक्य शरीर है, दिशायें कुक्षियाँ हैं। मैं साक्षात् विष्णु हूँ।

प्रह्लाद का आत्मोपदेश—

प्रह्लाद की हार्दिक एवं दीर्घकालीन श्रद्धाभक्ति से प्रसन्न होकर श्रीनारायण जी उनके समीप आए और उन्हें वर देकर वैकुण्ठ चले गए। भगवान् ने प्रह्लाद को वर दिया कि "सब प्रकार के भ्रमों की शान्ति के लिए और भक्तिरूपी सर्वोत्तम फल की प्राप्ति के लिए तुम ब्रह्मसाक्षात्कारपर्यन्त विचारवान् वनो"।

प्रह्लाद ने सोचा कि इतनी घोर तपस्या के बाद मुझे विचार वररूप में प्राप्त हुआ है। अतः विचार करना चाहिए। मैं कौन हूँ, जो इस संसार में बोलता हूँ, चलता हूँ, वैठता हूँ और अनेक प्रकार के व्यापारों को करता हूँ। भूमि, वृक्ष, पर्वत आदि से युक्त जो यह जड़ संसार है, वह मैं नहीं हो सकता क्योंकि मैं चेतन हूँ। मैं अचेतन देह भी नहीं हो सकता, क्योंकि वह असत्, जड, प्राणवायु द्वारा संचालित तथा अल्प-काल तक रहने वाला है। मैं अचेतन शब्द भी नहीं हो सकता यतः वह कर्णछिद्र द्वारा अनुभूत, क्षणभर में नष्ट होने वाला, शून्याकृति, शून्य आकाश से उत्पन्न होने वाला है। त्वगिन्द्रिय से प्राप्य, अन्य प्रकार से अप्राप्य, चित् के प्रसाद से आत्मस्वरूप को प्राप्त करने वाला स्पर्श भी नहीं हूँ। चञ्चल जिह्वा से सम्बद्ध, द्रव्य में रहने वाला, अचेतन, तुच्छ रस भी मैं नहीं हूँ। द्रष्टा और दृश्य के मध्य स्थित, नश्वर, क्षणिक, अचेतनरूप भी मैं नहीं हूँ। जड, नासिका द्वारा कल्पित, अचेतन गन्ध भी मैं नहीं हूँ।

मैं ममता तथा मननरूप मन के व्यापार एवं मायाजाल से रहित, इन्द्रियों के व्यापार से अगम्य, शान्त, शुद्ध चेतन हूँ। मैं सर्वव्यापी, जगत् का प्रकाशक, अखण्ड, निर्मल, सत्, चेत्यवर्जित चिद्रूप हूँ। प्रकाश से घट, पट आदि समस्त जगत् के पदार्थ प्रकाशित होते हैं।

हाँ, मुझे बोध हो गया। आकाश आदि विकल्पों से रहित, चिद्रूप, जगत्-प्रकाशक विशुद्ध-आत्मा मैं ही हूँ। जैसे ग्रीष्म ऋतु में मरु-मरीचिकाओं का स्फुरण होता है, वैसे ही सर्वव्यापक इस चिदात्मा से इन्द्रियगण स्फुरित होते हैं और पदार्थों की सत्ता अस्तित्व को प्राप्त होती है। आत्मा सभी जीवों की विविध अनुभूतिओं का विश्रान्तिस्थान है। उसीके द्वारा विभिन्न पदार्थों के विविध स्वभावों की सिद्धि होती है, जैसे सूर्य उष्ण, चन्द्रमा शीत, पर्वत ठोस तथा जल तरल होता है, वैसे जगत् में अनुभूत समस्त पदार्थों का वह आदि कारण है। उसका कोई कारण

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

नहीं है। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र आदि जो जगत् के कारण माने जाते हैं, उनका आदिकारण वह आत्मा है, वह सब प्राणियों का अधिष्ठाता है, उसीमें सब निवास करते हैं। उसके सङ्कल्प के द्वारा जगत् की उत्पत्ति होती है। उसने जिस वस्तु को उज्जीवित नहीं किया, उसका अस्तित्व नहीं है।

वह आत्मा अज्ञानी प्राणियों द्वारा अदृश्य है। निर्मल आकाश के समान स्वच्छ उस आत्मा को सन्त-महात्मा देखते हैं। जैसे पर्वत से नाना प्रकार के वृक्ष, घास, लता आदि से वेष्ठित वनपङ्क्तियाँ उत्पन्न होती हैं, वैसे उस आत्मा से यह विशाल संसार-रचना उत्पन्न होती है। इसके विविध शरीरों एवं कार्यों की गणना नहीं हो सकती। वह देश, काल की सीमा से परिच्छिन्न नहीं हो सकता।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, वायु, अग्नि आदि के रूप में वह कार्य कर रहा है। जैसे बालक मृत्तिका के क्रीडनकों से खेलता है, वैसे ही वह आत्मा अपनी क्रीडा के लिए इस विशाल जगत् का विस्तार करता है। उस चिदात्मा के दर्पण में जो वस्तु प्रतिबिम्बित है, उसका अस्तित्व चिद्रूप से है, अन्य रूप से नहीं है। चराचर जगद्रूप जो कुछ यह दृश्य है, वह सब चिदात्मस्वरूप है।

यह हमारा राज्य महान् और अपूर्व है। इसमें इन्द्र को बाँधा नहीं गया है और शस्त्रास्त्रों द्वारा देवताओं से युद्ध भी नहीं किया जा रहा है। यह किसी द्वारा भुक्त नहीं है और प्रार्थना के विना प्राप्त है। यह मेरा अद्भुत साम्राज्य है। इसके सुख का लेश भी त्रैलोक्य के राज्य में नहीं है। यह ब्रह्मा द्वारा रचित जगत् बहुत छोटा है, उसमें हमारा विशाल शरीर प्रविष्ट नहीं हो सकता, जैसे बिल्व फल के मध्य गजराज प्रविष्ट नहीं हो सकता। मेरे पितृपितामह-प्रभृति मन्दबुद्धि थे, जो इस साम्राज्य को छोड़कर त्रैलोक्य के तुच्छ राज्य के लिए संघर्ष करते थे। यह शुद्ध चिन्मय दृष्टि परमशान्ति को देने वाली और सर्वश्रेष्ठ है। नित्य, बोधरूप उत्तम साम्राज्य को छोड़कर इस आपातरमणीय राज्य में मुझे कुछ भी सुख नहीं मिलता। एकमात्र अविद्यात्मक अन्नपानादि में आसक्त हो मेरे पिताश्री ने क्या किया ? कुछ वर्षों तक इस जगत् का राज्य भोगकर हमारे पिताश्री हिरण्यकशिनु ने अपने उत्तम कश्यप-बंश के गौरव के अनुरूप कार्य नहीं किया। इस दिव्य आत्मानन्द के सामने सैकड़ों राज्यों का सुख नगण्य है। जिसने इस सुख का आस्वादन किया है, उसने सब कुछ प्राप्त कर लिया है।

इस उत्तम पदार्थ को छोड़कर निकृष्ट-कोटि के पदार्थ को ग्रहण करना पाण्डित्य नहीं, मूर्खता है। उष्ट्र (ऊँट) ही सुन्दर लताओं को छोड़कर कण्टकाकीर्ण झाड़ियों की सेवा करता है। इस उत्तम साम्राज्य को छोड़कर गर्हित लौकिक राज्य की प्राप्ति के लिए कौन प्रयत्नशील होगा ? कौन बुद्धिमान् पुरुष इक्षुरस का त्यांग कर नीम के कटुरस का सेवन करेगा ? कहाँ दिव्य आत्मसाम्राज्य और कहाँ तुच्छ जगत् का राज्य 'कहाँ नन्दन वन और कहाँ दग्ध मरुभूमि, ? चिद्राज्य के वैभव एवं गौरव के सामने समस्त जगत् का राज्य अतितुच्छ है।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

ब्रह्मात्मलाभ—

ॐकार ही जिसका अभिधान है, जो विकारों से रहित है, ऐसा आत्मा ही सब कुछ है। सूर्य आदि के अन्तःस्थित वह दीपक सूर्य आदि को प्रकाशित करता है। वह अपनी सत्ता से अग्नि को उष्ण, जल को शीतल बनाता है और राजा के समान भोगों को भोगता है। वह निष्क्रिय होता हुआ भी धावन आदि व्यापारों से विरत नहीं है। चलता हुआ भी चलता नहीं है, कर्म करता हुआ भी उसके फल से लिप्त नहीं है। वह ब्रह्मा से लेकर चौदह भुवनों को अपनी सन्निधि मात्र से घुमाता रहता है, आत्मसत्ता ही स्पन्द सत्ता है। अतः वह वायु से भी अधिक गतिशील है, स्थाणु से भी अधिक निष्क्रिय है और आकाश से भी अधिक निर्लिप्त है। जैसे वायु वृक्ष को कम्पित करता है वैसे वह मन में क्षोभ उत्पन्न करता है। जैसे सारथि अश्वों को प्रेरित करता है, वैसे वह इन्द्रियों को तत्तत्कार्यों में प्रवृत्त करता है।

भोगों को भोगने वाला विभु आत्मा सम्राट् के समान स्वस्थ होकर अपने में स्थित रहता हुआ भी देहरूपी घर में दुर्दशाग्रस्त पुरुषों के समान सदा कार्यरत रहता है; उसीका सदा अन्वेषण करना चाहिए, स्तुति करनी चाहिए और ध्यान करना चाहिए। उसकी कृपा से मनुष्य जरा-मरणरूपी संसार-बन्धन से मुक्त हो जाता है। लोक द्वारा आराधित वह महाप्रभु सर्वसम्पत्तिशाली होने पर भी गर्वान्वित नहीं होता। जैसे पुष्पों में सुगन्धि, तिलों में तैल, रसों में माधुर्य है, वैसे वह देव शरीरों में स्थित है। विचार न करने के कारण हृदय में स्थित भी वह आत्मा ज्ञात नहीं होता जैसे चिरकाल से अदृष्ट बन्धु अकस्मात् साक्षात्कार होने पर भी पहचाना नहीं जाता। विचार द्वारा उस परमात्मा को जान लेने पर परम आनन्द की प्राप्ति होती है जैसे प्रिय वन्धुजन के मिलने पर परम आनन्द प्राप्त होता है। अतिशय आनन्द देने वाले उस परमात्मा के दर्शन हो जाने पर वे दृष्टियाँ प्राप्त हो जाती हैं जिनसे मरणादि का भय दूर हो जाता है। उस प्रभु के दर्शन होने पर समस्त जगत् दृष्ट हो जाता है। उसके सुनने पर सब सुना जाता है, उसका स्पर्श होने पर सब स्पृष्ट हो जाता है उसके रहने पर जगत् स्थित रहता है। वह आत्मा सब देहों में स्थित है जैसे मरिचों में तीक्ष्णता। वह आत्मा आकाश में शून्यता, वायु में स्पन्दन, तेजों में प्रकाश, जल में माधुर्य, पृथिवी में काठिन्य, अग्नि में उष्णता एवं चन्द्रमा में शीतलता है। वह पदार्थ में सत्यरूप से विद्यमान है जैसे मसी में कालिमा है, हिम में शीतलता है, पुष्पों में सुगन्धि है, वैसे देहों में देहपति आत्मा विद्यमान है। जैसे सत्ता सर्वगत है, काल सर्वगत है, राजा की प्रभु-शक्ति सर्वगत है, वैसे आत्मा सर्वगत है। जैसे रेणु का आकाश से सम्बन्ध नहीं है, कमलदल का जल से सम्बन्ध नहीं है, वैसे आत्मा का अन्य से सम्बन्ध नहीं है। तुम्बी के ऊपर जलधारा गिरने से जैसे कोई प्रभाव नहीं पड़ता, वैसे देह में सुख-दुःख की अनुभूति में आत्मा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। जैसे दीप के आलोक को कोई रज्जु आदि से बाँध नहीं सकता वैसे सर्वपदातोत आत्मा को कोई बन्धन में नहीं डाल सकता। काम, भाव, अभाव एवं इन्द्रियों से हमारा कोई सम्बन्ध

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

नहीं है, जैसे आकाश का किसी से कोई सम्बन्ध नहीं है। जैसे कुम्भ के नष्ट हो जाने पर कुम्भाकाश की कोई क्षति नहीं होती है; वैसे देह के नष्ट हो जाने पर आत्मा की कोई क्षति नहीं होती है, अदृश्य पिशाच के समान यह मन मिथ्या उदित हुआ है।

यह एक विचित्र विडम्बना है कि अन्य भोग करता है और अन्य ग्रहण करता है। प्रकृति भोग करती है और मन ग्रहण करता है, देह को क्लेश होता है और आत्मा देखता है। न मेरी भोगों को भोगने की इच्छा है और न उनके त्याग की। जो आता है वह आए और जो जाता है वह जाए। वासनायें देह में रहें अथवा जायँ। उनसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। न वे मेरी हैं और न मैं उनका हूँ। इतने समय तक अज्ञानरूपी शत्रु ने मुझे क्लेश पहुँचाया। विष्णु भगवान् के प्रसाद से मुझे तत्त्वज्ञान हो गया और अब मैं उस अज्ञान और मोह का त्याग कर रहा हूँ। ज्ञानरूपी महामन्त्र से अहङ्काररूपी पिशाच को मैंने अपने शरीर से निकाल दिया है। मैंने ज्ञेय वस्तु तत्त्व को जान लिया है तथा द्रष्टव्य को देख लिया है; मुझे वह वस्तु प्राप्त हो गई है जिसके प्राप्त हो जाने पर कुछ भी प्राप्तव्य नहीं रह जाता अर्थात् सब कुछ प्राप्त हो जाता है।

मैंने उस उन्नत और व्यापक पारमार्थिक भूमि को प्राप्त कर लिया है जहाँ अनर्थों का अस्तित्व नहीं है, विषय-जाल नष्ट हो गए हैं, आशारूपी मृगतृष्णा शान्त हो चुकी है, मोहरूपी कुहरा विनष्ट हो गया है, दिशायें धूलि रहित हो गई हैं और शीतल शान्ति-वृक्ष विद्यमान हैं। विष्णु भगवान् के प्रसाद से मुझे ब्रह्मरूपी भगवान् आत्मा का दर्शन हो गया है और मैंने उन्हें ज्ञात कर लिया है। आत्मज्ञान से अहङ्काररूप निशाचर नष्ट हो गया है और मैं सर्वथा स्वस्थ हो गया हूँ। मैं परम-विश्रान्ति सुख का अनुभव कर रहा हूँ। अहङ्कार के परिमार्जित हो जाने पर सारे मोह, दुःख, चिन्ता, दुराशा आदि दूर हो जाते हैं। नरक, स्वर्ग, मोक्ष आदि के भ्रम दूर हो जाते हैं। चित्त में निर्मलता और शान्ति का उदय हो जाता है। पूर्णविश्रान्ति मिल जाती है और सच्चिदानन्द ब्रह्म की दिव्य अनुभूति होती रहती है।

"प्रबुद्धे भवती शाने तमहङ्काररराक्षसम्।
न पश्यामि नभोदीपे ज्वलिते तिमिरं यथा।।
तस्याहङ्काररयक्षस्य मनोविवरवासिनः।
दीपस्येव प्रशान्तस्य न वेद्मि गतिमीश्वरः।।
दृष्ट एव त्वयीशाने पलायनपरायणः।
सम्पन्नो मदहङ्कारश्चोरः सूर्योदये यथा।।
असदभ्युत्थिते तस्मिन्नहङ्कारे पिशाचवत्।
गते तिष्ठाम्यहं स्वस्थो निर्गोनस इव द्रुमः।।
शाम्यामि परिनिर्वामि जगत्यस्मिन् प्रबोधवान्।
तस्करेणोज्झितोऽस्मीति निर्वृतोऽस्मि चिरोदयम्।।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

शैत्यमभ्यागतोऽभ्यन्तः शान्ताशामृगतृष्णिकः ।
प्रावृडम्बुभरस्नातः शान्तिदाव इवाचलः ॥
प्रमार्जितेऽहमित्यस्मिन् पदे स्वार्थविचारतः ।
को मोहः कानि दुःखानि काः कदाशाः क आधयः ॥
नरकस्वर्गमोक्षादिभ्रमाः सत्यामहङ्कृतौ ।
भित्तावेव प्रवर्तन्ते चित्रेहा न नभस्तले ।
निरहङ्कारजलदे तृष्णासारविवर्जिते ।
भाति चित्तशरद्व्योम्नि स्वच्छता कान्तिशालिनी ॥
निरहङ्कारपङ्काय संप्रसन्नान्तराय च ।
मह्यमानन्दपसरसे तुभ्यमात्मन्नमो नमः ॥

योगवासिष्ठ, उपशम प्रकरण, सर्ग ३५, श्लोक ५६-६६

आत्मस्तवन—

आत्मा की सत्ता विश्वजनीन है। वह सर्वव्यापक है। अनेक जन्मों के व्यवधान के बाद आज बड़े भाग्य से आत्मदर्शन हुआ है। मैं उससे कृतकृत्य हूँ। आत्मा सबका पोषण करने वाला है। जैसे तरङ्ग और जल में कोई भेद नहीं है वैसे हम दोनों में भेद नहीं है। यह जगत् अनादिकाल से भाव और अभाव की अनन्त कल्पना से विलसित आत्मा का विस्तार ही है। जब तक आत्मदर्शन नहीं होता मनुष्य विविध योनियों में नाना प्रकार के कष्टों को भोगता रहता है, पुरुषार्थ की प्राप्ति नहीं होती, मनुष्य विविध सङ्कटों को झेलता रहता है।

आश्चर्य है कि वेद-वेदान्त के सिद्धान्तों, तर्क-पुराण के विविध तथ्यों गीतों आदि से जिस आत्मा का विशुद्ध वर्णन किया गया है, वह आत्मा कैसे विस्मृत हो जाता है? स्वच्छ, परब्रह्म परमात्मा का साक्षात्कार हो जाने पर ये देह के भोग अच्छे नहीं लगते। आत्मा से सूर्य प्रकाश ग्रहण करता है, चन्द्रमा शीतलता ग्रहण करता है। पर्वत भी स्थिरता प्राप्त करते हैं। आत्मा ही आकाश में वायु को धारण करता हैं और उसीके द्वारा पृथिवी अचल है।

सौभाग्य की बात है कि जीव और आत्मा का भेद मिट गया है। मैं (प्रह्लाद) तुम (आत्मा) हो गया हूँ और तुम (आत्मा) मैं (प्रह्लाद) हो गये हो। आत्मा सदा निर्मल, निराकार, साक्षिभूत, दिशा-काल आदि से अपरिछिन्न प्रत्यक्ष स्वरूप है। चर्म, मांस, अस्थि, रक्त आदि से भरा तथा मनरूप सारथि से युक्त यह शरीर आत्मा से प्रेरित होकर ही चलता है। चिरकाल के अनन्तर आत्मज्ञान हुआ है। जैसे प्रलय के अन्त में प्रलयाग्नि शान्त हो जाता है वैसे अब मेरा मन शान्त हो गया है। अब मैं विश्रान्ति सुख का अनुभव कर रहा हूँ।

जैसे पुष्पों में सुगन्धि, धौंकनी में वायु, तथा तिलों में तेल व्याप्त रहता है वैसे शरीर में आत्मा साररूप से व्याप्त है। आत्मा की माया बड़ी विचित्र है। वह दुष्टों का दमन करती है, सज्जनों की रक्षा करती है, भक्तों को वर देती है आदि आदि।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

जैसे वट के बीज में महान् वट वृक्ष रहता है, रहता था और रहेगा, वैसे ही परमाणु-रूप आत्मा के मध्य यह विश्व प्रपञ्च था, है और रहेगा। जैसे आकाश में मेघ, अश्व, गज, रथ आदि रूप से दिखाई पड़ते हैं वैसे आत्मा विविध पदार्थों के रूप में दृश्यमान होता है। आत्मज्ञानी पुरुष अपने पूर्व जन्मों की विविध दुर्दशाओं का स्मरण कर अपने मोह और अज्ञान पर हंसते हैं कि मैं क्या था और अब क्या हो गया हूँ। वह अनुभव करता है कि अब तो दुर्दिन चले गए जबकि मैं चिन्ताग्नि की धधकती ज्वाला में जल रहा था। आज मैं अपने शरीर में सम्राट् के समान स्थित हूँ और सुख-दुःख आदि के बन्धन से मुक्त हूँ जैसे कि आकाश बन्धन से मुक्त है। आज इन्द्रियगण पर विजय प्राप्त की गई है; मनरूपी हाथी जीत लिया गया है और भोगों का साम्राज्य नष्ट कर दिया गया है।

जैसे सुवर्ण में कटक, अङ्गद, केयूर आदि आभूषण विद्यमान हैं वैसे ही आत्मा में सांसारिक वस्तुयें विद्यमान हैं। आत्मा ब्रह्माण्डरूपी मोतियों का अविच्छिन्न दीर्घ तन्तु है और भूत-प्राणीरूप धान्यों के लिए चैतन्यरूपी महान् क्षेत्र है। जैसे अन्धपुरुष के लिए रूप-लावण्यसत्ता अविद्यमान-सी है वैसे ही आत्मा के बिना जगत् का समस्त सौन्दर्य आदि अस्तित्वरहित-सा है। जैसे अन्धेरी रात में सूर्य के बिना वृक्ष, पर्वत आदि की आकृति दृश्य नहीं होती है वैसे ही आत्मा के बिना यह शरीर काष्ठ, लोष्ठ आदि के समान निर्जीव-सा हो जाता है। जैसे सूर्य के प्रकाश से अन्धकार, हिम आदि नष्ट हो जाते हैं वैसे आत्मा के प्रकाश से मनुष्य के सुख-दुःख आदि नष्ट हो जाते हैं। जैसे दीप के आलोक में अन्धकार आदि विनष्ट हो जाते हैं वैसे ही आत्म-प्रकाश से जगत् के सुख-दुःखादि विनष्ट हो जाते हैं।

विद्यमानापि वस्तुश्रीर्न स्थिता त्वयि न स्थिते।
वनितारूपलावण्यसत्तेव गतचक्षुषः॥
सदपीह न सत्तायै वस्तुना वर्जितं त्वया।
तृप्तये न स्वलावण्यं मुकुरात् प्रतिबिम्बितम्॥
लुठति त्वां विना देहः काष्ठलोष्ठसमः क्षितौ।
सन्नप्यसन् नगोच्छ्रायः श्यामास्विव रविं विना॥
सुखदुःखक्रमः प्राप्य भवन्तं परिनश्यति।
प्राकाश्यमासाद्य यथा तमस्तेजोऽथवा हिमम्॥
क्षणमप्यास्थिरं वस्तु कथं कार्यकरं भवेत्।
तरङ्गैरुत्पलाकारैर्माला कथमवेक्ष्यते॥

योगवासिष्ठ; उपशम-प्र० सर्ग ३६, श्लो० ६१-६४, ७२

श्रीराघवेन्द्र का प्रश्न—

भगवन्! जब महात्मा प्रह्लाद धर्मयुद्ध में प्रतिष्ठित थे तब पाञ्चजन्य शंख की ध्वनि से वह कैसे प्रबुद्ध हुए?

भगवान् हरि सब प्राणियों के आत्मा हैं। वह सत्य-सङ्कल्प हैं। वह जैसा

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

सङ्कल्प करते हैं वैसा ही हो जाता है। उन्होंने जब सङ्कल्प किया कि प्रह्लाद को बोध हो जाय मैं तत्काल प्रबुद्ध हो गया।

आत्मा और नारायण में अभेद है। जैसे तिल और तेल में अभेद है, जैसे कुसुम और उसके गन्ध में अभेद है, वैसे नारायण और आत्मा में अभेद है। जो विष्णु है वह आत्मा है और जो आत्मा है वह विष्णु है। ये दोनों पर्यायवाची शब्द हैं, जैसे वृक्ष और तरु। प्रह्लाद नामक आत्मा स्वयं अपने ही द्वारा विष्णुभक्ति में प्रवृत्त हुआ। स्वात्मभूतविष्णु से प्रह्लाद ने वर प्राप्त किया। अपने मन को विचारवान् बनाकर उन्होंने ज्ञान प्राप्त किया। आत्मा कभी स्वात्मभूत विष्णु द्वारा प्रबुद्ध होता है और कभी भक्तिरूप प्रयत्न से विष्णुदेह द्वारा बोधित होता है। चिराराधित विष्णुभगवान् विचारहीन पुरुष को ज्ञान नहीं देते; आत्मसाक्षात्कार में प्रयत्न द्वारा अर्जित विचार मुख्य कारण हैं वर आदि गौण हैं। अतः इन्द्रियों को वश में करके विचारवान् बनना चाहिए। जो कुछ प्राप्त होता है वह अपने शुभाचरणजन्य पुरुषार्थ से ही होता है, अन्यथा नहीं। प्रयत्न का अवलम्बन कर इन्द्रियरूप पर्वतों को लाँघकर और संसार सागर को पार कर परमपदरूप आत्मज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

यदि पौरुष प्रयत्न के बिना ही भगवान् विष्णु का दर्शन हो सकता है तो मृगों और पक्षियों को क्यों नहीं होता? ज्ञान की दृढ़ता से आक्रान्त मन वाले आत्मा से जो परमपद प्राप्त किया जाता है, वह प्रकारान्तर से अर्जित नहीं हो सकता। भगवान् नारायण हमारे हृदय में विद्यमान हैं। उनकी आराधना न कर बाह्य भगवान् की आराधना प्रशंसनीय नहीं है।

जो मुख्य का त्याग कर गौण की आराधना करता है, वह सिद्ध रसायन का त्याग कर साध्य के लिए प्रयास करता है। जो आत्मज्ञान से रहित तथा विवेकशून्य पुरुष हैं वे अपने कल्याण के लिए भगवान् के बाह्यरूपों का पूजन, अर्चन आदि कर सकते हैं। उस पूजन से उनका चित्त निर्मल हो जायगा। भगवान् से वर प्राप्ति भी दीर्घकालिक तपोरूप पुरुषार्थ का ही फल है। मनोनिग्रह से उत्तमोत्तम फलों की प्राप्ति होती है। अतः मन पर सर्वात्मना नियन्त्रण करना सर्वथा वाञ्छनीय है।

यो हि विष्णुः स एवात्मा योह्यात्मासौ जनार्दनः।
विष्ण्वात्मशब्दौ पर्यायौ यथा विटपिपादपौ॥
चिरमाराधितोऽप्येषः परमप्रीतिमानपि।
नाविचारवतो ज्ञानं दातुं शक्नोति माधवः॥
पूर्वमेव बलात्तस्मादाक्रम्येन्द्रियपञ्चकम्।
अभ्यसन् सर्वयत्नेन चित्तं कुरु विचारवत्॥
पौरुषं यत्नमाश्रित्य प्रोल्लङ्घ्येन्द्रियपर्वतम्।
संसारजलधिं तीर्त्वा पारं गच्छ परंपदम्॥
अभ्यासवैराग्ययुतादाक्रान्तेन्द्रियपन्नगात्।
नात्मनः प्राप्यते यत्तत्प्राप्यते न जगत्त्रयात्॥
विचारोपशमाभ्यां हि न विनाऽसाद्यते हरिः।
सर्वेषामुत्तमस्थानां सर्वासां चिरसम्पदाम्॥
स्वमनोनिग्रहो भूमिर्भूमिः . सस्यश्रियामिव।

योगवासिष्ठ, उपशम प्र०, सर्ग ४३, श्लो० ६, १०, १२, १४, १८, २३, ३५

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

१२. गाधि का आख्यान

कोसल देश में गाधि नामक एक ब्राह्मण रहता था जो श्रोत्रिय, धीमान् और धर्ममूर्ति था। वह तप करने के निमित्त एक वन में गया। वह एक निर्मल सरोवर में आकण्ठ जल में खड़ा होकर तप करने लगा। लगभग आठ मास तक उसने घोर तप किया। विष्णु भगवान् प्रसन्न होकर उसके समक्ष प्रकट हुए और बोले—"विप्र ! जल के मध्य से निकलो। तुम्हारी तपस्या पूर्ण हो गई। अभिमत वर प्राप्त करो।"

गाधि ब्राह्मण ने कहा—"भगवन् ! मैं संसार की माया को देखना चाहता हूँ जो जगत् को अन्धा बना देती है।"

'तथास्तु' कहकर भगवान् अन्तर्हित हो गए।

ब्राह्मण भगवान् के दर्शन से बड़ा प्रसन्न हुआ—भगवान् के वचन का स्मरण करते हुए वह स्नानार्थ सरोवर में प्रविष्ट हुआ। जल में डूबकर वह अधमर्षण मन्त्र का जप करने लगा।

उस समय उसे यह भ्रान्ति हुई कि "मेरे प्राण निकल गए हैं, और परिवार के सभी लोग मेरे शव को घेरकर करुण विलाप कर रहे हैं। मेरी स्त्री शव के पास बैठकर पागलों के सदृश चिल्ला रही है और रो रही हैं। परिवार के लोग मुझे श्मशान घाट पर ले गए जहाँ चिता बनाई गई और मेरा दाह संस्कार सम्पन्न हुआ।

श्वपच राज्य लाभ—

गाधि ने जल के भीतर देखा कि—"मेरा जन्म चाण्डाल कुल में किसी श्वपय के यहाँ हुआ है। बचपन में मेरा लालन-पालन चाण्डाल बालकों के समान हुआ और मैं षोडश वर्ष का सुन्दर बालक हो गया। मैं कुत्तों के साथ जङ्गलों में घूमता फिरता था। मेरा नाम कटंज है और एक श्याम वर्ण की श्वपच कन्या के साथ मेरा विवाह हो गया। मैं जङ्गल में उसके साथ बिहार करता था, पुष्प शय्या पर शयन करता था और आनन्द से जीवन व्यतीत करता था। मैंने एक कुटिया भी बना रखी थी जहाँ मैं परिवार के अन्य सदस्यों के साथ रहता था। शनैः शनैः मेरा परिवार बढ़ गया और मैं जरावस्था में प्रविष्ट हो गया। मैंने देखा कि अकस्मात् मेरे परिवार के सभी सदस्य काल—कवलित हो गए।

मैं शोक मग्न हो विक्षिप्त सा एकाकी जङ्गल में इधर-उधर घूमने लगा। भ्रमण करता हुआ मैं कीर देश में श्रीमती नगरी में पहुँचा। वहाँ का वातावरण उल्लास परिपूर्ण था। राज-मार्ग पुष्पों से सुशोभित, सामन्त राजाओं एवं विशिष्ट नागरिकों से भरा था जहाँ अङ्गनायें नृत्य कर रही थीं। वहाँ मैंने सुवर्ण रत्नों से

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

अलंकृत विशाल मङ्गल-हस्ती को देखा जो सुमेरु पर्वत के समान ऊँचा था। राजा के निधन होने से वह हस्ती राजा की खोज में इधर उधर भ्रमण कर रहा था। मैंने कौतुक से उस हस्ती को चिर काल तक देखा। उस हस्ती ने मुझे अपने शुण्ड से पकड़ लिया और अपने पृष्ठ पर बैठा लिया।

जैसे प्रलयकालिक मेघ को आकाश में देखकर सागर गर्जते हैं, वैसे नागरिकों के जय जयकार की प्रचण्ड ध्वनि से आकाश मण्डल गूँज उठा। चारों ओर विजय दुन्दुभि (नगाड़ों) की ध्वनि होने लगी; नर्तकियाँ राज-पथ पर नाचने लगीं और हर्षोल्लास का दृश्य सर्वत्र दिखाई देखने लगा। सुन्दर ललनायें मुझे अलङ्कृत करने लगीं। बन्दीगण मङ्गल गान करने लगे। मेरे शरीर को चन्दनादि विविध सुगन्धित द्रव्यों से सुशोभित बनाया गया। मेरा अभिषेक हुआ और मैं आनन्द के साथ राज्य करने लगा।

राज्यभ्रंश :—

विलासिनी स्त्रियों से विभूषित, मन्त्रि मण्डल से सम्मानित, सामन्तों द्वारा अभिवन्दित, छत्र-चामर आदि से अलङ्कृत होकर मैंने बड़े कौशल एवं आनन्द के साथ आठ वर्षों तक कीर देश में राज्य किया। राजोचित शासन, दया, दाक्षिण्य आदि सद्वृत्तों का यथाविधि पालन किया।

एक दिन साधारण वेष में मैं भीतरी आङ्गन से वाहरी आंगन मे एकाकी गया। वहाँ मैंने काले और स्थूल देह वाले चाण्डाल संघ को देखा जो कि कोकिल के समान मधुर गान कर रहें थे। उनमें से एक वृद्ध उठा और बोला—"कटंज क्या संगीत प्रेमी राजा तुम्हारे मधुर गान को पसन्द करता है? तुमको यहाँ सम्मानित देखकर बड़ा आनन्द हो रहा है क्योंकि बन्धुओ का दर्शन असीम आनन्द को देता है और सब प्रकार के सङ्कटो को दूर करता है।

वातायन में स्थित स्त्रियाँ एवं अमात्य आदि यह जान कर कि मैं चाण्डाल हूँ—बहुत दुःखी हुए? मैं अन्तःपुर में पहुचा। वहाँ किसीने मेरा सम्मान नहीं किया। साधारण परिचारकों तक ने मेरी अवहेलना की, नागरिकों ने मुझसे बोलना बन्द कर दिया। सब प्रकार मेरा बहिष्कार हो गया। चितामें जलाई गई। देवियों, मन्त्रियों तथा विशिष्ट सभासदों ने अग्नि प्रवेश किया और अपने प्राणों की आहुति दे डाली बड़ा रोमाञ्चकारी दृश्य राज्य भवन में उपस्थित था। अन्त में मैं अग्नि में प्रविष्ट होने को उठा। जल में अधमर्षण मन्त्र की समाधि से उद्बुद्ध हो गया।

गाधि का प्रत्यक्षावलोकन—

गाधि ने विचार किया कि मैं स्नान के लिए सरोवर में प्रविष्ट हुआ था। मैंने स्नान, तर्पण आदि कार्यों को किया। परन्तु चाण्डाल राज्य आदि से मुझे क्या प्रयोजन ?

दूसरी बात यह है कि मेरी मृत्यु कैसे हुई? मेरी माता, स्त्री, बन्धु-बान्धव कौन हैं? मेरा तो विवाह ही नहीं हुआ है। इस जङ्गल में मेरे बन्धु-बान्धव कौन

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

हैं ? मैं जीवित हूँ तो मेरी मृत्यु कैसे हुई ? ये सब बातें मिथ्या, माया-जन्य एवं काल्पनिक प्रतीत हो ती हैं।

ऐसा विचार कर वह अपने आश्रम में गया। वहाँ उन्होंने कतिपय दिन बिताए। एक समय वहाँ कोई श्रोत्रिय ब्राह्मण अतिथि आया। गाधि ने फल, पुष्प, रस, भोजन आदि से उसका सत्कार किया। दोनों ने सन्ध्यावन्दन और जप किया। पल्लव के कोमल आसन पर बैठकर दोनों में वार्तालाप होने लगा। गाधि ने अतिथि से पूछा—"ब्रह्मन् ! आप क्यों कृश एवं श्रान्त हैं।"

अतिथि ने कहा—"भगवन् ! आप मेरी कृशता का कारण सुनिए। इस भूतल में कीर नाम से विख्यात एक समृद्ध और विशाल देश है। वहाँ मैं एक मास तक रहा और नागरिकों ने मेरा बड़ा आदर-सत्कार किया। कथा-प्रसङ्गवश किसीने कहा कि "इस देश में आठ वर्षों तक चाण्डाल ने राज्य किया। यह वृत्त जानकर सैकड़ों ब्राह्मणों ने अग्नि में प्रवेश कर प्राण त्याग कर दिया।"

मैं उक्त बात को सुनकर वहाँ से प्रयाग गया और प्रायश्चित्त करने लगा। तीन चान्द्रायण व्रत पूर्ण कर मैं यहाँ आया हूँ। अतः कृश एवं श्रान्त हूँ।"

गाधि ने उक्त प्रसङ्ग के विषय में पुनः जिज्ञासा की और अतिथि ने पुनः दूसरा समाधान दिया।

गाधि को महान् आश्चर्य हुआ। किसी प्रकार रात्रि व्यतीत हो जाने पर उन्होंने स्नानादि नित्य—क्रियायें सम्पन्न कीं। अतिथि के चले जाने पर उन्होंने विचार किया—"जो कुछ मैंने भ्रान्त दशा में देखा था उसको अतिथि सत्य प्रमाणित कर रहा है ? क्या यह सब माया-जाल है ? मैंने बन्धुओं के मध्य में जो मरण देखा वह तो निस्सन्देह मायिक है, किन्तु उस चाण्डाल वृत्त को देखना आवश्यक है। अतः मुझे उस देश में जाना है। गाधि स्वप्न—दृष्ट जगन्माया को प्रत्यक्ष देखने के लिए प्रवृत्त हुए।

गाधि अन्तरालस्थ विविध देशों को लाँघकर श्वपचों की उस बस्ती में गए जहाँ उन्होंने मायिक वास किया था। वहाँ पहुँचने पर उन्होंने छोटी-सी कुटिया देखी जो नारकीय घृणित वस्तुओं से परिपूर्ण थी। वहाँ उन्हें खाना, पीना, सोना, खेलना, शिकार करना आदि सब प्रत्यक्ष दिखाई दिया।

उन्होंने अपनी कुटिया और ग्राम को बड़े ही आश्चर्य से चिरकाल तक देखा। ग्राम-वासियों से उन्होंने अपने विषय में जिज्ञासा की।

ग्रामवासियों ने स्पष्टरूप से कटंज के समस्त वृत्तान्त को यथाघटित उसी रूप में विस्तार से कह सुनाया। उन्होंने यह भी कहा कि परिवार के सदस्यों के मर जाने पर कटंज कीर देश में घूमता-फिरता गया और भाग्यवश उसने आठ वर्षों तक कीर देश का राज्य भी किया। पश्चात् यह विदित होने पर कि वह चाण्डाल है, नागरिकों ने उसका त्याग कर दिया और वह लज्जावश अग्नि में प्रविष्ट हो गया।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

वहाँ गाधि एक मास तक रहा। उसने श्वपचों से समस्त वृत्तान्त सुना जैसा कि उसने स्वयं अनुभव किया था। यह सब देख-सुनकर गाधि को परम विस्मय हुआ।

माया-महत्त्व-कथन—

गाधि ने वहाँ अपने जीवन की सभी घटनाओं एवं क्रिया-कलापों को देखा, जैसा उन्होंने प्रतिभास में देखा था। स्पष्टतः सब घटनायें एवं क्रिया-कलाप उसी रूप में दृष्टिगोचर हुए और ग्रामीणों द्वारा वर्णित एवं चर्चित हुए। गाधि के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वह अन्ततोगत्वा कीरदेश जाने को समुद्यत हुआ। अनेक नदियों, पर्वतों, देशों तथा जंगलों को लाँघकर वह हिमालय की तलहटी में स्थित कीरदेश में पहुँचा। वहाँ उन्होंने नागरिकों से पूछा—"क्या आपलोग जानते हैं कि यहाँ कभी कोई चाण्डाल राजा था ?"

नागरिकों ने कहा—"यहाँ आठ वर्षों तक चाण्डाल ने राज्य किया था जिसे मङ्गलहस्ती ने राजा बनाया था। बाद में बात खुल गई और वह अग्नि में जलकर भस्म हो गया। इस घटना को व्यतीत हुए बारह वर्ष हो गए हैं।" सभी नागरिकों ने एक स्वर में एक ही बात कही।

गाधि ने स्वयं अपनी आँखों से सभी स्थानों को देखा और जहाँ जो कार्य सम्पन्न होते थे सब उसके सम्मुख उपस्थित से हो गए। उसने अनुभव किया कि जिस राज्य का मैंने पहले उपभोग किया था वही आज पूर्वजन्म के चरित्र की भाँति दृष्टिगोचर हो रहा है। यह सत्य है कि ये सब बातें पहले स्वप्न में देखी गईं, परन्तु आश्चर्य है कि ये सब कैसे सामने प्रत्यक्ष-सी हो रही हैं। न जाने क्यों और किस लिए इस माया का पुनः-पुनः सृजन हो रहा है। हाँ, स्मृत हो गया। विष्णु भगवान् की कृपा से यह मायाजाल मेरे समक्ष प्रस्तुत हुआ है। अब मुझे पुनः उग्र तप करना है जिससे मैं इस माया की गतिविधि को समझ सकूँ।

ऐसा विचार कर गाधि ने पर्वत की कन्दरा में जाकर डेढ़ वर्ष तक अञ्जलिभर जल पीकर घोर तप किया। भगवान् विष्णु प्रसन्न होकर उनके पास आए और बोले—"गाधि ! तुमने मेरी माया को देखा ? उसके विविध क्रिया-कलाप को देखा ? तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हो गया। अब तुम क्यों चाहते हो ? क्यों तप कर रहे हो ?"

गाधि ने विष्णु भगवान् की पूजा पुष्प, अर्घ्य, पाद्य आदि से की और हाथ जोड़कर कहा—"भगवन् ! मैंने आपकी माया को देखा। परन्तु कृपया मेरी इस शङ्का को दूर कीजिए कि जिस भ्रम को मैंने मन में स्वप्न के समान देखा, वह जाग्रदवस्था में कैसे और क्यों दिखाई देता है ? जल में क्षण भर के लिए स्वप्न के समान उपलब्ध यह भ्रम चिरकाल तक लोक में कैसे अनुभूत होता है ?"

भगवान् विष्णु ने कहा—"गाधि जिस संसाररूपी भ्रम को तुमने देखा है उसे तत्वज्ञानरहित, वासनाजाल—विद्ध लोग देखते हैं, वस्तुतः वह कुछ नहीं है। आकाश, पर्वत, समुद्र, पृथिवी आदि कुछ भी बाहर नहीं है, ये सब चित्त की कल्पनायें हैं।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

जैसे अङ्कुर में पत्र, पुष्प, फल आदि हैं, वैसे ही मन में यह समस्त जगत् है। बाहर कुछ नहीं है। इस तथ्य का अनुभव बाल, वृद्ध, युवा सभी को है। जैसे वृक्ष के मूल में फल, पुष्प, पत्रादि रहते हैं, वैसे ही मन में, जो वासना से आक्रान्त है, असंख्य वृत्तान्त भरे पड़े हैं। वृक्ष के गिर जाने पर जैसे पत्र, पुष्प, फल आदि नष्ट हो जाते हैं, वैसे वासना के गलित हो जाने पर चित्त में कुछ नहीं रह जाता। जिस चित्त में अनन्त जगत् का जाल फैला हुआ है, उसमें यदि चाण्डालत्व प्रकट हो गया तो इसमें क्या आश्चर्य है? जैसे तुमने प्रतिभासवश श्वपचता देखी है, वैसे ही एक अतिथि ब्राह्मण आया, उसने भोजन किया, शयन किया, कथावृत्त का वर्णन किया आदि सब संभ्रम हैं। उसी प्रकार मैं भूत देश जा रहा हूँ, वहाँ कुटिया आदि दिखाई पड़ी, कटंज का घर देखा, ग्रामीणों ने कटंज के विषय में सूचना दी इत्यादि सब सम्भ्रम ही हैं। उसी प्रकार कीर नगर में नाना नागरिकों से श्वपच राजा के विषय में जानकारी प्राप्त करना आदि सब सम्भ्रम ही है।

इस प्रकार तुमने यह सब मोहजाल देखा। तुम जो सत्य है उसे जानते हो और जो असत्य है उसे भी जानते हो। वासना से ओत-प्रोत चित्त क्या नहीं देखता है? जो कार्य वर्ष भर में साध्य है वह स्वप्न में क्षण भर में सम्पन्न हो जाता है। न वह अतिथि माया था, न वे भूत थे, न कीर थे और न उनका नगर था। तुमने यह सब सम्भ्रम में देखा था। अतिथि की बात सुनकर तुम भूतदेश तथा कीरदेश जाने के लिए समुद्यत हुए। मार्ग में कहीं श्रान्त हो विश्राम करने लगे। वहीं विश्रान्तकाल में तुमने स्वप्न के समान यह भूतदेश है, ये वहाँ के रहने वाले ग्रामीण हैं, यह कीरदेश है और ये वहाँ के नागरिक हैं इत्यादि भ्रम देखा। तुमने यह सब मन का विभ्रम देखा, जो सर्वथा काल्पनिक है। उठो, ब्राह्मणोचित्त कर्मों का अनुष्ठान करो, क्योंकि अपने कर्मों का अनुष्ठान किए बिना मनुष्य का कल्याण नहीं होता है।

गाधे स्वाधिविधूतस्य स्वरूपस्यैतदात्मकम्।
चेतसोऽदृष्टतत्त्वस्य यत्पश्यस्युरुविभ्रमम्॥

बहिर्न किञ्चिदप्यस्ति खाद्र्यब्ध्युर्वीदगादिकम्।
एतत् स्वचित्तएवास्ति पत्रपुञ्जमिवाङ्कुरे॥

सत्यं पृथ्व्यादि चित्तस्थं न बहिष्ठं कदाचन।
अङ्कुरस्थः पल्लवस्तु तस्माद् यस्मात् फलश्रियः॥

चित्ते वृत्तान्तलक्षाणि संस्थितान्यात्तवासने।
पादपे फलपुष्पाणि मूलाक्रान्तावनोविव॥

त्यक्तावनेर्विटपिनो भूयः पत्राणि नो यथा।
निर्वासनस्य जीवस्य पुनर्जन्मादि नो तथा॥

यत्रानन्तजगज्जालं संस्थितं तेन तेजसा।
श्वपचत्तं प्रकटितं यदि तद्विस्मयोऽत्र किम्॥

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

तथैवातिथिरायातो भुक्तवान्सुप्तवान्द्विजः ।
कथां कथितवाँश्चेति दृष्टवानसि सम्भ्रमम् ।।
तथैवोत्थाय गच्छामि प्राप्तोऽहं भूतमण्डलम् ।
इमे भूता इमे ग्रामा दृष्टवानसि संभ्रमम् ।।
तथैवेदं कटंजस्य प्राक्तनं लुठितं गृहम् ।
जनैरुक्तं कटंजस्य दृष्टवानसि संभ्रमम् ।।
तथैव कीरनगरं प्राप्तोऽस्मि कथितं चरंमे ।
कीरैः श्वपचराजत्वं दृष्टवानसि संभ्रमम् ।।
एवं सर्वं त्वया दृष्टं मोहजालं द्विजोत्तम ।
यत्सत्यमिति जानासि यच्चासत्यमवैषि च ।।
वासनावलितं चेतः किन्नामान्तर्न पश्यति ।
साधितं दृश्यते स्वप्ने वर्षसाध्यं प्रयोजनम् ।।

योगवासिष्ठ उपशम-प्र० सर्ग ४८, श्लो० ४८-५१, ५४-६३

गाधि की ज्ञान-प्राप्ति—

गाधि अपने मोह की निवृत्ति के लिए इधर-उधर घूमते रहे । जनता से श्वपच-वृत्तान्त सुनकर उन्हें हार्दिक ग्लानि हुई । उन्होंने एकान्त में जाकर विष्णु भगवान् की आराधना की । भगवान् प्रसन्न होकर प्रकट हुए और बोले—"गाधि ! अब तुम क्या चाहते हो" ?

गाधि ने कहा—"भगवन् ! छः मास तक मैंने भूत और कीर जनपद में भ्रमण किया । अपना वृतान्त सुनकर अत्यन्त चिन्तित हूँ । आपने मायाजाल दिखाया, परन्तु मैं मोहजाल में फँस गया हूँ । कृपया मेरा उद्धार कीजिएं" ।

भगवान् ने कहा—"गाधि ! काकतालीय न्याय से भूत और कीरदेश के निवासियों में, तुम्हारे मन के सदृश, कटंज चाण्डाल की स्थिति भ्रान्तिवश प्रतिबिम्बित है । अतः वे तुम्हारे वृत्तान्त को जैसा का तैसा कहते हैं । बाधक ज्ञान के बिना प्रतिभास भ्रमता को प्राप्त नहीं होता । किसी चाण्डाल द्वारा गाँव के किनारे बनाये हुए मकान को "इसे मैंने बनाया था" इस प्रकार की भ्रान्ति तुम्हें हो गई । कभी-कभी भ्रान्तिरूप प्रतिभास बहुतों को एकही-सा होता है । बहुत से लोग एकही प्रकार का स्वप्न देखते हैं । भ्रान्त चित्त वाले भूत और कीरदेश के वासियों के सदृश प्रतिभास से उत्पन्न भ्रम को वैसे ही देखा । अस्तु तुम अपने आश्रम में जाकर अपने वर्ण और आश्रम धर्म का पालन करो" ।

भगवान् के आदेश से गाधि ने अपने आश्रम में जाकर अपने आश्रम धर्म का पालन करने लगे । उन्होंने पुनराधना की और भगवान् प्रकट हो गए ।

भगवान् ने कहा—"गाधि ! अब क्या चाहते हो ?" गाधि ने विनीत भाव से कहा—"भगवन् ! मैं अपनी चाण्डाल स्थिति का स्मरण कर और संसार माया पर

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

विचार कर मुग्ध-सा हो गया हूँ। इसलिये मेरे मोह का निराकरण करने की कृपा कीजिए"।

भगवान् ने कहा—"ब्रह्मन्! यह संसार माया का विस्तृत जाल है। आत्म-विस्मृति से अनेक प्रकार की आश्चर्यमयी घटनायें हो सकती हैं। भूतपुर और कीरपुर में आपने मोह से जो देखा, वह सर्वथा सम्भव है, क्योंकि लोगों को नाना प्रकार के भ्रम जाग्रत् और स्वप्न अवस्था में होते रहते हैं। भूत देश और कीरनगर के वासियों ने भी तुम्हारे समस्त मिथ्या भ्रम को सत्य के समान देखा। कटंज नाम का चाण्डाल भूतदेश में पहले हुआ था जैसा कि तुमने देखा है, वह कल-रहित होकर दूसरे देश में गया और कीरदेश का राजा बन गया। तदनन्तर उसने अग्नि में प्रवेश किया। जल के अन्दर डूबे हुए तुम्हारे मन में कटंज का समस्त व्यवहार भ्रान्ति से प्रतिभासित हुआ। ऐसा देखा गया है कि लोग देखी हुई बात को भूल जाते हैं और सर्वथा अज्ञात एवं अदृष्ट वस्तु को देखने लगते हैं। जैसे स्वप्नदृष्ट मनोरथ एवं सन्निपात में विविध प्रकार के भ्रम देखे जाते हैं वैसे ही जाग्रत् में मानस भ्रम दृष्टिगोचर होते हैं। जैसे ज्ञानीजन भविष्यकाल में होने वाली घटना को भूतकाल के समान देखते हैं वैसे ही कटंज का अतीत आचरण भी वर्तमान प्रतिभा को प्राप्त हो गया। 'मैं' और 'मेरा' यह भ्रम आत्मज्ञानी को नहीं होता, परन्तु जिन्हें ज्ञान नहीं हैं, जो अल्पज्ञ हैं वे इस भ्रम में डूबते रहते हैं। "सब कुछ मैं हूँ" ऐसी भावना से तत्त्वज्ञानी दुःखी नहीं होता। क्योंकि भेद दृष्टि के नष्ट हो जाने से वह कभी भी दुःखी एवं भ्रान्त नहीं होता, परन्तु गाधि! तुम्हारे समान जिनका चित्त वासना जाल ग्रस्त है और जो चेतना-रहित है, ऐसे पुरुष उस भ्रम का निवारण नहीं कर सकते और वे उससे आक्रान्त हो जाते हैं। तुम भी उनके समान प्रतिभास से आक्रान्त हो जाते हो। जिन लोगों ने अपने चित्त पर विजय प्राप्त कर ली हैं वे मायाजाल से प्रभावित नहीं होते। तुम दस वर्षों तक चित्त निरोधकर तप करो और तब ज्ञान प्राप्त करोगे।"

ऐसा कहकर भगवान् पुण्डरीक अन्तर्हित हो गए। गाधि ने ऋष्यमूक पर्वत पर जाकर दस वर्षों तक घोर तप किया और आत्मज्ञान प्राप्त किया।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

१३. उद्दालक मुनि का आख्यान

मुनि का मनोरथ—

उद्दालक मुनि गन्धमादन पर्वत के एक सुन्दर प्रदेश में वास करते थे। उन्होंने विचार किया—"पुरुषार्थों में सर्वश्रेष्ठ पुरुषार्थ कौन है, जिसके प्राप्त हो जाने पर चित्त को विश्रान्ति और जन्म-मरण के वन्धनों से मुक्ति मिल जाती है। मेरा चित्त परम पद में कव विश्रान्त होगा ? मेरी भोगवासना कब शान्त होगी ? मेरा मन तरङ्गों के समान उठने वाले विविध विकल्पों से कव मुक्त होगा ? मैं धर्मार्थकाममोक्षरूप पदार्थों के मार्जन में निःस्पृह हो कब शान्त हो सकूँगा ? मैं बाह्य और अभ्यन्तर समस्त जगत् को कव चिन्मात्र रूप में देख सकूँगा ? इष्ट और अनिष्ट की कल्पना से मुक्त, हेय और उपादेय की भावना से रहित, स्वप्रकाश परमपद में प्रतिष्ठित मैं कब सन्तोष मंत्र का पान कर सकूँगा ? दुरास्था से भरी हुई, हृदयकमल को जर्जर करने वाली, अविद्यान्धकाररूपिणी रात्रि कव विनष्ट होगी ? पर्वत-कन्दराओं में निर्विकल्पकसमाधि में स्थित मैं कव शिला के सदृश निश्चलता को प्राप्त करूँगा ? मेरा अहङ्काररूप शत्रु सत्त्वोद्रेक से कव विनष्ट हो जायगा ? निर्विकल्पक समाधि में स्थित मेरे मस्तक पर चिड़िया कव घोंसला वनायेगी ? तृष्णा से व्याप्त, जन्म-मरण आदि से जर्जर, इस संसार का त्याग मैं कब कर सकूँगा ?"

उक्त प्रकार की चिन्ताओं से परवश मुनि उद्दालक ने पुनः पुनः ध्यानावस्थित होने का प्रयास किया; परन्तु विषयों से आकृष्ट चञ्चल चित्त के कारण उन्हें स्थिरता प्राप्त न हुई। उनका मन बाह्य विषयों में आकृष्ट हो जाता था। फलस्वरूप उन्हें शान्ति न मिली।

किं तत्प्राप्यं प्रधानं स्याद्यद्विश्रान्तौ न शोच्यते।
यत्प्राप्य जन्मना भूयः सम्बन्धो नोपजायते॥
कदाहं व्यक्तमनने पदे परमपावने।
चिरं विश्रान्तिमेष्यामि मेरुशृङ्ग इवाम्बुदः॥
कदा शममुपैष्यन्ति ममान्तर्भोगिसंविदः।
आलोलकल्लोलरवा ऊर्मयोऽम्बुनिधाविव॥
कदा विकल्पजालं मे न लगिष्यति चेतसि।
स्थितमप्युज्झितासङ्गं पयः पद्मदले यथा॥
कदा विकल्पपर्यस्तं मनो दोलावदोलनम्।
शममेष्यति मे शान्तवातौजस इव भ्रमः॥
सबाह्याभ्यन्तरं सर्वं शान्तकल्पनया धिया।
पश्यंश्चिन्मात्रमखिलं भावयिष्याम्यहं कदा॥

योगवासिष्ठ, उपशम-प्र० सर्ग ५१, श्लो० १७-१६, २१, २४, २८

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

उद्दालक-विचार—

मुझे सांसारिक वृत्तियों से क्या प्रयोजन है ? बुद्धिमान् मनुष्य अन्त में दुःख देने वाले कार्यों को नहीं करते हैं। जो शान्तिरूपी रसायन को छोड़कर विषयभोग की ओर दौड़ता है, वह मन्दार वृक्ष का त्याग कर विषवृक्षों से भरे जङ्गल की सेवा करता है। शमरूपी अमृत के विना निरतिशय आनन्द में विश्रान्ति नहीं हो सकती। ईप्सित वस्तुओं का ग्रहण और अनीप्सित का त्याग दुःख के लिए ही है, सुख के लिए नहीं। जैसे रेशम का कीड़ा अपने लार के फेन के प्रयोग से अपने को वन्धन में डाल देता है वैसे ही मन अपने वासनाजाल का प्रसार अपने वन्धन के लिए करता है। जगत् की प्रवृत्ति जन्म-मरण, बाल्य-यौवन, सुख-दुःखादि को प्रदान करने वाली है, मरण के अनन्तर नरक, पुनर्जन्म आदि विविध क्लेशों की जननो है, अतः उसका त्याग आवश्यक है।

अज्ञान की घनता के साथ साथ चित्त की घनता भी बढ़ती है। अज्ञान के क्षीण हो जाने पर चित्त, में तनुता (कार्श्य) आ जाती है, वासनाओं के क्षीण हो जाने पर विचार से चित्त की शुद्धि हो जाती है, चित्त के शुद्ध हो जाने पर अहंकार की वासना नष्ट हो जाती है और मानव स्वप्रकाश चैतन्यस्वरूप की अनुभूति करने लगता है। फलतः मैं, तुम, वह, मेरा, तेरा इत्यादि प्रतीतियाँ जो मिथ्या हैं और विनाश की हेतु हैं, दूर हो जाती हैं। विचार करने पर 'अहम्' का स्वरूप बनता नहीं, वह सर्वथा निराधार सिद्ध होता है। विवेक एवं विचार से ज्ञान उत्पन्न होता है और ज्ञान से 'अहं' भाव का विनाश होता है। शरीर मांस, रक्त, मज्जा, अस्थि, वायु आदि से निर्मित है। अतः उसमें 'अहम्' की प्रतीति कैसे हो सकती है ? अज्ञान के कारण मानव इधर-उधर संसार में भटकता फिरता है। मन एवं इद्रियों के क्रिया-कलाप से ज्ञानी पुरुषों को कभी भी सन्तोष नहीं हो सकता है, वे तृष्णा, वासना एवं अहङ्कार का त्यागकर विशुद्ध चिदानन्द सत् स्वप्रकाशस्वरूप की अनुभूति में विचरते हैं।

चित् सर्वव्यापक है और जन्म-मरण से मुक्त है। उसका (अविनाशी चिदात्मा का) दर्शन होने पर कौन मरता है और कौन मारता है। अर्थात् वध्य-घातकभाव समाप्त हो जाता है। चिदात्मा का जीवन से कोई प्रयोजन नहीं है। जीवन और मरण की कल्पना मानस है। जिसको देह में अहंभाव है, वह भाव-अभाव, अर्थात् जन्म-मरण के बन्धन में पड़ता है। आत्मा को कोई अहंभाव नहीं है। अतः वह इस बन्धन से सर्वथा मुक्त है। शरीर रक्त और मांसमय है, चित्त जड़ है, तब देह में अहंभाव कैसा ? इन्द्रियाँ अपने-अपने व्यापारों में प्रवृत्त हैं और सभी पदार्थ अपने स्वरूप में स्थित हैं। अतः अहंभावना कैसे हो ? सत्त्व, रज, तम आदि गुण अपने-अपने स्वभाव, प्रकाश, प्रवृत्ति और मोह में स्थित हैं, प्रकृति अपने स्वभाव, अर्थात् गुण—साम्यावस्था—में स्थित है और सत् ब्रह्म सत्स्वभाव में स्थित है, अतः अहंभावना कैसे हो ?

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

इस देह में जो चिदात्मा है, वह सर्वव्यापक है और सब देहों में स्थित है। वह महाकालरूप परमात्मा है। अतः वह भी अहं का विषय नहीं। इस प्रकार अहङ्कार का अस्तित्व ही नहीं वनता। अस्तित्त्व के अभाव में उसका सम्वन्ध किससे और कैसे हो सकता है। ऐसी स्थिति में द्वित्व-कल्पना नहीं हो सकती। इस प्रकार इस जगत् में जो कुछ भी स्थित है, वह ब्रह्म ही है। सत् और तत् ब्रह्म है।

सर्वव्यापक निर्मल ब्रह्म की सत्ता स्वीकार करने पर अहङ्काररूपी कलङ्क कहाँ से आयेगा ? पदार्थ-शोभा का अस्तित्त्व भी सन्दिग्ध है। जैसे एक स्थान पर दृश्यमान अयस्खण्ड और स्थानान्तर में उपलब्ध प्रस्तरखण्ड में कोई परस्पर सम्बन्ध नहीं है, वैसे इन्द्रिय, मन और चित् में परस्पर सम्बन्ध नहीं है। असत् अहङ्काररूपी भ्रम के उत्पन्न होने के कारण "यह मेरा हैं" "तेरा है" इस प्रकार का असद् व्यवहार जगत् में प्रवृत्त होता है, अज्ञानवश इस प्रकार का व्यवहार होता है। तत्त्वज्ञान हो जाने पर वह भ्रम निरस्त हो जाता है। आत्मा से अतिरिक्त कुछ नहीं है, सब ब्रह्म है यह तात्त्विक-ज्ञान है और उसको भावना करनी चाहिए। अहङ्कार का समूल परित्याग कर शान्त हो निर्मल आत्मा में स्थित होना चाहिए। अहंभाव अनर्थपरम्पराओं की वृद्धि करता है, पाप का विस्तार करता है और सन्ताप की वृद्धि करता है। "मुझे यह मिल गया" "मैं इसे प्राप्त करूँगा" इस प्रकार की मूर्खों की कल्पना सर्वथा सन्तापदायिनी होती है।

अहंभाव के क्षीण हो जाने पर संसाररूपी वृक्ष नीरस एवं शुष्क हो जाता है; वह पाषाणतुल्य हो जाता है और उसमें अहङ्कार उत्पन्न करने की क्षमता नहीं रह जाती। तृष्णारूपी कृष्णसर्पिणी शरीररूपी वृक्ष में वास करती है, विचार-रूपी गरुड़ के आ जाने पर वह न जाने कहाँ चली जाती है। विचार करने पर तृष्णा टिक नहीं सकती। यह जगत् अज्ञान के कारण उत्पन्न होता है। इसका कोई कारण नहीं, अतः यह सत् कैसे हो सकता है ?

जैसे जल कुछ समय के लिए तरङ्ग बन जाता है और पुनः जल हो जाता है, आदि और अन्त में वह जल ही है, वैसे ही यह जगत् आदि और अन्त में ब्रह्म है, कुछ समय के लिए जगत् के रूप में दृष्टिगोचर हो रहा है। वस्तुतः वह ब्रह्म ही है। जो वस्तु आदि और अन्त में नहीं है, केवल मध्य में दृष्टिगोचर होती है, उसका अस्तित्त्व सन्दिग्ध है, वह प्रातिभासिक और काल्पनिक है।

जैसे स्वप्न में, भय की अवस्था में, मदिरा आदि नशा की स्थिति में, नौका-यान के समय, धातुविकार में, इन्द्रियदोष में असत् वस्तुयें भी सत् के समान प्रतीत होती हैं वैसे ही यह असत् जगत् सत् के समान प्रतीत होता है। अन्तर केवल इतना है कि उक्त अवसरों पर सत्प्रतीति अल्पकालिक होती है और जगत् की अनुभूति तब तक बनी रहती है, जब तक तत्त्वज्ञान अथवा मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो जाती। यह जो कुछ विशाल दृश्यमण्डल है, वह असत् है, ऐसा अनुभव करने पर मन

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

अपने चञ्चल स्वभाव को छोड़कर निर्वाण-पद को प्राप्त करता है। मन के दृढ़ हो जाने पर समस्त भोगवासनायें क्षीण हो जाती हैं, जैसे हेमन्त ऋतु में वृक्षों की मञ्जरियाँ। चित् की अनुभूति से मन अपने संकल्प-विकल्पात्मक स्वरूप को छोड़कर परम साक्षात्कार वृत्ति से आत्मसाक्षात्कार करता है और वह स्वस्थ हो जाता है, अर्थात् सब प्रकार के संकटों से मुक्त हो जाता है।

आत्मज्ञान प्राप्त कर लेने पर कैवल्य की अनुभूति होती है क्योंकि जगत् का अस्तित्व ही नहीं रह जाता। सब प्रकार के तापों की निवृत्ति हो जाने से निर्वाण की प्राप्ति हो जाती है। पूर्णत्व प्राप्त हो जाने के कारण वह निरंश हो जाता है। आप्तकाम होने के कारण किसी प्रकार की इच्छा नहीं रह जाती, अतः वह निरीह हो जाता है, जैसे तैल का तिल आदि से कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता, वैसे मुक्त-पुरुष का देहेन्द्रियमन आदि से कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता। आत्मनिष्ठ पुरुष में स्वच्छता, सत्ता, हृद्यता, सत्यता, ज्ञता, आनन्दिता, मृदुभाषिता, पूर्णता, उदारता, शान्तिमत्ता, सर्वात्मकता, निर्भयता आदि सब प्रतिष्ठित रहते हैं।

अहंभावे परिक्षीणे शुष्कः संसारपादपः।
भूयः प्रयच्छत्यरसो न पाषाणवदङ्कुरम्॥
स्वतृष्णाकृष्णभोगिन्यो देहद्रुमकृतालयाः।
क्वापि यान्ति विचारात्मन्यागते विनतासुते॥
यदिदं किञ्चिदाभोगि तत्सर्वं दृश्यमण्डलम्।
अवस्त्विति विनिर्णीय मनो यात्यमनःपदम्॥
अवस्त्विदमिति स्फारे रूढे मनसि निश्चये।
हेमन्त इव मञ्जर्यः क्षीयन्ते भोगवासनाः॥
चित्त्वाद् दृष्टात्मना नूनं संत्यक्तमननौजसा।
मनसा वीतरागेण स्वयं स्वस्थेन भूयते॥
पदं तदनुयातोऽस्मि केवलोऽस्मि जयाम्यहम्।
निर्वाणोऽस्मि निरंशोऽस्मि निरीहोऽस्मि निरीप्सितः॥
स्वच्छतोर्जितता सत्ता हृद्यता सत्यता ज्ञता।
आनन्दिता प्रशमिता सदात्र मृदुभाषिता॥
पूर्णतोदारता सत्या कान्तिमत्तैकतानता।
सर्वैकता निर्भयता क्षीणद्वित्वविकल्पता॥
नित्योदिताः समाः स्वस्थाः सुन्दर्यः सुभगोद्यमाः।
ममैकात्ममतेर्नित्यं कान्ता हृदयवल्लभाः॥

योगवासिष्ठ उपशम-प्र० सर्ग ५३, श्लो० ३२-३३, ४६-४७, ७५, ७८-८०

उद्दालकविश्रान्ति—

उद्दालक मुनि पद्मासन लगाकर और आँखों को बन्द कर समाधिस्थ हो गए, उन्होंने ऊँकार ब्रह्म का उच्चारण किया। उसके प्रथम भाग 'अ' का उच्चारण करते ही मुनि ने रेचक द्वारा अपने शरीर को खाली कर दिया, जैसे अगस्त्य ऋषि

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

ने समुद्र को रिक्त कर दिया था। प्रणव के द्वितीयांश 'उ' के उच्चारण करने पर प्रणव की समस्थिति के कारण कुम्भक द्वारा प्राणों का निश्चल क्रम हुआ। उस समय प्राण न वाहर थे, न भीतर, न अधोभाग में थे और न ऊर्ध्वभाग में। वे दिशाओं में नहीं थे। वाँध से रुके हुए जल के समान स्तब्ध थे। तृतीयांश 'म्' के उच्चारण के समय पूरक द्वारा प्राणों का पूरा नामक्रम हुआ। इस अवसर पर प्राण जीवात्मा द्वारा भावित प्रक्रिया के अनुसार अमृत ब्रह्म में प्रविष्ट हुआ, जहाँ, हिम-स्पर्श के समान उसे शैत्य की उपलब्धि हुई। रसायन-महासागररूप उस चन्द्रमण्डल में प्राणवायु अमृतमय किरणों से संस्पृष्ट हुआ। चिरकालिक समाधि के कारण मुनि का शरीर शुष्क हो गया था। प्राणवायु की सुधामय धारा शरीर के ऊपर गिरने लगी। फलतः मुनि का वह शुष्क शरीर कान्तिमान् चन्द्रबिम्ब के समान चतुर्भुज नारायण के रूप में परिवर्तित हो गया। उद्दालक मुनि का शरीर कमलनेत्र एवं प्रसन्नमुख अत्यन्त शोभित हुआ। जैसे जल सरोवर को तथा वसन्त ऋतु वृक्ष पुष्पादि को सुन्दर बनाता है, वैसे अमृतमय प्राणों ने मुनि के शरीर को सर्वाङ्ग सुन्दर बना दिया।

मुनि ने पद्मासन लगाकर उस दिव्य शरीर में इन्द्रियों को रोककर निर्विकल्पक समाधि के लिए व्यवसाय किया। उन्होंने सांसारिक विषय जाल में भागते हुए मन को अपने विवेक से रोक लिया। मूलाधार के अवरोध से एड़ी द्वारा मलद्वार के संकोच से नवद्वार के वायुओं को रोक दिया। जैसे हाथी पकड़ने वाले विन्ध्याचल के गर्त में युक्तियों से गजराज को पकड़ लेते हैं, वैसे ही उन्होंने धारणा, ध्यान, समाधि के संयम एवं प्रत्याहाररूप उपायों से मन को हृदयाकाश में रोक लिया। इस प्रकार उन्होंने पूर्णविश्रान्ति प्राप्त कर ली, और विक्षेप डालने वाले समस्त विकल्पों को दूर कर दिया। पश्चात् उन्होंने हृदयाकाश में उत्पन्न अन्धकार को अन्तःकरण के ज्ञानरूपी सूर्य से नष्ट कर दिया। अन्धकार के नष्ट हो जाने पर भ्रमात्मक तेजःपुञ्ज दृष्टि-गोचर हुआ, उसको भी उन्होंने अधिष्ठानतत्त्व के साक्षात्कार से नष्ट कर दिया। प्रकाश के नष्ट होने पर निद्रा ने आक्रमण किया, जिसे मुनि ने छिन्न-भिन्न कर दिया। पश्चात् आकाश में नानारूप की भावनायें मन में उत्पन्न होने लगीं और मुनि ने जैसे प्रचण्डवायु मेघ को नष्ट करता है, वैसे उन्हें भी नष्ट कर दिया। इस प्रकार उन्होंने चित्त के समस्त दुष्प्रयासों को व्यर्थ कर दिया। अन्त में उनका चित्त चित्तत्त्व में, अर्थात् अधिष्ठानचित्तत्त्व में लीन हो गया। तदनन्तर समाधि से तत्त्वज्ञान प्राप्तकर उद्दालक मुनि द्वैत की प्रतिभा से रहित होकर सर्वाधिष्ठानभूत विशुद्ध चित्तत्त्व हो गए। उन्होंने दिव्य अमृतानन्द का आस्वादन किया जो केवल ब्रह्मादि श्रेष्ठ देवताओं को ही सुलभ है। उन्होंने दिव्य अनिर्वचनीय स्थिति प्राप्त की और वह सन्मात्र स्वरूप होकर आनन्दसागर हो गए।

दिव्यलोक में उद्दालक मुनि ने आकाशचारी सिद्धों और देवताओं को देखा। वहाँ इन्द्रपद देने वाले, सूर्य-पद देने वाले देवगण, विविध सिद्धियाँ और दिव्य अप्सरायें भी उपस्थित थीं। उद्दालक मुनि को सब प्रकार के प्रलोभन दिए गए;

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

परन्तु उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उन्होंने उन सब को तटस्थ भाव से देखा और छः मास तक उस रूप में वहाँ रहे, वहाँ उन्हें जीवन्मुक्त पद प्राप्त हुआ।

कुछ समय के पश्चात् उन्होंने दिव्य अप्सराओं एवं विमानसमूह को देखा। उन सबों ने बड़े आदरभाव से ऋषि को प्रणाम किया और उनके अनुग्रह दृष्टि की कामना की। उन्होंने कहा—"भगवन्! आप इस दिव्य विमान पर आरूढ़ हो स्वर्ग-लोक चलें, प्रलयपर्यन्त आप यथावाञ्छित स्वर्गीय सुखों का भोग करें। भोगों की अन्तिम सीमा स्वर्ग ही है" मुनि ने उनका आदर किया और शान्तभाव से बैठे रहे। उनके मन में किसी प्रकार का कौतूहल न हुआ, उन्होंने कहा—"सिद्धगण! आप लोग अपने-अपने स्थान पर जाँय"। ऐसा कहकर वह अपना कार्य करने लगे।

जीवन्मुक्त उद्दालक मुनि वन में मुनियों के आश्रमों में यथेच्छ विचरते रहे। वह समाधिस्थ होते रहते थे। व्यवहारकाल में भी वह चित्स्वरूप से विचलित नहीं होते थे। चित्सामान्य के चिरकालीन अभ्यास के कारण वह सत्तासामान्यरूपता को प्राप्त हो गए। अन्त में उन्होंने ब्रह्मस्वरूप धारण कर लिया।

उद्दालकशरीरं तन्नारायणतयोदितम्।
प्रफुल्लनेत्रवक्त्राब्जमावभौ दीप्तिसुन्दरम्॥
निर्विकल्पसमाध्यर्थं व्यवसायमुपाददे।
स्वभावं स्वच्छतां नेतुं शरत्काल इवामलम्॥
आगच्छतो यथाकामं प्रतिभासात् पुनः पुनः।
अनिच्छन्मनसा शूरः खड्गेनेव रणे रिपून्॥
चित्तत्वमथ संत्यज्य चित्तं चित्तत्त्वतां गतम्।
अन्यदेव बभूवाशु पङ्कः कुम्भस्थितो यथा॥
चेत्यं संत्यज्य चिच्छुद्धा चित्सामान्यमथाययौ।
व्यक्तवीच्यादिभेदोऽब्धिर्वाः सामान्यमिवैकधीः॥
अथैतस्मिन्महालोके तिष्ठन्नुद्दालकश्चिरम्।
अपश्यद् व्योमगान् सिद्धानमरानपि भूरिशः॥
जीवन्मुक्तपदं तत्तद्यावत् सम्प्राप्तवान् द्विजः।
तत्र सिद्धाः सुराः साध्याः स्थिता ब्रह्महरादयः॥
ते तमूचुर्महात्मानमुद्दालकमुनिं तथा।
आरुह्येदं विमानं त्वमेहि त्रैविष्टपं पुरम्॥
स्वर्ग एव हि सीमान्तो जगत्सम्भोगसम्पदाम्।
आकल्पमुचितान्भुङ्क्ष्व भोगानभिमतान् विभो॥
स्वर्गादिफलभोगार्थमेवाशेषतपःक्रियाः।
जीवन्मुक्तः स च मुनिर्विजहार यथासुखम्॥
यावदिच्छं वनान्तेषु मुनीनामाश्रमेषु च।
चित्सामान्यचिराभ्यासात् सत्तासामान्यमेत्य सः॥
दृश्येऽस्मिश्चित्ररविवन्नास्तमभवन्न चोदयम्।

योगवासिष्ठ, उपशम-प्र० सर्ग ५४, श्लो० २४, २९, ४२, ५६, ५७, ६३, ६७, ७९, ८०, ८६, ९२

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

उद्दालक-निर्वाण—

श्रुति, युक्ति और अनुभव से चेत्य संस्कारों का मूलोच्छेद हो जाने पर चित्त सर्वथा क्षीण हो जाता है। तब जड़ और चेतन में अनुगत स्वतःसिद्ध सत्तासामान्यता प्रतिष्ठित होती है। सकल प्रपञ्चों का बाध हो जाने पर अन्तःकरण की वृत्तियों से रहित होकर चैतन्य जब स्वात्मा में लीन होता है, उसे सत्तासामान्य कहते हैं। अखण्ड चैतन्य बाह्य एवं आभ्यन्तर विषयों का अपलाप कर जब स्थित होता है, उसे सत्तासामान्य कहते हैं। चित्त की वृत्तियों में अभिव्यक्त अखण्ड चैतन्य जब सब विषयों का अपलाप कर अपने पारमार्थिक स्वरूप से स्वप्रकाशात्मक, सत्तासामान्यात्मक चित्स्वरूप होता है, तब सत्तासामान्यता होती है। जैसे कूर्म अपने शरीर में अपने समस्त अङ्गों को लीन कर लेता है, वैसे ही आत्मा दृश्य प्रपञ्च को अपने में लीन कर लेता है, तब सत्तासामान्यता प्राप्त होती है। यह स्थिति सदेहमुक्त और विदेहमुक्त दोनों की होती है। इस स्थिति में जो महानुभाव जीवन्मुक्त रहते हैं, वे ऐहिक अथवा आमुष्मिक भोग तृष्णा से लेशमात्र भी प्रभावित नहीं होते।

इसी दृष्टि का अवलम्बन कर उद्दालक मुनि प्रारब्ध कर्मों के क्षय होने तक संसार में विचरते रहे। कालान्तर में मुनि की इच्छा देहत्याग कर विदेहमुक्त होने की हुई।

उद्दालक मुनि पद्मासन लगाकर पर्णों के आसन पर बैठ गये। उन्होंने मलद्वार के अवरोध से नवद्वारों को संयत किया। इन्द्रिय, मन, चित्तादि की समस्त क्रियाओं को रोककर चिदात्मा के साथ सम्बन्ध स्थापित कर चित्सामान्यता प्राप्त की। पश्चात् चित् के अनुसन्धान एवं अभ्यास द्वारा सर्वोत्कृष्ट आनन्द का अनुभव किया। इस आनन्द की अनुभूति होने पर लौकिक एवं पारलौकिक वैषयिक सुख अति-तुच्छ प्रतीत होते हैं और उनकी ओर ऐसे महानुभावों का ध्यान नहीं जाता। उद्दालक मुनि ने चित्सामान्यता का भी अतिक्रमण कर सर्वोच्च सत्तासामान्यता को प्राप्त कर लिया। इस प्रकार मुनि ने सर्वोत्कृष्ट आनन्द को प्राप्त किया। मुनि उद्दालक ने इस उच्च स्थिति को प्राप्त कर जन्म-मरण बन्धन से विमुक्त हो ब्राह्मीभाव को प्राप्त कर अपने पार्थिव शरीर को त्याग दिया।

कालान्तर में महाभगवती चामुण्डा ने उनकी अस्थियों को अपने सिर के आभूषणों में लगा लिया।

यदा संक्षीयते चित्तमभावात्यन्तभावनात्।
चित्सामान्यस्वरूपस्य सत्तासामान्यता तदा॥
यदा सर्वमिदं किञ्चित् सबाह्याभ्यन्तरात्मकम्।
अपलप्य वसेच्चेतः सत्तासामान्यता तदा॥
यदा सर्वाणि दृश्यानि सत्तासामान्यवेदनम्।
स्वरूपेण स्वरूपाभं सत्तासामान्यता तदा॥

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

कूर्मोऽङ्गानीव दृश्यानि लीयन्ते स्वात्मनात्मनि ।
अभावितान्येव यदा सत्तासामान्यता तदा ॥
अस्यां दृशि स्थिताः सर्वे जीवन्मुक्ता महाशयाः ।
सिद्धा रसा इव भुवि व्योमवीथ्यामिवानिलाः ॥
अस्मत्प्रभृतयः सर्वे नारदाद्याश्च राघव ।
ब्रह्मविष्णवीश्वराद्याश्च दृष्टावस्थां व्यवस्थिताः ॥
एतामालम्ब्य पदवीं समस्तभयनाशिनीम् ।
उद्दालकोऽसाववसत् यावदिच्छं जगद्गृहे ॥
अथ कालेन बहुना बुद्धिस्तस्य बभूव ह ।
विदेहमुक्तस्तिष्ठामि देहं त्यक्त्वेति निश्चलः ॥
संशान्तानन्दपुलकः पदं प्राप्यामलं गतः ।
चिरकालपरिक्षीणमननादिभवभ्रमः ॥
गतसकलविकल्पो निर्विकारोऽभिरामः ।
सकलमलविलासोपाधिनिर्मुक्तमूर्तिः ॥
विगलितसुखमाद्यं तत्सुखं प्राप यस्मि- ।
स्तृणमिव जलराशावुह्यते शक्रलक्ष्मीः ॥
अपरिमितनभोऽन्तर्व्यापिदिग्व्यापिपूर्णम् ।
भुवनभरणशीलं भूरिभव्योमसेव्यम् ॥
कथनगुणमतीतं सत्यमानन्दमाद्यम् ।
परमसुखमनन्तं ब्राह्मणोऽसौ बभूव ॥

योगवासिष्ठ, उपशम-प्र० सर्ग ५५, श्लो २, ४-६, ९- १२, २१, २४, २५

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

१४. सुरघु-परिघ-आख्यान

पारस देश के राजा परिघ और किरातेश राजा सुरघु दोनों अत्यन्त घनिष्ठ मित्र थे। पारस देश में अवर्षण और अकाल पड़ने के कारण राजा परिघ ने अपना देश छोड़ दिया और जङ्गल में जाकर घोर तप करने लगे। अन्त में उन्हें समाधि से आत्मज्ञान हो गया। पश्चात् वे विभिन्न पर्वतों, जङ्गलों एवं आश्रमों में भ्रमण करने लगे। संयोगवश राजा सुरघु से उनकी भेंट हो गई। दोनों मित्र गले लगकर प्रेम से मिले। विविध कथाओं और आख्यानों की चर्चा करते वे दोनों मित्र कुछ समय के लिए अपने को भूल से गए।

समाधिनिश्चय—

वार्ताप्रसङ्ग में परिघ ने अपने मित्र से कहा—"राजन्! इस संसार में जो कर्म किये जाते हैं वे समाहित चित्त वालों के लिए सुखप्रद हैं; पर अन्य लोगों के लिए सुखदायक नहीं हैं। क्या आप सङ्कल्पों से रहित, विश्रान्ति का उत्तम साधन, दुःखों का उपशमन करने वाली समाधि का अनुष्ठान करते हैं" ?

राजा सुरघु ने कहा—"मित्रवर! आपका यह कथन उचित है कि संकल्पों से रहित, दुःखों का शमन करने वाली समाधि प्रशस्त है; परन्तु समाधि का अनुष्ठान आवश्यक नहीं है। तत्त्वज्ञ महात्मा बैठे रहें अथवा सांसारिक व्यवहार करें, वे असमाहितचित्त नहीं है? प्रबुद्धचित्त पुरुष जगत् के व्यवहारों को करते हुए भी आत्मतत्त्व में परिनिष्टित होने के कारण समाधिस्थ ही हैं। जिसका चित्त परम विश्रान्ति को प्राप्त नहीं है, वह चाहे पद्मासन लगाये, चाहे परब्रह्म को हाथ जोड़े, उसकी समाधि नहीं लग सकती। चुपचाप बैठे रहना समाधि नहीं है, अपितु समस्त आशाओं का परित्याग कर अपरोक्ष आत्मतत्त्व का साक्षात्कार ही समाधि है। मनीषीगण सत्य को ग्रहण करने वाली परा—प्रज्ञा को ही समाधि कहते हैं। क्षोभरहित, अहङ्कार से शून्य, सुख दुःख के द्वन्द्वों से रहित और मेरु से भी विशाल दृढ़ आकारवाली प्रज्ञा को समाधि कहते हैं। चिन्तारहित, अभीष्ट पदार्थों को देने वाली, हेय और उपादेय से वर्जित, परिपूर्ण मानसिक वृत्ति को समाधि कहते हैं"।

जब तत्त्वज्ञान हो जाता है, तब महात्मा की समाधि बराबर लगी रहती है; क्योंकि मन के आत्मा में लीन हो जाने के कारण विक्षेप की सम्भावना नहीं रहती। जैसे सूर्य दिन भर प्रकाश से विरत नहीं होता, वैसे तत्त्वज्ञानी भी प्रज्ञातत्त्वावलोकन से विरत नहीं होता।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

"जैसे नदी निरन्तर बहती रहती है, क्षणमात्र के लिए भी नहीं रुकती, वैसे ही तत्त्वज्ञ पुरुष आत्मतत्त्व-साक्षात्कार से क्षणमात्र के लिए भी विरत नहीं होता। जैसे काल अपनी गति का विस्मरण क्षणमात्र के लिए भी नहीं करता, वैसे तत्वज्ञ पुरुष क्षणमात्र के लिए भी आत्मस्वरूप को विस्मृत नहीं करता। जैसे घट, पट आदि पदार्थ सत्ता से विहीन कभी नहीं होते, वैसे तत्त्वज्ञानी आत्मज्ञान से वञ्चित नहीं होता। जैसे गुणवान् अग्नि, जल आदि अपने गुण से हीन कभी नहीं होते, वैसे आत्मज्ञानी कभी भी आत्मज्ञान से रहित नहीं होता"।

"जो आत्मज्ञानसम्पन्न हैं, निर्मल हैं, शांत हैं, वे सदा समाधिस्थ हैं। समाधि और आत्मा में कोई भेद नहीं है, अतः तत्वज्ञानी का समाधि से विच्छेद कैसे हो सकता है? जब यह समस्त दृश्यमान चराचर ज़गत् आत्मस्वरूप है, तब समाधि और असमाधि का भेद करना अप्रयोजक है"।

परिघ राजा सुरघु के उत्तर से अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और कहा कि "आपको पूर्णरूप से तत्त्वज्ञान हो गया है, अतः आपके वचन सर्वथा श्लाघ्य और आदरणीय हैं"।

नित्यं प्रबुद्धचित्तास्तु कुर्वन्तोऽपि जगत्क्रियाः।
आत्मैकतत्त्वसन्निष्ठाः सदैव सुसमाधयः॥
बद्धपद्मासनस्यापि कृतब्रह्माञ्जलेरपि।
अविश्रान्तस्वभावस्य कः समाधिः कथं च वा॥
तत्त्वावबोधो भगवन् सर्वाशातृणपावकः।
प्रोक्तः समाधिशब्देन न तु तूष्णीमवस्थितिः॥
समाहिता नित्यतृप्ता यथाभूतार्थदर्शिनी।
साधो समाधिशब्देन परा—प्रज्ञोच्यते बुधैः॥
यतःप्रभृति बोधेन युक्तमात्यन्तिकं मनः।
तदारभ्य समाधानमव्युच्छिन्नं महात्मनः॥
न विस्मरति सर्वत्र यथा सततगो गतिम्।
न विस्मरति निश्चेयं चिन्मात्रं प्राज्ञधीस्तथा॥
यथा सत्ताविहीनात्मा पदार्थो नोपलभ्यते।
तथात्मज्ञानहीनात्मा कालो ज्ञस्य न लभ्यते॥
भेदः केन समाधेर्मे जन्यते कथमेव वा।
आत्मनोऽव्यतिरेकेण नित्यमेव सदात्मता॥
योगवासिष्ठ, उपशम- प्र० सर्ग ६२, श्लो० ६-९ १२, १७, १९, २२

———

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

१५. राजा सुरघु का आख्यान

राजा सुरघु का वृत्तान्त—

किरातेश सुरघु हिमालय पर्वत के कैलाश-नामक श्रृङ्ग पर राज्य करते थे। वह बड़े पराक्रमी राजा थे। वह धर्मपूर्वक प्रजापालन करते थे। उनके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि "प्रजावर्ग अनेक सङ्कटों से स्वयं ग्रस्त है, उसको मैं क्यों दण्ड दूँ; परन्तु निग्रह के विना राजकार्य कैसे चलेगा ? दुष्टों को दण्ड देना भी आवश्यक है, अतः निग्रह और अनुग्रह दोनों आवश्यक हैं। उनका चित्त संशयारूढ था, अतः शान्त नहीं था।

किसी समय महर्षि माण्डव्य उनके घर पर आए। राजा ने यथाविधि उनकी पूजा की और उनकी प्रशंसा करते हुए अपने संशय के निवारण के निमित्त प्रार्थना की।

माण्डव्य मुनि ने कहा—"राजन् ! विचार करने से मन के सभी संशय दूर हो जाते हैं। मैं कौन हूँ ? कहाँ से आया हूँ ? यह जगत् क्या है ? जन्म और मरण क्यों होते हैं ? इत्यादि पर विचार करने से कल्याण होता है। पुनः पुनः विचार करने से चित्त शान्त हो जाता है जैसे तरङ्ग अपनी उत्तुङ्गता को छोड़कर जलरूप में परिणत हो जाता है। शान्त विचार से तत्त्वज्ञान होने पर दृष्टि पवित्र हो जाती है और मनुष्य महान् हो जाता है। महत्ता प्राप्त कर लेने पर अन्तःकरण सांसारिक वृत्तियों में प्रवृत्त नहीं होता, जैसे गजराज गो के खुरमात्र जल में डूबता नहीं। विषयों में निमग्न चित्त तुच्छ कार्यों में भी मोह को प्राप्त हो जाता है, जैसे गो के खुरमात्र जल में भी मशक डूब जाते हैं। दृश्य का अवलम्बन करने वाली चित्त की वासना से मनुष्य कीट की भाँति पङ्क (कीचड़) में फँस जाता है। स्वप्रकाश परमात्मा का अनुभव करने के निमित्त प्रपञ्चों का त्याग करना चाहिए। सुवर्णमिश्रित धातु का तब तक शोधन किया जाता है, जब तक शुद्ध सुवर्ण उपलब्ध न हो जाय। अध्यात्मशास्त्र तब तक पढ़े जाते हैं, जब तक आत्मज्ञान नहीं हो जाता। सर्वत्याग करने पर ही पूर्णात्मता प्राप्त होती है, किसी विषयविशेष का त्याग करने से नहीं। आत्मसाक्षात्कार तब तक नहीं होता, जब तक सर्वत्याग नहीं हो जाता। अतः कल्याण के लिए सर्वत्याग सुतरां अपेक्षित है।

सुरघु की विश्रान्ति—

राजा सुरघु को उपदेश देकर माण्डव्य मुनि अपने आश्रम पर चले गए। राजा सुरघु ने विचार किया कि "मैं कौन हूँ ? मैं मेरु नहीं हूँ और न मेरु मेरा है। न मैं जगत् हूँ और न मेरा जगत् है। न मैं शैल हूँ और न शैल मेरे हैं, न मैं पृथिवी हूँ और न मेरी पृथिवी है। यह किरातमण्डल मेरा नहीं है और न मैं किरात-

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

मण्डल हूँ। सबकी सम्मति से मैं किरातमण्डल का राजा बनाया गया था। मैं उसे त्यागता हूँ। न मैं देश हूँ और न मेरा यह देश है। न मैं पुरी (राजधानी) हूँ और न पुरी मेरी है। यह सब भोगसमुदाय भार्या आदि न मैं हूँ और न ये सब मेरे हैं। न मैं राज्य हूँ और न राज्य मेरा है। क्या मैं देह हूँ ? यह विचारणीय है। मैं मांस और अस्थि नहीं हूँ; क्योंकि वे जड़ हैं। मुझसे उनका सम्वन्ध नहीं है, जैसे कमल और जल का। न मैं कर्मेन्द्रिय हूँ और न वे मेरे हैं। इस देह में जो जड़-पदार्थ हैं, वह मैं नहीं हूँ; क्योंकि मैं चेतन हूँ। मैं न भोग हूँ और न मेरे भोग हैं। मैं न ज्ञानेन्द्रिय हूँ और न मेरी ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। न मैं मन, बद्धि, अहँकार हूँ और न ये मेरे हैं। मैं जीव भी नहीं हूँ; क्योंकि वह दूसरे से प्रकाशमान होता है, अतः वह स्वप्रकाश आत्मा नहीं हो सकता। मैं चेत्य भी नहीं हूँ। परिशेष से मैं विकल्पशून्य, विशुद्ध चिदात्मा हूँ।

आत्मा सर्वव्यापक है और ब्रह्मा, इन्द्र, यम, वरुण, वायु, प्रभृति सब प्राणियों में स्थित है, जैसे मुक्ता की माला में तन्तु। वह आत्मा चित्-शक्ति है जो सर्वव्यापक है और समस्त शक्तियों की मञ्जूषा है। वह निर्विशेष सौन्दर्य से परिपूर्ण है और समस्त जगत् को प्रकाशित करती है। वह चौदह भुवनों के समस्त प्राणियों को धारण करती है और वही समस्त जगत् की अनुभवात्मक कल्पना है। सुख और दुःख का परिज्ञान मिथ्या है। जो कुछ नाना प्रकार का आभास दृश्यमान है, वह सब आत्मा चित्-शक्ति है।

उसी शक्ति के प्रसाद से मन शरीररूप रथ पर आरूढ़ होकर विविध सांसारिक लीलाओं को सम्पन्न करता है। यह शरीर मन, इन्द्रिय आदि कुछ नहीं है। उनके नष्ट हो जाने से कुछ नहीं विगड़ता है। मैंने व्यर्थ में निग्रह-अनुग्रह की चिन्ता की थी। यह शरीर परमार्थतः स्थित नहीं है। अतः उसकी चिन्ता व्यर्थ है। मेरा भ्रम दूर हो गया। मैंने द्रष्टव्य और ज्ञातव्य को देख और जान लिया। आत्मा से अतिरिक्त कुछ भी सत्य नहीं है। अतः निग्रह-अनुग्रह की चिन्ता व्यर्थ और अज्ञान-मूलक है। सुख-दुःख सब व्यर्थ हैं, मिथ्या हैं, काल्पनिक हैं। इस जगत् में चिदाकाश से अतिरिक्त कुछ नहीं है। जो कुछ दृश्यमान है वह सब मिथ्या है।

चित्रमेषोऽस्मि लब्धात्मा जातः कालेन कार्यवान्।
एष सोऽहमनन्तात्मा नान्तोऽस्य परमात्मनः॥
ब्रह्मणीन्द्रे यमे वायौ सर्वभूतगणे तथा।
स एष भगवानात्मा तन्तुर्मुक्ताष्विव स्थितः॥
चिच्छक्तिरमला सैषा चेत्यामयविवर्जिता।
भरिताशेषक्कुञ्जा भैरवाकारधारिणी॥
चतुर्दशविधान्येषा भूतानि भुवनोदरे।
एतन्मयीयं कलना जागती वेदनात्मिका॥
मिथ्यावभासमात्रं तु सुखदुःखदशागतिः।
नानाकारमयाभासः सर्वमात्मैव चित्परा॥

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

संसारजाललीलासु याति वल्गति नृत्यति ।
इदं मनः शरीरादि न किञ्चिदपि वस्तुतः ॥
नष्टे न किञ्चिदप्यस्मिन् परिनश्यति पेलवे ।
अहो त्वहं प्रबुद्धोऽस्मि गतं दुर्दर्शनं मम ॥
दृष्टं द्रष्टव्यमखिलं प्राप्तं प्राप्यमिदं मया ।
सर्वं किञ्चिदिदं दृश्यं दृश्यते यज्जगद्गनम् ॥
चिन्निष्पन्दांशमात्रांशान्नान्यत् किञ्चन शाश्वतम् ।
किं सुखं किं नु वा दुःखं सर्वं ब्रह्मेदमागतम् ।
अहमासं मुधा मूढो दिष्ट्या मूढोऽस्म्यहं स्थितः ॥

योगवासिष्ठ, उपशम-प्र०, सर्ग ५९, श्लोक, १८-२०, २४-२५, २७-२८, ३१, ३२ ।

सुरघु निर्वाण—

राजा सुरघु चिन्ताज्वर से मुक्त होकर अपने राजोचित कार्यों को—निग्रहा-नुग्रह को—निर्भय होकर करने लगे । हर्ष-विषाद से रहित होकर समुद्र के समान गम्भीर उस राजा ने राजोचित कार्यों को यथाविधि सम्पन्न किया । सम वृत्ति से कार्य करने वाला वह राजा ऐसे सुशोभित होता था, जैसे पूर्ण चन्द्रमा और समुद्र । यह जगत् चित्तत्व का कल्पनामात्र है । ऐसा अनुभव कर वह प्रबुद्ध राजा सोते, जागते, बैठते, उठते, सदा परब्रह्म के चिन्तन में लगा रहता था ।

शरीर और मन से सर्वथा स्वस्थ उस राजा ने सैकड़ों वर्षों तक आसक्ति-रहित हो राज्य किया । अन्त में उसका पार्थिव शरीर जगन्नियन्ता परब्रह्म परमात्मा में लीन हो गया जैसे नदियाँ समुद्र में लीन हो जाती हैं ।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

१६. वीतहव्य मुनि का आख्यान

वीतहव्य मुनि का मनोजगत्—

वीतहव्य मुनि विन्ध्य पर्वत की एक कन्दरा में समाधि के लिए अवस्थित थे। उनकी स्थिति ऐसी थीं मानो पर्वत से शिला खोदी गई हो अथवा चित्र में लिखी गई मूर्ति हो। वहाँ मुनि के तीन सौ संवत्सर आधे मुहूर्त के सदृश बीत गए। आत्मतत्त्वज्ञ, ज्ञानी मुनि वीतहव्य ने जीवन्मुक्तता के कारण इतने समय को कुछ भी नहीं समझा और अपने शरीर को भी नहीं छोड़ा। इस बीच समय समय पर वर्षा ऋतु के जलमिश्रित पङ्क से मुनि का शरीर आवृत हो गया। प्रतीत होता था कि मुनिवर पृथिवी में धँस गए हैं।

तीन सौ वर्षों के बीत जाने पर महामुनि वीतहव्य, जो कि जीवन्मुक्त थे, समाधि से जग गए। महामुनि के देह को, जो पङ्क से दबी हुई थी, लिङ्गशरीर में प्रतिविम्बित संविद् ने सुरक्षित रखा था। मुनि ने अपने हृदयाकाश में अनुभव किया कि मैंने कैलास पर्वत के कानन में कदम्बवृक्ष के नीचे सौ वर्ष तक मुनिजीवन व्यतीत किया और पश्चात् सौ वर्ष तक विद्याधर था। उसके बाद पाँच युगों तक इन्द्र था, जबकि देवता और चारण मेरी स्तुति किया करते थे।

इस पर शङ्का हुई कि यहाँ देश, काल और नियति का अतिक्रमण क्यों हुआ? कैलास देश में सौ वर्षों तक मुनि रहे। सौ वर्षों तक विद्याधर थे और पाँच युगों तक इन्द्र थे। इन सब की अनुभूति आधे मुहूर्त में ही कैसे हुई?

चिति-शक्ति सर्वव्यापिका और सर्वशक्तिशालिनी है। वह जब जहाँ जैसे चाहती है, तब तहाँ और तैसी हो जाती है, ऐसा उसका स्वभाव है। अतः वीतहव्य मुनि ने चिदाकाशस्वरूप अपने हृदयाकाश मे विविध लोकों की अतीत घटनाओं को देखा। जिन महानुभावों को सम्यग् ज्ञान हो गया है, वे वासनारहित हो जाते हैं। वीतहव्य मुनि ने यह भी अनुभव किया कि मैं एक कल्प तक चद्रमौलि भगवान् शङ्कर का प्रधानगण था और समस्त विद्याओं में निपुण और त्रिकालज्ञ था।

जीवन्मुक्त पुरुषों के अन्तःकरण में बन्ध-मोक्ष की दृष्टियाँ नहीं होती हैं, यतः वे इस जगह को प्रशान्त, अत्यन्त निर्मल ब्रह्मस्वरूप मानते हैं। संविद्रूपी आकाश जिस-जिस स्थल में जिस-जिस प्रकार से भासता है, उस-उस स्थल में उस-उस रूप में व्याप्त होकर वह दृष्टिगोचर होता है। वीतहव्य मुनि आत्मज्ञ थे। अतः ब्रह्म-

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

रूप होने के कारण वह सर्वज्ञ हो गए थे। उन्होंने विभिन्न ब्रह्माण्डों एवं विविध विषयों का अनुभव किया। एक जगद् विशेष में आत्मज्ञान से वञ्चित इन्द्र राजा था, जो कि आज 'दीन' नामक देश का राजा बना है और इस समय आखेट-कार्य में प्रवृत्त है। पितामह के पाद्मकल्प में जब मैं (वीतहव्य) शङ्कर जी का प्रधानगण था, हमारी क्रीड़ा के लिए जो अज्ञानी हंस था, आज वह निषादों का राजा होकर स्थित है।

वीतहव्य की मानस-सृष्टि में इन्द्र, हंस, राजा आदि की आकृति भ्रान्तिमात्र है, जैसे इस पार्थिव जगत् की आकृति भ्रान्तिमात्र है। वह मानस सृष्टि मात्र है। परमार्थ-दशा में वह विशुद्ध चिद् व्योम है। ब्रह्मस्वरूप है। भूत, वर्तमान और भविष्य, जो कुछ जगत् के रूप में दृष्टिगोचर है अथवा होगा, वह सब ब्रह्मरूप है। ब्रह्म से अतिरिक्त किसी अन्य पदार्थ की सत्ता नहीं है, यही सिद्धान्त है। इस जगत् का जब तक तात्त्विक ज्ञान नहीं हो जाता, तब तक वह वज्र के समान दृढ़ है, ज्ञान हो जाने पर तो वह विशुद्ध चिदाकाशस्वरूप है।

समकायशिरो ग्रीवस्थानकः स महामतिः।
आसीच्छैलादिवोत्कीर्णश्चित्रार्पित इवाथवा ॥
स्वल्पेनैव हि कालेन तस्मिन्पर्वतकन्दरे।
प्रावृडोघविनुन्नेन पङ्केनोर्वीतले कृतः ॥
शतत्रयेऽथ वर्षाणामथ याते स्वयं प्रभुः।
व्यबुध्यतात्मरूपात्मा धराकोटरपीडितः ॥
सर्वात्मिकैष चिच्छक्तिर्यत्रोदेति यथा यथा।
तथा तत्राशु भवति तथात्मैकस्वभावतः ॥
यथा स्थितमिदं विश्वं शान्तमाकाशनिर्मलम्।
ब्रह्मैव जीवन्मुक्तानां बन्धमोक्षदृशः कुतः ॥
वस्तुतस्तु न तद्राम जगन्नैवं न चेतरत्।
तथापि न जगत्सत्ता ब्रह्मेदं भाति केवलम् ॥
भाति भूतं भविष्यच्च यथेदं च तथेतरत्।
जगत्सर्वमिदं दृश्यं संविन्मात्रमनोमयम् ॥

योगवासिष्ठ, उपशम-प्र० सर्ग ८४, श्लो० ६, १५, १७, २३, ३०, ४०, ८१।

वीतहव्य की समाधि —

जब वीतहव्य मुनि शङ्कर भगवान् के प्रधानगण थे, उनकी इच्छा अपने पूर्वजन्मों के अवलोकन की हुई। उन्होंने अपने समस्त पूर्वजन्मों का दृश्य देखा। वर्तमान जन्म के शरीर की दुर्दशा भी देखी, जो विन्ध्य पर्वत की एक कन्दरा में पङ्क की विशाल राशि से आकीर्ण थी। उन्होंने विचार किया कि "यह मेरा शरीर घोर कष्ट में है, चलने फिरने में सर्वथा असमर्थ है। अतः इसका उद्धार आवश्यक है। अतः मैं भगवान सूर्य के शरीर में प्रवेश करूँ और उनका परिचारक पिङ्गल मेरे शरीर का

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

उद्धार करेगा। शरीर से मुझे क्या प्रयोजन है ? मेरे लिए शरीर न तो उपादेय है और न हेय है। दोनों अवस्था में समान है, तथापि जब तक देह है, मैं कुछ विचार करूँ। ऐसा विचार कर उन्होंने सूर्य के शरीर में पुर्यष्टक शरीर होकर प्रवेश किया।

भगवान् सूर्य ने मुनि के विभिन्न शरीरों को देखा और उनके वर्तमान शरीर को जो मृद्राशि में पीड़ित थी, देखा। मुनि की इच्छा को जानकर तथा उनके शरीर की दुर्दशा देखकर, सूर्य भगवान् ने अपने गण पिङ्गल को उनके शरीर के उद्धार के निमित्त आदेश दिया।

तदनुसार वीतहव्य मुनि ने अपने पुर्यष्टक शरीर से पिङ्गल के शरीर में प्रवेश किया और वे दोनों विन्ध्यपर्वत की ओर चले। वहाँ पहुँच कर पिङ्गल ने अपने तीक्ष्ण नखों से पृथिवी को विदीर्ण कर मुनि के शरीर से दूर कर दिया और शरीर का उद्धार कर दिया। वीतहव्य मुनि ने अपने शरीर में प्रवेश किया और दोनों महानुभाव परस्पर प्रणाम आदि सत्क्रिया सम्पन्न कर अपने अपने ईप्सित स्थानों को चले गए। मुनि वीतहव्य ने सरोवर में विधिवत् स्नान किया और भगवान् सूर्य की पूजा की। अपने पूर्व शरीर को पाकर वह बहुत प्रसन्न हुए। उच्चतम शान्ति, सत्प्रज्ञा, मुक्तिता, कृपा तथा श्री से सम्पन्न मुनि वीतहव्य ने विन्ध्याचल में नदी के तट पर एक दिन विश्राम किया।

इन्द्रियवर्गनिराकरण—

जीवन्मुक्त वीतहव्य मुनि न किसी की प्रशंसा करते थे और न निन्दा। वह हर्ष और विषाद से रहित थे। उन्होंने मन को सम्बोधित करते हुए कहा— "इन्द्रियों के स्वामी मन ? तुमने उपशम से कैसे अपूर्व सुख प्राप्त किया है, तुमको भविष्य में भी रागद्वेषरहित होना चाहिए। अपनी चञ्चलता का परित्याग करो। तुम्हारी आशायें क्षीण हो चुकी हैं। आत्मा न तुम्हारा है और न तुम आत्मा के हो। तुम्हारा विनाश हो गया हैं, अतः तुम आक्रमण नहीं कर सकते। 'हम आत्मा हैं' ऐसी जो तुम्हारी वासना थी, वह मिथ्या थी, जैसे रज्जु में सर्प की भावना। विचार से अब वह वासना दूर हो गई है।

वीतहव्य मुनि ने इस प्रकार विचार कर अपने जीवन के अनेक वर्ष व्यतीत किए। वह पूर्णानन्द, स्वप्रकाशस्वरूप परम पद में प्रतिष्ठित थे, जहाँ, पुनर्जन्म नहीं होता। हेय और उपादेय का क्षय हो जाने के कारण मुनि को न तो किसी वस्तु की इच्छा थी और न अनिच्छा।

सह्य पर्वत की कन्दरा में जाकर वीतहव्य मुनि ने पद्मासन लगाया और विविध भोगों, दुःखों, शरीरों एवं प्राणों को सम्बोधित किया। भोगों को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा—'तुम लोगों ने हमारे साथ चिरकाल तक क्रीड़ा की हैं। चिरकाल तक हमारा लालन-पालन किया है। अब साथ छोड़ दो।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

मैं तुम लोगों को प्रणाम करता हूँ। शरीर! तुम्हारा कल्याण हो। तुमने चिरकाल तक साथ दिया। अब वियोग का समय है। नियति का विधान है कि जिसका संयोग होता है उसका वियोग भी होता है। तुम्हारे द्वारा मुझे आत्मज्ञान प्राप्त हुआ है। अतः तुम्हें प्रणाम है। इसी प्रकार तृष्णा, काम, कर्म, मोह, कन्दराप्रभृति को मुनि ने प्रणाम किया।

उन्होंने अपने प्राण से कहा--'महोदय! आप लोगों के साथ अनेक योनियों में मैंने विश्राम किया, पर्वतकुञ्जों तथा लोकान्तरों में भ्रमण किया। नगरों, ग्रामों एवं पर्वतों में क्रीडा की। संसार में ऐसा कोई कार्य नहीं है, जिसे मैंने आप लोगों के साथ न किया हो। अब आप लोग अपने अपने स्थान पर जायँ और मैं अपने स्थान पर। संसार का नियम है कि संयोग के बाद वियोग होता है। यह अवश्यम्भावी है, अतः इसके लिए परिदेवना नहीं करनी चाहिए।

वीतहव्य की विश्रान्ति—

मुनि वीतहव्य दुःखाब्धि को पार कर आत्यन्तिक मनोनाश हो जाने पर पूर्णरूप से विश्रान्त हो गए। उनका पार्थिव शरीर क्षीण और मलिन हो गया। उनके प्राणवृन्द नाड़िओं को छोड़कर हृदयारविन्द में आ गए। शरीर का पार्थिवांश पृथ्वी में मिल गया। जीवभूत चित् चैतन्य-समुद्र में जा मिली। त्वचा, असृक्, मांस आदि धातु धातु में मिल गए।

मुनि ने उत्कृष्टतम ज्ञान को प्राप्त कर लिया था। ज्ञान से ही मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। ज्ञान से दुःखों का विनाश होता है, ज्ञान से अज्ञान का नाश होता है, ज्ञान से ही परमसिद्धि प्राप्त होती है। महामुनि वीतहव्य ने ज्ञान से ही समस्त आशाओं के बन्धनों को तोडकर चित्त पर विजय प्राप्त की थी। मुनि ने ज्ञान से परमार्थ, अर्थात् आत्मतत्त्व का साक्षात्कार किया था। उनके रागादि दोष क्षीण हो चुके थे, सब प्रकार की उपाधियाँ दूर हो गई थीं और उन्होंने शोकरहित होकर अमल, अनन्त मोक्ष-पद को प्राप्त किया।

तदेताममलां दृष्टिमवलम्ब्य महामते।
ज्ञानमासादय परं ज्ञानान्मुक्तिर्हि लभ्यते॥
ज्ञानाद्गिर्दुःखतामेति ज्ञानादज्ञानसंक्षयः।
ज्ञानादेव परा सिद्धिर्नान्यस्माद्राम वस्तुतः॥
ज्ञानेन सकलामाशां विनिकृत्य समन्ततः।
शातिताशेषचित्ताद्रिर्वीतहव्यो मुनीश्वरः॥
अधिगतपरमार्थः क्षीणरागादिदोषः
सकलमलविकारोपाधिसङ्ज्ञाद्यपेतः।
चिरमनुसृतमन्तः स्वं स्वभावं विवेकी
पदममलमनन्तं प्राप्तवान् वीतशोकः॥

योगवासिष्ठ, उपशम-प्र० सर्ग ८८, श्लो० ११-१३, १६।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

सद्विलासविचार—

जिनका मोह शान्त हो गया है। ऐसे महात्माओं को आकाशगमन आदि सिद्धियों की इच्छा नहीं होती तथा उनके शरीरों को व्याघ्र आदि हिंसक प्राणी धर्षित नहीं कर सकते।

मुनि वीतहव्य ने तीस सहस्र वर्षों तक शोकरहित हो सुन्दर जीवन व्यतीत किया। सर्वव्यापक आत्मा सुख-दुःख की परम्परा से कभी भी पराभूत नहीं होता। अतः शोक करना निरर्थक है। आत्मतत्त्वज्ञ महात्मागण इस संसार में सुखपूर्वक विचरण करते हैं। वे कभी भी दुःख का अनुभव नहीं करते। उन्हींके समान विचरण करना चाहिए। जीवन्मुक्त महानुभाव हर्ष और विषाद के वश में नहीं होते, जैसे सिंह मयूरों के वश में नहीं होते।

जीवन्मुक्तों की आकाशगमनादि में इच्छा नहीं—

देवताओं की आकाशगमन आदि सिद्धियाँ स्वाभाविक है। उसके लिए उन्हें उद्योग नहीं करना पड़ता। अनेक पशु-पक्षी अपने योनि-धर्म के अनुसार आकाशगमन आदि क्रिया-कलाप में निपुण होते हैं। अतः आत्मतत्त्वज्ञों को वह वाञ्छित नहीं। प्राकृतजीव भी मणि, औषध आदि की शक्ति से, योगाभ्यास आदि क्रियावों की शक्ति से आकाशगमनादि में नैपुण्य प्राप्त कर सकते हैं। जिसको आत्मज्ञान प्राप्त हो चुका है, वह महापुरुष आकाशगमनप्रभृति तुच्छ कार्यों की ओर आकृष्ट नहीं होता। वह आत्मा-राम में विचरण करता है। आविद्यिक पदार्थों में उसकी अभिरुचि नहीं होती। वह समस्त एषणाओं से रहित है। वह अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित है। वह न तो कुछ करता है और न चाहता है। उसको विविध सिद्धियों भोगों, अधिकारलिप्सा, मानापमान, आशा, मरण, जीवन आदि से कुछ भी प्रयोजन नहीं। वह नित्यतृप्त, प्रशान्त, वीतराग, वासनारहित, आकाशसदृश निर्मल अपने स्वरूप में ही स्थित रहता है। उसे कृत और अकृत कर्म से कोई प्रयोजन नहीं। जिस पुरुष को किसी वस्तु की इच्छा होती है वह उसकी पूर्ति के लिए प्रयत्नशील होता है। आत्मज्ञ सर्वथा पूर्ण है, आप्तकाम है, उसको इच्छा होती ही नहीं। सब प्रकार की इच्छाओं की शान्ति होने पर आत्मज्ञान होता है, तब आत्मज्ञानी क्यों इच्छा करे? जो तत्त्वज्ञान—सम्पन्न हैं और सदा सन्तुष्ट हैं, परमप्रेमास्पद आत्मसुख का अनुभव कर रहे हैं, उनको सिद्धियों से क्या प्रयोजन?

हिंसक पशु आत्मज्ञानी के शरीर को धर्षित नहीं कर सकते—

अज्ञानी की संवित् राग, द्वेष, काम, क्रोध आदि की वासना से दूषित है। अतः वह छेदन-भेदन, सुख-दुःख, दाह आदि दशा को प्राप्त होता है। वासना से मुक्त, जीवन्मुक्त महात्मा का शरीर अधिष्ठानभूत विशुद्ध संवित्स्वरूप है। अतः उसका छेदन-भेदन कोई भी नहीं कर सकता। राग-द्वेष से विहीन पथिक जैसे ग्राम, नगर, जङ्गल में जाता हुआ, राग-द्वेषरहित होकर चला जाता है, वैसे ही हिंसक

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

पशु महात्मा के शरीर के पास पहुँचते ही राग-द्वेषविहीन हो जाते हैं और शरीर के साथ समता का अनुभव करने लगते हैं। अतः उनकी हिंसा की प्रवृत्ति बदल जाती है। फलतः महामुनि वीतहव्य का शरीर हिंसक पशुओं से धर्षित नहीं हुआ।

जीवन्मुक्त वीतहव्य मुनि चिरकाल तक विचरते रहे और अन्त में महामुनि ब्रह्म में लीन हो गए।

यद्विचित्रं क्रियाजालं दृश्यते गम्यते पुनः।
कामवस्तुस्वभावोऽसौ न तदात्मविदां मतम्॥
आत्मवानिह सर्वस्मादतीतो विगतैषणः।
आत्मन्येव हि सन्तुष्टो न करोति न चेष्टते॥
न तस्यार्थो नभोगत्या न सिदध्या न च भोगकैः।
न प्रभावेण नो मानैर्नाशामरणजीवितैः॥
नित्यतृप्तः प्रशान्तात्मा वीतरागो विवासनः।
आकाशसदृशाकारस्तज्ज्ञ आत्मनि तिष्ठति॥
महतां नित्यतृप्तानां तज्ज्ञानां भावितात्मनाम्।
ईहितं सम्प्रयातानां नोपकुर्वन्ति सिद्धयः॥
निर्मुक्तवासना शुद्धसंविन्मात्रमयी तु सा।
तनुस्तिष्ठति तच्छेदे शक्ता नेह हि केचन॥
समसंविद्विलासाढ्ये यद्यदा यतिदेहके।
हिंस्रचेटः पतत्याशु समतामेति तत्तदा॥
समसङ्गविमुक्तत्वाच्छेदादौ न प्रवर्तते।
पान्थो व्यर्थं पथि ग्रामे यथा ग्रामीणकर्मणि॥

योगवासिष्ठ, उपशम-प्र० सर्ग ८९, श्लो० ११, १७-१९, ३८, ४२, ४८-४९।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

१७. चित्ताख्यान

वन्य पशुओं से रहित अतिविशाल तथा भयङ्कर एक महाटवी है। उसमें एक पुरुष रहता था, जिसके सहस्रों नेत्र तथा सहस्रों भुजायें थीं। उसका शरीर विशाल था। उसकी बुद्धि विकृत हो गई थी। वह अपनी भुजाओं से अनेक मुद्गरों को उठाकर अपनी पीठ पर प्रहार करता हुआ भाग रहा था। वह स्वयं अपने ऊपर प्रहार करता था और भयभीत होकर सुदूर प्रदेशों की ओर रोता हुआ दौड़ रहा था। इस प्रकार विवेकहीन वह पुरुष श्रान्त एवं जर्जरित होकर किसी विशाल, अन्धकार-परिपूर्ण तथा गम्भीर कूप में गिर पड़ा।

चिरकाल के अनन्तर वह अन्धकूप से बाहर निकल कर पूर्ववत् मुद्गरों से अपने ऊपर प्रहार करता हुआ भागने लगा। बहुत दूर जाकर वह कण्टकों से आकीर्ण करौंदों की झाड़ियों में प्रविष्ट हो गया। कुछ समय पश्चात् वहाँ से निकलकर मुद्गरों से अपने ऊपर प्रहार करता हुआ अकारण भयभीत हो भागने लगा। बहुत दूर जाकर वह चन्द्रकिरणों के समान शीतल एवं मनोहर कदलीवन में हँसता हुआ प्रविष्ट हुआ। पुनः वहाँ से निकलकर मुद्गरों से अपने ऊपर प्रहार करता हुआ वह भागने लगा। वह विवेकहीन पुरुष श्रान्त होकर पुनः किसी अन्धकूप में गिर पड़ा। वहाँ से निकलकर पुनः कदलीवन में प्रविष्ट हो गया। वहाँ से निकलकर करौंदों की झाड़ियों में, वहाँ से अन्धकूप में और अन्धकूप से किसी अन्य कदलीवन में मुद्गरों से अपने ऊपर प्रहार करता हुआ प्रविष्ट हुआ।

उस मूढ की दुर्दशा देखकर मैंने योगबल से उसे पकड़ा और पूछा—"तुम कौन हो ? इस प्रकार अपने ऊपर प्रहार क्यों कर रहे हो ? तुम्हारा अभिमत क्या है ? तुम मोह में क्यों पड़े हो ?"

उसने कहा—"मुनिवर मैं कोई नहीं हूँ और न मैं कुछ कर रहा हूँ। तुमने मुझे देखकर नष्ट कर दिया। अतः तुम मेरे शत्रु हो"।

ऐसा कहकर उसने अपने जर्जरित अङ्गों को देखा और दीन हो तार स्वर में रोने लगा। एक ही क्षण में रोदन समाप्त कर अपने शरीराङ्गों को देखकर हँसने और गरजने लगा।

अट्टहास के पश्चात् उसने अपने शरीराङ्गों—शिर, बाहु, वक्षःस्थल, उदर—का त्याग किया और नियति की शक्ति से पुनः गमन के लिए उद्यत हुआ। मैंने वहाँ एकान्त में एक दूसरे पुरुष को देखा। वह भी अपने ऊपर प्रहार करता हुआ भाग रहा था। वह कूप में गिरा, वहाँ से निकलकर पुनः दौड़ने लगा। पुनःदूसरे गर्त्त में गिरा, वहाँ से निकल कर पुनः भागने लगा। पुनः शीतल कदलीवन में प्रविष्ट हुआ, वहाँ

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

से निकलकर अपने ऊपर प्रहार करता हुआ भाग चला। वह कभी प्रसन्न होता था, कभी दुःखी। अपने ऊपर प्रहार करता रहता था। उसकी दुर्दशा देखकर मैंने योगबल से उसे पकड़ा। उसकी दुर्दशा का कारण पूछा। उसने भी पूर्व-पुरुष के समान हँसकर उत्तर दिया और अदृश्य हो गया। मैंने एकान्त में एक अन्य पुरुष को देखा। वह भी अपने ऊपर प्रहार कर रहा था और भाग रहा था। वह भागता हुआ एक अन्धकूप में गिर पड़ा। मैंने चिरकाल तक उसकी प्रतीक्षा की, वह कूप से नहीं निकला। तब मैं स्थानान्तर को जाने लगा। मार्ग में मुझे एक अन्य पुरुष मिला। वह भी पूर्व-पुरुषों के समान आचरण कर रहा था। मैंने योगबल से उसे पकड़ा और पूछा। उसने मेरा अपमान किया। मुझे दुष्ट आदि कहकर अपने कार्य में प्रवृत्त हो गया।

राघवेन्द्र! मैंने उस महाटवी में चिरकाल तक विचरण किया और नाना प्रकार के पुरुषों को देखा। कुछ मेरे उपदेश से उपशम को प्राप्त हुए। कुछ ने मेरी उपेक्षा की। कुछ अन्धकूप से बाहर निकले। कुछ कदलीवन में चिरकाल तक विश्राम करते रहे। कुछ कटीले करञ्जवन में ही पड़े रहे। इस प्रकार की वह महाटवी है, जिसमें नाना प्रकार के पुरुष नाना प्रकार के आचरण करते हैं और सुख-दुःख के भोगों में पड़े रहते हैं।

विशेष—उक्त आख्यान को महर्षि वसिष्ठ जी ने श्रीराघवेन्द्र को सुनाया।

———

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

१८. भगीरथोपाख्यान

भगीरथ-नामक एक परम-धार्मिक राजा था, जो समुद्रान्त पृथिवी का शासक था। वह साधुओं को यथेच्छ धन प्रदान करता था, साधारण कर लेता था और अर्थियों के लिए कल्पवृक्ष था। उसके शरीर की कान्ति अग्नि के समान थी और वह प्रजा के दैन्य-दारिद्र्य को दूर करता था। वह अपने अलौकिक प्रताप से शत्रुओं को जलाता था। वह तत्त्वज्ञानियों के चित्त को आह्लादित करता था।

उसने अपनी लोकोत्तर तपस्या से भूमण्डल पर गङ्गावतरण कराया और ब्रह्मशाप से भस्मीभूत अपने पूर्वजों का (राजा सगर के पुत्रों का) उद्धार गङ्गाजल स्पर्श कराकर किया।

युवावस्था में ही उन्हें वैराग्य का उदय हुआ और वह एकान्त में विचार करने लगे कि "दिन रात उन्हीं कार्यों को करना नीरस प्रतीत होता है। कोई अपूर्व पौरुषसम्पन्न कार्य करना चाहिए, जिससे प्राप्य पदार्थ हस्तगत हो जाँय और जीवन सफल हो जाय"।

उद्विग्न चित्त हो उन्होंने गुरुवर श्रीत्रितल से पूछा—"भगवन्! रागद्वेषादि से युक्त सांसारिक वृत्तियों और तज्जन्य फलों में भटक रहे हम अत्यन्त खिन्न हैं। संसार में फँसाने वाले जरामरणमोहादि दुःखों का अवसान कैसे होगा?

त्रितल मुनि ने कहा—"राजन्! निर्विकल्पक समाधि और ब्रह्माकार वृत्ति से स्फुरित्त प्रत्यक्तत्त्व के अवबोध से सब दुःख नष्ट हो जाते हैं, ग्रन्थियाँ दूर हो जाती हैं, संशय समता को प्राप्त हो जाते हैं। तत्त्वज्ञानियों ने शुद्ध आत्मा को ज्ञेय बतलाया है, जो कि सर्वव्यापी तथा नित्य है। वह न अस्त होता है और न उदित"।

भगीरथ ने कहा—"भगवन्! मैं निर्गुण, शान्त, अच्युत आत्मतत्त्व को जानता हूँ; परन्तु मेरी बुद्धि उसमें परिनिष्ठित नहीं है। कृपया मार्ग प्रदर्शित करें"।

त्रितल मुनि ने कहा—"राजन्! ज्ञान के द्वारा ज्ञेय आत्मा को जाना जा सकता है। विषयों में आसक्ति का अभाव, पुत्र, दार, गृह आदि में ममता का अभाव, इष्टानिष्ट वस्तुओं में समत्वभाव, 'आत्मेतर कोई पदार्थ नहीं है' यह दृढ़-भावना, एकान्तसेवन, जनसमूह से विरक्ति अध्यात्मशास्त्र का परिशीलन, तत्त्वज्ञान प्राप्त करने के लिए अनवरत अध्यवसाय आदि ज्ञानोत्पादन के प्रमुख साधन माने गए हैं। अहम्भाव के शान्त होने पर राग-द्वेष का विनाशक तथा संसाररूप व्याधि का परम औषध आत्मज्ञान प्राप्त होता है"।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

भगीरथ ने कहा—"गुरुवर ! शरीर में चिरकाल से सुदृढ़ अहम्भाव कैसे दूर हो सकता है" ?

त्रितल मुनि ने कहा—"राजन् ! भोगविलास की भावना का तथा जगत् के पदार्थों का सर्वत्याग करने से अहङ्कार दूर हो सकता है" ।

कुछ दिनों के पश्चात् राजा भगीरथ ने सर्वत्याग की सिद्धि के लिए अनिष्टोम-यज्ञ किया। दुष्ट और निर्दुष्ट का विचार किये विना उन्होंने ब्राह्मणों तथा बन्धु-बान्धवों को गो, भूमि, हिरण्य, अश्वादि समस्त धन दान में दे दिया। राजा ने तीन दिनों के भीतर समस्त धनराशि दान में वितरित कर दी और वह अकिञ्चन हो गए। उन्होंने मन्त्रियों तथा नागरिकों की इच्छा के विरुद्ध अपना राज्य सीमान्तवर्ती शत्रु को दे दिया।

शत्रु ने राज्य को आयत्त कर लिया और राजा भगीरथ कौपीन धारण कर अपने मण्डल से बाहर निकल गए। वह सुदूर वन्यप्रदेशों तथा ग्रामों में चले गए, जहाँ के लोग उनसे परिचित नहीं थे। राजा ने अल्पकाल में ही समस्त एषणाओं का त्याग कर समता तथा आत्मविश्रान्ति प्राप्त कर ली।

भूमण्डल पर भ्रमण करते हुए राजा भगीरथ अदृष्टवश शत्रु से आक्रान्त अपने नगर में पहुँच गये। जीवन-निर्वाह के लिए उन्होंने नागरिकों तथा मन्त्रियों से भिक्षा की याचना की।

नागरिकों तथा मन्त्रियों ने राजा को पहचान लिया और विधिवत् उनकी पूजा की। शत्रु राजा ने भी प्रार्थना की—"प्रभो ! आप अपना राज्य ले लीजिए"; परन्तु राजा भगीरथ ने भोजन के अतिरिक्त कुछ भी नहीं लिया। कुछ दिनां तक वहाँ रहने के पश्चात् राजा कहीं अन्यत्र चले गए। उनके विषय में नाना प्रकार की चर्चा नगर में होती रही और नागरिकों ने राजा भगीरथ की स्थिति पर गहरा शोक प्रकट किया।

विभिन्न स्थानों में विचरण कर रहे राजा भगीरथ का दैववशात् गुरुदेव त्रितल-से साक्षात्कार हो गया। प्रणामादि द्वारा गुरु का आदर कर राजा भगीरथ उनके साथ पर्वत, वन, नगर, ग्राम आदि में कुछ समय तक रहे। ब्रह्मरूपता को प्राप्त वे दोनों गुरु-शिष्य सत्सङ्ग, शास्त्रचिन्तन आदि करते हुए साथ-साथ रहने लगे। एक वन से दूसरे वन में घूमते हुए वे ब्रह्मानन्द में विचरते थे। सिद्धों तथा सुसमृद्ध नागरिकों द्वारा प्रदत्त धन को वे तृण के समान समझ कर ग्रहण नहीं करते थे। प्रारब्ध के अनुसार उपलब्ध साधनों से वे सानन्द जीवन व्यतीत कर रहे थे। वे इच्छारहित हो प्रारब्ध-वश प्राप्त सुख-दुःख का अभिनन्दन करते थे और आध्यात्मिक चर्चा में लीन रहते थे।

किसी देश के राजा की मृत्यु हो गई थी। राजा को कोई सन्तान न थी। मन्त्रीगण तथा नागरिक किसी उदार तथा राजगुणों से सम्पन्न राजा की खोज में थे। राजा भगीरथ को देखकर वे अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्हें सर्वथा योग्य समझ कर

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

राजा के पद पर उनका अभिषेक कर दिया गया। "महाराज भागीरथ की जय हो" इस प्रकार का उद्घोष राज्य में होने लगा।

इधर अयोध्या के राजा की मृत्यु हो गई और मन्त्रियों तथा नागरिकों को राजा भगीरथ का वृत्तान्त विदित हो गया। अतः मन्त्रिपरिषद् के सदस्य नागरिकों के साथ राजा भगीरथ के पास गए। उन्होंने सादर निवेदन किया—"प्रभो! आपने जिसको अयोध्या का राजा बनाया था, वह दिवङ्गत हो गया। अब आप कृपया अपने राज्य की रक्षा कीजिए। यथाप्राप्त राज्यलक्ष्मी का त्याग उचित नहीं है"।

राजा भगीरथ ने लोकमत का आदर किया और वह अयोध्या के सम्राट् हो गए। वह समभाव में स्थित रहते थे, वह शान्त, वीतराग एवं मात्सर्यरहित थे। वह प्राप्त कार्यों को सम्पन्न करते थे। वह तत्त्वज्ञानी थे, अतः राग-द्वेष से रहित थे।

उन्होंने चिरकाल तक अयोध्या का राज्य किया और अन्त में परमपद प्राप्त किया।

———

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

१६. विलास-भासाख्यान

अपने उन्नत शिखरों से आकाशविजयी उपत्यका से भूतल को परास्त करने वाला तथा पृथ्वी में प्रविष्ट मूलभाग से पाताल को आक्रान्त करने वाला सह्य-नामक लोकविजयी गिरि है। उस पर विभिन्न वर्णो की असंख्य पुष्पराशियाँ विराजमान है, निर्मल झरने द्रुतगति से दौड़ रहे हैं और शिखर पर अप्सरायें नृत्य-गान कर रही हैं। वनप्रदेश भूमि में मृग एवं पक्षीगण सुन्दर कलरव कर रहे हैं और अधित्यका के ऊपरी भाग पर मेघों के गर्जन और पक्षियों के मनोहर गान हो रहे हैं। उसकी गुफाओं में विद्याधर विराजमान हैं। कमलाकरों पर भृङ्गाली का मधुर गान हो रहा है तथा निम्न भाग में पुलिन्दजन अपनी भाषा में यथेच्छ गान कर रहे हैं। उसके ऊर्ध्वभाग में देवगण रहते हैं, निम्न-भाग में मानव-समाज रहता है तथा पृथ्वी के भीतर के भाग में नागों का आवास है। इस प्रकार वह पर्वतराज द्वितीय जगत् के समान दृष्टिगोचर हो रहा है। उसके औदीच्य (उत्तरी)भाग में, जहाँ पुष्पों से समृद्ध असंख्य आम्रादि वृक्ष हैं, कलकल-नाद करते सुन्दर झरने बह रहे हैं, अनेक प्रकार के कमल खिले हैं, स्वर्ग के समान रमणीक, श्रमहारी, ब्रह्मलोक एवं शिवलोक के समान गरिमासम्पन्न महर्षि अत्रिका आश्रम है।

उस आश्रम में आकाशस्थ बृहस्पति और शुक्र के समान विद्वान् दो तपस्वी ब्राह्मण रहते थे, जिनके नाम वृहस्पति एवं शुक्र थे। उनके विलास और भास-नामक दो पुत्र थे, जो परस्पर अत्यन्त अनुरक्त थे। जैसे तिलों में तेल और पुष्पों में आमोद मिले रहते हैं, वैसे वे दोनों परस्पर मिलकर रहते थे। वे कभी पृथक् नहीं होते थे। ऐसा प्रतीत होता था कि एक ही मन ने दो भागों में विभक्त हो मूर्तिमान् दो स्वरूप धारण कर लिया है। वे दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगे। अकस्मात् उनके पितृ-गण परलोकगामी हुए। वे दोनों बालक नितान्त दुःखसन्तप्त, दीन तथा शोकाभिभूत हो गए। उन्होंने पिता जी की और्ध्वदैहिक क्रियायें सम्पन्न कीं और पश्चात् शोकमग्न हो करुण विलाप करने लगे।

वे दोनों आश्रम छोड़कर अन्यत्र जङ्गल में सुदूर चले गए। उन दोनों ने अपने अपने आवास पर चिरकाल तक तपोमय जीवन व्यतीत किया। उनका वार्धक्य आ गया; परन्तु उन्हें पूर्णज्ञान प्राप्त नहीं हुआ। अकस्मात् वे दोनों कहीं मिल गए। विलास ने आनन्दविभोर हो भास का स्वागत किया और कहा "भास! सुदीर्घ काल तक तुम मुझसे अलग रहे हो। कहो! तुम कुशल से तो हो, क्या तुम्हारी तपश्चर्या सफल हो गई? क्या तुम्हारी बुद्धि निर्मल हो गई? क्या तुमने तत्त्वज्ञान प्राप्त कर लिया?

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

भास ने कहा—"मान्यवर ! आपके दर्शन से मेरा जन्म सफल हो गया। पर इस दुःखमय संसार में कुशल कहाँ ? जब तक ज्ञातव्य वस्तु का ज्ञान नहीं, जब तक मानसविकार नष्ट नहीं हुए, जब तक संसार-सागर तीर्ण नहीं हुआ, जब तक आशायें पूर्णरूप से नष्ट नहीं हुईं, तब तक कुशलता कहाँ ? आत्मज्ञानरूप महौषध के विना यह संसाररूप महामारी विनष्ट नहीं होती और पुनः-पुनः उत्पन्न होती रहती है। संसाररूप वृक्ष सदा अङ्कुरित, पुष्पित एवं फलित होता रहता है। आत्मज्ञान से ही वह नष्ट होता है, अन्य कोई उपाय नहीं है। जैसे जलविहीन सरोवर से राजहंस दूर भाग जाते हैं, वैसे इस शुष्क शरीर से प्राण दूर हो जाते हैं और पुनः लौटते नहीं। ज्ञान के विना चित्त मोहान्धकार में सदा पड़ा रहता है। तृष्णा दिन-प्रतिदिन बढ़ती रहती है, कभी ह्रासोन्मुख नहीं होती। यह जीवन काम, क्रोध, द्वेष, भय, लोभ, तृष्णा आदि से जर्जरित हो नष्ट हो जाता है। महाबली काल इष्ट बन्धु-बान्धवों तथा सुहृद्वर्ग को सदा निगलता रहता है। चिन्तारूपी चक्र में बँधा, दुष्टक्रियाओं के अनुष्ठान में प्रवृत्त यह चित्त सदा घूमता रहता है, कभी शान्ति-सुख को प्राप्त नहीं होता। विविध कार्यों के जालपाश में फँसकर बुद्धि भी मोहित हो जाती है। यह शत्रु है और यह मित्र है इस प्रकार का राग-द्वेष सदा चित्त को संतप्त करता रहता है। अनात्म देह में आत्मत्व बुद्धि की कल्पना के कारण मानव सदा दुःखी रहता है। इस प्रकार जीव नाना प्रकार के सांसारिक दुःखों को झेलता है"। वे दोनों मित्र चिरकाल तक आध्यात्मिक चर्चा करते हुए जीवन व्यतीत करने लगे। अन्त में उन्हें ज्ञान प्राप्त हो गया और वे मुक्त हो गए।

———

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

२०. कागभुशुण्डोपाख्यान

कागभुशुण्ड-दर्शन—

महर्षि वसिष्ठ देवराज इन्द्र की सभा में बैठे थे। वहाँ नारद जी दीर्घजीवियों की चर्चा कर रहे थे। उस प्रसङ्ग में निखिल शास्त्रों के पारङ्गत महामुनि शाततप बोल उठे "मेरु पर्वत के ईशानकोण में चमकीले शिखर पर एक शोभायमान 'चूत' नामक कल्पवृक्ष है। उस वृक्ष की दक्षिण शाखा के कोटर में एक घोसला है, जिसमें वीतराग भुशुण्ड-नामक वायसराज रहते हैं कि जैसे विशालकोशवाले अपने कमल में ब्रह्मा जी। उस वायसराज के समान दीर्घजीवी इस स्वर्गलोक में न कोई हुआ और न होगा। वह दीर्घायु, रागरहित, ऐश्वर्यसम्पन्न, विशाल बुद्धि, शान्त एवं कमनीय हैं। वह कालगति को जानने वाले हैं। उनके समान दीर्घजीवी, पुण्यात्मा एवं पुरुषार्थ-चतुष्टयसम्पन्न कोई दूसरा नहीं है।

मैंने कागभुशुण्ड को देखने के लिए कौतुकवश प्रस्थान किया। एक क्षण में मैं उस शृङ्ग पर पहुँच गया, जहाँ काक रहता था उस शिखर और कल्पवृक्ष की शोभा दिव्य, अलौकिक एवं वर्णनातीत है। मैंने ब्रह्मदेव के वाहक हंस-पक्षियों को देखा, जो प्रणव के साथ सामवेद का गान कर रहे थे। मैंने अग्निपुत्र शुकों को देखा, जो मन्त्रों का उच्चारण कर रहे थे। वहाँ मैंने मयूरों के अर्भकों को देखा, जो सुन्दर परों से विभूषित थे और शिवसम्बन्धी विज्ञान के ज्ञाता थे। वहाँ मैंने भरद्वाज, सुवर्णशिखवाले पक्षीगण, कलविङ्क, काक, कोकिल, क्रौञ्च, कुक्कुटप्रभृति अनेक पक्षियों के समूह को देखा। मैंने आकाशस्थ हो वृक्ष की दक्षिण शाखा पर विशाल द्रोण-काकों को देखा। वहीं एक कोण में जहाँ नाना वर्ण के पुष्प बिखेरे गए थे, शीतल, मन्द, सुगन्धित वायु बह रहा था, काकमण्डल के 'मध्य' ऐश्वर्यशाली, उन्नतशरीर वायसराज कागभुशुण्ड सुख से आसीन थे।

वहाँ मैं आकाशमण्डल से अवतीर्ण हुआ। मेरे सान्निध्य से काक-सभा में कुछ हलचल सी मच गई और काकगण क्षुब्ध हो गए।

त्रिकालदर्शी काकराज 'यह वसिष्ठ मुनि आए हैं', ऐसा कहकर खड़े हो गए। उन्होंने सङ्कल्पजन्य पुष्पों की वर्षा मेरे ऊपर की और पत्रों का आसन बिछाकर बैठने का अनुरोध किया।

मैं उनके साथ बैठ गया। अर्घ्य, पाद्य आदि देकर उन्होंने कहा—"भगवन्! हमारा बड़ा सौभाग्य है, जो आपने दर्शन देकर हम लोगों को कृतार्थ किया। मुनिवर! आप इस समय किस प्रदेश से पधार रहे हैं? हम आपके सेवक और आज्ञापालक हैं। आपने

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

इस सुदूर प्रदेश में आगमन का क्लेश क्यों उठाया ? आपके चरणों के दर्शन से मैंने सब कुछ जान लिया। मैं इस पुण्यभार से दब सा गया हूँ। चिरजीवियों की चर्चा में प्रसङ्गवश मेरा नाम आ गया और उसी सम्बन्ध में आपके दर्शन हुए हैं। मुनिवर ! मैं आपके मुख से आगमन का प्रयोजन सुनना चाहता हूँ। कृपया कृतार्थ करें।

वसिष्ठ जी ने कहा—"पक्षिराज ! आपने ठीक ही कहा है। मेरे आगमन का प्रयोजन वही है। मैं जानना जाहता हूँ कि आपका जन्म किस कुल में हुआ और आपको तत्त्वज्ञान कैसे प्राप्त हुआ ? आपकी आयु कितनी है और किसने आपको यह स्थान आवास के लिए निर्दिष्ट किया ?

कागभुशुण्ड ने कहा—"मुनिवर ! आप जो कुछ पूछ रहे हैं, मैं उसका उत्तर दे रहा हूँ, कृपया श्रवण करें"।

देवताओं में श्रेष्ठ देवाधिदेव महादेव जी हैं जो ब्रह्मादि देवताओं द्वारा अभिवन्दित और पूजित है। उनके मस्तक पर गङ्गारूपी कुसुम मालिका है जिसने जटाजूट को वेष्टित कर रखा है। क्षीरसागर से उत्पन्न, अमृत का स्रोत बहाने वाला, कान्तियुक्त चन्द्रमा उनका चूडामणि है, इन्द्रनील मणि के समान कालकूट महाविष उनके कण्ठ का आभूषण हैं। मस्तक पर अतिशुभ्र भस्म रेखा चमक रही हैं, दिशायें उनके वस्त्र हैं। श्मशान ही उनका घर है, मातृकागण नृत्यादि में उनकी सहायक हैं। सुवर्ण के सदृश कान्तिमान् सर्प उनकी भुजाओं के आभूषण हैं। मेरु, हिमालय प्रभृति पर्वत उनकी ध्यान की मूर्तियाँ हैं, भालू, ऊँट, बकरी और सर्प-सदृश मुखवाले प्रमथगण उनके क्रीडासहायक हैं। नाना प्रकार की आकृति और मुख से युक्त मातायें भी उनकी क्रीडासहायिकायें हैं। भूतगण से नमस्कृत तथा चतुर्दश भुवनों के असंख्य प्राणियों को भोजन देने वाली मातृकायें उस महादेव के सामने नृत्य करती हैं। उन मातृकाओं के मुख ऊँट और गधों के मुख के सदृश हैं। शव के हाथ पैर आदि की मालायें पहनकर वे चारों दिशाओं में विहार करती हैं।

जया, विजया, जयन्ती, अपराजिता, सिद्धा, रक्ता, अलम्बुसा और उत्पला, ये आठ मातृदेवियाँ मुख्य हैं। अन्य मातायें उन्हींका अनुसरण करती हैं। उनमें 'अलम्बुसा' नामक माता अत्यन्त विख्यात हैं। उनका वाहन चण्ड-नामक काक है, जो इन्द्रनील मणि के सदृश नीला है और जिसका मुख वज्रतुल्य अस्थि से निर्मित है। किसी समय ये सब मातायें आकाश में एकत्र हुईं। वहाँ उन्होंने पानोत्सव मनाया। वार्ता के प्रसङ्ग में यह बात उठी कि भगवान् उमापति हम लोगों का तिरस्कार क्यों करते हैं ? हम लोगों को अपना प्रभाव दिखलाना चाहिए। तदनुसार उन्होंने रुद्रशक्ति उमा को समन्त्रक जल से प्रोक्षित किया और उन्हें ओदनरूप में बनाने के लिए अभिशाप किया। मातृकाओं ने नृत्य, गान आदि के द्वारा महान् उत्सव मनाया। कुछ देवियाँ पान करने लगीं, कुछ गरजने लगीं, कुछ बोलने लगीं, कुछ हँसने लगीं, कुछ अनर्गल बातें करने लगीं, कुछ नाचने-गाने लगीं।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

आलयलाभ—

जब उन मातृकाओं का उत्सव चल रहा था, उनके वाहनभूत चण्ड आदि भी उन्मत्त होकर नाचने, गाने, हँसने तथा रुधिरपान आदि क्रिया में व्यस्त थे। ब्राह्मी शक्ति को वाहनभूत हंसियाँ और अलम्बुसा देवी का वाहन चण्ड आकाश-प्रदेश में एक होकर नाचने लगे। कालान्तर में उन्हें रतिविषयक अनुराग उत्पन्न हुआ और हंसियों ने उन्माद के कारण अधम जाति के काक के साथ रमण किया और फलस्वरूप गर्भ धारण किया।

उत्सव के अनन्तर देवियाँ (मातृकायें) भगवान् शङ्कर के पास गईं। भोजन में देवियों ने महादेव जी के समक्ष ओदन रूप में परिवर्तित उमा को समर्पित किया। शंकर जी यह जानकर कि मेरी प्रिया मुझे भोजनरूप में दी जा रही है, अत्यन्त रुष्ट हुए। तब उन देवियों ने अपने अङ्गों से उमा को उत्पन्न कर विधि-पूर्वक महादेव जी को समर्पित किया।

पश्चात् महादेव जी सपरिवार अपने स्थान पर गए और वे देवियाँ भी अपने अपने स्थान पर गईं।

ब्राह्मी हंसियों ने ब्राह्मी देवी के पास जाकर अपना वृत्तान्त निवेदित किया। देवी जी ने हंसियों को यथेच्छ विचरण करने की आज्ञा दी और वह स्वयं ध्यानस्थ हो गईं।

कालान्तर में हंसियों ने २१ (इक्कीस) अण्डे दिये और हम सब २१ भाई चण्ड के पुत्र काक जाति में उत्पन्न हुए। हम लोगों ने अपनी माताओं के साथ ब्राह्मी देवी की आराधना चिरकाल तक की और उनके प्रसाद एवं अनुग्रह से हम लोग जीवन्मुक्त हुए।

वहाँ से हम लोग अपने पिता जी के पास गए। पिता जी हम बच्चों से मिलकर बहुत प्रसन्न हुए। भगवती जी का प्रसाद सुनकर वह और भी आनन्द विभोर हो गए। बच्चों ने आवास के लिए उत्तम स्थान की प्रार्थना की। पिता जी ने कहा—"पुत्रों! मेरु पर्वत अत्यन्त उच्च है और उस पर देवगण वास करते हैं। उसके चरण सोलह हजार योजन पृथ्वी में स्थित हैं। जिसकी पूजा नाग, असुर, उरग प्रभृति करते हैं। उस पर्वत पर देवर्षि, राजर्षि, ब्रह्मर्षि, देव, पितर, गन्धर्व, किन्नर, अप्सरायें, विद्याधर, यक्ष, नाग, राक्षस, प्रमथ, एवं गुह्यक, ये चौदह प्रकार के प्राणी वास करते हैं। उसके ईशान कोण में एक महान् कल्पवृक्ष है, जिसकी दक्षिण शाखा पर कनक के समान पीतवर्ण के पर्ण हैं। मैं पहले वहीं रहता था। तुम लोग वहाँ जाओ और उसी घोसले में सानन्द वास करो"।

पिता जी के चरणों की वन्दना कर हम लोग वहाँ से उड़कर आकाश में विचरने लगे। सूर्यमण्डल का अतिक्रमण कर हम लोग अमरावती में पहुँचे। पश्चात् ब्रह्मलोक गए। वहाँ अपनी माता और भगवती देवी को प्रणाम किया और

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

पिता जी द्वारा सङ्केतित आवास का वृतान्त कह सुनाया। उन्होंने वहाँ जाने की आज्ञा प्रदान की ओर तदनुसार हम लोगों ने ब्रह्मलोक से प्रस्थान किया।

वायुलोक में भ्रमण करते हुए हम लोगों ने लोकपालों के नगरों का अतिक्रमण किया और इस कल्पवृक्ष पर आ गए और अपने घोंसले में वास करने लगे।

वसिष्ठ जी ने पूछा—"पक्षिराज! आपके बुद्धिमान् और बलशाली भाई यहाँ दिखाई नहीं पड़ते। आप एकाकी क्यों रहते हैं" ?

भुशुण्ड ने कहा—"मुनिवर! हम लोगों को यहाँ रहते सुदीर्घ काल व्यतीत हो गया। युगों की पङ्क्तियाँ बीत गईं। मेरे सब भाई इस दीर्घकाल में शैव-पद में लीन हो गए। काल सबको निगल जाता है"।

महर्षि वसिष्ठ जी ने पूछा—"पक्षिराज! प्रलय के समय द्वादश आदित्यों के उदित हो जाने पर तथा प्रलयकालिक वायु के बहने पर क्या आपको कष्ट नहीं होता? जल को पाषाणसदृश कठोर बनाने वाली शीतल चन्द्रकिरणों से और वर्षा के कठोराघातों से क्या आपको कष्ट नहीं होता? क्या यह कल्पवृक्ष जगत् के विषम क्षोभों से क्षुब्ध नहीं होता" ?

भुशुण्ड ने कहा—"मुनिवर! आकाश में रहने वाले, लोक से तिरस्कृत काक जीवन नितान्त गर्ह्य हैं। ऐसा तुच्छ जीवन का क्षोभरहित कैसे हो सकता है? हम सदा सन्तोषवृति का आश्रयण करते हैं। अतः जगत् के विभ्रमों से कदापि मुग्ध नहीं होते। हम अपने सत्तास्वभाव में ही सन्तुष्ट रहते हैं। कष्टप्रद व्यापारों से मुक्त हो अपने घोंसले में कालयापन कर रहे हैं। हम इच्छाओं का परित्याग कर जीवन-मरण से अप्रभावित हो पूर्णकाम के समान अपने घोंसले में वास करते हैं। हमने लोक की दशाएँ देखी हैं, विविध दृष्टियाँ भी देखी हैं। हमारे चित्त में चञ्चलता लेशमात्र भी नहीं है। हम प्राप्त वस्तुओं का त्याग नहीं करते, अप्राप्त वस्तु की कामना भी नहीं करते, व्यवहारदृष्टि से स्थित हैं और परमार्थदृष्टि से स्थित नहीं भी हैं। आप महानुभावों के अनुग्रह से हम लाग सर्वविध दुःख, शोक, भय, आयास से मुक्त हैं। हमारा मन राग आदि वृत्तियों में लीन तथा तत्त्वविचार से शून्य कभी नहीं होता। समस्त एषणाओं को तिलाञ्जलि देने वाले सन्त, महात्मा अपने आगमन, दर्शन आदि से जो हम पर अनुग्रह करते हैं, उससे बढ़कर कुशल क्या हो सकता है? आपात-रमणीय विषयों से क्या प्राप्त हो सकता है, सत्सङ्गरूपी चिन्तामणि सबका सारभूत पदार्थ है। आपके आगमन से मैं अपना जन्म सफल समझता हूँ"।

चिरजीवित-वृतान्त-कथा—

युगान्त के महान् विक्षोभों एवं भयङ्कर झंझावतों के बहने पर भी यह कल्प-द्रुम स्थिर रहता है, कम्पित नहीं होता। लोकान्तरों में निवास करने वाले प्राणी यहाँ पर नहीं आ सकते, अतः हम यहाँ सुखपूर्वक रहते हैं। हिरण्याक्ष ने जब पृथिवी का अपहरण किया था, तब भी यह वृक्ष कम्पित न हुआ। जब सुमेरुपर्वत कम्पित हुआ था, तब भी यह वृक्ष कम्पित न हुआ। भगवान् नारायण ने जब मेरुपर्वत को लाकर समुद्र से मन्दाराचल का उद्धार किया था, तब भी यह वृक्ष कम्पित न हुआ।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

देवासुर संग्राम के समय जव सूर्यमण्डल एवं चन्द्रमण्डल गिर गये थे और जगत् में महान् क्षोभ उत्पन्न हो गया था उस समय भी यह वृक्ष कम्पित न हुआ। इस वृक्ष ने पर्वतराज की शिलाओं का उन्मूलन करने वाले प्रलयकालिक वायु के प्रचण्ड वेग को भी सहा। तारकासुरसंग्राम में कालनेमि की भुजाओं में सुमेरु-पर्वत उन्मूलित होकर अवस्थित था, उस समय भी यह वृक्ष कम्पित न हुआ। अमृत-हरणयुद्ध के प्रसङ्ग में पक्षिराज गरुड़ के कुक्षिस्थ वायु के वेग से बड़े-बड़े सिद्ध गिर रहे थे, उस समय भी यह वृक्ष कम्पित न हुआ। जब शेषभगवान् ने प्रलयकाल में अपने फणों से प्रलयाग्नि की शिखायें निकालीं, तब भी यह वृक्ष कम्पित न हुआ। ऐसे उत्तम वृक्ष पर रहने वाले हम लोगों को आपत्तियाँ कहाँ से आ सकती हैं ?

महर्षि वसिष्ठ ने कहा—"पक्षिराज ! चन्द्र, सूर्य एवं नक्षत्रगण को गिरा देने वाले, प्रलयान्तक वायु के बहने पर, आप चिन्तामुक्त हो कैसे जीवित रह सकते हैं" ?

भुशुण्ड ने कहा—"मुनिवर ! कल्पान्त में जब जगत् का व्यवहार क्षीण हो जाता है, तब मैं कृतघ्न के समान अपने घोंसले का त्याग कर देता हूँ। उस समय मैं विशुद्ध आकाश में स्थित रहता हूँ। जब आकाश में द्वादश आदित्य उदित होकर तपते हैं, जो पर्वतों को खण्ड-खण्ड कर देते हैं, तब मैं वरुण की धारणा बाँधकर स्थिर बुद्धि से स्थित रहता हूँ। जल के मध्य में अग्निसंताप का अनुभव नहीं होता। पर्वतराजों को विदीर्ण करने वाले प्रलयकालिक वायु के झोंकों से बचने के लिए मैं ब्रह्माण्ड से बहिर्भूत चिदाकाश में पार्वती धारणा बाँधकर स्थित रहता हूँ। प्रलयकाल में मेरु आदि के गल जाने पर जब जगत् जलमय हो जाता है, तब वायुमय धारणा बाँधकर मैं जल के ऊपर तैरता रहता हूँ। मैं अपने ब्रह्माण्ड को छोड़कर निर्मल एवं विशाल चिदाकाश में तब तक समाधिस्थ रहता हूँ, जब तक ब्रह्मदेव पुनः सृष्टिकार्य में प्रवृत्त नहीं होते। सृष्टि के प्रारम्भ में मैं पुनः अपने कल्पवृक्षस्थ आलय में आ जाता हूँ"।

महर्षि वसिष्ठ ने कहा—"पक्षिराज ! प्रलयकाल में तत्तद् धारणाओं को बाँधकर जैसे आप चिदाकाश में स्थित रहते हैं, वैसे अन्य योगीजन क्यों नहीं रहते ?"

भुशुण्ड ने कहा—"ब्रह्मन् ! परमेश्वर की नियामिका शक्ति का उल्लङ्घन कोई नहीं कर सकता। जिसको जिस रूप में रहने का आदेश है, वह उसी रूप में रहेगा। भवितव्यता का अतिक्रमण कोई नहीं कर सकता। यह नियति का स्वभाव एवं निश्चय है। मैं सङ्कल्प करता हूँ कि सृष्टि के आरम्भ में प्रति युग में यह कल्पवृक्ष इसी स्थान पर उत्पन्न हो। तदनुसार वह इसी शिखर पर और नियत स्थान पर ही उत्पन्न होता है"।

प्रतपन्ति यदाऽऽदित्याः शकलीकृतभूधराः।
वारुणीं धारणां बद्ध्वा तदा तिष्ठामि धीरधीः॥

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

यदा शकलिताद्रीन्द्रा वान्ति प्रलयवायवः ।
पार्वतींधारणां बद्ध्वा खे निष्ठाम्यचलं तदा ॥
जगद्गलितमेर्वादि यात्येकार्णवतां यदा ।
वायवीं धारणां वद्ध्वा संप्लवे चलधीस्तदा ॥
यथा तिष्ठसि पक्षीन्द्र धारणाभिरखण्डितः ।
कल्पान्तेषु तदाकस्मान्नान्ये तिष्ठन्ति योगिनः ॥
ब्रह्मन्नियतिरेषा हि दुर्लङ्घ्या पारमेश्वरी ।
ययेदृशेन वै भाव्यं भाव्यमन्यैस्तु तादृशैः ॥
न शक्यते तोलयितुमवश्यं भवितव्यता ।
यद्यथा तत्तथैतद्धि स्वभावस्यैष निश्चयः ॥

योगवासिष्ठ, निर्वाण प्र० सर्ग २१, श्लो० १७-१९, २२, २३, २४ ।

महर्षि वसिष्ठ ने कहा—"पक्षिराज ! आपकी आयु मोक्ष के समान अपरिच्छिन्न है । आपने असंख्य सृष्टियों की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश देखा है । आप किन किन आश्चर्यमयी सृष्टियों का स्मरण करते हैं" ?

भुशुण्ड ने कहा—भगवन् ! मुझे स्मरण है कि यह पृथिवी एक समय तृण, वृक्ष, अरण्य, पर्वत, आदि से रहित थी । इस पर कुछ भी नहीं था । यह मेरु के नीचे स्थित थी । मुझे स्मरण है कि यह पृथिवी मेरु के नीचे दस सहस्र दस वर्षों तक दबी पड़ी थी । मुझे स्मरण है कि एक समय पृथिवी पर न तो सूर्य थे, न चन्द्र, न नक्षत्रगण । दिन-रात का विभाग भी नहीं था । मुझे यह भी स्मरण है कि एक समय इस पृथ्वी का आधा भाग सुमेरु के रत्नों के प्रकाश से प्रकाशित था तथा आधा भाग तम से आच्छन्न था । उस समय यह पृथ्वी लोकालोक पर्वत के सदृश प्रतीत होती थी । मुझे स्मरण है कि चार युगों तक ऐश्वर्यशाली असुरों ने इस पृथिवी को अपने अधीन रखा था । एक समय यह पृथिवी समुद्र से आप्लावित हो गई थी । मेरुपर्वत पर केवल ब्रह्मा, विष्णु और महेश ये तीन देव रहते थे । एक समय यह पृथिवी चार युगों तक घने पर्वतों से व्याप्त थी । इस पर पवन का संचार नहीं होता था । एक समय देवगण तिरोहित हो गए थे और पृथिवी अन्धकार से चारों ओर आच्छन्न थी । एक समय विन्ध्यपर्वत के बढ़ जाने से—जब अगस्त्य कहीं चले गये थे—धरा पर केवल पर्वत ही दिखाई पड़ते थे । मुझे स्मरण है, असंख्य मनु बीत गये और सैकड़ों चतुर्युग भी बीत गए । मुझे स्मरण है कि एक समय ब्राह्मण लोग मद्यप होते थे, देवताओं की निन्दा करने वाले असत् शूद्र रहते थे, स्त्रियों के अनेक पति होते थे । एक समय ऐसी सृष्टि थी जिसमें न इन्द्र था, न कोई राजा था, न उत्तम, मध्यम, अधम का भेद था सब एकरूप थे । समस्त दिव-चक्र अन्धकार से व्याप्त था ।

· · · · · · ·

इस कल्प की सृष्टि के उत्पादन के निमित्त सर्वप्रथम संकल्प हुआ । पश्चात् तीनों लोकों में द्वीप आदि अवान्तर प्रदेशों का विभाग हुआ । सात कुलपर्वतों के

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

लिए स्थान की कल्पना हुई। ब्रह्मा ने जम्बू द्वीप में ब्राह्मण आदि वर्ण, उनके धर्म, एवं विद्या आदि की सृष्टि की। मण्डलरूप में पृथिवी का विभाग किया। तदनन्तर ऋक्ष, चक्र एवं ध्रुव मण्डल का निर्माण हुआ। ये सब बातें तो आप सदृश सब महानुभावों को विदित हैं। पश्चात् चन्द्र और सूर्य का निर्माण हुआ। इन्द्र एवं उपेन्द्र की व्यवस्था हुई। हिरण्याक्ष ने पृथ्वी का अपहरण किया। वराहरूपधारी भगवान् ने उसका उद्धार किया। पश्चात् देव, मानव, दानव आदि में राजाओं की कल्पना की गई। मत्स्यरूपधारी भगवान् ने वेदों का उद्धार किया। मन्दराचल का उन्मूलन हुआ, क्षीरसागर का मथन हुआ; अमृत की उत्पत्ति हुई; गरुड़ एवं समुद्रों की उत्पत्ति हुई इत्यादि बातें तो आप लोगों को भी ज्ञात हैं। उनको अधिक चर्चा मैं क्यों करूँ ?

दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च।
भस्मसारभरापूर्णां संस्मरामि धरामधः॥
अनुत्पन्नदिवाधीशामज्ञातशशिमण्डलाम्।
अविभक्तदिवालोकां संस्मरामि धरामधः॥
मेरुरत्नतलोधैर्तैर्ध्वप्रकटकोटरम्।
लोकालोकमिवाढ्याद्रिभुवनं संस्मराम्यहम्॥
प्रवृद्धासुरसंग्रामं क्षीयमाणान्तरामिह।
पलायमानामभितः संस्मरामि धरामिमाम्॥
दशवर्षसहस्राणि भूतदैत्यास्थिपर्वतैः।
आकीर्णां परितः पूर्णां संस्मरामि धरामिमाम्॥
असंख्यातान् मनून्ब्रह्मन् स्मरामि शतशो गतान्।
सर्वान् संरम्भबहुलांश्चतुर्युगशतानि च॥
सुरापं ब्राह्मणं मत्तं निषिद्धसुरशूद्रकम्।
बहुनाथसतीकं च कञ्चित्सर्गं स्मराम्यहम्॥
सर्गप्रारम्भकलना विभागो भुवनत्रये।
कुलपर्वतसंस्थानं जम्बूद्वीपं पृथक् स्थितम्॥
वर्णधर्मधियां सृष्टिर्विभागो मण्डलावनेः।
ऋक्षचक्रकसंस्थानं ध्रुवनिर्माणमेव च॥
जन्मेन्दुभास्करादीनामिन्द्रोपेन्द्रव्यवस्थितिम्।
हिरण्याक्षापहरणं वराहोद्धरणं क्षितेः॥
कल्पनं पार्थिवानां च वेदानयनमेव च।
मन्दरोन्मूलनं चाब्धेरमृतार्थं च मन्थनम्॥

योगवासिष्ठ निर्वाण प्र० पू० सर्ग २१, श्लो० २९-३२, ३७, ४१, ४३, ४७-५०।

चिरंजीवित्वर्णन—

भुशुण्ड ने कहा—"भगवन्! आप, भरद्वाज, पुलस्त्य, अत्रि, नारद, इन्द्र, मरीचि, पुलह, उद्दालक, क्रतु, भृगु, अङ्गिरा, सनत्कुमार, भृङ्गीश, स्कन्द, गजवदन आदि,

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

गौरी, सरस्वती, लक्ष्मी, गायत्री आदि, मेरु, मन्दर, कैलाश, हिमवान्, दर्दुर आदि, हयग्रीव, हिरण्याक्ष, कालनेमि, हिरण्यकशिपु, बलि, प्रह्लाद आदि, शिवि, न्यङ्कु, पृथु, वैन्य, नाभाग, केलि, नल, मान्धाता, सगर, दिलीप, नहुष आदि, आत्रेय, व्यास, वाल्मीकि, शुक, वात्स्यायन आदि, उपमन्यु, मणीभङ्गि, भगीरथ, शुक आदि के विषय में स्मरण की तो गणना ही क्या ? जो इधर समीप के लोग हैं, उनके विषय में कहना ही क्या ? ब्रह्माजी के पुत्र आपका अष्टम जन्म है। आपके आठवें जन्म में आपकी और मेरी सङ्गति हुई। आप किसी समय आकाश से उत्पन्न हुए, किसी समय जल से, किसी समय वायु से, किसी समय पर्वत और अग्नि से उत्पन्न हुए थे। यह सर्ग जैसा है वैसे तीन सर्ग पहले हो चुके हैं। मुझे ऐसे दस सर्गों का स्मरण है जिनमें देवताओं के निखिल आचरण, अवयव-गठन एक रूप थे। उनकी आयु समान थी। उन पर असुरों ने कभी आक्रमण नहीं किया।

पृथिवी पाँच बार जल में डूब गई थी, जिसका उद्धार कूर्म भगवान् ने किया वराह ने नहीं। बारहवें समुद्र-मन्थन का मुझे स्मरण है। हिरण्याक्ष तीन बार पृथिवी को पाताल में ले गया था। रेणुका के उदर से जन्म लेकर नारायण ने परशुराम अवतार लेकर छः बार क्षत्रियकुल का संहार किया। शंकर जी ने तीस कल्पों में तीस बार त्रिपुरासुर का वध किया। बाणासुर के लिए भगवान् विष्णु और शङ्कर में आठ बार संग्राम हुआ जिसका मुझे स्मरण है। युग-युग में बुद्धि की न्यूनताधिकता से न्यूनाधिक विचित्रताओं से युक्त वेदों एवं पुराणों का मैं स्मरण करता हूँ। युग-युग में वेद आदि शास्त्रों के विद्वान् व्यास, वाल्मीकि आदि महर्षियों से रचित भारत रामायण आदि इतिहासों का मैं स्मरण करता हूँ।

मैं आश्चर्यजनक महती घटनाओं से परिपूर्ण, प्रसिद्ध रामायण से भिन्न, रामायण नामक लक्षश्लोकात्मक ज्ञानशास्त्र का स्मरण करता हूँ जिसे ब्रह्मदेव ने वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि को उपदिष्ट किया था। उसमें यह ज्ञान उपदिष्ट है कि श्रीराम के समान व्यवहार करना चाहिए रावण के समान नहीं। महर्षि वाल्मीकि द्वारा निर्मित होने वाले वसिष्ठ-राम-संवादरूप महारामायण नामक ज्ञान शास्त्र का मैं स्मरण करता हूँ जो महर्षि वाल्मीकि द्वारा बत्तीस हजार श्लोकों में लिखा जायगा। पूर्वलिखित महारामायण किसी कारण वश उच्छिन्न हो गया, अतः बारहवीं बार उसकी रचना की जायगी। इसी प्रकार महाभारत नामक शास्त्र का भी मैं स्मरण करता हूँ जो कि व्यास जी के द्वारा लिखा गया था और विस्मृत हो जाने के कारण पुनः सातवीं बार लिखा जायेगा।

राक्षसों का विनाश करने के लिए विष्णु भगवान् पुनः त्रेता युग में ग्यारहवीं बार 'राम' इस नाम से जन्म लेंगे। विष्णु भगवान् ने नृसिंहरूप धारण कर हिरण्यकशिपु का तीन बार वध किया। पृथिवी का भार हलका करने के निमित्त विष्णु भगवान् सोलहवीं बार वसुदेव जी के घर जन्म लेंगे। ब्रह्मन् ! प्रत्येक मन्वन्तर में जगत् क्रम का विपर्यास हो जाने पर मेरे दूसरे ही मित्र, बन्धु-बान्धव, सेवक, निवास

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

स्थान आदि हो जाते हैं। कभी मैं एकान्त में विन्ध्य पर्वत पर अपना निवास स्थान बनाता हूँ, कभी सह्योद्रि में, कभी दर्दुर पर्वत पर।

मुनिवर! असंख्य युगों के वीत जाने पर भी यह कल्पवृक्ष प्राक्तन अवयव सन्निवेशों से ही उत्पन्न हुआ है। मेरे पिता चण्ड के जीवनकाल में इसकी जो शोभा थी वही आज भी है। यह पर्वत पहले यहाँ नहीं था और न यह उत्तर दिशा थी। मैं एकरूप ही में था। मेरे में कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ। अतः मैं ठीक-ठीक जानता हूँ कि "वही यह मेरु पर्वत है" और "वही यह कल्पवृक्ष है"।

भगवन्! यह जगत् न सत् है और न असत्। आत्मा की विशेषशक्ति से यह जगत् उत्पन्न हुआ और वुद्धि के विपर्यास से इसका भान होता है। वस्तुतः यह प्रपञ्च केवल मिथ्या-विजृम्भित है। मुझे स्मरण है कि कितने पिता पुत्र हो गए और कितने पुत्र पिता हो गए। सैकड़ों पुरुष स्त्रीत्व भाव को प्राप्त हो गए। मुझे स्मरण है कि कभी-कभी सत्ययुग में कलि का आचरण होता था—जैसा कि पुष्कर ने महाराज नल के साथ किया था। कभी-कभी त्रेता में कलि के आचरण और कलि में सत्ययुग के आचरण होते थे। इसका मुझे पूरा स्मरण है।

मुने ते ब्रह्मपुत्रस्य जन्माष्टकमिदं किल।
संस्मराम्यष्टमे वर्षे तस्मिस्त्वं मम सङ्गतः॥
अन्तर्धानं गता पृथ्वी वारपञ्चकमुद्धृता।
मुने पञ्चसु सर्गेषु कूर्मेणैव पयोनिधेः॥
मन्दराकर्षणावेगपर्याकुलसुरासुरम्।
स्मरामि द्वादशं चेदममृताम्भोधिमन्थनम्॥
सर्वौषधिरसोपेतां बलिग्राहस्तदा दिवः।
वारत्रयं हिरण्याक्षो नीतवान् वसुधामधः॥
त्रिशत्त्रिपुरविक्षोभान् द्वौ दक्षाध्वरसंक्षयौ।
दशशक्रविधातांश्च चन्द्रमौलेः स्मराम्यहम्॥
युगं प्रति धियां पुंसां न्यूनाधिकतया मुने।
क्रियाङ्गपाठवैचित्र्ययुक्तान् वेदान् स्मराम्यहम्॥
इतिहासं महाश्चर्यमन्यं रामायणामिधम्।
ग्रन्थलक्षप्रमाणं च ज्ञानशास्त्रं स्मराम्यहम्॥
कृतं वाल्मीकिना चैतदधुना यत्करिष्यति।
अन्यच्च प्रकटं लोके स्थितं ज्ञास्यसि कालतः॥
वाल्मीकिनाम्ना जीवेन तेनैवान्येन वा कृतम्।
एतच्च द्वादशं वारं क्रियते विस्मृतिं गतम्॥
व्यासाभिधेन जीवेन तेनैवान्येन वा कृतम्।
एतत्तु सप्तमं वारं क्रियते विस्मृतिं गतम्॥

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

राक्षसक्षतये विष्णोर्महीमवतरिष्यतः ।
अधुनैकादशं जन्म रामनाम्नो भविष्यति ॥
वसुदेवगृहे विष्णोर्भुवो भारनिवृत्तये ।
अधुना षोडशं जन्म भविष्यति मुनीश्वर ॥
पुत्रः पितृत्वमायाति मित्रं यात्यरितां तथा ।
स्त्रीत्वं च शतशो यातान् पुंसश्चैव स्मराम्यहम् ॥
कलौ कृतयुगाचारान् कृते कलियुगस्थितिम् ।
त्रेतायां द्वापरे चैव सस्मरामि मुनीश्वर ॥

योगवासिष्ठ निर्वाण प्र० पू० सर्ग २२, श्लो० ८, १२-१४, १७, १९, २२,, २४-२५, २७, ३०, ३२, ४०-४९ ।

समाधान की प्रशंसा—

रागादि दोष और वासनारूपी तन्तुजाल मृत्यु के कारण होते हैं। इसी प्रकार मानसिक चिन्तायें (आधियाँ) चिन्ता, आशा, लोभ, क्रोध, अनङ्ग (काम), चञ्चल मन आदि महादोष भी है जो मृत्यु के कारण होते हैं। जिनका चित्त समाहित है उनको पूर्वोक्त दोष स्पृष्ट नहीं कर सकते। ऐसे पुरुषों का चित्त न अस्त होता है, न उदित होता है, न उसमें स्मृति होती न विस्मृति। न सुषुप्ति होती है और न जागृति। ऐसे महापुरुष न कुछ देते हैं, न ग्रहण करते है, न त्याग करते हैं। ऐसे महापुरुषों को धनादि अर्थ, गृह-कार्य आदि उपक्रम तथा दुर्नीति आदि क्लेश नहीं पहुँचा करते। उनके पास सभी सुख दौड़कर स्वतः आ जाते हैं। उससे आत्मलाभ होता है जो सर्वश्रेष्ठ तत्त्व है।

आत्मलाभ अविनाशी है, सदा कल्याणकारी है, सत्य है, शाश्वत है, साधु पुरुषों से उपासित है, अतः उसमें मन को लगाना चाहिए। वह बुद्धि से परे हैं, प्रकाशस्वरूप है, अमृतरूप है, सौभाग्य की पराकाष्ठा है। अतः सुतरां सेव्य है। त्रैलोक्य में—देवलोक, मर्त्यलोक, तथा पाताललोक—उसके समान कोई भी उत्तम तथा स्पृहणीय तत्त्व नहीं है। मानसिक संकल्प-विकल्परूप मनोराज्य में कुछ भी सार नहीं है। लौकिक साम्राज्य, स्वर्ग में देवाधिप इन्द्र का पद, पाताल लोक का अखण्ड राज्य समाधान सुख की तुलना में कुछ भी नहीं है।

आधिव्याधिसमुत्थानि चलितानि महाभ्रमैः ।
न विलुम्पन्ति दुःखानि चित्तमेकं समाहितम् ॥
नास्तमेति न चोदेति संस्मृतिर्न च विस्मृतिः ।
न सुप्तं न च जाग्रत्स्याच्चित्तं यस्य समाहितम् ॥
अन्धीकृतहृदाकाशाः कामकोपविकारजाः ।
चिन्ता न परिहिंसन्ति चित्तं यस्य समाहितम् ॥

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

न ददाति न चादत्ते न जहाति न याचते।
कुर्वंदेव च कार्याणि चित्तं यस्य समाहितम् ।।
ये दुरर्था दुरारम्भा दुर्गुणा दुरुदाहृताः।
दुष्क्रमास्ते न कृन्तन्ति चित्तं यस्य समाहितम् ।।

योगवासिष्ठ निर्वाण प्र०-पू० सर्ग २३, श्लो० १४-१८

प्राणविचारण—

आत्मचिन्तन समस्त दुःखों का अन्त करने वाला तथा चिरकाल से चले आ रहे संसाररूपी भ्रम का विनाश करने वाला है। आत्म-विचार से निरतिशय भूमानन्द प्राप्त होता है और समस्त दुःखों की हेतु भूत चिन्ता दूर हो जाती है। आत्मचिन्तन से अज्ञानरूपी अन्धकार एवं उसके कार्यों का विनाश हो जाता है और समस्त संकल्प दूर हो जाते हैं। वह आत्मदृष्टि मुनिवर वसिष्ठ जैसे महानुभावों के लिए सुलभ है और प्राकृत लोगों के लिए अत्यन्त कठिन हैं। प्राणचिन्ता आत्मचिन्ता के समान है। वह भी समस्त दुःखों का विनाश करने वाली एवं सौभाग्य प्रदान करने वाली है।

प्राणचिन्ता के विषय में पूछने पर भुशुण्ड ने कहा कि "यह शरीर वात, पित्त, कफरूपी तीन स्तम्भों पर अवलम्बित है तथा इसमें नव द्वार हैं। पुर्यष्टक, तन्मात्रा एवं अहङ्कार से यह सुरक्षित है। दोनों कर्णविवर शिरोगृह हैं तथा केश समूह छप्पर हैं, दो चक्षु झरोखे हैं। मुख सुन्दर द्वार है। दोनों हाथ एवं पार्श्वभाग उपमन्दिर (बुर्ज) हैं। ज्ञानेन्द्रिय द्वारपाल हैं। दन्तपंक्ति से द्वार शोभित हैं। रक्त मांस और वसारूपी जल, मृत्तिका एवं गोबर से वह लिपा है, शिरारूपी रज्जु समूह से बद्ध है, अस्थिरूपी धरने हैं तथा भित्तियाँ दृढ़ हैं। इला और पिङ्गला नाम की दो अत्यन्त सूक्ष्म नाड़ियाँ हैं जो इस देहरूपी घर के दाहिने बायें भाग में रहती हैं। उसमें तीन कमल के जोड़े हैं जो अस्थि और मांसमय हैं तथा मृदु हैं। उन्हें पुरीतत् कहते हैं। उनमें ऊपर और नीचे दोनों ओर से नाल-दण्ड लगे हैं। नासिका से लेकर पैर तक समस्त शरीराकाश में संचरण कर रहे चन्द्रनामक अपानवायु एवं प्राणवायु से उसके पत्ते विकसित होते रहते हैं। फलतः पुरीतत् से समृद्ध सभी नाड़ियों के छिद्रों में प्रविष्ट होकर वायु वर्धित हो जाता है। वह वायु प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान संज्ञा वाला होकर नाड़ियों के माध्यम से समस्त शरीर में संचरण करता है। उस हृत्कमल से प्राणशक्ति समस्त शरीर में व्याप्त है। वे प्राणशक्तियाँ शरीर पोषक तत्वों को नाड़ियों द्वारा पूरे शरीर में भेजती हैं।

हृदयकमल में स्थित यह वायु प्राण कहा जाता है जिसकी एक शक्ति नेत्रों को स्पन्दित करती हैं—निमेष उन्मेष के द्वारा—एक शक्ति स्पर्श को ग्रहण करती है। कोई शक्ति नासिका द्वारा श्वास-उच्छ्वास का निर्वहन करती है, कोई अन्नका परिपाक करती है और कोई वाक्यों का उच्चारण करती है। प्राणवायु द्वारा शरीर की समस्त क्रियायें एवं चेष्टायें सम्पन्न होती हैं। ऊर्ध्वगमन एवं अधोगमन ये दोनों कार्य प्राण

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

एवं अपान वायु से सम्पन्न होते हैं। उन दोनों वायुओं की गति का अनुसरण करता हुआ मैं जीवन व्यतीत करता हूँ अर्थात् प्राणव्रत का आचरण करता हुआ मृत्युञ्जय होकर मैं जीवन व्यतीत कर रहा हूँ।

चिरंजीवी होने का कारण :—

मुनिवर ! प्राणोपासना द्वारा मैंने चित्त विश्रान्ति प्राप्त की है। मैंने प्राणदृष्टि का दृढ़तापूर्वक अवलम्बन किया है। अतः सुमेरु के समान दृढ़ हूँ। उठते, बैठते, जागते, सोते तथा स्वप्नावस्था में भी मैं समाधि से विचलित नहीं होता। निरन्तर विनाशशील, चंचल जगत् की स्थिति में मैं बिना विक्षेप के दृढ़तापूर्वक स्थित हूँ। मेरी वृत्ति सदा अन्तर्मुख रहती है। मैं अपनी आत्मा में ही विचरता रहता हूँ। नक्षत्रचक्र का आधारभूत प्रवह नामक वायु वन्द हो सकता है, महानदियों का जल-प्रवाह रुक सकता है, किन्तु मैं समाधि से विरत नहीं हो सकता। प्राण और अपान के अनुसरण में प्राप्त परमात्मा के साक्षात्कार से मैं शोकरहित हो गया हूँ। महाप्रलय से लेकर आज तक मैं प्राणियों की उत्पत्ति एवं विनाश लीला को धीर होकर देख रहा हूँ। मैं भूत और भविष्य की चिन्ता नहीं करता। एकमात्र वर्तमान-स्वभाव साक्षि चैतन्य-स्वरूप का ध्यान करता हूँ। यथा प्राप्त कार्यों का अनुष्ठान फल की अभिलाषा छोड़कर कर्त्तव्यबुद्धि से करता हूँ। इष्टानिष्ट पदार्थों की चिन्ता का त्याग कर अपने स्वरूप में स्थित रहता हूँ। अतः मैं शोकरहित हूँ और चिरंजीवी हूँ। प्राण और अपान के सन्धि स्थान में प्रकाशमान आत्मतत्त्व का ध्यान कर मैं अपनी आत्मा में स्वयं सन्तुष्ट रहता हूँ। मुझे यह आज प्राप्त हुआ है और भविष्य में सुन्दर फल मिलेगा इस प्रकार की चिन्ता मुझे नहीं है। कभी भी मैं न तो अपने कार्यों की प्रशंसा करता हूँ और न दूसरे के कार्यों की निन्दा। मेरा मन शुभ की प्राप्ति में न सन्तुष्ट होता है और न अशुभ की प्राप्ति से खिन्न होता है। वह सदा समभाव में स्थित रहता है। अतः मैं दीर्घजीवी हूँ। आत्मज्ञान के कारण द्वैत का बाध कर मैं सदा जीवनाभिमान आदि का त्याग कर स्वरूपस्थ हूँ। अतः दीर्घायुष्य को प्राप्त हूँ। मुनिवर ! मेरा मन चाञ्चल्य से रहित, शोकविहीन, स्वस्थ, समाधिस्थ एवं शान्त है। मैं काष्ठ, विलासिनी रमणी, तृण, अग्नि, हिम तथा नभ सबको समान तथा सर्वत्र देखता हूँ। मैंने आज क्या प्राप्त किया है और कल क्या होगा, यह चिन्ता मुझे नहीं है। मुझे जन्म-मरण का भय नहीं है तथा राज्य लाभ और विविध सुखों की प्राप्ति की प्रसन्नता नहीं है। यह मेरा वन्धु है और यह अन्य है; यह मेरा है और यह दूसरे का है, इस प्रकार का विचार मैं नहीं करता। समस्त वस्तुओं के अधिष्ठानभूत, आदि और अन्त रहित, आत्मपदार्थ तथा समस्त जगत् को मैं चित्तस्वरूप मानता हूँ। इसलिए विगत शोक हो जीवन का लाभ प्राप्त कर रहा हूँ। खान-पान-शयन विहार आदि का कर्त्ता शरीर है, आत्मा नहीं, यह मैं जानता हूँ। मैं समस्त सांसारिक प्रपञ्च को असत् जानता हूँ। फलतः सुखी हूँ। शरीर के दो हाथ हैं, वैसे इष्ट और अनिष्ट दो पदार्थ हैं जो हमारे लिये समान हैं। इस विचार से मैं सुखी जीवन

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

व्यतीत कर रहा हूँ। पैर से लेकर मस्तक तक इस देह में मेरी ममता नहीं है। मैंने अहङ्काररूपी पङ्क का त्याग कर दिया है। मैं जो कुछ करता हूँ, खाता-पीता हूँ वह सब कर्तृत्वाभिमान से रहित होकर स्वाभाविकरूप में करता हूँ। अतः सुख से जीवित हूँ।

मुनिवर! जब-जब मुझे कुछ ज्ञान होता है, तब-तब मैं अविनय नहीं करता। विनीतभाव से रहता हूँ। इसलिए सुखी हूँ। मैं दुर्बलों पर आक्रमण नहीं करता, परिताप के अवसर पर खिन्न नहीं होता, दरिद्र होने पर धनादि को आकाङ्क्षा नहीं करता, इसलिए दीर्घजीवी हूँ। आशाओं के जाल में बंधी चित्तवृत्ति को मैं अपने हृदय में स्थान नहीं देता। मैं जगत् की सत्ता को असत् तथा आत्मसत्ता को हाथ में रखे बिल्व (बेल) के समान देखता हूँ। संसार के जीर्ण-शीर्ण-नष्ट भ्रष्ट—सब पदार्थों को अधिष्ठान की सत्ता के कारण मैं नवीन एवं उत्तम पदार्थों के समान देखता हूँ। सुखी पुरुषों को देखकर मैं सुखी होता हूँ। दुःखी जन को देखकर मैं दुःखी होता हूँ। मैं सबका मित्र हूँ। मेरा शत्रु कोई भी नहीं है। इसलिए मैं दीर्घजीवी हूँ।

आपत्तिकाल में मैं पर्वत के समान दृढ़ रहता हूँ, सम्पत्तिकाल में सबसे मैत्री-भाव रखता हूँ। सम्पत्ति की वृद्धि अथवा क्षय में मैं अभिनिविष्ट नहीं होता। न मैं हूँ, न कोई मेरा है और न मैं किसी का हूँ। इस प्रकार की भावना से मैं सदा सदा सुखी रहता हूँ। मैं ससार हूँ, मैं आकाश हूँ, मैं देश और काल का क्रम हूँ, मैं क्रिया हूँ, ऐसी मेरी बुद्धि है। चित् घट है, पट है, आकाश है, वन है, संकट है, सब कुछ चित् ही है। ऐसी मेरी भावना है जिससे मैं अनामय एवं दीर्घजीवी हूँ।

न भूतं न भविष्यं च चिन्तयामि कदाचन।
दृष्टिमालम्ब्य तिष्ठामि वर्त्तमानामिहात्मना॥
इदमद्य मया लब्धमिदं प्राप्स्यामि सुन्दरम्।
इति चिन्ता न मे तेन चिरञ्जीवाम्यनामयः॥
न स्तौमि न च निन्दामि क्वचित् किञ्चित् कदाचन।
आत्मनोऽन्यस्य वा साधो तेनाहं शुभमागतः॥
परमं त्यागमालम्ब्य सर्वमेव सदैव हि।
जीवितादि मया त्यक्तं तेनाहं शुभमागतः॥
प्रशान्तचापलं वीतशोकं स्वस्थं समाहितम्।
मनो मम मुने शान्तं तेन जीवाम्यनामयः॥
जरामरणदुःखेषु राज्यलाभसुखेषु च।
न बिभेमि न हृष्यामि तेन जीवाम्यनामयः॥
अयं बन्धुः परश्चायं ममायमयमन्यतः।
इति ब्रह्मन्न जानामि तेन जीवाम्यनामयः॥
सुखितोऽस्मि सुखापन्ने दुःखितो दुःखिते जने।
सर्वस्य प्रियमित्रं च तेन जीवाम्यनामयः॥

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

अहंजगदहं व्योम देशकालक्रमावहम् ।
अहं क्रियेति मे बुद्धिस्तेन जीवाम्यनामयः ।।
घटश्चित् चित्पटश्चित्खं चिद्वनं शकटंचचित् ।
चित्सर्वमिति मे भावस्तेन जीवाम्यनामयः ।।

योगवासिष्ठ, निर्वाण प्र० पू० सर्ग २६, श्लो० ८, १२, १३, १५, १६, १९-२०, ३४, ३७-३८ ।

भुशुण्डप्रशंसा—

पक्षिराज ! वे महात्मा धन्य हैं जो द्वितीय ब्रह्मा के समान अत्यन्त चिरजीवी आपका दर्शन करते हैं। मेरे नेत्र धन्य हैं जिन्होंने आपका दर्शन किया। आपका पवित्र जीवन-वृत्तान्त भी अद्भुत एवं मङ्गलाधायक है। मैंने सब दिशाओं में भ्रमण किया है, देवताओं की विविध सम्पत्तियाँ एवं ऐश्वर्य देखे हैं परन्तु मुझे जगत् में आपके सदृश महान् कोई दूसरा दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है। विशेष प्रयत्न से खोज करने पर कोई महापुरुष मिल सकता है। परन्तु आपके सदृश भव्य आत्मज्ञानी जगत् में दुर्लभ है। जैसे किसी उत्तमोत्तम बाँस के वन में ही मुक्ता उपलब्ध होती है वैसे ही जगत् के किसी एक कोण में ही आपके सदृश ज्ञानी दृष्टिगोचर हो सकते हैं। मैंने आज बड़ा ही शुभ कार्य किया जो पुण्यात्मा एवं ज्ञानी आपका दर्शन किया। पक्षिराज ! आपका कल्याण हो। आप अपनी गुहा में प्रवेश करें और मैं सप्तर्षि लोक जा रहा हूँ।

पक्षिराज भुशुण्ड ने बड़े ही आदर एवं सम्मान से महर्षि वसिष्ठ को विदा किया।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

२१. बिल्वोपाख्यान

सहस्रों योजन विस्तृत, विमल एवं विशाल एक बिल्वफल है, जिसका स्वरूप कभी विकृत नहीं होता। वह अविनाशी रस का आश्रय है, अमृत के समान मधुर है; प्राचीन होने पर भी बालेन्दु के समान मृदु तथा सुन्दर है। वह भुवनों के मध्य में स्थित मेरु के समान प्रधान स्तम्भ है, मन्दर पर्वत के समान अचल है तथा महा-प्रलयकालिक झंझावात से भी चालित होने वाला नहीं है। वह इतना विशाल है कि असंख्य योजनों से भी नापा नहीं जा सकता। वह जगत् को धारण करने का मूल स्थान है। उसके समीप ब्रह्माण्ड अणु के समान दृष्टिगोचर होते हैं, जैसे पर्वत के नीचे सरसो के दाने। उसके मधुर रस के सामने प्रसिद्ध षड्रस नीरस से प्रतीत होते हैं। वह पक्व बिल्वफल कभी गिरता नहीं और कभी जीर्ण नहीं होता। ब्रह्मा, विष्णु, महेश प्रभृति चिरजीवी देवगण भी उसकी उत्पत्ति को नहीं जानते तथा उसके मूल और शाखा को भी नहीं जानते। उसके अङ्कुर, पुष्प, शाखा आदि दृष्टिगोचर नहीं हैं। पिण्डीभूत चिद्घनाकार उस विशाल फल की उत्पत्ति, विकार एवं परिणाम आदि किसी को भी ज्ञात नहीं हैं। समस्त फलों में श्रेष्ठ उस विशालकाय फल में न मज्जा (गुद्दा) है और न गुठली है। वह निर्विकार एवं निरञ्जन है। वह शिला के मध्य के समान नीरन्ध्र (घना) है और चन्द्रबिम्ब के समान सुधा-रसधार को बहाने वाला है। वह सब सुखों का कोश (आकर) है, शीतल प्रकाश को देने वाला है और पर्वत के समान अमृतपिण्ड को धारण करता है। वस्तुतः स्वस्वरूप आत्मा ही इस बिल्वफलरूपता को प्राप्त है।

उस आत्मचमत्कृति ने चैतन्यात्मक स्वकीय पारमार्थिक स्वरूप का त्याग किये विना अविद्यारूप मूल का आश्रयण कर इस जगद्रूप विविध प्रपञ्च की भावना की। तदनुसार यह विशाल जगत्प्रपञ्च दृश्य हुआ, जो कि उससे अनन्य है। वह (आत्म-चमत्कृति) अहङ्कार की उत्पत्ति के अनन्तर आकाश के गुण शब्दरूपी अङ्गों से युक्त समष्टिरूप शरीरों के परमाणुओं से संवलित हो जाती है। इस प्रकार वह चितिरूपी चमत्कृति व्यवहार के योग्य स्वरूप को धारण करती है और अपने स्वरूप में ही जगदाकार दृष्टि फैलाती है। वही अनन्त आकाशरूप है, वही क्षण, घटी, दिन, मास, वर्ष, कल्प आदि रूप काल है; वही नियति है और वही स्पन्दरूपिणी क्रिया है, वही शक्तिरूप ब्रह्म सङ्कल्प का विस्तार है, वही दिग्रूप है, वही राग-द्वेष है और वही हेय और उपादेय बुद्धि है। वही त्वद्रूप है, वही मद्रूप है, वही ब्रह्माण्डों का समूह है और वही ऊपर और नीचे स्थित है, वही चितिशक्तिरूप आत्मा आगे, पीछे, पार्श्व में, समीप

फा०—१८

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

और दूर में स्थित है। वही भूत, वर्त्तमान एवं भविष्य है। वही अनन्त रचनाओं के रहस्यों से पल्लवित नारायण का हृदयकमल है तथा लोकरूपी कमलगट्टों की माला का शिरोभूषण है। उसके कोटर में महारुद्र के गण भरे हैं, वह आकाशरूप सरणि है और स्वर्गीय सुखभोग की नियन्त्रिका है। ब्रह्माण्ड में जो कुछ दृश्यमान है वह सब उसी चितिशक्ति का स्फुरण है और वह सबका नियन्त्रक है।

———

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

२२. जीवटोपाख्यान–भिक्षुसंसार

समाधि के अभ्यास में निरत शम-दमादि सम्पन्न एक भिक्षुक था, जो आश्रमोचित कार्यों को सम्पन्न करता हुआ जीवन व्यतीत कर रहा था। एक दिन उसके मन में ऐसा विचार हुआ कि "मैं साधारण जनों के चित्त की चेष्टाओं की भावना करूँ"। तदनुसार उसका चित्त पामर पुरुष के चित्त के रूप में परिणत हो गया। उस चित्तपुरुष ने अपना नाम जीवट रखा।

वह स्वप्नपुरुष जीवट स्वप्नरचित किसी नगर में वास करने लगा। लीलावश मद्यपान कर वह प्रगाढ़ निद्रा में सो गया। स्वप्न में उसने अपने को एक ब्राह्मण के रूप में देखा, जो वेदाध्ययन तथा सत्कर्मानुष्ठान में निरत रहता था। वह ब्राह्मण विविध कार्यों में संलग्न होने के कारण श्रान्त होकर सो गया। उसने स्वप्न में अपने को एक माण्डलिक राजा सामन्त के रूप में देखा। उस सामन्त ने किसी दिन गाढ़ निद्रा में अपने को चक्रवर्ती सम्राट् के रूप में देखा, जो सामन्तों से तथा योग्य मन्त्रियों एवं विशिष्ट नागरिकों से अभिवादित तथा सेवित था। उस राजा ने कदाचित् स्वप्न में सुरस्त्रीत्व की कल्पना की और तदनुसार अप्सरा बन गया। उस अप्सरा ने सुरतश्रान्त हो घनी निद्रा में अपने को मृगी रूप में (कदाचित् नयनों के सौन्दर्याभिलाष की कामना से) देखा। उस मृगी ने किसी दिन निद्रा में अपने को लता के रूप में कल्पित किया; क्योंकि वन में मृगी लता, फल, पुष्प आदि पर जीवित रहती है।

इस लता ने सुषुप्ति काल में अपना दमन (छेदन) देखा और लताओं पर गुञ्जन करने वाले भ्रमरों की कल्पना से अपने को भ्रमर रूप में देखा। भ्रमरगण लताओं एवं कमलिनियों पर रसपान के निमित्त गुञ्जन करते रहते हैं। भ्रमर लताओं एवं कमलिनियों पर आसक्त होकर रसपान करने में व्यस्त था। अकस्मात् गजराज आ गया और उसने कमल दल के साथ भ्रमर को भी कुचल डाला। भ्रमर की कल्पना गजराज के रूप में हुई और वह गज हो गया। वह गजराज एक बडे गर्त में गिर पड़ा, जहाँ से उसका उद्धार राजपुरुषों ने किया। अपने शौर्य एवं पराक्रम से वह गजराज राजा का प्रिय बन गया और अन्त में युद्ध में मारा गया। हस्तिसमूह के गण्डस्थलों से निःसृत मदस्राव का पान करती हुई भ्रमरपङ्क्तियों को देखकर वह गज पुनः भ्रमर हो गया। वह भ्रमर पुनः कमलिनी के पास पहुँचा। वह पुनः गज के खुरों से कुचला गया। समीपस्थ हंस के दर्शन से उसकी हंसमयी वासना हुई और वह हंस हो गया।

अनेक योनियों में भटकता फिरता वह पुनः हंस हो गया। हंसों के साथ क्रीडा

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

करता हुआ वह सानन्द रहने लगा। अन्त में उसने ब्रह्मदेव के हंसों का गुणगान सुना और ब्रह्महंस बनने की कल्पना की। तदनुसार वह ब्रह्मदेव का वाहन हंस हो गया। वह किसी समय ब्रह्मदेव के साथ रुद्रपुर में गया और वहाँ उसने रुद्रदेव को देखा। "मैं भी रुद्र हो जाऊँ" ऐसी उसकी भावना हुई।

तदनुसार हंसशरीर को त्यागकर उसने रुद्ररूप धारण किया और शिवपुर में यथेच्छ विहार करने लगा। वहाँ शङ्कर भगवान् के ज्ञान एवं ऐश्वर्य के प्रभाव से वह अपने पूर्वजन्मों के वृत्तान्तों से अवगत हुआ। वह विचार करने लगा कि महान् आश्चर्य है कि यह माया विश्व को मोहित कर रही है। यद्यपि वह असद्रूप है, तथापि वह सत्य रूप वाली सी प्रतीत होती है। मुझे स्मरण हो गया कि मैं सर्वप्रथम चिद्रूप था। मैं उस समय सर्वज्ञ था। मायावश चित्तरूपता को प्राप्त कर मैं भूत तन्मात्राओं से रञ्जित जीव हो गया। वैराग्य एवं समाधि में पटुता प्राप्त करने के कारण मैं विषयों के प्रभाव से रहित संन्यासी हो गया। मैं लीला की रम्यता का अनुभव करने के कारण चैतन्य स्वरूप को भूलकर सामान्य जनों के समान माया की लीला देखने में प्रवृत्त हुआ। जिस प्रकार चींटी छिद्रों को देखकर उनमें घूमती-फिरती है, उसी प्रकार मैं जीवट नामधारी होकर भिन्न भिन्न योनियों में घूमने लगा।

मैंने सर्वप्रथम द्विजत्व की भावना की और तदनुसार शास्त्रज्ञ एवं सदाचारी ब्राह्मण बन गया। सामन्तता की कल्पना करने के कारण मैं सामन्त हो गया और पश्चात् चक्रवर्ती सम्राट् बनने की कामना से मैं सम्राट् हो गया। कामुकता जागृत होने के कारण मैं राजा से देवाङ्गना बन गया। मृग के लोचन-सौन्दर्य से लुब्ध हो मैं मृगी बन गया। वह मृगी अरण्य में लतावासना से लता हो गई। वह लता भ्रमर की भावना से भावित हो भ्रमर बन गई। वह भ्रमर हाथी की भावना से भावित हो गजराज प्रभृति विभिन्न योनियों में भ्रमण करने लगा।

इस प्रकार मनःकल्पित इस संसारसंरम्भ में शत जन्म धारण कर मैं वही भिक्षु इस समय रुद्र हो गया हूँ। मैंने अत्यन्त विचित्र तथा सत्य सी प्रतीत हो रही संसाररूपी अरण्यभूमि में दीर्घकाल तक भ्रमण किया। मैंने सहस्रों वर्षों तक जगत् में भ्रमण किया। मैं प्रारब्धवश ब्रह्मदेव का हंस बन गया और उसके माध्यम से भगवान् रुद्र का सान्निध्य प्राप्त हुआ और मैं रुद्र बन गया। शास्त्रों का अभ्यास जीवों का उद्धार करता है। काकतालीय न्याय से महात्माओं का समागम जीव का परम कल्याण करता है और उसकी अशुभ वासनाओं को नष्ट कर देता है। सर्वविध भावनाओं का उच्छेद अनर्थ को जीत लेता है। भावना ही आत्मा को देह रूप में देखती है, जैसे अङ्कुर विस्तारयुक्त शाखा-प्रशाखा वाली लतारूपता को देखता है।

आकाश के वर्ण के समान उत्पन्न जगत्सम्बन्धी भ्रम के परिमार्जन के लिए एकमात्र असंवेदन ही पर्याप्त होगा। बाधित होने से असद्रूप, अधिष्ठानसत्तारूप जगदाकार भावना विनोद के लिए ही है। वह लेशमात्र भी अनर्थ न कर सकेगी। इसी कौतुकवश मैं नाना प्रकार के अपने संसारों को देखता हूँ, उन्हें तत्त्वज्ञान प्रदान कर आत्मा को एक कर देता हूँ।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

इस प्रकार विचार कर वह रुद्र उस सर्ग में गया, जहाँ भिक्षु मृतक के समान निद्रा में स्थित था। रुद्र ने भिक्षु को जगाकर उसके चित्त को अपने अंशभूत चिदाभासस्वरूप तत्त्वज्ञ जीव से संयुक्त किया और वह भिक्षु अपने भ्रम का स्मरण करने लगा। अपने को रुद्ररूप तथा जीवट शरीररूप में भी देखकर वह भिक्षु आश्चर्यचकित हो गया। यद्यपि तत्वज्ञान हो जाने के कारण उसे चकित नहीं होना चाहिए था। तदनन्तर वह रुद्र और भिक्षु चिदाकाशकोण स्थित जीवट के स्थान पर गये और वहाँ उस जीवट को जगाकर उसे स्वचितांश चित्त से एवं स्वांश चिदाभास स्वरूप तत्त्वज्ञ जीव से संयुक्त करके भीतर एक स्वरूप और बाहर से तीन रूप वाले वे रुद्र, भिक्षु एवं जीवट तत्त्वज्ञ होते हुए भी चकित के समान चुपचाप स्थित रहे। उसके बाद तीनों चिदाक.श में अध्यस्त ब्राह्मण के घर में गये, जहाँ वह ब्राह्मणी के साथ सो रहा था। वहाँ भी रुद्र ने उसे जगाया और चैतन्यांश से संयुक्त किया। इस प्रकार वे चार हो गये—रुद्र, भिक्षु, जीवट और ब्राह्मण। इस प्रकार विविध ब्रह्माण्डों में भ्रमण कर रुद्र ने शतरुद्रता को प्राप्त किया तथा वे सब शोभित हुए।

रुद्र से मिलकर वे सभी तत्त्वज्ञ हो गए और रुद्र के अंशस्वरूप वे एक दूसरे के संसार को देखते हुए कृतकृत्य होकर सुखानुभव करने लगे। अन्त में रुद्र ने उन सबों से कहा—"ऐ मेरे अंशभूत रुद्रों! तुम लोग अपने-अपने स्थान पर जाओ। वहाँ जाकर कुछ काल तक जगत् के भोगों का उपभोग कर मेरे पास लौट आओ। तुम लोग मेरे अंश हो, मेरे नगर में रहोगे। महाप्रलय के समय प्रारब्ध का क्षय हो जाने के कारण हम सब परम पद को प्राप्त करेंगे"।

ऐसा कहकर आदिरुद्र अन्तर्हित हो गए और वे सब अंश अपने-अपने स्थान पर चले गए। कुछ काल तक सांसारिक भोगों को भोगने के पश्चात् वे रुद्रलोक में गण होकर निवास करने लगे।

तस्य चिन्तयतो जाता प्रतिभेयमिति स्वतः।
भावयाम्याशु लीलार्थं सामान्यजनवृत्तिताम्॥
इति संचिन्त्य चेतोऽस्य स्थितं किञ्चिन्नरान्तरम्।
स्पन्दसंस्थानसंत्यागमात्रेणावर्तनेऽम्बिव॥
तेन चित्तनरेणाथ कृतं नामात्मवाञ्छया।
जीवटोऽस्मीति सहसा काकतालीयवत्स्थितम्॥
जीवटो बिजहाराथ स स्वप्नपुरुषश्चिरम्।
स्वप्ननिर्माणनगरे कस्मिंश्चित् पुरवीथिषु॥
स्वप्ने ददर्श विप्रत्वं पाठानुष्ठानतुष्टिमत्।
प्रतिभामात्रसम्पन्नं चित्ते देशान्तराप्तिवत्॥

योगवासिष्ठ, निर्वाणप्र० पू० सर्ग ६२, श्लो० ५-८, १०

अहो नु चित्रा मायेयं तता विश्वविमोहिनी।
असत्यैवापि सद्रूपा मरुभूमिषु वारिवत्॥

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

इति प्रथममाज्ञातं चिद्योऽहं चित्ततां गतः ।
सर्वसम्पन्नसर्वज्ञगगनादिविभावनात् ॥
यदृच्छया स्थितो जीवो भूततन्मात्ररञ्जितः ।
कस्मिंश्चित् अभवत् सर्गे भिक्षुरक्षुभितोऽभितः ॥
स भिक्षुर्जीवटो भूत्वा जन्तुर्जरठवासनः ।
तेषु देहेषु बभ्राम रन्ध्रेष्विव पिपीलिका ॥
आत्मनि द्विजभक्तत्वात् सोऽपश्यद् द्विजतामथ ।
भावाभावविपर्यासे बलवानेव वर्धते ॥
सामन्ततामवापासौ विप्रः सन्ततचिन्तिताम् ।
सातत्येन रसः पीतः फलतामेति पादपे ॥
संसारशतपर्यन्ते रुद्रः सोहमहं स्थितः ।
अस्मिन् संसारसंरम्भे स्वमनोमात्रसम्भ्रमे ॥
एवमत्यन्तचित्रासु संसारारण्यभूमिषु ।
बह्वीष्वहमतिभ्रान्तस्त्वशून्यास्विव भूरिशः ॥

योगवासिष्ठ, निर्वाण प्र० पू० सर्ग ६३, श्लो० ७-६, १३-१५, २१, २२

गच्छताशु निजं स्थानं तत्र भुक्त्वा कलत्रकैः ।
कञ्चित् कालं समं भोगान् मत्सकाशमुपैष्यथ ॥
भविष्यथ मदंशा ये गणा मत्पुरभूषणाः ।
ततो महाप्रलयतो यास्यामस्तत्परं पदम् ॥

योगवासिष्ठ, निर्वाणप्र० पू० सर्ग ६४, श्लो० ४-५

———

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

२३. अर्जुनोपाख्यान

भगवान् यमराज चतुर्युग के कुछ समय व्यतीत हो जाने पर अथवा द्वापर के अन्त में जीवों के नाशजन्य पाप की आशङ्का से कुछ समय तक तपस्या करते हैं। कभी आठ वर्ष, कभी दस अथवा बारह वर्ष, कभी पाँच या सात वर्ष और कभी सोलह वर्ष तक वे तपस्या करते हैं। उस काल में मृत्यु जीवों का नाश नहीं करती। हिंसा न होने के कारण पृथिवी पर जीवों का आधिक्य हो जाता है और पृथिवी पर भार अत्यधिक बढ़ जाता है। पृथिवी की प्रार्थना पर भगवान् अवतार धारण कर भारनिवृत्ति करते हैं।

वर्तमान वैवस्वत यम बारह वर्षों तक निर्विकल्पक समाधि ग्रहण करेंगे और उस काल में प्राणियों की मृत्यु न होने से पृथिवी पर भार अधिक बढ़ जायगा। पृथिवी भगवान् नारायण के समीप शरण के लिए जायेगी। तदनुसार विष्णु भगवान् दो शरीरों से—नर और नारायण—पृथिवी पर अवतीर्ण होंगे और देवगण भी उनकी सहायता के लिए पृथिवी पर अंशरूप से जन्म लेंगे। भगवान् वसुदेव के पुत्र वासुदेव नाम से विख्यात होंगे और पाण्डु का पुत्र अर्जुन नर रूप में विख्यात होगा, जो भगवान् का दूसरा शरीर होगा। पाण्डु का पुत्र राजा 'युधिष्ठिर' धर्मात्मा होगा और उसका पितृव्यज 'दुर्योधन' होगा, जिसका प्रतिद्वन्द्वी योद्धा 'भीम' नामक द्वितीय पाण्डुपुत्र होगा।

पृथिवी का अपहरण करने वाले उन वीरों की सहायता में महाभारत का सुप्रसिद्ध युद्ध होगा, जिसमें अठारह अक्षौहिणी सेना कुरुक्षेत्र के मैदान में एकत्रित होगी। उस सेना के संहार से भगवान् पृथिवी को भारमुक्त करेंगे।

युद्ध के प्रारम्भ में गाण्डीवधारी अर्जुन को युद्धार्थ समागत अपने बन्धु-बान्धवों तथा इष्टमित्रों को देखकर महान् विषाद एवं व्यामोह होगा और वह युद्ध से विरत हो जायगा।

भगवान् विष्णु वासुदेव (श्रीकृष्ण रूप) देह से अर्जुन को उपदेश करेंगे और उसे युद्ध में प्रवृत्त करायेंगे। उपदेश का सारांश निम्नाङ्कित है—

"आत्मा न कभी उत्पन्न होता है और न मरता है। वह अज, नित्य, शाश्वत, पुराण है। उसका छेदन-भेदन नहीं होता। आत्मा न मरता है और न मारा जाता है। अर्जुन तुम अनन्त, आदि-मध्यरहित एवं अव्यक्त हो। तुम चैतन्य-स्वरूप हो। बन्धुओं में आसक्ति एवं मरण आदि की सम्भावना से तुम्हें दुःखी नहीं होना चाहिए। तुम जरा, मरण आदि से निर्मुक्त शाश्वत हो। तुम अपने बन्धु-बान्धवों तथा सम्पूर्ण प्राणियों के साक्षात् आत्मारूप हो। मैं 'मारने वाला हूँ' इस अभिमान को छोड़ दो। हनन काल में 'मैं इसे मारता हूँ' इस प्रकार का अभिमान जिसको नहीं

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

है तथा तज्जन्य फल हर्ष, शोक आदि से जिसकी बुद्धि लिप्त नहीं है, वह पुरुष सब को मार कर भी किसी को नहीं मारता तथा तत्प्रयुक्त पाप से लिप्त नहीं होता। तुम अपने में हननकर्तृत्व का वृथा अभिमान कर दुःखाभिभूत हो रहे हो। देह, इन्द्रिय आदि के द्वारा विविध कर्म किये जा रहे हैं; परन्तु अहङ्कार से मोहित पुरुष अपने को कर्त्ता समझने लगता है। चक्षुरादि इन्द्रियाँ अपने अपने कार्यों को करती हैं, आत्मा कोई कार्य नहीं करता। अतः 'मैं कर्त्ता हूँ' यह अभिमान उचित नहीं है। समवाय मिलकर जो कार्य करता है, उसमें किसी एक का कर्तृत्वाभिमान हास्यास्पद है। ममतारहित, अहङ्कार से शून्य, सुख-दुःख के अवसरों पर हर्ष-विषादरहित पुरुष कार्य करे अथवा न करे, वह कर्मबन्धन से सर्वथा मुक्त है। युद्ध करना क्षत्रियों का धर्म है और वह अभ्युदय एवं निश्रेःयस (लौकिक तथा पारलौकिक कल्याण) का दाता है। स्वधर्म का पालन सबके लिए हितकारी होता है। ब्रह्मभावापन्न हो सङ्ग का त्याग कर तुम कर्तव्य का पालन करो। तुम्हें किसी प्रकार का प्रत्यवाय नहीं होगा। तुम ब्रह्म अथवा ईश्वर को अर्पित कर कर्म करो अथवा आसक्तिरहित हो कर्म करो, सर्वथा कर्मबन्धन से मुक्त हो।

यह समस्त जगत् आत्मस्वरूप है, अतः न कोई मरता है और न कोई मारता है। आत्मा जगत् के शुभाशुभ फलों से लिप्त नहीं होता। जैसे पर्वत पाषाणरूप हैं, वृक्ष काष्ठ हैं, तरङ्ग जल है, वैसे जगत् के समस्त पदार्थ आत्मा हैं। जैसे नाना प्रकार के तरङ्गों में जल अनुगत है, कटक आदि आभूषणों में सुवर्ण अनुगत है, वैसे समस्त भूतों में आत्मा अनुगत है। वह आत्मा सुख-दुःख से लिप्त नहीं होता।

अर्जुन ! तुम मान, मद, शोक, भय, इच्छा, सुख, दुःखरूप असत् द्वैतप्रपञ्च का त्याग कर एकमात्र सद्रूप हो जाओ। तुम्हारे द्वारा क्रियमाण अक्षौहिणी सेना का विनाश भी ब्रह्मरूप है। सुख, दुःख, लाभ, हानि, जय, पराजय पर ध्यान न देकर तुम शुद्ध ब्रह्मरूप हो जाओ। लाभ-हानि का विचार न कर तुम समागत कर्त्तव्य का पालन करो। कर्म के फल में आसक्ति को छोड़कर कर्म करता हुआ मानव सब करता हुआ भी कुछ नहीं करता है। आसक्ति ही कर्तृत्व है और वह सर्वथा त्याज्य है।

देह का नाश हो जाने पर कुछ भी नष्ट नहीं होता; क्योंकि आत्मा अविनाशी है और उसका नाश नहीं होता। वह आत्मा सबमें व्याप्त है। व्यवहारपरम्परा से प्राप्त इस युद्धरूप कार्य को सम्पन्न करो। इससे तुम्हारी लेशमात्र की भी क्षति नहीं होगी। जीवन्मुक्त महानुभाव प्रवाह-प्राप्त कर्मों का अनुष्ठान कर्तव्यबुद्धि से करते हैं"।

भगवान् श्रीकृष्ण के उपदेश से अर्जुन का व्यामोह दूर हो गया और वह युद्ध करने को समुद्यत हो गए।

———

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

२४. वेंतालोपाख्यान

विन्ध्याटवी में एक विशाल वेताल रहता था। वह सज्जन नामक राजा के देश में रहता था। वह अपराध के कारण वध्य जनों को खाकर तृप्त रहता था। वह किसी निरपराध व्यक्ति को क्षुधित होने पर भी नहीं मारता था। वह वेताल किसी दूसरे देश में गया, जहाँ उसे रात्रि में उस देश का राजा मिला, जो कि दुष्ट जनों एवं तस्करादि की खोज में निकला था। उस वेताल और राजा में परस्पर सँवाद हुआ। वंताल ने कहा कि मैं तुमसे छः प्रश्न पूछता हूँ। ठीक ठीक उत्तर नहीं दोगे, तो मैं तुम्हें मार कर खा जाऊँगा। मेरे प्रश्न निम्नाङ्कित हैं"।

(१) ये ब्रह्माण्डरूपी छोटे अणु किस सूर्य की किरणों के हैं ?
(२) किस पवन में महागगनरूपी त्रसरेणु स्फुरित हो रहे हैं ?
(३) एक स्वप्न से दूसरे स्वप्न में जा रहा पुरुष स्वप्नों की सत्यता पर विचार न करता हुआ किस प्रकाशक, स्वच्छ, सत्यस्वरूप का त्याग नहीं करता ?
(४) जैसे कदलीस्तम्भ में केवल पत्र ही पत्र हैं और कुछ नहीं है, वैसे सब के भीतर वह कौन सा अणु है, जो प्रकाशक आत्मस्वरूप है ?
(५) ब्रह्माण्ड, आकाश, भुवन, सूर्यमण्डल तथा मेरु प्रभृति जो बड़े बड़े पदार्थ हैं वे किस अणु के परमाणु हैं ?
(६) किस निरवयव परमाणुरूपी महागिरि की शिला के मध्य यह मज्जा रूपी त्रिलोकी स्थित है ?

प्रथम प्रश्न के उत्तर में राजा ने कहा—"हे वेताल ! किसी समय यह ब्रह्माण्ड रूपी फल दशगुण पृथिवी, जल आदि से वेष्टित था। ऐसे सहस्रों फल जहाँ विद्यमान हैं और बड़ी बड़ी सहस्रों शाखायें जहाँ विद्यमान हैं, ऐसा एक दुर्लक्ष्य महान् वृक्ष है। इसी प्रकार के हजारों वृक्ष जिसमें हैं, ऐसा एक वन है जिसमें ऊँचे ऊँचे वृक्ष स्थित हैं। वैसे सहस्रों वन जहाँ पर हैं, ऐसा उन्नत शिखरों से युक्त एक विशाल पर्वत है। वैसे सहस्रों पर्वतों से युक्त अत्यन्त विस्तीर्ण एक विशाल देश है। ऐसे सहस्रों देश जहाँ पर विद्यमान हैं, ऐसा नदियों एवं बड़े बड़े ह्रदों से युक्त एक विशाल द्वीप है। वैसे अनन्त द्वीप जिसमें हैं, ऐसा एक महीपीठ है, जो विविध प्राकृतिक रचनाओं से अलङ्कृत है। उस प्रकार के हजारों महीपीठ जहाँ विद्यमान हैं, ऐसा एक महाभुवन है। वैसे असंख्य महाभुवन जहाँ विद्यमान हैं, वैसा एक महान् अण्डा है। वैसे असंख्य अण्डे जहाँ विद्यमान हैं, ऐसा एक असीम जलनिधि (सागर) है। वैसे वैसे लाखों सागर जहाँ

फा०—१९

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

विद्यमान हैं, वैसा एक महान् निर्मल जलार्णव है। उस प्रकार के हजारों जलार्णव जिसके उदर में हैं, ऐसा एक पूर्णाकृति पुरुष है। वैसे वैसे लाखों पुरुषों की माला जिसके वक्षःस्थल पर सुशोभित है, ऐसा एक परम पुरुष है, जो सब सत्ताओं का अधिष्ठान है। इस प्रकार के महान् असंख्य पुरुष जिसके रोमजाल सदृश से स्फुरित हो रहे हैं, ऐसा एक महान् आदित्य है। इस महान् चिदादित्य की रश्मियों से समस्त ब्रह्माण्ड दीप्तिमान् है और वे त्रसरेणु के समान दृष्टिगोचर हो रहे हैं। उसी विधान रूपी सूर्य की दीप्ति से समस्त ब्रह्माण्ड सत्ता एवं स्फूर्ति प्राप्त कर रहे हैं"।

द्वितीय प्रश्न के उत्तर में राजा ने कहा कि "कालसत्ता, नमःसत्ता, स्पन्दसत्ता, शुद्धचिन्मयी सत्ता ये सब महाचिति से हो स्फुरित हो रहीं हैं और पुष्पों के आमोद (सुगन्ध) के समान हैं। परमात्मारूप महावायु में ये सब सत्तायें निर्दोष रजःस्वरूप होकर स्फुरित हो रही हैं"।

तृतीय प्रश्न के उत्तर में राजा ने कहा कि "जगत् नामक महास्वप्न में एक स्वप्न से दूसरे स्वप्न में जा रहा स्वप्नगत दोषों से शून्य ब्रह्म के बोधमात्र से अपने शान्तस्वरूप को नहीं छोड़ता"।

चतुर्थ प्रश्न का उत्तर है कि—"जैसे केले का स्तम्भ भी देखने पर पत्र रूप से कुछ अन्य नहीं है, वैसे यह जगत् परीक्षा करने पर ब्रह्म से अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है। वह ब्रह्म जगत् के बृंहण में निमित्त होने के कारण सत्, परमात्मा, ब्रह्म आदि शब्दों का विषय होता है। सब धर्मों से अतीत होने पर शून्य आदि शब्दों से भी व्यवहृत होता है। सारांश यह है कि यह जगत् असत् है और चिन्मात्ररूप वह परमात्मा ही जगद् रूप में स्फुरित हुआ है"।

पञ्चम प्रश्न का भी उत्तर हो गया। अनन्त होने के कारण वही परमात्मा मेरु, ब्रह्माण्ड, सूर्यमण्डल आदि सबका आधार है। ये सब उसी ब्रह्मरूप अणु के परमाणु हैं।

षष्ठ प्रश्न के उत्तर में राजा ने कहा—"ब्रह्म अणुरूप है और परम महान् है। वह निरवयव है। उसमें हृदयाकाशरूप विज्ञानमात्र का मध्य त्रैलोक्य है"।

राजा के उत्तर को सुनकर वेताल शान्त हो गया। क्षुधारहित होकर वह विकारों से मुक्त हो समाधि में स्थित हो गया। स्पष्ट है कि चिदात्मारूपी अणु में यह समस्त जगत् विद्यमान है। यह विश्व विचार के द्वारा विलीन हो जाता है। चित्त को विषयों से हटाकर परमात्मतत्त्व में प्रतिष्ठित करना चाहिए यही सबका सार है।

———

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

२५. चूडालोपाख्यान

शिखिध्वजविलास—

द्वापर के सप्तम मन्वन्तर में विन्ध्याचल के समीप स्थित मालवदेश की राजधानी उज्जैन में श्रीमान् शिखिध्वज नामक राजा हुआ था। वह धैर्य, औदार्य आदि गुणों से युक्त था। उसमें क्षमा, शान्ति, दया आदि सद्गुण विद्यमान थे। वह वीर, शुभ कर्मों का अनुष्ठाता, मौन तथा सद्गुणों का आकर था। वह प्रेम का समुद्र था और शास्त्रों में निष्णात था। उसका चित्त कोमल, स्निग्ध तथा मधुर था। वह विज्ञ था और उसमें लेशमात्र भी अभिमान नहीं था।

बाल्यावस्था में ही उसके पिता जी दिवङ्गत हो गए। उसने दिग्विजय करके षोडश वर्ष की आयु में ही अखिल भूमण्डल को अपने आयत्त कर लिया। वह धर्म से प्रजापालन करता था और उसका धवल यश चारों दिशाओं में फैल गया था। उसको एक सुयोग्य सहधर्मिणी की आकाङ्क्षा हुई। कुशल मन्त्रियों ने राजा का अभिप्राय समझ लिया। उन्होंने सौराष्ट्र देश की राजकन्या से उनका विवाह कराने का निश्चय किया। शुभविवाह यथासमय यथाविधि सम्पन्न हुआ। राजा शिखिध्वज ने रूपलावण्यसम्पन्न, सर्वथा स्वानुरूप उस कन्यारत्न को अपनी राजमहिषी के रूप में स्वीकार किया। उस कन्या का नाम चूडाला था और वह अपने अनुरूप गुणवान् पति को पाकर विकसित कमलिनी के समान शोभायमान हुई।

दम्पति का प्रेम उत्तरोत्तर बढ़ने लगा और वे अन्तःपुर में दोलाओं में, लीला-सरोवरों में, उद्यानों में, विहारों में, लताओं एवं पुष्पों से अलङ्कृत भवनों में, कदम्ब वन की श्रेणियों में, चन्दन-अगरु से सुगन्धित वीथियों में, नगर-प्रान्तों में, वन-प्रान्तों में, दिगन्तों में, सरोवरों में प्रेमपूर्वक विहार करने लगे।

चूडाला ने अपने पति के मुख से शास्त्र-चर्चा सुनकर शास्त्रीय पाण्डित्य अर्जित किया और कलाकारों से चित्रकला आदि में भी निपुणता प्राप्त की।

चूडाला का प्रबोध—

उस दम्पति ने अनेक वर्षों तक यौवन की लीलायें कीं और विषयभोग का सुख भोगा। उन्होंने अनुभव किया कि शरीर नश्वर है और पक्वफल के पतन के समान मृत्यु अवश्यम्भावी है। वर्षाकाल में जैसे लतायें बढ़ती और पनपती हैं, वैसे तृष्णा दिन प्रतिदिन बढ़ती जाती है। पर्वतीय नदी के वेग के समान यौवन द्रुतगति से बीतता जा रहा है। यह शरीर और जीवन इन्द्रजाल के समान असत् है और

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

धनुष से छूटे बाण के समान विषय-सुख दूर भागते जा रहे हैं। यह सांसारिक व्यवहार कदली-गर्भ के समान निःसार है। अतः यह विचारणीय है कि इस जगत् में कौन सी ऐसी वस्तु है, जो शुभ, स्थिर एवं सुन्दर है और जिसको प्राप्त कर चित्त जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो जाता है।

चिरकाल तक विचार करने के अनन्तर उस दम्पति ने निश्चय किया कि संसाररूप व्याधि का उत्तम औषध अध्यात्मशास्त्र है। केवल आत्मज्ञान से संसाररूपी विषूचिका (महामारी) शान्त हो सकती है। अतः आत्मज्ञान का अर्जन नितान्त आवश्यक है। वे परस्पर उस शास्त्र का अभ्यास, मनन, चिन्तन करने लगे तथा सत्सङ्ग-श्रवण, प्रबोधन आदि की चर्चा में तत्पर हो गये। चूडाला अध्यात्मशास्त्र के विद्वानों के मुख से आत्मज्ञान-सम्बन्धी शास्त्रचर्चा सुनकर गम्भीरता से विचार करने लगी। विचार करते-करते उसके मन में यह बात आई कि शरीर में कौन ऐसा पदार्थ है, जो चेतन है। यह संसाररूप मोह कहाँ से आया है? किसको आक्रान्त करता है और कैसे इसका निवारण हो सकता है? देह तो जड़ है, मूढ़ है, इसमें बालकों तक को सन्देह नहीं है। अतः वह चेतन नहीं हो सकता। हाथ, पैर आदि कर्मेन्द्रिय समुदाय शरीर के अवयव हैं। अवयव और अवयवी में भेद नहीं होता। अतः शरीर के सदृश वे भी जड़ हैं। ज्ञानेन्द्रियगण, नेत्र, कर्ण, त्वक् आदि भी शरीर के अवयव हैं और वे भी जड़ हैं। सङ्कल्प-विकल्पात्मक मन भी जड़ ही है, यतः वह बुद्धि की प्रेरणा से कार्यरत होता है। बुद्धि भी जड़ है क्योंकि वह अहङ्कार से प्रेरणा लेकर निश्चय करती है। अहङ्कार भी जड़ है; यतः वह प्राणयुक्त चिदाभास (जीव) द्वारा संवर्धित है। चेतनाकाशरूप जीव प्राणरूप उपाधि से संयुक्त हो हृदय में रहता है। वह दिव्यचैतन्य से जीवित है। इस चेतन का कलङ्क चेत्योन्मुख हो विषयों का प्रकाशन ही है और वही चिदात्मा जीव को प्रस्फुरित करता है। जैसे आमोद पवन से और नदी का वेग पुष्करिणी से चालित होता है, वैसे यह जीव चेत्यभ्रमों से युक्त चैतन्य से परिचालित होता है।

चैतन्यात्मा जड़ विषयों के संस्पर्श से अपने स्वरूप को भूलकर जड़ जैसा बन जाता है, जैसे समुद्रजल में गिरा अग्नि अपने भास्कर स्वरूप को त्याग देता है, उष्णता को छोड़कर शीत हो जाता है। चिति विषयों के साथ एकाग्रता होने पर वासनावेष्टित हो अपने विशुद्ध स्वरूप को त्याग कर तत्स्वरूप हो जाती है। इस प्रकार चित् भी अविद्या के आवरण से चेत्योन्मुख हो असत्कल्प सी हो जाती है और उसका प्रबोधन विशुद्ध चैतन्य के द्वारा होता है।

चूडाला ने विचार किया कि किस उपाय से मूल अविद्या का आवरण भङ्ग हो और दृश्य स्पन्द का परित्याग कर चितितत्त्व प्रबुद्ध हो। उसे अलौकिक आनन्द की अनुभूति हुई और उसने कहा कि—"चिरकाल के बाद मैंने ज्ञातव्य तत्त्व को जान लिया। उसको जान लेने पर कुछ अवशिष्ट नहीं रह जाता। सभी कामनायें पूर्ण हो

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

जाती हैं और अलौकिक आनन्द की उपलब्धि होती है"। ये सब शरीर, मन, बुद्धि, इन्द्रियादि चिद्विलास को परिच्छिन्न करने वाले हैं और असत्स्वरूप हैं। केवल विशुद्ध महाचिति सर्वावरणों से विमुक्त सत्य है और उसीका अस्तित्त्व है। वह महासत्ता है। वह निष्कलङ्क, समरूप, शुद्ध और निरहङ्कार है। वह विज्ञानरूप है और भूमानन्दरूप होने से मङ्गलात्मक सन्मात्ररूप है। वह विमल तथा सदा उदित रहता है। उसका ब्रह्म, परमात्मा आदि नाम है। चेत्य, चेतन, चित्तादि त्रिपुटीसमूह उससे भिन्न नहीं है। यह समूह वास्तव में उसी शक्ति से प्रकाशित है। वह स्वप्रकाश है और आद्या चितिशक्ति है। चेत्यशून्य चिद्रूपता उसका अविनाशी रूप है। मन, बुद्धि, इन्द्रियादि रूपों से वही विजृम्भित (विवर्तित) होता है। मन, बुद्धि आदि विवर्तों से जब चैतन्यात्मा स्फुरित होता है, तब तरङ्गों के कल्लोलों के सदृश यह जगद्रूप कणभूत-पदार्थों का अस्तित्त्व दृष्टिगोचर होता है।

यह जो जगत्सत्ता का प्रसिद्ध रूप है, वह उस महाचिति का दूसरा रूप है; क्योंकि वह सत्तारूप चिति स्फटिक मणि के सदृश जगत् का प्रतिबिम्ब असङ्ग होकर धारण करती है। माया से अतिरिक्त किसी अन्य सत्ता का अस्तित्त्व सम्भव नहीं है। कटक, केयूर आदि अलङ्कारों के विनष्ट हो जाने पर भी हेमरूपता बनी रहती है, वैसे जगत् का विनाश हो जाने पर जागतिक सत्ता मायाशबलित ब्रह्म में निहित हो जाती है। जैसे स्वप्न में अथवा इन्द्रजाल में अनुदित भी पदार्थ चित्त में उदित होते हैं, वैसे महाचिति में अनुदित भी पदार्थ समष्टि चित्त के कारण उदित से प्रतीत होते हैं। जैसे स्वप्न में चिद्रूप आत्मा ही विविध रूपवान् पदार्थों के समान भासित होता है, आत्मा से अतिरिक्त वहाँ कुछ नहीं है, वैसे ही चिदात्मा ही जगद्रूप से विवर्त्त है। उससे अन्य कुछ अणुमात्र भी नहीं है। वह चिदात्मा अजर, अमर है, उसका जन्म, मरण, नाश आदि सर्वथा असम्भव है। वह चिदादित्य विशुद्ध सात्त्विक है और छेदन, भेदन, दाह, विनाश आदि से रहित अत्यन्त निर्मल है।

चूडाला उस चिदात्मारूपी सूर्य की अनुभूति से अत्यन्त प्रसन्न हुई। वह शान्त महासागर के समान विक्षोभों से रहित हो विचरने लगी। जगत् के समस्त व्यवहार, कर्म एवं चेष्टायें उस अनन्त चिदाकाश के स्वरूप हैं, जो दृश्याभास से शून्य, अत्यन्त स्वच्छ, अनन्त, अज, अच्युत, देश-काल-वस्तुकृत परिच्छेद से शून्य, निर्मलस्वरूप है। कुलाल द्वारा बनाई गई मृत्तिका की सेना जैसे मृत्तिकारूप है, वैसेही सुर, असुर आदि से युक्त यह विश्व परब्रह्मस्वरूप है। द्रष्टा और दृश्य का भेद, ऐक्य, द्वैत, मैं, मेरा, तू, तेरा इत्यादि कल्पनायें मोहजनित हैं, मिथ्या हैं।

चूडाला ने मोक्षसुख का अनुभव किया। वह समस्त चिन्ताओं से मुक्त हो गई। चराचर जगत् को उसने चिदात्मा से अभिन्न माना। उसे विश्वास हो गया कि समस्त दृश्यमान जगत् शान्त, निरालम्ब, परब्रह्म रूप से ही अवस्थित है।

अहो नु ज्ञातमेतेन चेत्योल्लेखकलङ्किना।
जीवो जीवति जीर्णेन चिद्रूपेणात्मरूपिणा॥

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

चेत्यभ्रमवता जीवश्चिद्रूपेणैव जीवति ।
आमोदः पवनेनेव खातेनेव सरिद्वयः ॥
असत्यजडचेत्यांशचयनाच्चिद्वपुर्जडम् ।
महाजलगतो ह्यग्निरिव रूपं स्वमुञ्झति ॥
एवं चिद्रूपमप्येतच्चेत्योन्मुखतया स्वयम् ।
जडं शून्यमसत्कल्पं चैतन्येन प्रबोध्यते ॥
तथैषा चेत्यते चिच्छ्रोः सैषाद्या चिदिति स्मृता ।
अचेत्यं यदिदं चित्त्वं तत्तस्या रूपमक्षतम् ॥
मनो बुद्धीन्द्रियाद्यर्थरूपैः सैव विजृम्भते ।
तरङ्गकणकल्लोलकलनेयं चिदात्मनि ॥
जगद्रूपपदार्थानां सत्ता स्फुरति मातरि ।
यदिदं तत्परं रूपं तस्याः खलु महाचितेः ॥
शुद्धचिन्मणिवत् सा हि सेयं समसमोदिता ।
अनन्ययैव या शक्त्या जगज्जृम्भिकया स्थिता ॥
सत्ता मायातिरेकेण नान्या सम्भवतीह हि ।
नेदं नाहं न चान्यच्च न भावाभावसम्भवः ॥
शान्तं सर्वं निरालम्बं केवलं संस्थितं परम् ॥

योगवासिष्ठ, निर्वाणप्र० पू० सर्ग ७८, श्लो० २४-२६, २९, ३५-३९, ५१

चूडालात्मलाभ—

चूडाला अन्तर्मुखवृत्ति से युक्त तथा आत्माराम से सम्पन्न थी । अतः वह अपने स्वाभाविक स्वरूप में अवस्थित हो गई । वह रागरहित, निर्द्वन्द्व, एवं निरीह हो गई । वह न कुछ ग्रहण करती थी और न किसी का त्याग करती थी । समयानुसार प्राप्त आचार का निर्वाह करती थी । उसने संसाररूपी महासमुद्र को पार कर लिया था । उसके सन्देहरूपी जाल कट चुके थे । वह परमात्मलाभ से परिपूर्ण थी । वह परमपद में विश्रान्त थी और संसार की सभी उपाधियों से ऊपर थी । स्वल्पकाल में ही वह विदितवेद्य हो गई, अर्थात् उसने ज्ञातव्य तत्त्व को जान लिया । परमपद में विश्रान्ति पाकर चूडाला शरत्कालीन स्वच्छ मेघपङ्क्ति के समान शोभायमान हो गई । विवेक के दृढ़ अभ्यास से तथा आत्मदर्शन से वह सुन्दर पुष्पलता के समान शोभित हुई ।

किसी समय राजा शिखिध्वज अपूर्व शोभासम्पन्न चूडाला को देखकर विस्मयापन्न हो बोले—"प्रिये ! इस समय तुम नवयौवन से युक्त तथा दिव्य आभूषणों से विभूषित होकर पूर्णचन्द्र के समान शोभित हो रही हो । ऐसा प्रतीत हो रहा है कि तुमने अमृत के सार का पान किया हो अथवा अलभ्य पद प्राप्त किया हो । यतः तुम्हारी शोभा अलौकिक है । तुम्हारा शान्त एवं कमनीय सौन्दर्य चन्द्रमा का भी तिरस्कार कर रहा है । मैं देख रहा हूँ कि इस समय तुम्हारा चित्त भोगों में निरपेक्ष, शान्त, विवेकपूर्ण, समता को प्राप्त, गम्भीर तथा चञ्चलता से रहित हो गया है ।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastr... ...ivamogga KN

तुम्हारा मन त्रिभुवन को जीतकर जगद्रसायन का पान करने वाला, अनन्त, उच्चता को प्राप्त तथा सौम्य हो गया है। तुम्हारे प्रशस्त चित्त को तुलना किससे की जाय, तुम पूर्ण रूप से परिवर्तित सी प्रतीयमान हो रही हो, जैसे ऋतु के विपर्यय से लतायें हो जाती हैं। प्रिये ! क्या तुमने अमृतपान किया है, अथवा मन्त्र आदि की सिद्धि से दुर्लभ अमरत्व को प्राप्त कर लिया है ? निश्चय ही तुमने कोई अपूर्व दुर्लभ पदार्थ प्राप्त किया है" ?

चूडाला ने उत्तर दिया—"मैंने परिच्छिन्न वस्तुओं का त्याग कर अपरिच्छिन्न वस्तु का आश्रय लिया है, अतः मैं कान्तिमती होकर स्थित हूँ। मैं युक्त और अयुक्त सब प्रकार के भोगों से सन्तुष्ट रहती हूँ और न प्रसन्न होती हूँ, न अप्रसन्न। मैं आकाश-सदृश विमल एकाकी रमती हूँ, राजलोलाओं में रमण नहीं करती। मैं पूर्णात्मा में स्थित रहती हूँ, कभी भी किसी भूषण, समागम आदि की चिन्ता नहीं करती। ये देह आदि मेरे स्वरूप हैं और नहीं भी हैं। मैं सत्यस्वरूप हूँ और नहीं भी हूँ। मैं सर्व-स्वरूप हूँ और किञ्चित्स्वरूप भी नहीं हूँ। इस विचारधारा से मैं श्रीमती होकर स्थित हूँ। मैं सुख नहीं चाहती, अर्थ नहीं चाहती, अनर्थ का परिहार नहीं चाहती, किसी अन्य प्रकार की स्थिति नहीं चाहती—प्रारब्धवश प्राप्त अर्थ से सन्तुष्ट रहती हूँ। मैं राग-द्वेष को उच्छिन्न करने वाली आत्मबुद्धि और शास्त्रदृष्टि से जीवन व्यतीत करती हूँ। अतः मैं शोभायुक्त होकर अवस्थित हूँ।

भोगैरभुक्तैस्तुष्यामि भुक्तैरिव सुदूरगैः।
न हृष्यामि न कुप्यामि तेनास्मि श्रीमती स्थिता ॥
एकैवाकाशसंकाशे केवले हृदये रमे।
न रमे राजलीलासु तेनास्मि श्रीमती स्थिता ॥
आत्मन्येव हि तिष्ठामि ह्यासनोद्यानसद्मसु।
न भोगेषु न लज्जासु तेनाहं श्रीमती स्थिता ॥
जगतां प्रभुरेवास्मि न किञ्चिन्मात्ररूपिणी।
इत्यात्मन्येव तुष्यामि तेनाहं श्रीमती स्थिता ॥
इदं चाहमिदं नाहं सत्याचाहं न चाप्यहम्।
सर्वमस्मि न किञ्चिच्च तेनाहं श्रीमती स्थिता ॥
न सुखं प्रार्थये नार्थं नानर्थं नेतरां स्थितिम्।
यथाप्राप्तेन हृष्याभि तेनाहं श्रीमती स्थिता ॥
तनुविद्वेषरागाभिः प्रज्ञाभिः शास्त्रदृष्टिभिः।
रमे सह वयस्याभिस्तेनाहं श्रीमती स्थिता ॥

योगवासिष्ठ, निर्वाणप्र० पू० सर्ग ७९, श्लो० २४-३०

चूडाला को सिद्धियाँ प्राप्त हुईं—

चूडाला ने प्राणधारणा आदि के अभ्यास से सिद्धियाँ प्राप्त कीं। वह स्वेच्छया

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

कभी आकाशमार्ग से गमन करती थी, कभी समुद्र के कोटरों में प्रवेश करती थी, कभी पर्वतों के शिखरों पर घूमती थी। वह नभोमण्डल में श्यामा मेघमाला के समान घूमती थी। वह काष्ठ, तृण, पत्थर, भूत, आकाश, वायु, अग्नि, जल आदि में यथेच्छ प्रविष्ट हो जाती थी, जैसे मोतियों में तन्तु। वह सुमेरुपर्वत के शिखरों पर, लोकपालों के नगरों में, दिशाओं एवं विभिन्न भुवनों में विहार करती थी। वह पशु-पक्षी, भूत, पिशाच, नाग, देव, असुर, विद्याधर, अप्सरा तथा सिद्ध पुरुषों के साथ सम्भाषण आदि व्यवहार करती थी। उसने बड़े यत्न से अपने पति शिखिध्वज को आत्मज्ञानामृत से प्रबुद्ध करने की चेष्टा की; परन्तु राजा न समझ सका। वह इतना ही जानता था कि रानी चूडाला कलाओं में विदग्ध, मुग्धा गृहिणी है। रानी चूडाला ने भी राजा के समक्ष अपनी सिद्धियों का प्रदर्शन नहीं किया।

शिखिध्वज का वनगमन—

राजा शिखिध्वज तत्त्वज्ञान न होने के कारण मोह में पड़ गया। इस कारण सामन्त आदि के द्वारा उपहारस्वरूप अर्पित बहुमूल्य वस्तुयें भी उन्हें रुचिकर नहीं प्रतीत होती थीं। दिगन्तों, निर्झरों एवं गुहाओं में एकान्तवास की अभिरुचि बढ़ने लगी। दैनिक कृत्यों में उत्साह क्षीण होता जा रहा था। भृत्यों द्वारा अनुनय-विनय करने पर वह अपने दैनिक कार्यों को सम्पन्न करते थे, उनका वैराग्यभाव उत्तरोत्तर बढ़ रहा था और उनकी स्थिति परिव्राजक-सी शान्त हो रही थी। उन्हें भोग-सामग्रियों से उदासीनता हो गई थी। उन्होंने गो, भूमि, सुवर्ण आदि ब्राह्मणों, याचकों एवं स्वजनों को पर्याप्त मात्रा में वितरित किया। उन्होंने कृच्छ्र, चान्द्रायण आदि व्रतों का अनुष्ठान किया और तीर्थों, वनों एवं आश्रमों में परिभ्रमण किया। यह सब कुछ करने पर भी राजा को शान्ति नहीं मिली। वह संसाररूपी व्याधि का औषध खोजने में चिन्ताग्नि से जल रहे थे। चिन्ता के कारण उनमें एक प्रकार का दैन्य आ गया। राज्यसुख उनको अरुचिकर प्रतीत होने लगा और वह बड़ी-बड़ी सम्पदाओं को भी औदासीन्य भाव से देखने लगे।

एक समय उन्होंने अपनी प्रिय रानी चूडाला से एकान्त में कहा—"प्रिये! मैंने चिरकाल तक राज्यसुख का उपभोग किया। अब मुझे वैराग्य हो रहा है और मैं वन में जाना चाहता हूँ। वनवासी जन को दुःख, सुख, आपत्तियाँ एवं सम्पत्तियाँ, किञ्चिन्मात्र प्रभावित नहीं कर सकतीं। उनको देशविनाश से कोई चिन्ता नहीं, संग्रामों में नरसंहार भी उन्हें प्रभावित नहीं कर सकता। अतः मैं राज्य को अपेक्षा वनवास के जीवन को अधिक सुखकर मानता हूँ। विरक्त मन को जो सुख की अनुभूति एकान्त में होती है, वह ब्रह्मा एवं इन्द्र के भवनों में भी दुर्लभ है। प्रिये! तुम इस शुभ कार्य में विघ्न-बाधा मत डालो; क्योंकि कुलीन स्त्रियाँ स्वप्न में भी अपने पति की इच्छाओं का विघात नहीं करतीं।

चूडाला ने कहा—"हे नाथ! सामयिक कार्य ही रुचिकर होता है। पुष्पों की शोभा वसन्त में ही होती है, ग्रीष्मकाल में नहीं। वनवास वृद्ध पुरुषों के लिए उचित

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

है, यौवनाक्रान्त जनों के लिए नहीं। जब तक हम दोनों वृद्ध नहीं हो जाते, तब तक हम लोगों को गृहत्याग करना वाञ्छनीय नहीं है। जब हम दोनों के बाल सफेद हो जायँगे, तब हम दोनों एक ही साथ जङ्गल में चलेंगे, जैसे हंस सरोवर को जाते हैं। असमय में प्रजापालनरूप धर्म का त्याग शोकजनक होगा। ऐसे समय प्रजागण, मन्त्रि-मण्डल तथा परिवार के सदस्य गृहत्याग करने की सम्मति नहीं देंगे"।

शिखिध्वज ने कहा—"प्रिये! मेरे अभिमत कार्य में बाधा मत डालो। तुम मुझे एकान्त जङ्गल में गया हुआ ही समझो। तुम अभी बाला हो, तुमको जङ्गल में नहीं जाना चाहिए। जङ्गल पुरुषों के लिये भी कष्टदायक है, कठोर से भी कठोर स्त्रियाँ वनवास नहीं कर सकतीं, जैसे पुष्पमञ्जरियाँ शस्त्रों का आघात नहीं सह सकतीं। तुम यहाँ रहकर प्रजा का पालन करो और कुटुम्ब का संरक्षण करो जैसा कि स्त्रियों का धर्म है।

ऐसा कहकर राजा शिखिध्वज स्नान करने को उठे। उन्होंने दैनिक कार्य सम्पन्न किये। प्रजागण की प्रार्थना पर विचार न कर राजा शिखिध्वज वनगमन के लिए दृढ़ हो गए।

राजा शिखिध्वज ने सायङ्कालीन कृत्यों को सम्पन्न किया और रात्रि में अपने शयनकक्ष में विश्रामार्थ गए। रानी चूडाला के गाढ़ निद्रा में सो जाने पर राजा अर्ध-रात्रि में अपनी प्रिय भार्या को छोड़कर वनवास के लिए उद्यत हो गए। उन्होंने अनुचरों से कहा कि "मैं वीरक्रम के लिए बाहर जा रहा हूँ"। ऐसा कहकर वह नगर से बाहर के लिए चल पड़े। राज्यलक्ष्मी को नमस्कार कर उन्होंने सघन वन की ओर प्रस्थान किया। प्रथम रात्रि जङ्गल में व्यतीत कर वह सघन जङ्गल की ओर बढ़े। बारह दिनों तक वह इस प्रकार चलते रहे और तेरहवें दिन मन्दाकिनी के तटस्थ एक वन में पहुँचे जहाँ से जनसमूह और नगर बहुत दूर थे।

वह जङ्गल रमणीक था। वहाँ जल की सुविधा थी। वहाँ असंख्य वृक्ष फलों से परिपूर्ण थे। पुष्पों एवं लताओं की प्रचुरता थी। जीर्ण-शीर्ण वेदियों एवं कुटीरों से अनुमान होता था कि पहले वहाँ मुनियों के आश्रम थे। वहीं राजा ने एक चौरस, शुद्ध, शीतल, हरी-भरी घासों से युक्त स्थान में पर्णशाला निर्मित की। उन्होंने चिकने बाँस का दण्ड, भोजनपात्र, अर्घपात्र, कमण्डलु, रुद्राक्षमाला, शीत से रक्षार्थ कन्था, मृगचर्म आदि की व्यवस्था की और उन वस्तुओं से अपनी पर्णशाला को सजाया। उन्होंने अन्य अपेक्षित वस्तुओं को भी संचित किया।

वह प्रातः प्रथम प्रहर में सन्ध्या तथा जप, द्वितीय प्रहर में पुष्प आदि का संचय, स्नान, देवार्चन आदि धार्मिक कृत्य सम्पन्न करते थे। जङ्गली फल, कन्दमूल, कमलदण्ड आदि खाकर वह अपना जीवन व्यतीत करने लगे। राजा को किसी प्रकार शोक नहीं था। उन्हें अपने राजकीय जीवन एवं विलासों का स्मरण नहीं होता था;

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

क्योंकि विवेक और वैराग्य के स्फुरित हो जाने पर राज्यलक्ष्मी अपना प्रभाव नहीं दिखला सकती।

तत्रैकस्मिन् समे शुद्धे स्थले सलिलमालिते।
शीतले शाद्वलश्यामे स्निग्धे सफलपादपे॥
समञ्जरीभिर्वल्लीभिः स चकारोटजालयम्।
प्रावृट्कालः सविद्युद्भिर्नीलाभ्रैरिव पञ्जरम्॥
मसृणं वैणवं दण्डं फलभोजनभाजनम्।
अर्घपात्रं पुष्पभाण्डमक्षमालां कमण्डलुम्॥
कन्थां शीतात्रनोदाय वृसीं चैव मृगाजिनम्।
आनीयाजोयत्तस्मिन्मठिकामन्दिरे नृपः॥
सन्ध्यापूर्वं जपं प्रातः प्रहरे स तदाकरोत्।
पुष्पोच्चयं द्वितीये तु स्नानं देवार्चनं ततः॥
पश्चाद्वनफलं किञ्चिद्वनकन्दं बिसादि च।
भुक्त्वा जाप्यपरो भूत्वा निनायैको निशां वशी॥

योगवासिष्ठ, निर्वाणप्र० पू० सर्ग ८४, श्लो० ५५-५८, ६०-६१

चूडाला राजा के पास गई—

अर्धरात्रि के समय राजा के बाहर चले जाने पर चूडाला भय से अचानक जग गई। उसने अपने शयन को शून्य तथा शोभाहीन देखा। चूडाला खिन्न, मलिन-मुख तथा उत्साहहीन हो विस्तर से उठी। वह नीहार से धूसर दिन के समान श्री एवं प्रकाश से हीन-सी दृष्टिगोचर हुई। उसने विचार किया "महान् कष्ट है कि मेरे पतिदेव राज्य छोड़कर जङ्गल में चले गए। मुझे भी उनके समीप जाना चाहिए; क्योंकि शास्त्रों के अनुसार स्त्रियों की गति (शरण) उनका पति ही है"।

चूडाला गवाक्ष के रन्ध्र से आकाश में उड़ गई। आकाश में भ्रमण करती हुई वह उस स्थान पर पहुँच गई, जहाँ उसके पतिदेव हाथ में खड्ग लेकर रात्रि में एकाकी भ्रमण कर रहे थे। उसने अपने स्वामी के विषय में पूर्णरूप से विचार किया और योगबल से अपने पति के भविष्य का ज्ञान—जैसा कि नियति के अनुसार होना था—प्राप्त कर लिया। वह आकाश से घर लौट आई और अपने शयन पर सो गई।

चूडाला ने घोषित किया कि "किसी कारण-विशेष से राजा कहीं बाहर चले गये हैं"। नागरिकों को आश्वस्त कर वह निश्चिन्त हो गई। वह स्वामी के राज्य की रक्षा करने लगी। इस प्रकार शनैः शनैः अठारह वर्ष व्यतीत हो गए। राजा शिखिध्वज वन में वार्धक्य से आक्रान्त होने लगे। रागादि वासनाओं का परिपाक भी नियति के अनुसार होने लगा। रानी ने विचार किया कि पति के बोधन का समय आ गया है और मुझे वन में जाना चाहिए। तदनुसार वह आकाशमार्ग से उड़कर राजा के वनस्थ कुटीर की ओर चली। मार्ग में उसे विविध सिद्धों, गन्धर्वों एवं

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

अप्सराओं के दर्शन हुए। उसके हृदय में पतिमिलन की उत्कण्ठा जागृत हुई। उसने योग से विचार कर लिया कि क्या कर्त्तव्य है। प्रभु को तत्त्वज्ञान का उपदेश देकर प्रारब्धानुसार प्राप्त भोगों में प्रवृत्त कराना ही श्रेयस्कर मार्ग होगा। यह कार्य महान् है और समयसाध्य है। पति को तत्त्वबोध-सम्पन्न करना नितान्त आवश्यक है; क्योंकि समान मन की वृत्तियों के सङ्गम में जो सुख मिलता है, वह सब प्रकार के आनन्दसमूह से श्रेष्ठ है और कमनीय है। ऐसा विचार करती हुई चूडाला पर्वतों, देशों, दिगन्तों को लाँघकर मन्दराचल की कन्दरा में पहुँच गई, जहाँ उसके प्रभु की कुटिया थी।

चूडाला ने देखा कि जो राजा पहले हार, केयूर, कटक, कुण्डल आदि बहुमूल्य आभूषणों से विभूषित रहता था, वह आज कृशकाय, कृष्णवर्ण और जीर्णपत्र सा अवस्थित है। कृष्णवर्ण, कृतस्नान, इच्छाओं से शून्य, भृङ्गीश-सदृश, वल्कल वस्त्र-धारी, शान्त, भूमि पर बैठकर देवताओं एवं अतिथियों की पूजा के लिए माला गूँथ रहे, जटाधारी अपने पति को देखकर सर्वाङ्गसुन्दरी प्रबुद्ध चूडाला मन ही मन कहने लगी—"यह कैसी अज्ञानभरी मूर्खता है"? मूर्खता का परिणाम ऐसा ही होता है। इस दशा को प्राप्त अपने प्रिय राजा को आत्मज्ञानी बनाकर भोग और मोक्ष भी दिलाना है। यह कार्य मुझे आज ही करना है।

चूडाला और राजा का संवाद—

चूडाला ने विचार किया कि मुझे अपना स्वरूप बदलकर राजा का उद्बोधन करना चाहिए; क्योंकि वह मुझे बाला और कान्ता के रूप में ही देखते हैं और मेरी बात पर ध्यान नहीं देते। अतः तपस्वी के रूप में सामने जाकर प्रबोधन करना उचित होगा। ऐसा विचार कर उसने ब्राह्मणकुमार का रूप धारण किया। वह राजा के सम्मुख जा गिरी।

राजा ने मूर्तिमान्, तपोरूप, सुवर्ण के समान गौराङ्ग, मुक्ताहार से विभूषित, शुक्लयज्ञोपवीतधारी, शुक्लवस्त्र से सुशोभित, कमण्डलुधारी एवं कान्तिमान् ब्राह्मण-कुमार को अपने सम्मुख खड़ा देखा। वह कुमार अक्षमाला से विभूषित था, उसका मस्तक कुन्तल (सिर के बाल) से व्याप्त था। वह अपने शरीर की कान्ति से उस प्रदेश को दीप्तिमान् बना रहा था। उसका मुख कुण्डलों से सुशोभित था, वह नवसूर्य के समान था। उसकी शिखा में मन्दार की माला पिरोई गई थी, उसका शरीर कमनीय तथा शान्त था, वह जितेन्द्रिय, बलशाली, शुभ्र-भस्मतिलक से सुशोभित, पूर्णचन्द्र के समान था। उस ब्राह्मणकुमार को देखकर राजा खड़ा हो गया। अपनी खड़ाऊँ छोड़कर राजा शिखिध्वज ने कहा—"देवपुत्र! आपको नमस्कार है। आपके लिए यह आसन है, कृपया बैठिए"। राजा ने कुमार के हाथ में पुष्पमुष्टि दी। उस देवकुमार ने भी राजा को नमस्कार किया।

राजा शिखिध्वज ने कहा—"हे महाभाग! आप कहाँसे पधार रहे हैं? आपके

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

दर्शन से मैं आज के दिन को सफल समझता हूँ। यह अर्घ्य है, यह पाद्य हैं, ये पुष्प हैं और यह पुष्पमाला है। कृपया इन्हें ग्रहण करें। आपका कल्याण हो"।

ब्राह्मणकुमार ने कहा—"राजन्! मैंने इस भूमण्डल पर बहुत भ्रमण किया है; परन्तु जैसी पूजा आपने दी, वैसी पूजा मुझे कहीं अन्यत्र नहीं मिली। मैं समझता हूँ कि आप शान्त चित्त से मोक्ष के लिए तप कर रहे हैं। राज्य का त्याग कर आपने जो वनवासरूप यह व्रत लिया है, वह तलवार की धारा के समान तीक्ष्ण है"।

शिखिध्वज ने कहा—"भगवन्! आप सब कुछ जानते हैं, इसमें आश्चर्य क्या है? आपकी आकृति और लोकोत्तर सौन्दर्य से ही आपका महान् प्रभाव प्रकट हो जाता है। ऐसा प्रतीत हो रहा है कि आपके अङ्ग-प्रत्यङ्ग चन्द्रमा से निर्मित हैं और आप अपनी कान्ति से मानों मुझे अमृत से सींच रहे हों। मेरी प्रिय पत्नी है जो मेरे राज्य का संरक्षण कर रही है। आपके अङ्ग उसके अङ्ग के समान दृष्टिगोचर हो रहे हैं। आपने अपने शरीर को पाद से मस्तकपर्यन्त पुष्पमालाओं से आच्छादित किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि निष्कलङ्क चन्द्र तथा कमनीय पुष्प के समान आपका यह कोमल शरीर सूर्य के ताप से म्लान हो रहा है। देवार्चन के निमित्त निर्मित ये पुष्पमालायें आपके शरीर के सङ्ग से कृतार्थ हों। अतिथिपूजन से जीवन सफल हो जाता है; क्योंकि अतिथि देवताओं से भी अधिक पूज्य हैं। आप कृपया बतलायें कि आप कौन हैं? किसके पुत्र हैं? और यहाँ क्यों पधारे हैं?

ब्राह्मणकुमार ने कहा—"राजन्! मैं सब वृत्तान्त कह रहा हूँ, आप सुनें! इस जगत् में पुण्यात्मा, कर्पूरतिलक के सदृश गौराङ्ग नारद महामुनि हैं। वह मुनि किसी समय सुमेरुपर्वत की गुफा में ध्यानावस्थित थे। वहीं सुमेरुतट में विशाल तरङ्गों वाली गङ्गा जी बहती हैं। मुनि ने गङ्गाजल में कोलाहल-ध्वनि सुनी और कौतुक से नदी की ओर देखा। उन्होंने रम्भा, तिलोत्तमा प्रभृति अप्सराओं को गङ्गा-तट पर देखा। वे अप्सरायें इतनी निर्मल थीं कि प्रत्येक की देह में दूसरों के अङ्ग-प्रत्यङ्ग प्रतिबिम्बित हो रहे थे। मुनि का चित्त उनकी ओर आकृष्ट हो गया और विवेक का त्याग कर रतिविषयक सुख की अनुभूति करने लगा। कालान्तर में उनका वीर्य स्खलित हो गया"।

इसी बीच राजा ने कहा—"ब्रह्मन्! नारद जी लोक-विख्यात जीवन्मुक्त, निरीह एवं रागरहित हैं। वह मुनियों में श्रेष्ठ हैं और आकाश के समान निर्मल हैं। ऐसे मुनि के चित्त में दर्शनमात्र से विषयवासना कैसे उत्पन्न हुई और कैसे उनका वीर्य स्खलित हुआ"?

ब्राह्मणकुमार ने कहा—"राजन्! भूतजातियों का शरीर स्वभावतः दो रूप वाला होता है। किसी पदार्थ से सुख बढ़ता है और किसी से दुःख। अनर्थपरम्परा ज्ञानियों पर भी आक्रमण कर देती है। जैसे तम और प्रकाश रात और दिन बनाते हैं, वैसे सुख-दुःख अपना अधिकार जमाते रहते हैं। उक्त स्थिति में किञ्चिन्मात्र भी प्रमाद करने से अनर्थ हो जाते हैं"।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

कुम्भ से उत्पत्ति—

शिखिध्वज ने ब्राह्मणकुमार की बड़ी प्रशंसा की और कहा कि "आप कृपया अपनी उत्पत्ति बतलाएँ। पश्चात् मैं आपकी ज्ञानगर्भित वाणी से लाभान्वित हूँगा"।

ब्राह्मणकुमार ने कहा—"नारद जी ने अपने द्रवीभूत वीर्य को समीपस्थ देदीप्यमान स्फटिक कुम्भ में रख दिया। वह कुम्भ विशाल, सुदृढ़ तथा गम्भीर था। नारदमुनि ने उसे सङ्कल्पजनित वीर्य से उस प्रकार भर दिया जिस प्रकार ब्रह्मा जी ने अपने सङ्कल्पजनित अमृतप्रवाह से ब्रह्मलोक के अमृतसागर को भर दिया था। वह गर्भ शनैः शनैः बढ़ने लगा। यथासमय उस कुम्भ से गर्भ का प्रसव हुआ, जैसे मासान्त में चन्द्रमा का और वसन्त ऋतु में कुसुमों का होता है। वह गर्भ चन्द्रमा के समान बढ़ने लगा और उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग अलौकिक सौन्दर्ययुक्त होने लगे। नारद जी ने यथासमय सभी संस्कारों को विधिवत् सम्पन्न किया और उस बालक में विद्याराग को प्रतिष्ठापित किया। अल्प समय में उस बालक ने विद्याध्ययन कर लिया और वह नारद जी के प्रतिबिम्ब के समान हो गया। उस पुत्ररत्न के साथ नारद जी अत्यन्त सुशोभित हुए। अन्त में नारद जी अपने पुत्र के साथ ब्रह्मलोक गए और अपने पिता ब्रह्मा जी के चरणों में बालक को रख दिया। ब्रह्मा जी ने पौत्र से वेदविषयक प्रश्न पूछे और सन्तोषजनक उत्तर पाकर उसे गोद में बैठाया।

ब्रह्मा जी ने उस कुम्भ-नामक पौत्र को अपने आशीर्वाद से सर्वज्ञ और तत्त्व-ज्ञान में परिनिष्ठित बना दिया। वही मैं कुम्भ नामक नारद मुनि का पुत्र तथा ब्रह्मा जी का पौत्र हूँ और आपके समक्ष उपस्थित हूँ। मैं ब्रह्मलोक में पिता जी के साथ रहता हूँ। चारों वेद मेरे मित्र हैं। मेरी माँ सरस्वती हैं, मेरी मातृष्वसा गायत्री हैं। मैं ब्रह्मलोक में रहता हूँ। मैं यथेच्छ सब लोकों में विहार करता हूँ। आप्तकाम होने से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। मैं लीलार्थ भ्रमण करता हूँ, कार्यविशेष से नहीं। मेरे पैर भूमिस्पर्श नहीं करते, अङ्ग धूलिकणों का स्पर्श नहीं करते और मेरा शरीर कभी म्लान नहीं होता। आकाश मार्ग से जाते समय मैंने आपको देखा और लीलार्थ यहाँ आ गया"।

सङ्कल्पितेन क्षीरेण स कुम्भस्तेन पूरितः।
अमृतापूरभिन्नेन विधिनेवामृतार्णवः ॥
तत्र मासाद्गतो वृद्धिं मुनिमन्दाहुतिक्रमः।
अमृताब्धौ शुभो गर्भ इन्दोरिन्दुरिवानुजः ॥
दिनैः कतिपयैरेव विज्ञाताशेषवाङ्मयम्।
चकारैनं मुनिवरः प्रतिविम्बमिवात्मनः ॥
अथैनं पुत्रमादाय ब्रह्मलोकं स नारदः।
जगामाथ स्वपितरं ब्रह्माणं चाभ्यवादयत् ॥

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

अथाशीर्वादमात्रेण सर्वज्ञं ज्ञानपारगम् ।
पौत्रं तं कुम्भनामानं चकार कमलोद्भवः ।।
निवसाम्यब्जजपुरे पित्रा सह यथासुखम् ।
चत्वारः सुहृदो वेदा मम लीलाविलासिनः ।।
मातृष्वसा मे गायत्री मम माता सरस्वती ।
ब्रह्मलोके मम गृहं पौत्रस्तत्रास्मि सुस्थितः ।।
धरां पतति मे पादौ पततो न महीतले ।
रजः स्पृशन्ति नाङ्गानि ग्लानिं नायाति मे वपुः ।।

योगवासिष्ठ, निर्वाणप्र० पू० सर्ग ८६, श्लो० ११-१२, १६-१७, १९, २१, २३-२४, २६

शिखिध्वज-चूडालासंवाद—

शिखिध्वज ने कहा कि मैं समझता हूँ कि मेरे भाग्य से ही आपने यहाँ दर्शन दिया है। आज मैं पुण्यात्मा एवं धर्मशील पुरुषों में उत्तम स्थान पर अवस्थित हूँ, जो अमृत के समान वाणी बोलने वाले आप सज्जन से हमारा समागम हुआ है। साधु-समागम से जो शान्ति प्राप्त होती है, वह राज्यलाभादि से नहीं हो सकती। साधु-समागम से अपरिमित ब्रह्मानन्दरूप अलौकिक पदार्थ तथा सुख मिलता है, जो राज्य आदि से कथमपि नहीं मिल सकता।

चूडालारूपी ब्राह्मणकुमार ने बीच में टोककर कहा—"आप यह बतलायें कि आप कौन हैं ? इस पर्वत पर क्या कर रहे हैं ? आप क्या सिद्ध करना चाहते हैं ? यह सब मुझे स्पष्ट रूप से बतलायें"।

शिखिध्वज ने कहा—"आप देवपुत्र हैं और सब कुछ जानते हैं। मैं आपसे क्या कहूँ ? संसार के भय से त्रस्त होकर मैं यहाँ वनवास कर रहा हूँ। मेरा नाम शिखिध्वज है। मैं राज्य छोड़कर यहाँ आया हूँ। मैं जन्म-मरण से भयभीत हूँ। सुख-दुःखपरम्परा, जन्म-मरण आदि संसारचक्र से मुक्ति प्राप्त करने के निमित्त मैं वन में तप करने आया हूँ। चारों दिशाओं में भ्रमण करने तथा कठोर तप करने पर भी मैं शान्ति प्राप्त नहीं कर रहा हूँ। मैं असहाय, एकाकी इस जङ्गल में वृथा सूख रहा हूँ। कठिन से कठिन क्रियाओं के अनुष्ठान से भी सुख की प्राप्ति नहीं हो रही है"।

ब्राह्मणकुमार (चूडाला) ने कहा—"मैंने अपने पितामह ब्रह्मा जी से पूछा था कि ज्ञान और कर्म में कौन श्रेष्ठ है ? ब्रह्मा जी ने कहा कि "ज्ञान परम कल्याण-प्रद है। उससे मोक्ष की प्राप्ति होती है। क्रियायें तो विनोदमात्र के लिए हैं। जो आत्मज्ञान से विहीन हैं, उन लोगों के लिए क्रियाओं का विधान है। जैसे जिसके पास पट्ट (महार्घ वस्त्र) नहीं है, वह कम्बल आदि ओढ़ता है। वासना के नाश हो जाने पर क्रियाओं के फल विनष्ट हो जाते हैं, जैसे एक ऋतु में होने वाली क्रियायें दूसरी ऋतु में नहीं होतीं। जब बालक यक्ष की कल्पना करता है, तब यक्ष को देखता है।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

वैसे ही दुःख को वासना करने से मनुष्य दुःख को प्राप्त करता है। वस्तुतः वासना है नहीं। वह अज्ञानवश उत्पन्न होती है, जैसे मरुभूमि में असत् जल। "सब ब्रह्म है" इस भावना से जिसका अज्ञान विनष्ट हो गया है उसको वासना उदित नहीं होती। जैसे विज्ञ पुरुष को मरुभूमि में जल की भावना नहीं होती। वासना के त्याग से मानव बाल्य, यौवन, जन्म-मरण आदि के दुःखों से मुक्त हो जाता है। वासनायुक्त मन ज्ञेय है और वासनारहित मन ज्ञान है, ज्ञान से ज्ञेय को प्राप्त कर मनुष्य फिर जन्म नहीं लेता"।

ब्राह्मणकुमार ने कहा—"ब्रह्मा प्रभृति श्रेष्ठ देवताओं ने ज्ञान को श्रेष्ठ कहा है। तब आप अज्ञान में क्यों पड़े हैं? यहाँ दण्ड है, यहाँ कमण्डलु है, यहाँ वृसी है, इत्यादि अनर्थ प्रपञ्च में क्यों भ्रान्त हो रहे हैं? मैं कौन हूँ? यह संसार कैसे उत्पन्न हुआ और कैसे शान्त होगा? इत्यादि विचार आप क्यों नहीं करते? अज्ञानी के समान क्यों रहते हैं? यह संसार कैसे उत्पन्न हुआ? मोक्ष कैसे प्राप्त किया जा सकता है? इत्यादि के विषय में आप विज्ञ गुरुओं से परिप्रश्न आदि क्यों नहीं करते? व्रत, उपवास आदि कठोर क्रियाओं को करते हुए इस जङ्गल में क्यों कालक्षेप कर रहे हैं? समदर्शी साधु पुरुषों की सेवा और उनके समागम आदि से महान् कल्याण होता है"।

शिखिध्वज ने कहा—"देवपुत्र! आपने कृपा कर अपने उपदेश से मुझे जगाया है। मैं अज्ञानवश आर्यपुरुषों का समागम छोड़कर वन में पड़ा हूँ। मैं समझता हूँ कि अब मेरे पाप दूर हो गए हैं, जो आप स्वयं यहाँ आकर मेरा उद्बोधन कर रहे हैं। आप मेरे गुरु हैं, पिता हैं, मित्र हैं। मैं आपका शिष्य हूँ और आपको नमस्कार कर रहा हूँ। आप कृपा करें। आप मुझे उस सर्वश्रेष्ठ ज्ञान का उपदेश करें, जिसको प्राप्त कर मनुष्य शोकरहित और सुख में पूर्णरूपेण विश्रान्त हो जाता है"।

ब्राह्मणकुमार (चूडाला) ने कहा—"राजर्षि! यदि आप मेरे वाक्यों को उपादेय समझते हों, तो मैं जो कुछ कहता हूँ, उसे ग्रहण करें, जैसे पिता के वचन को बालक ग्रहण करता है। श्रवण के बाद उन पर विचार करें। अनावश्यक तर्क न करें। मैं एक ऐसी कथा कह रहा हूँ, जो आपके चरित्र के सदृश है, अज्ञों का कल्याण करने वाली है और विज्ञों को तो तुरन्त मोक्ष प्रदान करने वाली है"।

मणिकाचोपाख्यान —

कोई एक श्रीमान् पुरुष था, जो गुण एवं लक्ष्मी दोनों का आश्रय था। उसमें वैराग्य, औदार्य आदि उत्तम गुण थे और सम्पत्तियाँ भी थीं। वह सागर के समान था, जिसमें वह्नि और जल दोनों साथ-साथ रहते हैं। वह चौंसठ कलाओं से अभिज्ञ, अस्त्रविद्या में निपुण, तथा व्यवहार में कुशल था और सङ्कल्पित पदार्थों को पूर्ण कर देता था; परन्तु वह परमपद को नहीं जानता था। वह चिन्तामणि को प्राप्त

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

करने के लिए जप, तप, व्रत, उपासना आदि क्रियाओं को करने लगा। उसके अध्यवसाय एवं महान् पौरुष से चिन्तामणि उसके सामने उपस्थित हो गया।

सम्मुख उपस्थित चिन्तामणि रत्न को देखकर वह विचारने लगा—"क्या यह चिन्तामणि है ? यदि मणि होता, तो इतना शीघ्र मेरे समक्ष उपस्थित न होता। मैं इसका स्पर्श करूँ अथवा न करूँ ? कहीं मेरे स्पर्श से वह अदृश्य न हो जाय ? मैं कदाचित् भ्रान्त तो नहीं हो गया हूँ, जो मणि को सम्मुख देख रहा हूँ। मैं इतना भाग्यवान् नहीं, जो चिन्तामणि मुझे शीघ्र मिल जाय। कुछ ऐसे महानुभाव सौभाग्यशाली हैं, जिन्हें सम्पत्तियाँ शीघ्र उपलब्ध हो जाती हैं। मैं साधारण मनुष्य हूँ। मुझे ऐसी अलौकिक सफलता कैसे मिल सकती है" ?

इस प्रकार तर्क-वितर्क करता वह मूर्ख पुरुष मणि को प्राप्त न कर सका। मणि भी उसकी उपेक्षा देखकर आकाश में विलीन हो गया; क्योंकि सिद्धियाँ उपेक्षा करने वालों को प्राप्त नहीं होतीं। वे आकर मनुष्यों को भाग्यवान् तथा सम्पन्न बना देती हैं और जाकर उनकी बुद्धि का विनाश कर देती हैं।

उस पुरुष ने पुनः सिद्धि के लिए प्रयत्न करना प्रारम्भ किया; क्योंकि अध्यवसायी जन शीघ्र उद्विग्न नहीं होते। उसने वञ्चक साधकों द्वारा प्रस्तुत काँच का एक टुकड़ा देखा, जो बहुत चमकीला था। उस मूर्ख पुरुष ने उसे चिन्तामणि समझकर उपादेय समझा। मोह शत्रु को मित्र, रज्जु को सर्प, जल को अग्नि एवं विष को अमृत बना देता है। उस काँच को मणि समझकर उसने अपनी प्राचीन सम्पत्ति का त्याग कर दिया। उसने समझा कि जब चिन्तामणि प्राप्त हो गया, तो सम्पत्ति की क्या आवश्यकता है ? अब तो सभी ऐश्वर्य हाथ में आ गए हैं।

उस मूर्ख ने अपने बन्धु-बान्धव, घर-द्वार, देश आदि सबको तुच्छ और हीन समझकर सबका त्याग करने का निश्चय किया। तदनुसार वह देशान्तर में चला गया। वहाँ उसको भीषण आपत्तियों का सामना करना पड़ा। उसका सर्वस्व नष्ट हो गया। जो सम्पत्ति थी, वह भी चली गई और हाथ में कुछ न लगा।

ठीक ही कहा है कि मूर्खता से जो संकट उत्पन्न होते हैं, वे सर्वस्वनाश, बड़ी-बड़ी आपत्तियों, वृद्धावस्था अथवा मरण से नहीं होते। तत्त्ववेत्ताओं को सैकड़ों आपत्तियों के आने पर भी दुःख नहीं होता, जबकि स्वर्ण के पलङ्ग पर सो रहे राजाधिराज को भी मूर्खतावश सैकड़ों दुःख भोगने पड़ते हैं।

हस्तिकोपाख्यान—

ब्राह्मणकुमार ने कहा—"राजन् ! आप एक और उपाख्यान सुनें, जो बड़ा उद्बोधक है और आपके अनुरूप है। विन्ध्यपर्वत में एक महान् गजराज था, जो अपने उन्नत स्वरूप के कारण विन्ध्य पर्वत के समान प्रतीत होता था। उसके दो धवल दाँत वज्र के समान शक्तिशाली थे और नगराज सुमेरु को भी उखाड़ फेंकने में सक्षम थे। हस्तिपक ने उसे लोहमय जाल में बाँध रखा था। लौहजाल में बद्ध तथा शस्त्रादि

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

से गण्डस्थल में पीडित वह गजराज भीषण यन्त्रणा और मार्मिक व्यथा का अनुभव कर रहा था।

दूरी के कारण उसका शत्रु हस्तिपक (पीलवान्) उसे नहीं देख रहा था। हाथी बन्धन से मुक्त होने के लिए भगीरथ-प्रयत्न करने लगा। अल्पकाल में ही उसने अपने समर्थ दाँतों से शृङ्खलाजाल को छिन्न-भिन्न कर दिया। शत्रु ने दूर से उसका जालभेदन देखा। वह समीपस्थ तालवृक्ष पर चढ़कर उस गजराज के मस्तक पर गिरा। दुर्भाग्यवश, हाथी का मस्तक न पाकर वह पृथिवी पर गिर पड़ा। उसको सम्मुख गिरा देखकर गजराज को दया आ गई। उसने शत्रु को मारा नहीं। गिरे को क्या मारना ? ठीक ही कहा है कि तिर्यग् योनियों में भी दयालु और गुणी होते हैं। गजराज के दूर चले जाने पर उसका शत्रु हस्तिपक स्वस्थ हो गया और वहाँ से चल पड़ा। ताल के उच्च वृक्ष से गिरने पर भी उसका अङ्ग-भङ्ग नहीं हुआ। दुष्ट-जनों का शरीर भी दुर्भेद्य ही होता है। गजराज का शत्रु अपने प्रयास में असफल हुआ। वह इस प्रकार दुःखी हुआ, जिस प्रकार हाथ में निधि के आकर चले जाने पर व्यापारीगण होते हैं।

पीलवान् हाथी की खोज में प्रयत्नशील था। जङ्गल में इधर-उधर घूमता रहा। विशेष परिश्रम के बाद उसने उस गजराज को किसी वृक्ष के नीचे विश्राम करते देखा। उसने अपने साथियों की सहायता से वहीं समीप में एक विशाल गर्त्त खुदवाया, जो गजराज को फँसाने में समर्थ था और आकृत्या गोल एवं गहरा था। उस वञ्चक ने उस गर्त्त को कोमल लताओं से आच्छन्न कर दिया।

कतिपय दिनों में ही वन में विहार करता हुआ वह गजराज उस गर्त्त में गिर गया। वह पुनः भयङ्कर बन्धन में पड़ गया और अत्यन्त दुःखी हुआ। यदि उसने यथासमय अपने शत्रु का वध कर दिया होता, तो बन्धन में नहीं पड़ता; परन्तु उसने मूर्खता की, फलतः बन्धन में पड़ गया।

चिन्तामणि साधक की समीक्षा—

राजा शिखिध्वज चिन्तामणि साधक के वृत्तान्त का पूर्ण विवरण जानना चाहते थे। अतः उसे प्रस्तुत करते हुए ब्राह्मणकुमार ने कहा—"राजन्! शास्त्रार्थ में कुशल परन्तु तत्त्वज्ञान में अपण्डित जिस साधक का मैंने वर्णन किया है, वह आप ही हैं ? आप शास्त्रज्ञान में निपुण हैं; परन्तु आत्मज्ञान में शून्य हैं। आप सर्वत्याग को चिन्तामणि समझें, जिसके लिए आप प्रयत्नशील हैं। वस्तुतः सर्वत्याग से ही दुःखों का विनाश हो सकता है। शुद्ध सर्वत्याग से सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है; क्योंकि उससे आत्यन्तिक पूर्णकामता उपलब्ध होती है। आपने उस सर्वत्याग को सिद्ध कर लिया है, जो हिरण्यगर्भ तक के ऐश्वर्य को तुच्छ समझने वाला है तथा निरतिशयानन्दरूप आत्मज्ञान का उदय कराने वाला है। आपने स्त्री, धन, बन्धु-

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

बान्धव के साथ सम्पूर्ण राज्य का त्याग कर दिया है। आप स्वदेश से बहुत दूर विश्रान्ति के लिए आए हैं। आपने सर्वत्याग में अभिमानरूप'अविद्या को बचा रखा है। अब तक इसका त्याग नहीं किया है। हृदय से अहङ्कार के त्यक्त हो जाने पर समस्त जगत् ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। आप त्याग और अत्याग के विषय में अज्ञानावृत से हैं। 'मैंने सब कुछ त्याग दिया है' यह अभिमान आप में बना है।

सर्वत्याग होने पर भी आप उसे गृहीत नहीं कर पा रहे हैं। फलतः वह आपका महान् त्याग चिन्तामणिरूप उड़कर कहीं चला गया। जो चिन्ता से दूर नहीं, उसका त्याग कैसा ? पवन के स्पन्द से युक्त वृक्ष में निश्चलता कहाँ ? चिन्ता ही चित्त है (अहङ्कार है), उसके स्फुरित रहते चित्त का त्याग कैसा ? चित्त के चिन्ताग्रस्त रहने पर सर्वत्याग कैसा ? जैसे ग्राम के पक्षी शब्द सुनने मात्र से उड़कर चले जाते हैं, वैसे आपका सर्वत्याग सङ्कल्पमात्र करने से उड़कर आकाश में चला गया। दीर्घकालिक प्रार्थना के बाद सम्मुख आया हुआ भी आपका त्याग (चिन्तामणि) सम्मानित न होने के कारण चला गया। यह सर्वथा स्वाभाविक भी है।

सर्वत्यागरूपी चिन्तामणि के चले जाने पर आपने सङ्कल्परूपी नेत्र से काँचरूपी तप को चिन्तामणि के रूप में देखा। आपने भ्रमवश तपरूप दुःख हेतु में ग्राह्यत्व की भावना की। जो सुसाध्य, असीम आनन्दरूप त्याग को छोड़कर परिमित तथा दुःसाध्य तप आदि रूप में प्रवृत्त होता है, वह निश्चय ही मूर्ख एवं आत्मघाती है। तपोजन्य दुःख तथा उसके हेतु अज्ञान में पड़कर आपने सर्वत्याग आरम्भ कर उसे सिद्ध नहीं किया। दुःखों से परिपूर्ण राज्यबन्धन से मुक्त होकर आप वनवासरूप दृढ़तर बन्धन में फँस गए। शीत, वात, आतप आदि के कारण वनवास आपके लिए भयङ्कर बन्धन हो गया है। आपने यह समझा कि मैंने चिन्तामणि प्राप्त कर लिया है; पर वास्तव में आपने स्फटिक का एक टुकड़ा भी प्राप्त नहीं किया। मैंने उक्त दृष्टान्त से आपके चरित्र का विशद वर्णन कर दिया है। अब आप सर्वत्याग और तप में जिसे अच्छा समझें, उसे अङ्गीकार करें"।

हस्तिकाख्यान का तात्पर्य—

ब्राह्मणकुमार ने कहा—"राजन् ! अब आप अपने बोध की वृद्धि के लिए विन्ध्याचल के हाथी का वृत्तान्त सुनिए। विन्ध्याचल में जो हाथी है, वह भूमण्डल पर आप हैं। उस हाथी के दो दाँत आपके वैराग्य और विवेक हैं। हाथी को पकड़ने में तत्पर जो हस्तिपक है, वह आपका अज्ञान है। गज के समान अत्यन्त शक्तिशाली होते हुए भी आप अज्ञानरूपी दुर्बल हस्तिपक द्वारा एक दुःख से दूसरे दुःख में तथा एक भय से दूसरे भय में डाले जा रहे हैं। लौह वज्रसार से हाथी बाँधा जाता है और आप आशा-पाशरूप जाल में पूर्णरूप से बद्ध हैं। आशा लोहे की शृङ्खला से बड़ी विषम है। कालान्तर में लोहा टूट जाता है; परन्तु तृष्णा तो बढ़ती ही रहती है। पीलवान् दूर से हाथी को देख रहा था और अज्ञान आपको दूर से देख रहा था। गज

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

ने शत्रु के श्रृङ्खलाबन्धन को तोड़ा और आपने भोगरूप राज्यबन्धन का त्याग किया। कदाचित् श्रृङ्खलाजाल का भेदन सरलता से हो सकता है; परन्तु भोग की आशा का निवारण अत्यन्त कठिन है। हाथी के बन्धन टूट जाने पर जो पीलवान् गिरा था, वह आपके राज्यत्याग करने पर अज्ञान गिर पड़ा था। जब विवेकी पुरुष भोगों का त्याग करता है, तब अज्ञान कटकर गिर जाता है। भोगसमूह के उन्मुक्त हो जाने पर अज्ञान कटकर गिर जाता है, जैसे वृक्ष के कट जाने पर तत्स्थ पक्षियों का घोंसला।

जब आपने राज्यत्याग किया; आपने अज्ञान को घायल कर दिया; परन्तु तत्त्वज्ञानरूप असिधारा से आपने उसे मार नहीं डाला। परिणाम यह हुआ कि उस घायल अज्ञान ने आपसे बदला लेने के लिए आपको तपःप्रपञ्चरूप गर्त्त (गड्ढे) में डाल दिया।

यदि राज्यत्याग के समय आपने अज्ञान को मार डाला होता, तो अज्ञान आज आपको तपःप्रपञ्च में नहीं प्रवृत्त करा पाता। जैसे महावतरूपी शत्रु ने गज के लिए गोल गड्ढे का निर्माण किया, वैसे अज्ञानरूपी शत्रु ने आपके लिए तपःप्रपञ्चरूप गड्ढा निर्मित किया है। गज न होते हुए भी आप अविवेक से सम्पन्न गजेन्द्र हैं। इस जङ्गल में अज्ञानरूपी पीलवान् ने आपको तपरूपी गड्ढे में प्रक्षिप्त कर दिया है। वह गोल गर्त्त, जो लता आदि से अवगुण्ठित है, वह आपका तपरूपदुःख शान्ति आदि गुणों एवं सज्जन पुरुषों के समागम से आवृत सा है। आज भी आप उस तपोरूप गड्ढे में, जो नितान्त दुःखदायक है, पड़े हैं। आप गज हैं, आशायें जंजीर हैं, शत्रु पीलवान् है मोह (अज्ञान), तप में आग्रह गड्ढा है। विन्ध्याचल महीतल है। अब आप जो उचित हो करें"।

सर्वत्यागकरण—

ब्राह्मणकुमार ने कहा कि चूडाला नीति में निपुण थी और उसे वेद्यवस्तु का ज्ञान था। उसने जिस तत्त्वज्ञान का प्रतिपादन किया था, उसे आपने क्यों नहीं अङ्गीकार किया? वह तत्त्वज्ञानियों में श्रेष्ठ है। वह जो कुछ कहती और करती है, वह सत्य रहता है। आपको उसका आदर करना चाहिए। यदि अपनी भार्या समझकर आपने उसके वचन का पालन नहीं किया, तो आपने सर्वत्याग क्यों नहीं किया?

शिखिध्वज ने कहा—"मैंने राज्यत्याग किया, घर छोड़ा, वैसा सुन्दर देश छोड़ा, स्त्री भी छोड़ दी, क्या अभी सर्वत्याग नहीं हुआ"?

ब्राह्मणकुमार ने कहा—"राजन्! धन, स्त्री, गृह, राज्य, भूमि, छत्र और बान्धव ये सब आपके नहीं हैं, अतः आपका सर्वत्याग कैसा? सबसे उत्तम भाग तो आपका मन अथवा अहङ्कार है। उसका त्याग कर ही आप विशोक (शोकरहित) हो सकते हैं"।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

शिखिध्वज ने कहा कि "यदि आप कहते हैं कि राज्य मेरा सब कुछ नहीं है, तो यह पर्वत, वृक्ष, गुल्म आदि से परिपूर्ण वन ही मेरा सब कुछ है और मैं उसका त्याग कर रहा हूँ"। राजा ने वनासक्ति को दूर किया और वन, वृक्ष, आदि पर जो ममता थी, उसका परित्याग कर दिया। उन्होंने कुमार (कुम्भ) से कहा 'अब तो मेरा सर्वत्याग हो गया'।

कुम्भ ने कहा—"वन, जल, वृक्ष, गुल्म, श्वभ्र भूमि आदि आपके नहीं हैं, फिर आपका सर्वत्याग कैसा ? आप अपने सर्वोत्तम भाग का त्याग कर शोक से रहित हो सकते हैं"।

शिखिध्वज ने कहा—"यदि वे सब मेरे नहीं हैं, तो मैं वापी, उटज, लता आदि से युक्त जो अपना आश्रम है, उसका भी त्याग कर रहा हूँ। अब मेरा सर्वत्याग हो गया"।

कुमार (कुम्भ) ने कहा—"वृक्ष, वापी, उटज, लतायें आपको कुछ भी नहीं हैं। उनका त्याग कैसा ? आप अपने सर्वोत्तम भाग का त्याग कर विशोक हो सकते हैं"।

शिखिध्वज ने कहा—"यदि ये सब मेरे नहीं हैं, तो मैं अपने सब भाण्ड, मृग-चर्म, कमण्डलु आदि का त्याग कर रहा हूँ"। राजा ने अपने भाण्ड आदि को एकत्र किया और अग्नि को प्रज्वलित कर सबको अग्नि में डाल दिया। उन्होंने अपनी प्रिय अक्षमाला को भी अग्नि में डाल दिया। अपने मृगचर्म को जिस पर वह बैठते थे, उसे भी अग्नि में झोंक दिया, अपने कमण्डलु को किसी श्रोत्रिय ब्राह्मण को दे दिया। बैठने के आसन वृसी को भी अग्नि में डाल दिया। इस प्रकार उनके पास जो कुछ था, केवल शरीर को छोड़कर, सब कुछ त्याग दिया। कुटीर में आग लगा दी। सब जलने लगा। आश्रम नष्ट-सा हो गया। मृगगण जो वहाँ रहते थे, प्रचण्ड वह्निज्वाला को देखकर वहाँ से भागने लगे।

शिखिध्वज का अवबोधन—

राजा ने विचार किया कि देवपुत्र चिरकाल से आप मुझे प्रबुद्ध कर रहे थे। अब मैं सब वस्तुओं में ममता छोड़कर सर्वत्यागी बनकर स्थित हूँ। अब मैं विशुद्ध आनन्द से सम्पन्न तथा ज्ञानवान् हो गया हूँ। विषयों के त्याग से मेरा मन अत्यन्त प्रसन्न हो गया है। मैं अब शान्ति का अनुभव कर रहा हूँ। मैं परम आनन्दस्वरूप को प्राप्त कर रहा हूँ। मैं विजयी हो रहा हूँ। मैं सब प्रकार से सुखी हूँ। मेरे सब बन्धन कट गये। अब मैं दिगम्बर हूँ। दिशायें मेरा घर हैं। मैं दिशाओं के समान स्थित हूँ। देवपुत्र ! बतलायें, अब क्या अवशिष्ट है ? मैंने सर्वत्याग कर दिया ?

कुम्भ ने कहा—"राजन् ! अभी आपने सर्वत्याग नहीं किया है। सर्वत्यागजन्य आनन्द का वृथा अभिमान न करें। सर्वोत्तम भाग का आपने अभी त्याग नहीं किया है। उसके बाद ही आप विशोक हो सकेंगे"।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

यह सुनने के बाद राजा ने कुछ विचार किया और कहा—"देवपुत्र ! इन्द्रिय-रूपी दुष्ट सर्पों से युक्त, रक्तमांसमय आकृतिवाला यह मेरा शरीर सर्वत्याग में अवशिष्ट है। उसे मैं भृगुपात से विनष्ट कर सर्वत्यागी हो रहा हूँ"। ऐसा कहकर राजा शरीरत्याग के लिए ज्योंही उठकर खड़ा हुआ, देवपुत्र तत्काल बोले—"राजन् ! इस निरपराध शरीर को क्यों महागर्त्त में डाल रहे हैं ? यह शरीर निर-पराध, जड़ एवं मूकात्मा है। इसका त्याग उचित नहीं। यह दूसरे से सञ्चालित है, जैसे तरङ्ग से काष्ठ। अतः जो इसका सञ्चालक है, वह दण्डार्ह है, उसे दण्ड दीजिए। दूसरी बात यह है कि देहत्याग से सर्वत्याग हो नहीं सकता। इसलिए भी वह निरर्थक है। देह के न रहने पर ज्ञान की सम्भावना भी न रह जायगी। अतः देह को संचालित करने वाला, उसे क्षुब्ध करने वाला जो अहङ्कार है, मन है, उसका त्याग करने पर सर्वत्याग हो जायगा और आप परमपद के अधिकारी हो जायँगे"।

राजा शिखिध्वज ने कहा—"देवपुत्र ! कृपया स्पष्ट करें कि सर्वदा त्यागने योग्य, सर्वगत, वह सर्वात्मक वस्तु कौन है" ?

देवपुत्र ने कहा—"राजन् ! वह सर्वात्मक वस्तु चित्त है, मन है, जो जीव, प्राण आदि नामवाला है। वह न जड़ है, न अजड है, वह अनेक भ्रमों से व्याप्त है। चित्त को आप भ्रम समझें, चित्त को व्यवहार करने वाला पुरुष समझें तथा चित्त को ही जगज्जाल समझें। वह चित्त ही सर्वात्मक वस्तु है। जैसे वृक्ष का बीज वृक्ष है, वैसे राज्य, देह, आश्रम आदि सबका बीज मन (चित्त) है। उस सर्वबीज मन का त्याग हो जाने पर सब कुछ त्यक्त हो जाता है। उसीका त्याग सर्वत्याग है। समस्त धर्म, अधर्म, राज्य, जङ्गल आदि चित्तपुरुष के लिए केवल दुःखरूप हैं और चित्तहीन पुरुष के लिए परमसुखस्वरूप है। जैसे बीज वृक्षरूप में परिणत होता है, वैसे मन ही, चित्त ही, सम्पूर्ण जगत् एवं देहादिरूप में परिणत होता है। जिस प्रकार पवन से वृक्ष, भूकम्प से पर्वत सञ्चालित होते हैं, उसी प्रकार चित्त से यह शरीर सञ्चालित होता है। समस्त प्राणियों के उपभोग, जरा-मरण आदि देहधर्म तथा महामुनियों के शम, दम आदि धर्मों की दृढ़ पिटारी मन (चित्त) ही है। चित्त ही सर्व है, अर्थात् सब कुछ है। उसके त्याग से सर्वत्याग सिद्ध हो जाता है, जो कि समस्त आधियों, व्याधियों की सीमा है, अर्थात् चित्तत्याग से सब प्रकार के दुःखों का विनाश हो जाता है। चित्त-विनाशरूप सर्वत्याग से सब कुछ वैसे प्राप्त हो जाता है, जैसे साम्राज्य से। जिसने सर्वत्याग किया है, उसने समस्त जगत् को प्रकाशित किया है। समस्त प्रपञ्चों का त्याग करने पर पुरुष चितिस्वरूप हो जाता है और सब ज्ञानों का आश्रय हो जाता है, जैसे आकाश सूर्य, चन्द्र एवं अनन्त तारागण आदि का आश्रय है। सर्वत्याग-सम्पन्न पुरुष को जरा-मरण आदि का लेशमात्र भी भय नहीं है, जैसे असङ्ग और उदासीन आकाश को किसी का भय नहीं है। सर्वत्याग से निर्मल कान्ति प्राप्त होती है, बुद्धि में महती स्थिरता आ जाती है। सर्वत्याग परमानन्दरूप है, उससे अन्य सब कुछ भयङ्कर दुःख है। सर्वत्याग करने पर समस्त वैभव आ जाते हैं, जैसे समुद्र में

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

बडवाग्नि से जल का दाह होने पर नदियों एवं नदों का जल सदा प्रवाहित होता रहता है। सर्वत्याग सम्पूर्ण सम्पत्तियों का वासस्थान है, जो कुछ नहीं लेता, उसको सब कुछ मिलता है। सर्वत्याग कर शान्त, स्वस्थ और आकाश के समान सौम्य बन जाना चाहिए"।

चित्तमेव भ्रमं विद्धि विद्धि चेतो नरं नृप।
चित्तं विद्धि जगज्जालं चित्तं सर्वमिति स्मृतम्॥
राज्यादेरथ देहादेराश्रमादेर्महीपते।
सर्वस्यैव मनो बीजं तरुबीजं तरोरिव॥
सर्वस्य बीजे सन्त्यक्ते सर्वं त्यक्तं भवत्यलम्।
सम्भवासम्भवाद्भूप सर्वत्यागो भवेदिति॥
इदं विवर्तते सर्वं चित्तमेव जगत्तया।
देहाद्याकारजालेन बीजं वृक्षतया यथा॥
सर्वभूतोपभोगानां जरामरणजन्मनाम्।
महामुनीनां सुदृढं चित्तं विद्धि समुद्गकम्॥
सर्वत्यागे हि शून्यात्मा आश्रयः सर्वसंविदाम्।
अनन्तानामुदाराणां खमिवेदं दिवौकसाम्॥
सर्वत्यागरसापाने जरामरणभीतयः।
न काश्चन प्रबाधन्ते खस्येव व्योमलेखिकाः॥
सर्वत्यागो महत्त्वस्य कारणं निर्मलद्युतेः।
सर्वं त्यजसि चेद्यस्माद् बुद्धिस्थैर्यं बृहत्तमम्॥
सर्वत्यागः परानन्दो दुःखमन्यत् सुदारुणम्।
इत्योमित्युररीकृत्य यदिच्छसि तदाचर॥
सर्वं त्यजति यस्तस्य सर्वमेवोपतिष्ठते।
यथैवाम्बुविशत्यग्नौ तथैवायाति वारिधौ॥
सर्वत्यागो महाराज सर्वसम्पत्समाश्रयः।
न गृह्णाति हि यत्किञ्चित्सर्वं तस्मै प्रदीयते॥
कृत्वा सर्वपरित्यागं शान्तः स्वस्थो वियत्समः।
सौम्यो भवति यद्रूपस्तद्रूपो भव भूपते॥

योगवासिष्ठ, निर्वाणप्र० पू० सर्ग ९३, श्लो० ३३-३५, ३७, ३९, ५५, ५६-५९, ६२-६३

ऋषि कुम्भ के वचन सुनकर राजा शिखिध्वज ने कहा—"हे मुने! हृदयरूपी आकाश का पक्षी तथा अन्तःकरणरूप वृक्ष का मर्कट यह मन बार-बार दूर करने पर भी समीप में आ जाता है। मैं इस चित्त को पकड़ लेना तो जानता हूँ; परन्तु इसका त्याग नहीं जानता। आप कृपया चित्त का स्वरूप और उसके परिमार्जन की विधि स्पष्ट रूप से बतलाएँ"।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

ऋषिकुमार कुम्भ ने कहा—"राजन् ! वासना ही चित्त का स्वरूप है। चित्त-शब्द वासना का पर्याय है, उसका त्याग अत्यन्त सुकर और सुसाध्य है। उसमें राज्य की अपेक्षा अधिक आनन्द है और कुसुम से भी अधिक सौन्दर्य है; परन्तु मूर्खों के लिए चित्तत्याग अत्यन्त दुःसाध्य है, जैसे पामर के लिए साम्राज्य और तृण के लिए सुमेरुरूप की प्राप्ति"।

शिखिध्वज ने कहा—"देवपुत्र ! मैं चित्त का स्वरूप तो जानता हूँ; परन्तु उसके त्याग को नहीं जानता। मैं समझता हूँ कि वह वज्र निगलने से भी अधिक कठिन है, संसाररूपी आमोद से युक्त पुष्प, दुःखदाहजनक अग्नि, जगद्रूपी कमल का मृणाल, मोहरूपी वायु, शरीररूपी यन्त्र का चालक तथा हृदयरूपी कमल का भ्रमर है। कृपया उसके त्याग की विधि बतलाइये"।

कुम्भ ने कहा—"राजन् ! चित्त का नाश संसार का नाश है और वही चित्त का त्याग है"।

शिखिध्वज ने कहा—"मैं चित्तत्याग की अपेक्षा चित्तनाश को अच्छा समझता हूँ। कृपया उसका विधान स्पष्ट रूप से बतलाइये"।

कुम्भ ने कहा—"शाखा, फल, पल्लवयुक्त चित्त-वृक्ष का बीज अहम्भाव है, आप उसका समूल विनाश कीजिए"।

शिखिध्वज ने कहा—"देवपुत्र ! चित्त का मूल क्या है ? अङ्कुर क्या है ? कहाँ वह उत्पन्न होता है ? उसकी शाखायें और स्कन्ध कौन हैं ? वह समूल कैसे विनष्ट किया जा सकता है" ?

कुम्भ ने कहा—"राजन् ! चित्त का मूल अहंभाव है, मायामय प्रपञ्च खेत है, अनुभव ही उसका अङ्कुर है, उसकी पीनता चित्त (मन) है, जीव साक्षी है, उसका स्तम्भ शरीर है, अङ्कुर से पल्लव आदि रूप में जो विकास है वह वासना है, दूर तक गई विस्तृत शाखायें इन्द्रियाँ, तुच्छ भोग उसकी अवान्तर शाखायें हैं। आप इस दुष्ट चित्त-वृक्ष का समूल विनाश कर डालिए"।

शिखिध्वज ने कहा—"चित्त-वृक्ष की शाखाओं का विच्छेदन कर रहा मैं उसके मूल का उत्पाटन कैसे करूँ" ?

कुम्भ ने कहा—"राजन् ! जिसका मन किसी विषय में आसक्त नहीं है, जो अनुचित वाग्व्यापार नहीं करता, जो यथाप्राप्त कार्य को करता है, उसकी चित्तरूपी लता विच्छिन्न हो जाती है, वह पश्चात् मूलोच्छेद के योग्य हो जाता है, यतः मूल का उच्छेद ही प्रधान है, अतः आप उसमें तत्पर हो जायँ"।

शिखिध्वज ने कहा—"देवपुत्र ! चित्तरूपी वृक्ष के बीज अहंभाव का विनाश कौन सा अग्नि कर सकेगा" ?

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

कुम्भ ने कहा—"राजन्! 'मैं कौन हूँ' इस प्रकार का विचार—आत्मसाक्षात्कार-पर्यन्त—अहंभाव का दहन करने में समर्थ हो सकेगा"।

शिखिध्वज ने कहा—"देवपुत्र! मैंने विचार किया है कि मैं अहङ्कार नहीं हूँ, वन-पर्वतादि मण्डित पृथ्वी एवं जगत् नहीं हूँ, मैं देहादि नहीं हूँ, अस्थि, मांस, रक्त आदि भी नहीं हूँ, कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय और मन नहीं हूँ, बुद्धि नहीं हूँ। अहन्तादि मल का परिमार्जन जानता हुआ भी मैं साक्षिचैतन्य को नहीं जानता। फलतः सन्तप्त रहता हूँ"।

कुम्भ ने कहा—"राजन्! यदि आप जड़स्वरूप नहीं हैं, तो क्या हैं? स्पष्ट कीजिए"?

शिखिध्वज ने कहा—"देवपुत्र! मैं चिन्मात्र आत्म-संवेदन का स्वरूप हूँ; पर मुझे अहंरूप अभिमान का मल लग गया है। न मैं उसे छोड़ना जानता हूँ और न ब्रह्म को ही जानता हूँ"।

कुम्भ ने कहा—"कारण से कार्य उत्पन्न होता है। जैसे अहम्भावरूप कारण से मन आदि रूप कार्य उत्पन्न होता है, वैसे अहम्भावरूप कार्य किस कारण से उत्पन्न होता है, मुझे वतलाइये"।

शिखिध्वज ने कहा—"देवपुत्र! शरीर आदि में अहन्ता का अभिमान आदि दोष है। मैं उसका कारण शरीर आदि दोष को ही समझता हूँ। चिति को चेत्योन्मुख कर अहंभाव से अवस्थित ये देहादि मात्र दुःख के ही कारण हैं। उसकी शान्ति का उपाय कृपया प्रदर्शित करें"।

कुम्भ ने कहा—"आप स्पष्ट कहें कि चिति की चेत्योन्मुखता का कारण कौन है"?

शिखिध्वज ने कहा—"मेरी दृष्टि में तो चेत्योन्मुखता का कारण देहादि बाह्य पदार्थ-सत्ता ही है"।

कुम्भ ने कहा—"राजन्! यदि देहादि बाह्य पदार्थों की सत्ता होती, तब तो आपका तद्विषयक ज्ञान मान्य होता; परन्तु जब उसकी सत्ता ही नहीं है, तव उसका ज्ञान और कारणता कैसो"?

शिखिध्वज ने कहा—"देवपुत्र! शरीरादि का स्वरूप हाथ-पैर आदि से संयुक्त—उपलभ्यमान है, वह क्रियाशील भी है, तब वह नहीं है, यह कैसे कहा जा सकता है"?

कुम्भ ने कहा—"राजन्! जिस कार्य का कारण नहीं है, वह कार्य नहीं है, उसका ज्ञान भ्रममात्र है। विना कारण के शरीररूपी कार्य नहीं रह सकता। जिसका बीज नहीं, उसकी उत्पत्ति कैसे? विना कारण के जो कार्य है, वह मृगतृष्णा जल के समान मिथ्या है। मिथ्या भ्रम से उदित शरीर आदि को आप अविद्यमान ही समझें; क्योंकि उसका कोई कारण नहीं है"।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

शिखिध्वज ने कहा—"देवपुत्र ! हस्तपादादि संयुक्त दृश्यमान इस शरीर का कारण पिता कैसे नहीं है" ?

कुम्भ ने कहा—"राजन् ! कारणाभाव से पिता भी नहीं है। जो पदार्थ असत् से उत्पन्न हुआ है, वह असत् है। जिस कार्य का कारण नहीं है, वह कार्य भी नहीं है, कारणरूप बीज के विना किसी कार्य की उत्पत्ति नहीं होती। यदि ऐसे कार्य का ज्ञान होता है, तो वह भ्रमात्मक है, दो चन्द्र, वन्ध्यातनय, मरुभूमि में जल इत्यादि बुद्धि भ्रम ही है"।

शिखिध्वज ने कहा—"देवपुत्र ! प्रजा उत्पन्न करने वाले हिरण्यगर्भ आदि प्रजापति पितामहों, उनके पुत्रों आदि की उत्पत्ति में क्यों कारण नहीं है" ?

कुम्भ ने कहा—"राजन् ! आद्य पितामह हिरण्यगर्भ आदि भी कारण के अभाव में नहीं ही हैं; क्योंकि कारण के अभाव में कार्य की सत्ता होती ही नहीं। दृश्यमान जगत् मृगतृष्णाजल के समान भ्रान्तिरूप है। तृण से लेकर आद्यपितामह-पर्यन्त यह समस्त जगत् भ्रमात्मक है; क्योंकि उसका कोई कारण नहीं है। हिरण्य-गर्भ से लेकर स्तम्वपर्यन्त सृष्टिपरम्परा से जो स्फुरित होता है, वह अपने स्वरूप में ही अर्थात् ब्रह्म में ही स्फुरित होता है, उससे अतिरिक्त किसी अन्य की सत्ता नहीं है। उसने स्वयं अपने को जगद्रूप में कचित (स्फुरित) किया है। अतः यह समस्त द्वैतप्रपञ्च शान्त ब्रह्म ही है"।

कारणाभावतो राजन्पिता नाम न विद्यते।
असतो यत्तु सञ्जातमसदेव तदुच्यते॥
पदार्थानां च कार्याणां कारणं बीजमुच्यते।
सम्भवत्यङ्ग जगति न बीजेन विनाङ्कुरः॥
तस्मान्न कारणं यस्य कार्यस्येहोपपद्यते।
बीजाभावे हि तन्नास्ति तत्संवित्तिस्तु विभ्रमः॥
अवश्यं खलु यन्नास्ति निर्बीजं तन्मतिभ्रमः।
द्वीन्दुत्व-मरुभूम्यम्बु-वन्ध्यापुत्रदशासमम् ॥
आद्यः पितामहो यः स्यात् सोऽपि नास्त्येव भूपते।
कारणाभावतो नित्यं यदा भावो न कस्यचित्॥
कारणस्य स्वबीजस्य नित्याभावात् पितामहः।
अन्यः स दृश्यमानोऽपि भ्रमादन्यो न विद्यते॥
मृगतृष्णाम्बुवद्भ्रान्तिरूप एवावभासते।
पितामहार्थकारित्वमपि त्वस्य भ्रमात्मकम्॥

योगवासिष्ठ, निर्वाण-प्र० पू० सर्ग ६४, श्लो० ६१-६४, ६६-६८

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

शिखिध्वज-विश्रान्ति—

शिखिध्वज ने कहा—"देवपुत्र ! ब्रह्मा से लेकर स्तम्बपर्यन्त जो यह संसार प्रतिभासित हो रहा है, यदि वह भ्रमरूप है, तो वह अर्थक्रियासमर्थ और दुःख का कारण कैसे है" ?

कुम्भ ने कहा—"राजन् ! प्राणियों के प्राक्तन कर्मों का उपभोग हो, ऐसी चिति—सत्यसङ्कल्प परमात्मा—की भावना हुई, फलतः मिथ्या जगत् में भी अर्थक्रिया-कारिता और दुःखकारणता आ गई। अज्ञान के शिथिलीभूत हो जाने से अज्ञानजन्य संसार भी नष्ट हो जाता है। अज्ञान का विनाश न होने पर जगत् का उच्छेद संभव नहीं है और पूर्व संस्थान से विच्युति की अनुभूति भी सम्भव नहीं है। बाह्याकार वृत्तियों में सूक्ष्मता आने पर इस प्रपञ्चात्मक जगत् की शान्ति होती है। तत्त्वज्ञान से परमपद की प्राप्ति होती है और बाह्यप्रपञ्चों में सूक्ष्मता की भावना उत्पन्न होती है। फलतः इस भ्रमात्मक जगत् का विनाश होता है। लोक में भी देखा जाता है कि जिस देह आदि का अपक्षय प्रारम्भ होता है, उसका शीघ्र ही विनाश भी हो जाता है।

इस प्रकार आप आदि पुरुष हैं और यह सारा प्रपञ्च मृगतृष्णाजल के समान मिथ्या है। आदिपितामह ब्रह्मा द्वारा रचित यह सृष्टि असत् है; क्योंकि आदिपितामह की भी सत्ता नहीं है। असत् वस्तु द्वारा सद्वस्तु की सिद्धि कदापि नहीं हो सकती। यह दृश्यमान सृष्टिक्रम मृगतृष्णाजल के समान मिथ्या है। विचार से उसका विलय हो जाता है, जैसे शुक्ति में रजत बुद्धि का। कारण के विना जो कार्य होता है, वह असत् होता है। मिथ्याज्ञान के अतिरिक्त उसका स्वरूप कुछ और नहीं है। क्या मृग-तृष्णाजल से किसी ने घड़ा भरा है" ?

शिखिध्वज ने कहा—"देवपुत्र ! आदिपितामह हिरण्यगर्भ का अनन्त, अज, अव्यक्त, चिदाकाश, शान्त, अच्युत, निर्विशेष ब्रह्म कारण क्यों नहीं हैं" ?

कुम्भ ने कहा—"राजन् ! शुद्ध ब्रह्म न तो कार्य है और न कारण। वह सर्वथा अद्वैत है, कूटस्थ है। वह न कर्ता है, न कर्म है, न करण है। उसका न कोई निमित्त है और न उपादान। वह तर्कों का स्थान नहीं है और इन्द्रिय, मन आदि द्वारा गम्य (बोध्य) भी नहीं है। वह कैसे कर्त्ता और भोक्ता हो सकता है, जो अतर्क्य, अविज्ञेय, शान्त, विकाररहित और कल्याणरूप है। वह कर्त्ता, भोक्ता कैसे हो सकता है ? अतः यह जगत् किसी का कार्य नहीं है; क्योंकि कारण की सत्ता नहीं है। जो दिखाई देता है, वह केवल भ्रममात्र है। अहंभाव भी सर्वथा निर्मूल एवं असत् है। इसलिये राजन् ! आप सब मलों से निर्मुक्त विशुद्ध ब्रह्म हैं"।

शिखिध्वज ने कहा—"देवपुत्र ! आपने युक्तियुक्त और उत्तम बात कही है। कारण न होने से ब्रह्म जगत् का उत्पादक नहीं हो सकता। कर्त्ता के अभाव से जगत् का अभाव है और जगत् के अभाव से नामरूपात्मक दृष्टि का अभाव है। चित्त,

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

अहंकार आदि का कोई अस्तित्त्व नहीं है। ऐसी स्थिति में मैं विशुद्ध, निर्मल, सर्वज्ञ एवं शिवस्वरूप हूँ। मैं अपने को ही प्रणाम करता हूँ; क्योंकि चिति से अतिरिक्त किसी अन्य का अस्तित्त्व नहीं है। यावद् दृश्य पदार्थ हैं, वे सब असत् हैं। अब मैं शान्ति का अनुभव कर रहा हूँ। मैं मुक्त हूँ, पूर्णस्वरूप हो अवस्थित हूँ। न मैं जाता हूँ, न आता हूँ, न उदित होता हूँ और न अस्त होता हूँ। मैं परम पुरुषार्थ, वाणी से अगम्य निरतिशयानन्दस्वरूप परब्रह्मस्वरुप हूँ"।

बुद्धोऽस्मि भगवन् युक्तियुक्तमुक्तं त्वयोत्तमम्।
कारणाभावतः कर्तृ नेदं ब्रह्मेति वेद्म्यहम्॥
कर्त्रभावाज्जगन्नास्ति तेन नास्ति पदार्थदृक्।
नातश्चित्तादितद्वीजं नातोऽहन्तादि किञ्चन॥
एवं स्थिते विशुद्धोऽस्मि विबुद्धोऽस्मि शिवोऽस्मि वा।
नमो मह्यं परं चेत्यं न किञ्चिदिति बोधितः॥
शाम्यामि निर्वामि परिस्थितोऽस्मि।
न यामि नोदेमि न चास्तमेमि॥
तिष्ठामि तिष्ठस्व यथास्थितात्मा।
शिवं शुभं पावनमौनमस्मि॥

योगवासिष्ठ, निर्वाण-प्र० पू० सर्ग ९५, श्लो० २०-२३, २५

शिखिध्वजावबोधन—

शिखिध्वज परब्रह्म में विश्रान्ति पाकर मुहूर्त्त भर निश्चल रूप से स्थित हो गए। ब्रह्माकार वृत्ति के उदित हो जाने से उनका चित्त अत्यन्त प्रसन्न हो गया।

कुम्भ ने कहा—"राजन्! अब आप अज्ञाननिद्रा से जग गये हैं और निरतिशयानन्दरूप ब्रह्म बनकर स्थित हैं। अतः आपको सांसारिक पदार्थों के विनाश-अविनाश से कोई प्रयोजन नहीं है। अब आप समस्त कल्पना-कलनों से मुक्त हो जीवन्मुक्त हो गये हैं"।

कुम्भ की बात सुनकर राजा शिखिध्वज ने कहा—"मुनिवर! यद्यपि मैंने ज्ञातव्य बातें प्रायः जान ली हैं, तथापि बोध की दृढ़ता के लिए मैं पूछता हूँ कि ब्रह्म शुद्ध, शान्त, शिव एवं निराभास है। वह अविद्या से आवृत होकर द्रष्टा, दृश्य और दर्शनरूप में कैसे प्रतीयमान होता है"?

"कुम्भ ने कहा—"राजन्! आपने उचित प्रश्न पूछा है, अब आपको यही ज्ञातव्य अवशिष्ट रह गया था। यह जो कुछ स्थावर जङ्गम नानाविध आकार प्रकार से भरा हुआ जगत् दिखाई पड़ता है, वह कल्पान्त में विनष्ट हो जाता है। एकमात्र प्रसन्न, गम्भीर सार वस्तु (परब्रह्म) अवशिष्ट रह जाता है, जो न तेजरूप है और न अन्धकाररूप। वह वस्तु चिन्मात्र, अमल, शान्त, परमाकाश है। वह समस्त कलनाओं से युक्त, उत्कृष्ट बुद्धि से समन्वित, अत्यन्त स्वच्छ, परमात्मस्वरूप,

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

ज्ञानरूप तेज है, वह अतर्क्य और इन्द्रियों से अगम्य है। वह सम और शिव है। वह ब्रह्म निर्वाण है, पूर्णरूप से उदित आत्मज्ञान से भरपूर है। वह अणु पदार्थों में अणुतम, स्थूलपदार्थों में स्थूलतम, गुरुपदार्थों में गुरुतम तथा श्रेष्ठ पदार्थों में सर्वश्रेष्ठ है। वह इतना सूक्ष्म है कि उसके सामने यह आकाश मेरु के समान स्थूल प्रतीत होता है। वह इतना स्थूल है कि उसके सामने यह समस्त ब्रह्माण्ड परमाणु के सदृश सूक्ष्म प्रतीत होता है और नहीं भी प्रतीत होता है।

उसमें विश्वात्मा का कचन (जो कि कोटि-कोटि जीवों के अदृष्टजन्य भोग-वासना के कारण होता है) हिरण्यगर्भ का अहंभावरूप ज्ञानाध्यास है और उसमें विषयरूप से स्थित जगत् विराट् का विषयाध्यास है। जैसे वायु और उसके स्पन्द में कोई भेद नहीं है, शून्यरूपता और आकाशरूपता में कोई भेद नहीं है, वैसे चैतन्यरूपता और अहंरूपता में भी कोई भेद नहीं है। जैसे जल में तरङ्ग सहेतुक है और देश और काल से परिच्छिन्न है, वैसे ब्रह्म में जगत् अहेतुक है और देश-काल से अपरिच्छिन्न हैं। ब्रह्म देश-काल से परिच्छिन्न नहीं है और वह किसी का कारण भी नहीं है जैसे सुवर्ण में कटक, केयूर आदि सकारण हैं, देशकालादि से परिच्छिन्न हैं, वैसे चिद्-ब्रह्म में जगत् अकारण है और देशकालादि से अपरिच्छिन्न है।

वह ब्रह्म सारवस्तु है, समस्त जगत् पर उसका साम्राज्य है। वह अविनाशी, अद्वैत, निर्मल और परम शान्त है। समस्त जगत् उसके सामने तृण के समान तुच्छ है। उसकी सत्ता से जगत् की सत्ता है। समस्त ब्रह्माण्ड में वह एक है, चिन्मात्रस्वरूप है, कोई दूसरी कलना संसार में नहीं है। वह सर्वथा पूर्ण और अविनाशी है। वह सर्वस्वरूप है। अदृश्य तथा अलभ्य होने के कारण वह न कार्य है और न कारण। प्रत्यक्षादि प्रमाणों से वेद्य न होने के कारण वह अनुभवमात्रगम्य है। वह किसीका बीज नहीं, किसीका कारण नहीं और उससे जगदादि कुछ उत्पन्न नहीं होता। वह न कर्त्ता है, न कर्म है और न कारण है। वह सत्य, चिद्घन, विकृतिशून्य है, आत्मरूप अन्य प्रमाणों से अगम्य, अविनाशी, आत्मानुभवगम्य है। उस परब्रह्म से जगदादि किसी पदार्थ की उत्पत्ति नहीं होती"।

शिखिध्वज ने कहा—"देवपुत्र! जल में जो तरङ्ग आदि हैं, वे सकारणक हैं, यह तो मैं मानता हूँ परन्तु यह नहीं मानता कि परब्रह्म में अहन्तादि जगत् अकारणक है"।

कुम्भ ने कहा—"राजन्! अब तो आपको बोध हो गया है। यह अहन्तादि जगत् इस ब्रह्म में कुछ अस्तित्व नहीं रखता। जगत् मङ्गलमय परमात्मा ही है। ब्रह्माकाश में सूक्ष्मभूत माया से जगत् का निर्माण हुआ है, वास्तव में कुछ नहीं है। जैसे आकाश में शून्यता है, वैसे ईश्वर में जगत् है। ईश्वर की सत्ता से जगत् की सत्ता है, अन्यथा नहीं। जगत् का विशुद्ध ज्ञान हो जाने पर वह कल्याणप्रद होता है, विपरीत ज्ञान से जगत् महान् दुःख का कारण होता है। जो सर्वोत्कृष्ट परब्रह्म है, वह चैतन्य-

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

स्वरूप है, वही मन्दबुद्धि बनकर देह, देही आदि के रूप में लक्षित-सा होता है। तात्पर्य यह है कि अबोधवश ही विशुद्ध परमात्मा जगद्रूप से भासता है। अतः जो वस्तु विद्यमान नहीं है, केवल कल्पित है, प्रातिभासिक है, उसके विषय में क्या विचार करना" ?

विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि जगत् का कोई कारण नहीं है, अतः जगत् का अस्तित्व नहीं है। अज्ञान के कारण ब्रह्म ही जगत् के रूप में स्फुरित होता है। ब्रह्म का स्वरूप ज्ञात हो जाने पर जगत् की सत्ता रहती ही नहीं है। चिन्मात्र रूप वस्तु में चिन्मात्र ही सृष्टिज्ञान के रूप में प्रथित होता है। यह महान् आश्चर्य है कि वह वास्तव में प्रथित (कचित) न होकर भी कचित (स्फुरित) होता है।

चिन्मात्रममलं शान्तमाभातं परमं नभः।
समस्तकलनोन्मुक्तं युक्तं परमया धिया ॥
यदेकोदितमत्यच्छं शान्तमाततमुज्ज्वलम् ।
परमात्मात्मकं तेजस्तिमितं ज्ञप्तिमात्रकम् ॥
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं समं शिवमनिन्दितम् ।
ब्रह्मनिर्वाणमापूर्णमापूर्णोदितसंविदा ॥
अणीयसामणीयश्च स्थविष्ठं च स्थवीयसाम् ।
गरीयसां गरिष्ठं च श्रेष्ठं च श्रेयसामपि ॥
ईदृशं तत्परं सूक्ष्मं तस्याग्रे यदिदं नमः ।
अणोः पार्श्वे महामेरुरिव स्थूलात्म लक्ष्यते ॥
ईदृशं तत्परं स्थूलं यस्याग्रे यदिदं जगत् ।
परमाणुवदायाति क्वचिदेव न याति च ॥
वातस्य वातस्पन्दस्य यथा भेदो न विद्यते ।
शून्यत्वखत्वोभयोश्चिन्मात्राहन्त्वयोस्तथा ॥
जलेऽस्ति देशकालान्ते यथोर्म्यादि सकारणम् ।
परेऽस्त्यदेशकालान्ते तथा जगदकारणम् ॥
हेम्न्यस्ति देशकालान्ते कटकादि सकारणम् ।
ब्रह्मण्यदेशकालान्ते तथा जगदकारणम् ॥
ईदृशं तत्परं श्रेयस्तस्मिन् सति यदीश्वरे ।
जगत्पदार्थसार्थश्रीः सा सत्तामेति वेदनात् ॥
तस्माद् द्वितीया कलना काचिन्नाम न विद्यते ।
आत्मतत्त्वमलं भातं तदेवापूर्णमक्षयम् ॥
यत्परं चित्स्वरूपेण स्थितमात्मनि मन्थरम् ।
तत्तेन देहदेह्यादिर्जगदादीव लक्ष्यते ॥
अकारणत्वान्नास्तीदं ब्रह्मैवेत्थं विजृम्भते ।
अजृम्भमाणमेवेदं जगत्त्वेनेव संस्थितम् ॥

योगवासिष्ठ, निर्वाण-प्र० पू० सर्ग ९६, श्लो० १२-१७, १९-२१, २३, २५, ४०, ४४

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

शिखिध्वजप्रबोधन—

कुम्भ ने कहा—"देश और काल से परिच्छिन्न सुवर्ण में कटकादि को लेकर जन्य-जनक भाव है; परन्तु शान्त परब्रह्म से न कुछ उत्पन्न होता है और न उसमें लीन होता है। ब्रह्म अपनी सत्ता में अवस्थित है और वह न किसी का बीज है और न कारण। वह शुद्ध अनुभवमात्र है, उससे अतिरिक्त कुछ नहीं है। जगत्, अहन्ता आदि पदार्थ भी अनन्तब्रह्म ही हैं"।

शिखिध्वज ने कहा—"मुनिवर! मैं जानता हूँ कि चित् ब्रह्म में जगत्, अहन्तादि नहीं हैं; परन्तु उसमें सर्गवेदन कैसे भासित होता है, उसे कृपया स्पष्ट करें"।

कुम्भ ने कहा—"असीम जगत् का विस्तार करनेवाला सद्रूप अनादि अनन्त ब्रह्म है। वह सृष्टिज्ञान के सदृश हो अवस्थित है। उसमें अध्यस्त भुवन विशुद्ध अधिष्ठान-सन्मात्रस्वरूप है। इसलिए वह जगत्शरीर कहा जाता है। जैसे जल में सारभूत द्रवत्व है, वैसे जगत् में सारभूत चैतन्य है। कारणाभाव से अचित् नामक कोई वस्तु नहीं है। वह चैतन्य अनन्त है, स्वप्रकाश है और अपने स्थान पर यथास्थित है। यदि उस परमपद में जगत् के प्रति कारणता होती, तो उसे अनिङ्गित, अनायास और अप्रतर्क्य आदि शब्दों से व्यवहृत नहीं किया जाता"।

उक्त से स्पष्ट है कि ब्रह्म न किसी कार्य का निमित्तकारण है और न उपादानकारण है, अतः इस सर्ग का अस्तित्त्व ही नहीं है। चैतन्य के अध्यास के विना इस सृष्टि को कोई उपपत्ति नहीं है, अतः यह फलितार्थ है कि इस जड़ सर्ग का अस्तित्त्व नहीं है। यह जो कुछ नेत्र के सम्मुख दृश्य है, वह चैतन्य घन ही स्फुरित हो रहा है। वही जगद्रूप, अहम्भाव आदि शब्दों और शब्दार्थों से भासित-सा हो रहा है। कारणाभाव से कार्य उत्पन्न नहीं होता है, अतः जगद्रूप कार्य नहीं है। द्वित्व, एकत्व आदि का जगत् में जो मान है, वह आकाशपुष्प के सदृश अलीक और मिथ्या है।

यदि आप यह मानते हैं कि प्रकृति के स्वभाव से उत्पत्ति और विनाश स्वतः होता रहता है, तो श्रुतिप्रमाण एवं विद्वानों के अनुभव से सिद्ध अखण्ड चैतन्यरूप जगत् स्वीकार करने में क्या आपत्ति है? चित् और अचिद्रूप से जो उपलब्धि है, वह चित्त की चमत्कृति अर्थात् कलना है। जगत् में केवल चित् की सत्ता है, अतः चित्त, द्वित्व, एकत्व आदि की कल्पना निराधार है। पदार्थसत्ता के अभाव में भावना की सत्ता नहीं हो सकती। भावनाओं की असत्ता हो जाने पर अहम्भाव का अस्तित्त्व भी नहीं रह जाता। अहम्भाव के न रहने पर चित्त की भी सत्ता नहीं है। चित्त के अभाव में जगत् की सत्ता सिद्ध नहीं हो सकती। अतः आप वासनारहित, शान्त, मौन, विशुद्ध चिदाकाशमय और पर्वत के समान अटल रूप हैं। शुद्ध चिद् दृष्टि से जड़ पदार्थों की सिद्धि नहीं हो सकती, पदार्थों के अभाव में भावना की सिद्धि नहीं हो सकती, भावना के अभाव में तज्जन्य जीव का भी अस्तित्त्व नहीं। परिशेष से विशुद्ध

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

चिदात्मा अवशिष्ट रह जाता है। उस आत्मा के साक्षात्कार एवं अनुभूति हो जाने पर सब प्रकार की चिन्ता दूर हो जाती है।

अतो न कारणं नैव बीजं ब्रह्म कदाचन।
कार्यस्य कस्यचिन्नाम तेन सर्गो न विद्यते।।
न चान्यथोपपत्तिर्हि सर्गस्यास्योपपद्यते।
चिन्मात्रकादृते तस्माज्जडसर्गो न विद्यते।।
यदिदं दृश्यते किञ्चित्तच्चिद्घनमिवोत्थितम्।
अहंभावजगच्छब्दशब्दार्थरसरञ्जनम्।।
कार्यं न कारणाभावात् पदार्थे तूपपद्यते।
द्वित्वैक्याद्यात्मकं व्योमपुष्पवत्स्वानुभूतितः।।
अतः पदार्थसत्ताया अभावे सति भूपते।
असम्भवाद् भावनस्य नाहन्ताभावनास्ति ते।।
अहम्भावासम्भवतश्चित्तमन्यत् किमुच्यते।
इति चित्तमहंरूपं नास्त्यतो न च भिन्नता।।
निर्वासनः शान्तमना मौनी परनभोमयः।
सदेहो वा विदेहो वा भावस्थोऽप्यचलोपमः।।
सम्बन्धाच्छुद्धचिद्दृष्टेः पदार्थाभावसिद्धितः।
भावनाभावतश्चित्ते नास्त्येवाहमिति स्वयम्।।
एवं ब्रह्मेति वेदार्थभावनादनुभूतितः।
चेतितार्थैकसत्यत्वाच्चिन्ता नाम क्व विद्यते।।

योगवासिष्ठ, निर्वाण-प्र० पू० सर्ग ९७, श्लो० ९-१२, १६-२०

शिखिध्वज ने कहा—"मुनिवर ! 'चित्त नहीं है' इस प्रकार का बोध जैसे मुझे स्पष्ट हो जाय, उसे आप युक्ति से स्पष्ट करें। मैंने अभी तक दृढ़तापूर्वक नहीं समझा कि चित्त नहीं है"।

कुम्भ ने कहा—"राजन् ! चित्त नाम की वस्तु किसी काल में, किसी देश में, किसी वस्तु के रूप में कहीं भी नहीं है। जो यह चित्त-सा आभास हो रहा है, वह अव्यय (विकाररहित) ब्रह्म है, अतः अज्ञानात्मक चित्त का अस्तित्त्व ही नहीं है। उसके अभाव में जगत् भी नहीं है। इसलिए मैं तू, वह इत्यादि कलनायें कल्पित हैं। यह दृश्यजगत् कुछ नहीं है, जो कुछ है, वह ब्रह्म है। सृष्टि के आरम्भ में ही यह चित्त आदि जगत् उत्पन्न नहीं हुआ। चित्त का जहाँ-तहाँ निर्देश केवल बोध कराने के लिए है, उपादानकारण का अभाव है। भावों का भी अस्तित्त्व नहीं है, इसलिए ब्रह्म कारण नहीं है और जगद्रूप कार्य भी नहीं है। जगत् अज्ञानजन्य है, भ्रान्तिरूप है, अतः उसकी सत्ता नहीं। जो कुछ दिखाई पड़ता है, वह भासनात्मक ब्रह्म है, दूसरा नहीं। जो ब्रह्म नाम और रूपरहित है, उसको असत् जगत् का कर्ता

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

कहना न युक्तिसंगत है, न सत्य है और न अनुभव का विषय है। नाम-रूपरहित आत्मा के विषय में जो जगत् का कर्तृत्व है, वह नितान्त हास्यास्पद है, न जगत् का अस्तित्व है और न चित्त का। जब जगत् ही नहीं है, तब चित्त का क्या प्रश्न ? चित्त वासनामात्र है। जगत् वास्य है, वास्य (जगत्) के अभाव में चित्त का कैसा अस्तित्व। यह आत्मस्वरूप ब्रह्म अपने ही स्वरूप से अपने हो में स्फुरित होता है, उसी के चित्त आदि नाम हैं और उसीने नाम निर्दिष्ट किया है।

वासनामय जगत् कारण के अभाव से उत्पन्न ही नहीं हुआ, वही वास्य है। उसके अभाव में वासनारूप मन कहाँ से आयेगा ? चिदाकाशरूप विशुद्ध परमाकाश ही स्वयं स्फुरित हो रहा है, अतः जगत् की सत्ता ही नहीं है। परमाकाशरूप चिति में जो अनिवर्चनीय स्फुरित हो रहा है, वह चिति के कारण है। अतः न चित्त है और न जगत्क्रिया। समस्त अनर्थों को उत्पन्न करने वाली अहम्, त्वम्, जगत् इत्यादि जो प्रतीति होती है, वह वास्तविक नहीं है; अपितु स्वप्न-सदृश मिथ्या है। जिन्हें तत्त्व-ज्ञान नहीं है, वे चित्त और इस दृश्यजगत् को सत्य समझते हैं। वस्तुतः चित्त असत् है, आकाररहित है और वह कभी उत्पन्न ही नहीं हुआ।

सृष्टि के आदि में चित्त उत्पन्न नहीं हुआ; क्योंकि उसको उत्पन्न करने वाला कोई कारण नहीं था। लोक, शास्त्र एवं अनुभव से दृश्यवस्तु में अनादिता, अजता और स्थिरता हो नहीं सकती। साकार, स्थूल, मूर्तिमान् इस जगत् के महाप्रलय आदि जो विकार हैं, उनका निराकरण नहीं किया जा सकता। शास्त्र, अनुभव और वेदार्थसिद्धान्तों से प्राकृत आदि तीन प्रलय हैं, उनको नहीं कहने वाले उन्मत्त ही हो सकते हैं। लोक, शास्त्र और वेद का प्रामाण्य न मानने वाला अतिमूढ़ है; उसका विश्वास नहीं करना चाहिए।

साकार जगत् का निराकार ब्रह्म कदापि कारण नहीं हो सकता। इस प्रकार ब्रह्म ही जगत्स्वरूप है। हाँ, व्यावहारिक दृष्टि से जगत् में अर्थक्रियाकारिता है। अंशशून्य, चिदाकाश, प्रतिघातरहित, निराकार, अनन्त, पूर्णस्वभाव, ब्रह्म का जो स्वतः अपना कचन है, वह जगत् के रूप में तब तक रहता है, जब तक अज्ञान है, ज्ञान हो जाने पर तो वह तत्क्षण ब्रह्मरूप होकर अद्वैतभाव में स्थित हो जाता है।

अनाख्योऽप्रतिघः स्वात्मा निराकारो य ईश्वरः।
स करोति जगदिति हासायैव वचोऽधियाम्॥
अनेनैव प्रयोगेण राजश्चित्तं न विद्यते।
जगदेव न सत्साधो कुतश्चित्तादि तद्गतम्॥
चेतो हि वासनामात्रं वास्ये तु सति वासना।
वास्यं जगत्तदेवासदतश्चित्तास्तिता कुतः॥
यदिदं कचति ब्रह्म स्वयमात्मात्मनात्मनि।
कृतं तस्यैव वेनैव चित्तमित्यादि नामकम्॥

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

वास्यस्य जगतोऽभावाद्यतो नास्त्येव वासना ।
अतस्तदात्मकं चित्तं कीदृशं क्व कुतः कथम् ॥
अप्रबुद्धैरवगतं चित्तं दृश्यमिदं जगत् ।
असच्चित्तं निराकारं पूर्वमुत्पन्नमेव नो ॥
नोत्पन्नं कारणाभावात्सर्गादावेव सर्वदा ।
लोकशास्त्रानुभवतो न च दृश्यस्यं वस्तुनः ॥
तस्मादिदं निरंशस्य चिद्व्योम्नोऽप्रतिघाकृतेः ।
निराकृतेरनन्तस्य पूर्वात्पूर्वनिरंशतः ॥
ब्रह्मणः सर्वरूपस्य शान्तस्यात्तस्य यत्समम् ।
स्वत एवात्मकचनं सर्गप्रलयरूपधृक् ॥
स्वकं वपुश्च तेनैव ज्ञातं जगदिव क्षणात् ।
क्षणान्तरानुबुद्धं सद् ब्रह्मैवास्ते निरात्मनि ॥

योगवासिष्ठ, निर्वाण-प्र० पू० सर्ग ९८, श्लो० ९-१२, १७-१९, २६-२८

शिखिध्वज ने कहा—"देवपुत्र ! आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया और सन्देह निवृत्त हो गया । अब मैं स्वस्थ हूँ, विश्रान्त हूँ । मैंने ज्ञेय को जान लिया है । मैं महामौन हूँ और मायारूपी समुद्र को पार कर गया हूँ । मैं शान्त हूँ, निरहङ्कार हूँ और आत्मज्ञानी बनकर सब प्रकार के विकारों से रहित हूँ । मैं चिरकाल तक भवसागर में भ्रमण करता रहा, अब मैंने अक्षय स्थान प्राप्त कर लिया है । मेरी दृष्टि में अहन्तासहित जगत् नहीं है और जो कुछ भासित हो रहा है, वह ब्रह्म है" ।

कुम्भ ने कहा—"राजन् ! ठीक है । जिस चिदाकाश में यह जगत् ही नहीं है, वहाँ मैं, मेरा, तू, तेरा इत्यादि व्यवहार सर्वथा अनर्गल है । आप यथाप्राप्त व्यवहार करते हुए शान्त, मौन एवं प्रशान्त महासागर के सदृश अवस्थित रहें । यह समस्त जगत् ब्रह्मरूप है । 'मैं, मेरा' और जगत् विषयक व्यवहार मिथ्या है । चिदाकाश ही इस जगत् के रूप में स्फुरित हो रहा है । जैसे सुवर्ण की विविध रचनाओं के शान्त हो जाने पर सुवर्ण मात्र अवशिष्ट रह जाता है, वैसे जगत् आदि अर्थों के शान्त हो जाने पर ब्रह्म अवशिष्ट रह जाता है । 'देहादि मैं हूँ' इस प्रकार का सङ्कल्प बन्ध के लिए है, 'देहादि मैं नहीं हूँ' इस प्रकार का सङ्कल्प मोक्ष के लिए होता है । बन्ध, मोक्ष, सङ्कल्पादि शब्दार्थों का जो स्वरूप ज्ञान है, वही सद्ब्रह्म तथा कैवल्य है । अहङ्कार-ज्ञान बन्ध है और अहङ्कार-ज्ञान का अभाव मोक्ष है । अतः "मैं अहंपदार्थ नहीं हूँ, ब्रह्म हूँ" इस प्रकार के शुद्ध कैवल्यात्मक बोध की अनुभूति करनी चाहिए । सङ्कल्प के त्याग से तत्त्वज्ञान होता है । फलतः असत् सङ्कल्प अपने आप क्षीण हो जाता है और कैवल्यपद प्राप्त हो जाता है ।

अप्रतर्क्य शिवरूप में कारणता नहीं है । कारण के अभाव से कार्य भी नहीं है । कार्य पदार्थ के अभाव में उसका सङ्कल्पन भी नहीं है । सङ्कल्प के अभाव में अहं-

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

भाव की सिद्धि नहीं हो सकती। अहंभाव के न रहने पर कैसा संसार ? फलतः परब्रह्म अवशिष्ट रह जाता है। अज्ञान से जो यह जगद्रूप भासित हो रहा है, वह ज्ञान से सच्चिद् ब्रह्मरूप से अवस्थित है। सङ्कल्प के नष्ट हो जाने पर सङ्कल्पनगर स्वतः विनष्ट हो जाता है। वैसे ही जगत् ज्ञान के नष्ट हो जाने पर विशुद्ध चैतन्याकाश उदित हो जाता है। सम्यक् ज्ञान का उदय जब होता है, तब बाह्यजगत् का रूप और आन्तरिक-मानसिक कल्पनायें निःसार हो जाती हैं; क्योंकि वे मिथ्याभूत हैं। ऐसे ज्ञान को विद्वान् लोग निर्वाण (मोक्ष) कहते हैं। जैसे स्पन्दशून्य वायु है, आकार विशेष से शून्य आकाशगत प्रकाश है, कटक आदि रचना-विशेष से रहित सुवर्ण है, वैसे जगत् भी रचना-विशेष से शून्य ब्रह्म है। जगत् का बाह्य-दर्शन तथा आन्तरिक मानस-दर्शन बोध से नीरस एवं असद्रूप प्रतीत होते हैं; क्योंकि चैतन्य की स्फूर्ति से वे विशुद्ध चिदाकाश रूप में ज्ञानियों को दिखाई पड़ते हैं। जैसे समुद्र में तरङ्ग वस्तुतः जल रूप ही है, वैसे ज्ञानोदय होने पर यह दृश्य सृष्टि ब्रह्म रूप ही दृष्टिगोचर होती है। "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" इस श्रुति के अनुसार समस्त सृष्टि ब्रह्म है और ब्रह्म ही समस्त सृष्टि है। सर्ग और ब्रह्म में कोई भेद नहीं रह जाता।

असङ्कल्पनमात्रेण सम्यग्ज्ञानोदयात्मना।
सङ्कल्पः क्षीयते सिद्ध्यै स्वयमेवासदात्मकः॥
अप्रतर्क्यस्वरूपे हि नास्ति कारणता शिवे।
कारणाभावतः कार्यपदार्थोऽपि न विद्यते॥
पदार्थाभावसंसिद्धौ वेदनं नोपपद्यते।
कारणाभावतो नित्यमहम्भावस्य नोदयः॥
अहम्भावानुदयतः संसारः कस्य कीदृशः।
संसाराभावतः सर्वं परमेवावशिष्यते॥
रूपालोकमनस्कारा: नीरसागमभावना।
सम्यग्ज्ञानावबोधस्य निर्वाणं वै विदुर्बुधाः॥
यथास्ति वातो निःस्पन्दो यथास्ति खगतोऽपि वाः।
यथा हेमासन्निवेशमस्ति ब्रह्म जगत्तथा॥
नीरसा असदाभासा जगत्प्रत्ययकारिणः।
रूपालोकमनस्कारा: सन्तीमे ब्रह्मरूपिणः॥
सर्ग एव परं ब्रह्म परं ब्रह्मैव सर्गदृक्।
सर्गशब्दार्थरहितो वाक्यार्थस्त्वेष शाश्वतः॥

योगवासिष्ठ, निर्वाण-प्र० पू० सर्ग ९९, श्लो० १४-१७, २२-२४, २६

शिखिध्वज-परभावबोधन—

शिखिध्वज ने कहा—"हे महाबुद्धे ! यदि कारण परमब्रह्म सत्य है, तो उसका कार्य जगत् भी सत्य है, ऐसा मान लिया जाय"।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

कुम्भ ने कहा—"राजन्! जिसमें कारणता है, उसका कार्य हो सकता है; परन्तु जो चिद् ब्रह्म है, वह कभी भी कारण नहीं है, फिर उससे कार्य कैसे होगा? इस ब्रह्म में न कोई कारण है और न कोई कार्य। यह विद्यमान जगत् शान्त और अज है। जो कार्य कारण से उत्पन्न होता है, उसमें कारण के धर्म-गुण आदि आ सकते हैं; परन्तु जो उत्पन्न ही नहीं हुआ, उसमें कैसा सादृश्य? जिसका कोई बीज नहीं है, वह कैसे उत्पन्न होगा? जो ब्रह्म अप्रतर्क्य और अगम्य है, उसमें बीजता कहाँ से आयेगी? देश और काल के वश सभी पदार्थ कारण से युक्त और प्रमाणगम्य होते हैं; परन्तु जो ब्रह्म देश और काल से अपरिच्छिन्न है तथा स्वतः प्रमाण है, उसमें कारणता और प्रमाणगम्यता कैसे आ सकती है? यतः ब्रह्म कर्त्ता, कर्म और करण से शून्य है, अतः उसमें जगच्छब्दार्थज्ञान की कारणता कैसे आ सकती है? राजन्! आप अपने को शुद्ध, निर्मल, आकाशसदृश निर्विशेष ब्रह्म ही समझें, जैसा कि तत्त्वज्ञानी जन हृदय में धारण करते हैं। जो बुद्ध और ज्ञानवान् नहीं हैं, उनकी दृष्टि में जगत् की सत्ता अवस्थित है। चिन्मात्र, अजर और शान्त ब्रह्म प्रमा का विषय है। उसीसे यह जगत् सत्, शान्त और ब्रह्मरूप जाना जाता है। अज्ञानियों के मन की भ्रान्ति से यह जगत् अपने रूप से अवस्थित है। चित् का जो अन्यथाभाव है, वही ब्रह्मस्वरूप की हानि और जगत् की सत्ता है।

विश्व शब्द का अर्थ है—"विशति परमात्मन्येकीभवति न वस्त्वन्तरतयाऽवतिष्ठत इति विश्वम्"—अर्थात् जो परमात्मा में परमात्मरूप से एक हो जाता है, अन्य पृथक् रूप से नहीं रहता है वह विश्व है। ऐसी स्थिति में विश्व की अधिष्ठान से पृथक् सत्ता कैसे मानी जा सकती है। जो दोनों हाथ उठाकर अपने को शूद्र कहता है, वह विप्र कैसे हो सकता है? सन्निपात से कुपित धातु वाला जो मनुष्य अपने को 'मर गया, मर गया' ऐसा मृत घोषित करता है, उसे मृत ही समझना चाहिए। भ्रमाकृति जगत् जो अलातचक्र के समान दृश्य है, वह मृगतृष्णाजल, दो चन्द्र तथा बालकल्पित यक्ष के समान मिथ्या है। जो भ्रमपुञ्ज-स्वरूप है वह सत्य कैसे कहा जा सकता है? अज्ञान से उत्पन्न जो भ्रान्ति है, वही अन्तःकरण, चित्त आदि शब्दों से कही जाती है। सत् के सदृश अवस्थित असत् अज्ञान ही चित् कहा जाता है। अज्ञान असंवेदन रूप है और ज्ञान संवेदन रूप है। संवेदन रूप ज्ञान से अज्ञान में जो सत्त्व-बुद्धि की भ्रान्ति है, वह विनष्ट हो जाती है। मरुमरीचिका में जल का ज्ञान सर्वथा भ्रान्ति है। जैसे मृगतृष्णा में जल का ज्ञान 'यह जल नहीं है' इस ज्ञान से नष्ट हो जाता है, वैसे देहादि में 'यह चित् है' इस प्रकार का जो हृदयस्थ अज्ञानात्मक भान है, वह "यह चित् नहीं है" इस ज्ञान से समूल नष्ट हो जाता है।

जैसे रज्जु में सर्पत्व बुद्धि 'यह सर्प नहीं है' इस ज्ञान से नष्ट हो जाती है, वैसे ही आत्मा में अज्ञान से उत्पन्न हुआ मनोरूप चित् 'यह चित् नहीं है' इस प्रकार के ज्ञान से विनष्ट हो जाता है। चित्, मन, अहंकार आदि हृदय में अज्ञान से उत्पन्न हुए हैं। वस्तुतः चित्, अहङ्कार आदि कुछ भी नहीं है। इस जगत् में एकान्त निर्मल

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

एक चितिरूपी संवित् है। उस संवित् के द्वारा सङ्कल्प, चित् आदि की रचना की गई थी। आज प्रबुद्ध संवित् ने सङ्कल्प के विनाश द्वारा उन सबका परित्याग कर दिया है। संकल्प से जो वस्तु आती है, वह असंकल्प से चली जाती है। पवन से जो अग्नि की ज्वाला धधकती है, वह पवन के अभाव में नष्ट हो जाती है। आत्मतत्त्व से अत्यन्त घनीभूत ब्रह्मसत्ता से यह जगत् व्याप्त है, जैसे जल से समुद्र।

न मैं हूँ, न अन्य है, न तुम हो, न वे इन्द्रियाँ हैं, न आकाश है, केवल एक निर्मल आत्मा है। जीवन्मुक्त महानुभाव घटादि को आत्मा के रूप से देखते हैं। 'यह चित् है, यह मैं हूँ' इत्यादि कुकल्पना उन्हें नहीं होती। इस त्रैलोक्य में न कोई मरता है, न जन्म लेता है, सत् और असत् भावना रूप यह केवल चिति का उल्लास है। यह सर्वात्मक, व्यापक, ब्रह्म ही प्रकट हुआ है, तब द्वित्व और एकत्व की कल्पना कैसी? मृत्यु का भय कैसा? आप इन्द्रियों और उनसे ग्राह्य विषयों में सन्मात्रस्वरूप से व्याप्त हैं, आप किसी भी प्रकार न दग्ध हो सकते हैं और न कहीं लिप्त हो सकते हैं। आप ही इच्छा, अनिच्छा रूप शक्तियाँ हैं तथा आप ही क्रियाशक्ति भी हैं। अज, अमर, अनादि, निर्मल, सदा एकरूप, प्रकाशस्वरूप, कलनारहित, कला से युक्त, सन्मात्र रूप से उदित आद्य तत्त्व आत्मतत्त्व हैं।

जायते कारणात्कार्यं यत्तत्कारणवद्भवेत्।
यन्न जायत एवेह तस्मिन् सदृशता कुतः॥
बीजमेव न यस्यास्ति तत्कथं वद जायते।
अप्रतर्क्यमनाख्यं च यत्तस्य क्वेव बीजता॥
ब्रह्मैव त्वं स्वरूपं सद्यत् स्थितं धारयस्व तत्।
असम्यग्दर्शिविषयं तदेव जगदाचितम्॥
नाम्नैवाङ्गीकृताभावं यदि विश्वं हि कथ्यते।
विद्यमानं कथं तत्स्यान्ननु तामरसेक्षण॥
भ्रमाकृति यदस्तीह दृश्यतेऽलातचक्रवत्।
मृगतृष्णाद्विचन्द्रादिबालवेतालकादिवत्॥
तत्कथं किल नाम स्यात्सत्यं भ्रमभरात्मकम्।
अज्ञानभ्रान्तिरेवान्तश्चित्तमित्येव कथ्यते॥
नैतज्जलमिति ज्ञानात्संवित्तेः प्रविलीयते।
इदं चित्तमिति प्रौढं यदज्ञानमलं हृदि॥
यथा रज्ज्वां भुजङ्गत्वमज्ञानभ्रमसम्भवम्।
न सर्पोऽयमिति ज्ञानाद्धृदि रूढात्प्रणश्यति॥
तथात्मनि मनोभूतमज्ञानभ्रमसम्भवम्।
चित्तं नास्तीति विज्ञानाद्धृदि रूढाद्विनश्यति॥
आत्मतत्त्वैकघनया ततया ब्रह्मसत्तया।
जगत्सर्वमिति व्याप्तं समुद्र इव वारिणा॥

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

नाहमस्मि न चान्योऽस्ति न त्वं नैते न चित्तकम्।
नेन्द्रियाणि न चाकाशमात्मा त्वेकोऽस्ति निर्मलः॥
न जायते न म्रियते किञ्चिदस्मिन् जगत्त्रये।
केवलोऽयं चिदुल्लासः सदसद्भावनात्मना॥

योगवासिष्ठ, निर्वाण-प्र० पू० सर्ग १००, श्लो० ४-५, ८, १३, १६-१७, २०-२२, २७-२८, ३०

शिखिध्वज-बोधन—

देवपुत्र कुम्भ के वचनों पर विचार कर रहे राजा शिखिध्वज क्षण भर के लिए आत्मपद में लीन हो गए। वह नेत्र और मन के व्यापारों को बन्द कर मौन हो शिलातल में खुदी प्रतिमा के समान स्पन्दरहित (निश्चेष्ट) हो गये। मुहूर्त्तमात्र में प्रबुद्ध तथा विकसित नेत्र राजा से कुम्भ बोले—"राजन्! स्फार, शुद्ध, निर्मल इस निरतिशयानन्द रूप पद में क्या आप विश्रान्त हो चुके? क्या आप अन्तःकरण से प्रबुद्ध हो चुके? क्या आपकी भ्रान्ति दूर हो गई? क्या आपने ज्ञातव्य को जान लिया? क्या आपने द्रष्टव्य वस्तु को देख लिया"?

शिखिध्वज ने कहा—"देवपुत्र! आपके प्रसाद से मैंने वह महती आत्मपदवी देख ली, जो महाविभव की भूमिका है और सर्वोच्च पद पर अवस्थित है। ज्ञेय पदार्थों को जानने वाले महापुरुषों की सङ्गति निरतिशयानन्द रूप उच्च फल को प्रदान करने वाली है। जिस महान् अमृत की प्राप्ति मुझे जन्म भर में नहीं हुई थी, आज आपके समागम से वह मुझे प्राप्त हो गई। उस अनन्त अमृतानन्दरूप आत्मपद को मैंने पहले क्यों नहीं प्राप्त किया"?

कुम्भ ने कहा—"राजन्! भोग की इच्छाओं का त्याग और मन की शान्ति तथा इन्द्रियों एवं मन की वासनाओं के परिपक्क हो जाने पर उपदेश की विमल उक्तियाँ चित्त में प्रविष्ट हो जाती हैं, जैसे शुक्लवस्त्र के ऊपर कुङ्कुमजल की बिन्दु। विभिन्न जन्मों की अनन्त वासनाओं का परिपाक आज ही सम्पन्न हुआ है। जैसे काल से पककर फल वृक्षों से गिरते हैं, वैसे शरीर के मल काल से परिपक्क होकर गिर जाते हैं। शरीर से वासनात्मक मलों के गिर जाने पर गुरु का उपदेश अन्तःकरण में प्रविष्ट हो जाता है। आपकी वासनाओं का परिपाक आज ही हुआ है। अतः आज मेरे उपदेश से आपके अज्ञान का विनाश हुआ है। सत्सङ्गति के कारण आज आपके शुभ और अशुभ कर्मों का क्षय हो गया है। आज पूर्वाह्ण में आपके चित्त में 'अहं', 'मम' इत्यादि रूप अज्ञान भरा हुआ था। इस समय मेरे वचनरूपी अमृत के ज्ञान से आपका चित्त क्षीण हो गया है और आप प्रबुद्ध हो गये हैं। हृदय में जब तक मन की सत्ता है, तब तक अज्ञान की संस्थिति है। चित्त का परित्याग हो जाने पर ज्ञान का अभ्युदय होता है। द्वित्व और एकत्व की दृष्टि ही चित्त है और वही अज्ञान है। इन दोनों का लय ज्ञान है। आप प्रबुद्ध हैं, विमुक्त हैं; क्योंकि आपने सत् और असत् रूप चित्त का

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

परित्याग कर दिया है। अब आप शोकरहित, आयासरहित, निःसङ्ग, आत्मज्ञान सम्पन्न, महोदय, मौनी, मुनि बनकर निर्मलपद में अवस्थित हों"।

शिखिध्वज ने कहा—"देवपुत्र ! मूर्ख जीवों के लिए चित्त की भूमि है, जो प्रवुद्ध हैं, उनके लिए नहीं। आप लोग जो जीवन्मुक्त हैं, किस प्रकार इस संसार में विहार करते हैं ? आप कृपया अपने वचनों से मेरे हृदय के अन्धकार को दूर कीजिए"।

कुम्भ ने कहा—"राजन् ! आपने ठीक ही कहा है। जैसे पत्थर में अङ्कुर नहीं होते, वैसे जीवन्मुक्तों के चित्त नहीं होते। चित्त शब्द से उस घनवासना का ग्रहण होता है, जो पुनर्जन्म का कारण होती है। जिस वासना से जीवन्मुक्त लोक में विचरते हैं, उसका नाम सत्त्व है और उससे पुनर्जन्म नहीं होता। जीवन्मुक्त महात्मा इन्द्रियों को संयत कर सत्त्व में स्थित हो, आसक्तियों का त्याग कर विहार करते हैं, चित्त में स्थित होकर नहीं। मूढ़ चित्त को चित्त कहते हैं और प्रबुद्ध चित्त को सत्त्व कहते हैं। अज्ञानीजन चित्त में स्थित रहते हैं और बुद्धिमान् जन सत्त्व में स्थित रहते हैं। चित्त पुनः उत्पन्न होता है; परन्तु सत्त्व नहीं होता। अप्रबुद्ध पुरुष का बन्ध होता है, प्रबुद्ध का नहीं। महात्यागी बनकर आप सत्त्ववान् हो गये हैं। आपने चित्त का सर्वथा त्याग कर दिया है, ऐसा मैं जानता हूँ। आप समस्त वासनाओं से मुक्त होकर शोभित हो रहे हैं। मैं देख रहा हूँ कि आपका मन आकाश के समान निर्मल हो गया है। आप शम को प्राप्त हो गये हैं। सिद्ध होकर आप समता के धरातल पर प्रतिष्ठित हैं। आपका यह महात्याग है, जो आपने चित्त का सर्वथा परित्याग कर दिया है।

चित्त के परित्याग में तप, दान आदि क्रियायें अन्तर्भूत हैं और स्वर्ग, अपवर्ग आदि फल भी अन्तर्भूत हैं। तप से दुःखों की निवृत्ति नियत काल के लिए ही होती हैं; परन्तु चित्त के परित्याग से समता प्राप्त होती है, जिसका फल मोक्ष है। उससे जो सुख प्राप्त होता है, वह अक्षय है। उससे दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति होती है। त्याग-जन्य ज्ञान का फल सत्य और शाश्वत है, जबकि तप आदि क्रियाओं का फल नश्वर है, उत्पत्ति और विनाश से आक्रान्त है। स्वर्ग का सुख वाञ्छनीय नहीं है। वह उन लोगों के लिए है जो तत्त्वज्ञ नहीं हैं और फल प्राप्ति के लिए तप, दान आदि क्रियाओं में प्रवृत्त हैं। आपको तो चूडाला के सहवास से उत्तम ज्ञान प्राप्त हो सकता था, फिर आपने वनवासजन्य क्लेश और कृच्छ्र चान्द्रायण आदि व्रतों का क्लेश क्यों उठाया ?

तत्त्वज्ञान से निरतिशय भूमानन्द की प्राप्ति होती है। चिदाकाश से सभी पदार्थ उत्पन्न से दिखाई पड़ते हैं और उसीमें विलीन हो जाते हैं। विधि-निषेधरूप जो सङ्कल्प हैं, वे ब्रह्मबिन्दु के समान हैं और तत्त्वज्ञान की उपलब्धि महासागर के समान पूर्ण है। सङ्कल्प से रचित इन अरमणीय पदार्थों को ज्ञानी महात्मा लोग ग्रहण नहीं करते। वे उन्हें तुच्छ समझते हैं। समस्त अभिलाषाओं को त्यागकर आप अपने चित्त को परिस्पन्दनशून्य बनाकर अवस्थित रहें। जिनका चित्त परिस्पन्द से शून्य है, उन्हें

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

संसार के बन्धन अभिभूत नहीं कर सकते। संसार में जो दुःख स्फुरित होते हैं, वे सब चित्त की चञ्चलता से ही होते हैं। जिसका चित्त स्थिर, शान्त एवं स्पन्दनरहित है, वह मनुष्य निरतिशयानन्द प्राप्त करता है और साम्राज्य का अधिकारी होता है। राजन्! आप चित्त के स्पन्द और अस्पन्द को सम बनाकर पूर्णकाम हो अवस्थित हों और भूमानन्द सुख का अनुभव करें"।

शिखिध्वज ने कहा—"देवपुत्र! आप कृपया यह बतलायें कि स्पन्द और अस्पन्द दोनों में ऐक्य कैसे होगा" ?

कुम्भ ने कहा—"राजन्! जैसे सागर जलरूप से एक है, वैसे यह सम्पूर्ण जगत् चिदधिष्ठानरूप से एक है। जैसे शुद्ध जल तरङ्गों से स्पन्दित होता है वैसे यह अधिष्ठान चिन्मात्र बुद्धिवृत्तियों से स्पन्दित होता है। श्रुतियों ने ब्रह्म को चिन्मात्र, अमल, सत्त्वरूप, सत्य, ज्ञान, अनन्त कहा है, उसी ब्रह्म को मूढ़ लोग जगद्रूप से देखते हैं। चिति का स्पन्द ही संसार है। वह तत्त्वज्ञ महात्माओं की दृष्टि में विलीन हो जाता है और अज्ञानियों की दृष्टि में जगद्रूप से उदित हो जाता है, जैसे रज्जु में सर्प। स्पन्दयुक्त चिति सर्ग नाम से कही जाती है और स्पन्दरहित चिति तुर्यातीत पद में प्रतिष्ठित है, जो वाणी का विषय नहीं है। शास्त्रों के निरन्तर अभ्यास से तथा सज्जन पुरुषों के सम्पर्क से चित्त के निर्मल हो जाने पर चिति उदित हो जाती है। जिन महापुरुषों को अपने स्वरूप का तात्त्विक ज्ञान है और अनुभूति है, उनकी अनुभूतियों के आधार पर आत्मतत्त्व का वर्णन किया गया है। आप अपने उस विशुद्ध चिदानन्द-स्वरूप में प्रतिष्ठित हों"।

पुनर्जननयोग्या या वासना घनवासना।
सा प्रोक्ता चित्तशब्देन न सा तज्ज्ञस्य विद्यते॥
यया वासनया तज्ज्ञा विहरन्तीह कर्मसु।
तां त्वं सत्त्वाभिधां विद्धि पुनर्जननवर्जिताम्॥
जीवन्मुक्ता महात्मानः सत्त्वस्थाः संयतेन्द्रियाः।
विहरन्ति गतासङ्गं न चित्तस्थाः कदाचन॥
मूढं चित्तं चित्तमाहुः प्रबुद्धं सत्त्वमुच्यते।
अप्रबुद्धा हि चित्तस्थाः सत्त्वस्थास्तु महाधियः॥
भूयः प्रजायते चित्तं सत्त्वं भूयो न जायते।
अप्रबुद्धस्य बन्धोऽस्ति न प्रबुद्धस्य भूपते॥
सत्त्ववानसि संजातो महात्यागी स्थितो भवान्।
अशेषेण त्वया चित्तं त्यक्तमद्येति वेद्म्यहम्॥
समस्तवासनोन्मुक्तो राजन्नद्यैव राजसे।
आकाशसाम्यमायातं मन्ये तव मुने मनः॥
यानि यानीह दुःखानि प्रस्फुरन्ति जगत्त्रये।
चेतश्चापलजान्येव तानि तानि महीपते॥

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

स्थिरं शान्तं गतस्पन्दं यस्य चित्तमचापलम् ।
सदैव स महानन्दी साम्राज्यस्य स भाजनम् ॥
ब्रह्म चिन्मात्रममलं सत्त्वमित्यादिनामकम् ।
यद्गीतं तदिदं मूढाः पश्यन्त्यङ्गजगत्तया ॥
सर्गश्चित्स्पन्दमात्रात्मा सम्यग्दृष्टौ विलीयते ।
उदेत्यसम्यग्दृष्टीणां रज्ज्वां सर्पभ्रमो यथा ॥
सस्पन्दा चित्तदभिधा निःस्पन्दा त्वियमातता ।
तुर्यातीतपदारुढा वाचा वक्तुं न पार्यते ॥
शास्त्रसज्जनसम्पर्कसन्तताभ्यासयोगतः ।
कालेनामलतां याते चेतसीन्दाविवोदिता ॥
एतत्केवलमायातं स्वानुभूतिभिराततम् ।
कथ्यते स्वानुभूतेषु स्वयं स्वं रूपमात्मना ॥

योगवासिष्ठ, निर्वाण-प्र० पू० सर्ग १०१, श्लो० २८-३४, ५०-५१, ५५, ५८-६१

शिखिध्वज की समाधि—

कुम्भ ने कहा—"राजन् ! यह विश्व जैसे उत्पन्न होता है और जैसे विलीन होता है, यह सब मैंने आपसे कहा । इसको सुनकर, जानकर और मननकर जैसा आप उचित समझें परमपद में समाधिस्थ हों अथवा व्यवहार में प्रवृत्त हों । मैं इस समय स्वर्ग में जा रहा हूँ, जहाँ मेरे पिता जी ब्रह्मलोक से आये होंगे । मुझे न देखकर कदाचित् वे क्रुद्ध हो जायँ । भव्य पुरुषों को कभी भी गुरुओं को उद्विग्न नहीं करना चाहिए । संकल्प की लेखा को छोड़कर तथा अभिलाषा का त्याग कर आपको आत्मदृष्टि में अवस्थित रहना चाहिए; क्योंकि यह परमपवित्र स्थिति है" ।

ऐसा कहकर कुम्भ आकाश में उड़ गए । कुम्भ ऋषि के चले जाने पर राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ । उसको सोचते हुए वह चित्रलिखित के समान स्थित हो गए । उन्होंने विचार किया कि यह विधि का विधान ही है, जो मुझे कुम्भ ऋषि के द्वारा ब्रह्मरूप परमपद का बोध कराया गया । कहाँ कुम्भ ऋषि और कहाँ मैं ? यह विधि का विधान ही है, जो दोनों का समागम हुआ । देवपुत्र ने ठीक ही कहा है । मैं मोहनिद्रा में पड़ा था और चिरकाल के अनन्तर अब प्रबुद्ध हुआ हूँ । मैं विधिनिषेधरूप क्रियाजाल में फंसा हुआ था, अब मैं अत्यन्त विशुद्ध और शीतल पदवी को प्राप्त हूँ । वह वासनारहित मेरे चित्त को यथेच्छ शीतल कर रही है । मैं पूर्ण रूप से शान्ति का अनुभव कर रहा हूँ, निर्वाण को प्राप्त हूँ, सुखों से परिपूर्ण हूँ । मैं स्वरूपस्थ हूँ और मुझे तृण के अग्रभाग की भी आवश्यकता नहीं है । ऐसा विचार कर राजा शिखिध्वज वासनाओं का त्याग कर प्रस्तर में उत्कीर्ण (खुदी) प्रतिमा के समान निश्चेष्ट हो समाधिस्थ हो गया । राजा समाधिस्थ हो पर्वत-शिखर के समान अवस्थित हो गया ।

कुम्भ (चूडाला) का पुनरागमन—

कुम्भरूपधारिणी चूडाला आकाश में उड़कर अपने स्वरूप में हो गई और शीघ्र

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

ही अन्तःपुर में प्रविष्ट हुई। उसने राज-कार्य सम्पन्न किया। तीन दिन के बाद योग से पुनः कुम्भ बनकर वह राजा के आश्रम में आई। वहाँ उसने राजा को समाधिस्थ देखा। उसने कहा कि बड़े भाग्य की बात है कि राजा शान्त, सम और स्वस्थ रूप से आत्मविश्रान्ति लाभ कर रहे हैं। मैं उनको उद्‌बोधित करूँ, कदाचित् वह प्राणत्याग न कर दें। कुछ समय तक और वह राज्य में अथवा विपिन में वास करें। पश्चात् हम दोनों साथ ही कैवल्य प्राप्त करेंगे।

उसने राजा को जगाने के लिए भयङ्कर सिंहनाद किया। बार बार सिंहनाद करने पर भी राजा सचेष्ट नहीं हुआ। तब कुम्भ ने उसका शरीर पकड़कर इधर-उधर हिलाया। राजा तब भी न जगा। कुम्भ ने सोचा कि अब कैसे जगाऊँ? अथवा इस महात्मा को जगाने की क्या आवश्यकता है? मैं भी इनके साथ ही अपुनर्जन्म के लिए चल दूँ। शरीर-त्याग को समुद्यत चूडाला ने विचार किया कि मैं योगबल से देख लूँ कि इनके प्राण शरीर में हैं अथवा नहीं? उसने शरीर का स्पर्श किया और विचार के अनन्तर निश्चय किया कि राजा के शरीर में सत्त्व (प्राण) अवशिष्ट है। जैसे बीज में पुष्प और फल अदृश्य रूप में रहते हैं और कालान्तर में दृष्टिगोचर होते हैं, वैसे ध्यानस्थ प्राणी के हृदय में अणु के समान सत्त्व विद्यमान रहता है। समाधिस्थ महात्मा का शरीर आत्मदेव में लीन रहने के कारण सदा समभाव में स्थिर रहता है। वह आनन्दित रहता है। न ग्लान रहता है, न अस्त होता है और न उदित होता है। द्वित्व, एकत्व आदि भावना से युक्त जिस पुरुष का मन चञ्चल होता है, उसका शरीर अन्यरूपता को (विकार को) प्राप्त होता है। स्पन्द-रहित मन वाला शरीर कभी भी अन्यरूपता को प्राप्त नहीं होता। चित्त स्पन्दजगत् के व्यवहार का कारण है, जैसे कुसुमों का वसन्त। चित्त के उपशम हो जाने पर शरीर में किसी प्रकार का परिवर्तन (विकार) सम्भव नहीं है। जैसे सम जल में तरङ्ग आदि विकार उपलब्ध नहीं होते, वैसे वासनारहित चित्त में जरा आदि विकार अथवा राग, द्वेष आदि भाव दृष्टिगोचर नहीं होते। राजा का शरीर निर्वासन मन से युक्त तथा उष्णता से सम्पन्न है, अतः उसमें किसी प्रकार की विक्रिया सम्भव नहीं।

कुम्भरूप चूडाला ने निश्चय किया कि मैं राजा के शरीर में प्रविष्ट होकर हृदयस्थ चिद्‌ब्रह्म में प्रतिष्ठान के माध्यम से राजा को उद्‌बोधित करूँ और पुनः अपने शरीर में प्रविष्ट हो जाऊँ? कुम्भ का स्वरूप धारण कर वह कुसुम स्थल में बैठकर सानन्द सामगान करने लगी। उस सामगान को सुनकर राजा जग गया। आँखें खोलकर उसने सामगान में प्रवृत्त, अपने सुपरिचित देवपुत्र कुम्भ को देखा।

अहो, हम धन्य हैं, जो पुनः देवपुत्र यहाँ आ गए। ऐसा कहकर उन्होंने पुष्पाञ्जलि अर्पित की। उन्होंने कहा कि—"हम धन्य हैं, जो आपने पुनः दर्शन देने की कृपा की, यह आपका महान् अनुग्रह है। हमको पवित्र करने के लिए ही आप यहाँ पधारे हैं"।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

कुम्भ ने कहा—"राजन् ! जब मैं आपके पास से गया, तब से मेरा मन आप में लगा हुआ है। मुझे आपके विना स्वर्ग भी रुचिकर नहीं प्रतीत होता। इस जगत् में आपके समान बन्धु, आप्त, सुहृद्, मित्र, सखा एवं विश्वसनीय शिष्य कोई दूसरा नहीं है"।

शिखिध्वज ने कहा—"देवपुत्र ! आज इस मन्दराचल पर हमारे पुण्य-वृक्ष सर्वथा पुष्पित एवं फलित हो गए, जो आपके समान ज्ञानी एवं आसक्तिरहित महात्मा हमारा सङ्ग चाहते हैं। यह वन, ये वृक्ष और मैं आपका भृत्य सब आपकी सेवा में हैं। यदि आपको स्वर्ग रुचिकर नहीं है, तो आप यहाँ वास कीजिए। आपसे उद्बोधित हो मैं यहाँ पूर्ण विश्रान्ति सुख का अनुभव कर रहा हूँ। आपने मुझे जिस दिव्य भूमानन्द का उपदेश दिया है, वह यहाँ अथवा स्वर्ग में कहीं भी लभ्य नहीं है"।

कुम्भ ने कहा—"राजन् ! क्या आप परमानन्दरूप परमपद में विश्रान्त हैं ? क्या आप आपातरमणीय सङ्कल्पों से विमुख हो गए हैं ? क्या हेय और उपादेय का अतिक्रमण कर शान्त एवं समस्थिति को प्राप्त आपका मन प्रारब्धप्राप्त विषयों में उद्वेगरहित होकर अवस्थित है" ?

शिखिध्वज ने कहा—"देवपुत्र ! आपके प्रसाद से मैंने दृश्यों को अतिक्रान्त करने वाली दृष्टि प्राप्त कर ली, मैंने संसार की सीमा का अन्त देख लिया और प्राप्तव्य वस्तुओं को प्राप्त कर लिया। चिरकाल के अनन्तर मैंने तीन दिनों तक पूर्ण विश्राम-सुख का अनुभव किया। अब मैं तृप्त होकर अवस्थित हूँ। मैं सर्वथा त्रिविध पापों से मुक्त हूँ। मुझे पर्याप्त उपदेश मिल गया है। मैंने ज्ञातव्य तत्त्वों को जान लिया है, त्याज्य वस्तुओं का त्याग कर चुका हूँ, मेरा मन वासनाशून्य हो गया है और मैंने आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया है। अब मैं मोह एवं भय से रहित, निर्दोष, नित्य प्रकाशरूप, समत्व भावना से युक्त, सौम्य, सर्वस्वरूप, सकल कलनाओं से मुक्त, आकाशकोश के समान स्वच्छ होकर अवस्थित हूँ।

परे पदे महानन्दे कच्चिद्विश्रान्तवानसि।
इदं भेदमयं दुःखं कच्चित् संत्यक्तवानसि॥
कच्चिदापातरम्येभ्यः सङ्कल्पेभ्यो रतिर्भृशम्।
निर्मूलतां गताः राजन् भोगनीरसमेव ते॥
हेयादेयदशातीतं शान्तं शमसमस्थिति।
यथाप्राप्तेष्वनुद्वेगं कच्चित्तव मनःस्थितम्॥
त्वत्प्रसादेन भगवन् दृष्टा दृश्यातिगा गतिः।
प्राप्तः संसारसीमान्तो लब्धो लब्धव्यनिश्चयः॥
चिरादतिचिरेणैव विश्रान्तोऽस्मि निरामयः।
लब्धं लब्धव्यमखिलं तृप्तः संश्चिरसंस्थितः॥
नोपदेष्टव्यमस्माकं किञ्चिदप्युपयुज्यते।
सर्वत्रैवातितृप्तोऽस्मि संस्थितोऽस्मि गतज्वरः॥

योगवासिष्ठ, निर्वाण-प्र० पू० सर्ग १०३, श्लो० ५४-५६, ५७-५९

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

कुम्भ रमणी बन गये—

देवपुत्र कुम्भ और राजा शिखिध्वज दोनों साथ-साथ वन में रहने लगे। उन्होंने इस प्रकार आठ दिन व्यतीत किये। कुम्भ के सुझाव पर वे दोनों दूसरे वन में गये। वहाँ अनेक प्रकार के जङ्गलों, नदी तटों, सरोवरों, उपवनों, नदियों विभिन्न देशों, ग्रामों, नगरों, वनों, तीर्थों, देवस्थानों में बड़े ही प्रेम भाव से वे दोनों विचरने लगे। वे पितरों, देवों, अतिथियों की पूजा करते थे और साथ बैठ कर भोजन करते थे। कुछ दिनों में ही राजा शिखिध्वज कुम्भ के समान शोभित होने लगे।

कुम्भ रूपी चूडाला राजा के सौन्दर्य को देखकर मुग्ध हो गई। उसने सोचा कि ऐसा सुन्दर पति, यौवनकाल, कुसुमों से भरा आवास, पति अपने अधीन, नाना प्रकार के प्राकृतिक सौन्दर्यों से भरा वन, एकान्त, ऐसे समय में जो रमणी पति के साथ समागम न कर सके, वह सर्वथा निन्द्य है। इसलिए मुझे कुछ रचना करनी चाहिए जिससे हमारा दाम्पत्य जीवन सुख से व्यतीत हो।

उसने राजा से कहा कि "राजन्! मैं स्वर्ग में अत्यावश्यक कार्यवश जा रहा हूँ। सन्ध्या काल तक अवश्य लौट आऊँगा। आप मेरी प्रतीक्षा करेंगे"।

ऐसा कहकर कुम्भ आकाश में उड़ गया। शिखिध्वज तब तक उसे देखते रहे जब तक वह आकाश में दृष्टिगोचर हो रहा था। पश्चात् चूडाला ने अपना स्वरूप बदल लिया। वह अन्तःपुर में गई और उसने आवश्यक राजकार्यों को सम्पन्न किया और शिखिध्वज के समक्ष आकर भूमि पर गिर पड़ी। उसकी आकृति मलिन एवं मुख विवर्ण था।

राजा शिखिध्वज कुम्भ को उदासीन एवं विवर्ण देखकर बहुत दुःखी हुए। उन्होंने कहा—"देवपुत्र! आप खिन्न से प्रतीत हो रहे हैं। क्या कारण है? आप जैसे ज्ञानी महात्मा हर्ष और विषाद का आश्रयण नहीं करते। कृपया अपने उद्वेग का कारण बतलायें"।

कुम्भ ने कहा—"राजन्! आप मेरे परम प्रिय सुहृद् हैं। अतः आपसे मैं कुछ छिपाना नहीं चाहता। मैं स्वर्गलोक से आपके पास आ रहा था। मार्ग में दुर्वासा मुनि मिल गए। मैंने हास्य में कुछ कह दिया। जिस पर वह कुपित हो गए। उन्होंने शाप दिया कि "तुम रात्रि में स्त्री बन जाओ और दिन में पुरुष रहो"।

अब मैं लज्जित हूँ कि मैं स्त्री बनकर कैसे रहूँगा? पिताजी, पूज्य गुरुजनों के समक्ष मैं कैसे स्त्री बनकर रहूँगा?"

राजा शिखिध्वज ने कहा—"देवपुत्र! अब इस परिदेवना से कौन अर्थ सिद्ध होगा? जो सुख दुःख होने हैं, वे सब देह को अवश्य ही होंगे; परन्तु आत्मा पर इसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। आप तत्त्वज्ञानी महात्मा हैं। आपको एतदर्थ शोक नहीं करना चाहिए।"

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

इस प्रकार दोनों मित्र परस्पर विचार कर आश्वस्त हो गए। सन्ध्या समय आ गया। कुम्भ का शरीर स्त्री के रूप में शनैः शनैः परिवर्तित होने लगा। वह बोले "राजन् ! मुझे लज्जा आ रही है कि मैं आपके सामने स्त्री बन रहा हूँ। देखें हमारे बाल बढ़ रहे है, छाती में स्तन निकल रहे हैं, मेरे अङ्ग से नाना प्रकार के भूषण, रत्न, माला आदि निकल रहे हैं। हा ! कष्ट है, मैं स्त्री रूप में सर्वथा परिवर्तित हो गया"। शिखिध्वज को भी कष्ट हुआ कि देवपुत्र कुम्भ स्त्री रूप में परिणत हो गए। कुम्भ ने कहा—"राजन् ! आपने ठीक ही कहा है। नियति के विधान का उल्लंघन कौन कर सकता है। अतः मुझे रात्रि में स्त्री बनकर रहना पड़ेगा"। प्रातःकाल कुम्भ पुनः पुरुष हो गया। दोनों मित्र जङ्गल में बिहार करने लगे।

मदनिका का (कुम्भ का) विवाह—

कुछ दिनों के बीत जाने पर कुम्भ ने कहा—"राजन् ! मैं प्रतिदिन रात्रि में स्त्री बन जाता हूँ। मैं अङ्गनाधर्म के पालन के निमित्त किसी स्वामी को विवाहरूप में अपना शरीर प्रदान करना चाहता हूँ। इस भुवन में आप मुझे सबसे सुन्दर प्रतीत होते हैं, अतः मुझे अपनी भार्या के रूप में स्वीकार करें। मैं अपने प्रिय मित्र के साथ स्त्रीसुख भोगने की इच्छा कर रहा हूँ। आप कृपया मेरी प्रार्थना स्वीकार करें। सृष्टि के आदि काल से आज तक यह विवाह-प्रथा देवताओं, ऋषियों, मुनियों एवं मानवों में प्रचलित है और सर्वथा दोषरहित है। इच्छा, अनिच्छा और तज्जन्य फलों का त्याग कर प्रारब्धवश प्राप्त का हम लोग उपभोग करें"।

शिखिध्वज ने कहा—"मित्र ! इस विवाह कार्य को करने में न शुभ फल है, न अशुभ फल। अतः आप जैसा चाहें करें। समत्व बुद्धि के कारण मैं त्रैलोक्य को अपना रूप समझता हूँ। अतः आपके प्रस्ताव पर मुझे कोई आपत्ति नहीं हैं"।

कुम्भ ने कहा—"राजन् ! यदि ऐसा है, तो यह शुभ कार्य आज ही सम्पन्न कर लिया जाय। मैंने विचार कर लिया है। आज श्रावण की पूर्णिमा है, पुण्य काल है, आज रात्रि में हम लोगों का विवाह सम्पन्न हो जाय। महेन्द्र पर्वत के मनोरम शिखर पर जहाँ रत्नरूपी दीपकों का पूर्ण प्रकाश है, मणिमय कन्दरा रूपी अनेक मन्दिर हैं, जो पुष्पित वृक्षों से सुशोभित हैं और लताओं के विलासपूर्ण नृत्यों से आकर्षक हैं, इस शिखर पर समस्त जगत् हम दोनों का विवाह देखे"।

"राजन् ! उठें, हम लोग जङ्गल से विवाह के लिए पुष्प, चन्दन, रत्न आदि सामग्री एकत्र करें"।

तदनुसार दोनों मित्र पुष्पचयन तथा रत्नसंचय आदि में लग गए। उन्होंने शिखर पर एक स्थान में देवपूजन के लिए पुष्पों की राशि संचित की, दूसरे स्थान पर हार, मणि आदि खोज-खोजकर एकत्र किया। सुवर्ण की कन्दरा में विवाह-सामग्री एकत्रित कर दोनों मित्र मन्दाकिनी में स्नान करने गए। वहाँ कुम्भ ने मित्र शिखिध्वज को बड़े आदर से दधि, दूध, अक्षत आदि माङ्गलिक द्रव्यों से

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

स्नान कराया। भविष्य में दयिता बनने वाली प्रिय अङ्गना को (कुम्भ को) राजा शिखिध्वज ने मङ्गल स्नान कराया। वहाँ उन दोनों ने देवताओं, पितरों एवं मुनियों की पूजा की। सिद्धिप्रभाव से समुत्पन्न दिव्य अन्न-पानादि का उन्होंने सेवन किया। धवल वस्त्रों को धारण कर वे दोनों विवाह स्थान पर आ गए। उन दोनों का कल्याण करने के लिए रात्रि भी आ गई। रात्रि के आगमन पर कुम्भ रूप महिला ने राजा को अनेक आभूषणों से अलङ्कृत किया। चन्दन, अगुरु, कर्पूर-मिश्रित केसर एवं कस्तूरी से, हार, केयूर और कङ्कणों से, दिव्य वस्त्रों से, कण्ठादि मालाओं से, कल्पलता के गुच्छों से, मन्दार, पारिजात एवं सन्तान नामक पुष्पों से, रत्नों एवं चूडामणि से राजा सजाये गए। राजा शिखिध्वज ने अपनी बहू मदनिका को खूब सजाया। नाना प्रकार के अलङ्कारों, दीप्यमान मणि, रत्न आदि विभूषणों से युक्त मालाओं, वस्त्रों, अलङ्कारों तथा पुष्पों से बहू मदनिका उत्तमोत्तम रूप में सजाई गई। बहू को सजाकर राजा ने कहा—"इन्द्र के साथ इन्द्राणी का जो सौभाग्य है, विष्णु के साथ लक्ष्मी का जो सौभाग्य है, शम्भु के साथ गौरी का जो सौभाग्य है, वही सौभाग्य मेरे साथ तुम्हारा हो"। राजा ने कहा—"मदनिके ! तुम कल्पवृक्ष की लता हो, तुम्हारे अङ्ग हिम के सदृश शीतल एवं निर्मल हैं, तुम्हारा हास्य ज्योत्स्ना का अनुकरण कर रहा हैं, तुम्हारा मुख पूर्ण चन्द्र के समान सुन्दर एवं आह्लादकारी है। अब चलो, विवाह वेदी को अलङ्कृत करें।

वेदी के मध्य में अग्नि प्रज्वलित किया गया। दक्षिण भाग से प्रदक्षिणा की गई। दोनों दम्पति पल्लवों के आसन पर आसीन बड़े ही कमनीय लग रहे थे। शिखिध्वज ने तिल और लावा से अग्नि में हवन किया और मदनिका का पाणिग्रहण किया। दम्पति ने अग्नि की प्रदक्षिणा की। उन दोनों ने एक दूसरे को अपना हृदय दाय के रूप में दान दिया। उन्होंने तीन बार अग्नि की प्रदक्षिणा की, फिर उसमें लावा होम किया। इस प्रकार उस दम्पती का विवाह पर्वत शिखर पर दिव्यरूप में सम्पन्न हुआ। पश्चात् वे दोनों स्वर्ण-गुफा में प्रविष्ट हो गए।

ज्वालयामासतुस्तस्या मध्ये चन्दनदारुभिः।
ज्वलनं ज्वालितज्वालं दक्षिणस्थं प्रदक्षिणम्॥
पूर्वाभिमुखमेवाग्नेरग्रे पल्लवविष्टरे।
नियोज्य दम्पती कान्तौ तयोर्विविशतुः स्वयम्॥
स हुत्वा तिललाजानि पावकाय शिखिध्वजः।
उत्थायोत्थाय कान्तां स पाणिभ्यां स्वयमाददे॥
अन्योन्यं शोभमानौ तौ भवाविव वने शिवौ।
चक्रतुर्दम्पती तस्य पावकस्य प्रदक्षिणम्॥
स्वदायं ज्ञानसर्वस्वं हृदयं प्रेमचापलम्।
ददतुस्तौ मिथोऽन्योन्यस्मितकान्तमुखश्रियौ॥

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

प्रदक्षिणत्रयं कृत्वा लाजास्त्यवत्त्वाथ वह्नये।
भार्यावरौ समं तुष्टौ करौ तत्यजतुः क्रमात् ॥
स्मयमानमुखौ कान्तौ चन्द्राविव नवोदितौ।
पूर्वोपरचिते पुष्पतल्पे विविशतुर्नवे ॥

योगवासिष्ठ, निर्वाण-प्र० पू० सर्ग १०६, श्लो० ५४-६०

शक्रागमन —

वे दम्पती—कुम्भ और शिखिध्वज—महेन्द्र पर्वत की गुफा में सानन्द रहने लगे। वे प्रतिदिन ऐसी वनपंक्तियों में विलास करते थे, जहाँ पक्वफल पुष्कलमात्रा में उपलब्ध थे तथा पुष्पों एवं लताओं की शोभा रमणीय थी। दिन में वे दोनों मित्र थे और रात्रि में दम्पती। उन्होंने अरण्यों, कुञ्जों, पर्वतों की गुफाओं, मन्दार वृक्षों से सघन तमालवृक्षों के खण्डों, सह्य, दर्दुर, कैलास, महेन्द्र, मलय, गन्धमादन, विन्ध्याचल तथा लोकालोक पर्वत और नदियों के तटों पर रमण किया।

तीन दिनों के बाद चूडाला—जबकि उसके पति निद्रा-सुख ले रहे थे—अपने नगर की ओर गई और राजकार्यों को सम्पन्न कर फिर वापस आ गई। उन्होंने एक मास महेन्द्र पर्वत पर बिताया। वहाँ देवता और किन्नर उनका बड़ा सम्मान करते थे। पन्द्रह दिनों तक उन्होंने शक्तिमान् पर्वत के कल्पलता-गृह में, जो विविध फलों एवं पुष्पों से सम्पन्न था, वास किया। दो मास मैनाक पर्वत के दक्षिण तट पर पारिजात वन में विहार किया। सुमेरु पर्वत के उत्तरकुरुमण्डल, उत्तर कोसल देश में भी उन्होंने विहार किया।

कतिपय मास के व्यतीत हो जाने पर चूडाला ने विचार किया कि नाना प्रकार के उत्तमोत्तम उपभोगों से परीक्षा करनी है कि राजा की भोगों में आसक्ति कहाँ तक है? तदनुसार उसने अपनी माया से देवताओं एवं अप्सराओं के साथ देवराज इन्द्र को वहाँ बुला लिया।

देवराज इन्द्र को समागत देखकर राजा शिखिध्वज ने अर्घ्य, पाद्य आदि से उनकी पूजा की और कहा "देवराज! आपने इस सुदूर प्रदेश में आने का कष्ट कैसे किया? किस प्रयोजन से यहाँ पधारे हैं? कृपया सूचित करें"।

इन्द्र ने कहा—"राजन्! आपके उत्कृष्ट गुणों की प्रशंसा सुनकर हम यहाँ आये हैं। आप स्वर्ग में चलें। आपके गुणों की प्रशंसा सुनकर समस्त देवगण और देवाङ्गनायें आपके आगमन की प्रतीक्षा कर रही हैं? इन सिद्ध पादुकाओं, गुटिका, खड्ग, पारद आदि को स्वीकार कर आप सिद्धों के मार्ग से स्वर्ग-मण्डल में पहुँच सकते हैं। वहाँ आप उत्तम भोगों को भोगें, इसी हेतु मैं आप के समीप आया हूँ। आप जैसे महात्मा समागत लक्ष्मी का त्याग नहीं करते और अप्राप्त की कामना भी नहीं करते। जैसे नारायण के आगमन से त्रैलोक्य पवित्र हो जाता है, वैसे आपके आगमन से स्वर्ग पवित्र हो जायगा"।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

शिखिध्वज ने कहा—"देवराज ! मैं सर्वत्र स्वर्ग देखता हूँ। भूमानन्दात्मक परमब्रह्म की सत्ता सर्वत्र है। मुझे यहाँ उसकी उपलब्धि हो रही है। अतः मैं स्वर्ग जाने की इच्छा नहीं करता"।

इन्द्र ने कहा—"जिन महात्माओं ने ज्ञातव्य तत्त्वों को जान लिया है, वे भोगों का उपभोग करें, अथवा न करें, दोनों सम है"। इन्द्र के ऐसा कहने पर भी जब राजा मौन रहे, तो देवराज ने उनकी निरपेक्षता परीक्षित कर ली; वह देवताओं के साथ स्वर्ग चले गये"।

उत्तिष्ठ स्वर्गमागच्छ तत्र सर्वे त्वदुन्मुखाः।
त्वद्गुणश्रवणाश्चर्याः स्थिता देवाङ्गनागणाः॥
पादुकागुटिकाखड्गरसादीदमथापि च।
गृहीत्वा सिद्धमार्गेण स्वीकुरु स्वर्गमण्डलम्॥
आगत्य विविधा भोगास्त्वया विबुधसद्मानि।
जीवन्मुक्तेन भोक्तव्यास्तेन त्वामहमागतः॥
विमानयन्ति सम्प्राप्तां न तिरस्करणैः श्रियम्।
नाभिवाञ्छन्ति न प्राप्तां त्वादृशाः साधु साधवः॥
अविघ्नमागतेनाद्य सुखं विहरता त्वया।
स्वर्गः पवित्रतां यातु हरिणेव जगत्त्रयम्॥
सर्वं स्वर्गसमाचारं वेद्मि देवाधिनायक।
किन्तु सर्वत्र मे स्वर्गो नियतो न तु कुत्रचित्॥
सर्वत्रैव हि तुष्यामि सर्वत्रैव रमे प्रभो।
अवाञ्छनत्वान्मनसः सर्वत्रानन्दवानहम्॥
नियतं किञ्चिदेकत्र स्थितं स्वर्गकमीदृशम्।
शक्र गन्तुं न जानामि त्वदाज्ञां न करोम्यहम्॥

योगवासिष्ठ, निर्वाण-प्र० पू० सर्ग १०७, श्लो० २१-२५, २६-२९

चूडाला का स्वरूपदर्शन—

चूडाला ने विचार किया कि इन्द्रमाया-परीक्षण में तो राजा सफल हो गया। उन्होंने विना क्षोभ के शिष्टजनानुमोदित कार्य किया। देवराज का यथाविधि सत्कार किया और स्वर्गीय सुखों के प्रति निरपेक्षता दिखलाकर अपनी तत्त्वज्ञता का परिचय भी दे दिया। अब मैं दूसरी रचना के द्वारा यह परीक्षा करना चाहती हूँ कि राजा में राग-द्वेष की भावना कहाँ तक बनी हुई है।

सायङ्काल रात्रि के आगमन से कुम्भ सुन्दर मदनिका के रूप में परिवर्तित हो गया। उस समय राजा शिखिध्वज सन्ध्या काल में जपादि करने के निमित्त नदी तट पर गए थे। मदनिका ने कामासक्त होकर लताकुञ्ज में प्रवेश किया। वहाँ उसने अपनी माया से एक सुन्दर युवा पुरुष भी बनाया और उसके साथ

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

पुष्पशय्या पर लेट गई। उन दोनों की चेष्टायें वासनाप्रधान थीं, वे कामान्ध जोड़े के समान चिपककर एक आसन पर सो रहे थे।

राजा शिखिध्वज नदी तट से आकर मदनिका का अन्वेषण करने लगे। उन्होंने लताकुञ्ज में उसे एक युवा पुरुष के साथ सोते देखा। शिखिध्वज ने यह भी देखा कि दोनों की चेष्टायें कामुकता से भरी हैं। यह देखकर राजा सन्तुष्ट हुआ कि वे दोनों किस प्रकार सुख का अनुभव कर रहे हैं। उन दोनों के कार्य में बाधा न पड़े, एतदर्थ राजा वहाँ से दूसरे स्थान में जाकर बैठ गया।

मुहूर्त भर में माया का उपसंहार कर मदनिका लताकुञ्ज से बाहर निकल आई। उसने शिलातल पर बैठे राजा शिखिध्वज को देखा। वह एकान्त में समाधि लगाकर बैठे थे। मदनिका लज्जा से मुख विनम्र कर चुपचाप खड़ी हो गई। उसके मन में पापकर्म के लिए बड़ा खेद था और उसका मुख फीका पड़ गया था।

समाधि से विरत होकर राजा शिखिध्वज मदनिका को देखकर अत्यन्त मधुर वाक्य बोले—"तुम्हारे आनन्द में किसी ने बाधा तो नहीं पहुँचाई। तुमने सुख का उपभोग यथेच्छ किया न? पुनः जाओ और अपने प्रियतम को सन्तुष्ट करो। तुम्हारे इस कार्य से मैं किसी प्रकार के उद्वेग का अनुभव नहीं करता। तुम्हारे इस कार्य से मेरी कुम्भ में श्रद्धा नष्ट नहीं हो सकती। हम दोनों तत्त्वज्ञ मित्र हैं। तुम बाला हो, जो चाहो करो।

मदनिका ने कहा—"राजन्! आप ठीक ही कह रहे हैं। स्त्रियाँ चञ्चल होती हैं और उनमें कामवासना अधिक होती है। स्वामिन्! मैं अबला स्त्री हूँ, बाला हूँ, मूर्ख हूँ, मैंने भयङ्कर अपराध किया है। आप कृपया क्षमा प्रदान करें; क्योंकि साधु पुरुष क्षमाशील होते हैं"।

राजा शिखिध्वज ने कहा—"बाले! मेरे अन्तःकरण में तुम्हारे कृत्य से लेशमात्र भी क्रोध नहीं है। केवल शिष्टजनों की निन्दा के कारण मैं तुम्हें अपनी वधू के रूप में अब नहीं चाहता। हम दोनों मित्रतापूर्वक पूर्व की भाँति साथ रहेंगे और सुखपूर्वक समय व्यतीत करेंगे"।

चूडाला राजा के व्यवहार से अत्यन्त प्रसन्न हुई। निश्चय ही हमारे स्वामी राग-द्वेष से मुक्त हो गये हैं। उनमें क्रोध अवशिष्ट नहीं है। वह जीवन्मुक्तों के समान जीवन व्यतीत कर रहे हैं। वह सुख-दुःख आपद्, सम्पद्, किसी से भी प्रभावित नहीं हैं। उन्होंने सिद्धियों और भोगों पर विजय प्राप्त कर ली है। अब वह नारायण के समान तत्त्वज्ञ होकर निरतिशयानन्द रूप चिदाकाश में सुप्रतिष्ठित हैं अतः उन्हें मैं अपने पूर्व रूप का स्मरण कराऊँ।

चूडाला-प्रकटीकरण—

तत्काल चूडाला मदनिका का रूप बदल कर चूडाला महारानी बन गई। राजा शिखिध्वज आश्चर्यचकित हो चूडाला को देखने लगे।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

अपनी पूर्व-पत्नी चूडाला को देखकर राजा शिखिध्वज के नेत्र विकसित हो गये और वह आश्चर्यचकित होकर बोले—"सुन्दरि! तुम कौन हो, कहाँ से आई हो? क्या तुम्हीं कुम्भ आदि का रूप धारण कर यहाँ रहती हो? कब तक यहाँ रहोगी और यहाँ आने का प्रयोजन क्या है? अवयवों के गठन से, व्यवहार से, स्मित से, प्रेमभरी वाणी से, मेरी भार्या जैसे विलास से तुम चूडाला की मूर्त्ति-सी प्रतीयमान हो रही हो"।

चूडाला ने कहा—"प्रभो! ऐसा ही समझें। मैं निश्चय ही चूडाला हूँ। अपने स्वाभाविक शरीर से ही मैंने आज आपको प्राप्त किया है। महाराज! इस अरण्य में कुम्भ आदि शरीर के निर्माण द्वारा मैंने माया का प्रपञ्च केवल आपको बोध देने के लिए किया था। मोहवश राज्य छोड़कर जब से आप वन में आये, तभी से मैं आपको ज्ञान देने के लिए प्रयत्नशील हूँ। इस कुम्भ के शरीर से मैंने ही आपको प्रबुद्ध किया है। इस शरीर का निर्माण मैंने माया से आपको ज्ञान देने के लिए ही किया था। अब आप ज्ञेय वस्तु को जान चुके हैं। योग-धारणा से सब कुछ देख सकते हैं। आप शीघ्र ही ध्यान से देख लें"।

राजा शिखिध्वज ने तदनुसार ध्यान लगाकर सब वृत्तान्त जान लिया। राज्यत्याग से लेकर चूडाला-साक्षात्कारपर्यन्त समस्त घटनाओं को राजा ने ध्यानस्थ होकर देखा। पश्चात् वह समाधि से विरत हो गए। हर्षातिरेक से उन्हें रोमाञ्च हो गया और वे पुलकित होकर चूडाला का आलिङ्गन करने लगे। उस आलिङ्गन के समय जो अलौकिक निरतिशयानन्द अनुभूत हुआ, उसका वर्णन शेषनाग भी नहीं कर सकते। वह मिलन चिरकाल तक बना रहा। पश्चात् उन दोनों ने अपने हाथ शनैः-शनैः शिथिल किए, उनके हृदय में आनन्दामृत की लहरें इतनी तीव्रगति से चल रही थीं कि वे अपने को भूल से गए और कुछ समय तक चित्रलिखित से खड़े रहे। राजा शिखिध्वज ने आनन्दविभोर होकर अपनी प्रेयसी चूडाला से प्रेमभरे शब्दों में कहा—

"चूडाला! कुलीन स्त्रियों का अनुराग कितना मधुर, सुन्दर एवं अमृत के स्वाद से भी बढ़कर मधुर होता है। प्रिये! तुम अभी बालेन्दु के समान सूक्ष्म शरीर वाली और मुग्धा हो। तुमने अपने स्वामी के निमित्त चिरकाल तक कितना दारुण क्लेश सहा है? तुमने जिस बुद्धि-कौशल एवं युक्ति से अपने पति को इस भयङ्कर संसार-सागर से पार करा दिया है, उसकी उपमा किससे दी जा सकती है? तुम्हारे गुणों के उत्कर्ष से अरुन्धती, शची, गौरी, गायत्री, लक्ष्मी, सरस्वती प्रभृति बड़ी-बड़ी देवियाँ भी चकित हो गई हैं। अलौकिक सौन्दर्य के कारण सुप्रसिद्ध श्री, कान्ति, क्षमा, मैत्री, करुणा प्रभृति सर्वोत्तम कान्ताओं में तुम्हारा प्रथम स्थान है। तुमने अपने प्रशंसनीय अध्यवसाय से मुझे प्रबुद्ध किया है। मैं किस प्रत्युपकार से तुम्हें सन्तुष्ट करूँ? अनादिकाल से चले आ रहे दुस्तर मोहगर्त में पड़े हुए स्वामी को कुशल कुल-स्त्रियाँ पार करा देती हैं। उद्धार कराने में शास्त्रार्थ, गुरु, मन्त्र आदि उतने प्रभावशाली

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

नहीं हैं, जितना कि स्नेहशालिनी कुलवधुयें हैं। कुलाङ्गनायें अपने पति की सखा, बन्धु, सुहृद्, भृत्य, गुरु, मित्र, धन, सुख, शास्त्र, घर, दास प्रभृति सब कुछ हैं। कुलाङ्गनायें सब प्रकार पूजनीय हैं; क्योंकि लोकद्वय—इसलोक और परलोक—का सुख उनमें भली-भाँति प्रतिष्ठित है। तुम निरीह हो और संसार-सागर को पार कर चुकी हो, अतः मैं तुम्हारे इस महान् उपकार का प्रत्युपकार कैसे कर सकता हूँ? मैं समझता हूँ कि कुलाङ्गनाओं में तुम्हारा सर्वश्रेष्ठ स्थान है और जब उनकी चर्चा होगी, तो तुम्हारा नाम बड़े ही आदर से लिया जायगा। निश्चय ही ब्रह्मा उत्तमोत्तम गुणशालिनी तुम्हारी रचना कर अरुन्धती प्रभृति देवियों के कोपभाजन बन गए। चूडाला तुम रूप, सौजन्य एवं विविध गुणों की निधि हो, पतिव्रता हो, आओ पुनः मेरा आलिङ्गन करो"। ऐसा कहकर राजा ने प्रेमार्द्रभाव से उसका आलिङ्गन किया।

चूडाला ने कहा—"राजन्! शुष्क क्रियाजाल में फँसे हुए तथा व्याकुलचित्त आपको देखकर मैं बहुत दुःखित रहा करती थी। इसलिए आपको तत्त्वज्ञान देकर मैंने अपना ही स्वार्थ सिद्ध किया है। अतः आप मेरा गौरव क्यों बढ़ा रहे हैं"?

राजा शिखिध्वज ने कहा—"देवि! जैसा स्वार्थ-साधन तुम कर रही हो, मैं चाहता हूँ, वैसा स्वार्थ-साधन सब कुलाङ्गनायें करें"।

चूडाला ने कहा—"प्रभो! अब आप जगत् के जाल से मुक्त हो गये हैं। क्या आप अपने पुराने भावों को याद कर रहे हैं, जब अनेक प्रकार के व्रत, उपवास आदि किया करते थे और "क्या करूँ, क्या न करूँ"? इस प्रकार का विमर्श भी किया करते थे। आपके वे पुराने भाव, वे तुच्छ कल्पनायें एवं सङ्कल्प अब नहीं दिखाई देते जैसे आकाश में पर्वत। इस समय किस वस्तु में आपकी निष्ठा है? आप क्या चाहते हैं? आप पहले की चेष्टाओं को किस रूप में देखते हैं"?

राजा शिखिध्वज ने कहा—"प्रिय चूडाले! तुम मेरी आत्मा हो। तुम जैसा देखती हो, मैं भी वैसा ही देखता हूँ। मैं निरीह हूँ, आकाश के सदृश निर्मल हूँ, निःस्पृह हूँ, शान्त हूँ, परमार्थस्वरूप हूँ। मैं उस दिव्य स्थिति को प्राप्त हूँ, जहाँ चित्त आनन्द-समुद्र में अलौकिक सुख का अनुभव करता है और जहाँ से महान् ब्रह्मा, विष्णु एवं शङ्कर मुझे पृथक् नहीं कर सकते। मैं विशुद्ध चिन्मात्र में अवस्थित हूँ, भ्रमों से मुक्त हूँ और अपने स्वरूप में स्थित हूँ। न तुष्ट हूँ, न रुष्ट हूँ, न स्थूल हूँ, न सूक्ष्म हूँ, मैं सर्वथा सत्य हूँ। मैं आकाश में फैले हुए, क्षयरहित प्रकाश के समान हूँ। मैं शान्त हूँ, सम हूँ, स्वस्थ हूँ, निर्वाण हूँ। मैं ब्रह्म हूँ। तुम मेरी गुरु हो, तुमको नमस्कार है। मैं तुम्हारे प्रसाद से भवसागर को पार कर गया हूँ, अब मैं सुवर्ण के समान पुनः मल से गृहीत नहीं हूँगा। मैं शान्त, स्वस्थ, मृदु, वीतराग, निरंश, सर्वातीत, सर्वव्यापी, आकाश के समान निर्मल स्थित हूँ"।

चूडाला ने कहा—"प्रभो! उक्त स्थिति में अब आप क्या चाहते हैं"?

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

शिखिध्वज ने कहा—"मैं प्रतिषेध नहीं जानता, मुझे कोई वस्तु अभीष्ट भी नहीं है। तुम जिस प्रकार का आचरण करती हो, उसे मैं उसी प्रकार जानता हूँ। तुम्हें जो अभिमत हो, वह उसी प्रकार हो। मैं किसी वस्तु का अनुसन्धान नहीं करना चाहता। तुम जो चाहो करो, मैं उसे मणि के समान अपने हृदय में धारण करूँगा। मैं प्रारब्ध प्राप्त वस्तु की न निन्दा करता हूँ और न स्तुति"।

चूडाला ने कहा—"राजन्! यदि ऐसी बात है, तो आप मेरा मत सुनें। हम लोग अद्वैत बोध से सम्पन्न, इच्छाओं से रहित, आकाशसदृश निर्मल हैं। हम लोगों को राज्यभोगादि की न इच्छा है ओर न अनिच्छा। अतः प्रारब्ध के उपभोग से हम लोग आदि, अन्त और मध्य में यथास्थित होकर रहें। हम लोग आदि, मध्य और अन्त में राजा ही हैं। अतः मोह छोड़कर उसी राज्यरूप में हो जायँ। आप अपने नगर में राजा बन जायँ और मैं राजमहिषी बन जाऊँ। अपनी नगरी, जो चिरकाल से उपेक्षित है, पुनः एक बार चमक उठे। वह राजाओं से युक्त, प्रसन्न प्रजा वर्ग से सजीव, नृत्य करती हुई अङ्गनाओं से सुशोभित, ध्वज, पताका आदि से अलङ्कृत नगाड़ों की ध्वनि से मुखरित, नाना प्रकार की पुष्पवाटिकाओं से लहलहाती हुई वसन्त-लक्ष्मी के समान सुशोभित हो जाय।

शिखिध्वज ने कहा—"प्रिये! यदि ऐसी बात है तो हम स्वर्ग में क्यों न चलें"?

चूडाला ने कहा—"राजन्! मुझे न भोगों की इच्छा है, न विभूतियों की इच्छा है। मैं तो स्वभाववश जो प्राप्त है, उसका अनुसरण करती हूँ। मेरे लिए स्वर्ग, राज्य अथवा विविध क्रिया-कलाप, कोई भी सुखकर नहीं हैं। मैं यथाप्राप्त स्वरूप में स्थित रहना श्रेयस्कर समझती हूँ"।

शिखिध्वज ने कहा—"प्रिये! तुमने युक्तिसङ्गत बात कही है। राज्य के ग्रहण अथवा त्याग में कौन अर्थ है? सुख-दुःख की चिन्ता का त्याग कर हम लोग स्वरूपस्थ होकर रहें"।

इस प्रकार परस्पर वार्तालाप में उन दोनों का दिन समाप्त हो गया। उन दोनों ने सायंकालिक कृत्य सम्पन्न किया। पश्चात् वे शय्या पर सो गए।

निरीहोऽस्मि निरंशोऽस्मि नभः स्वच्छोऽस्मि निःस्पृहः।
शान्तोहमर्थरूपोऽस्मि चिरायाहमहं स्थितः॥
तां दशामुपयातोऽस्मि यतश्चित्तैकवर्त्मनि।
प्रतिषेधन्ति सहसा न यां हरिहरादयः॥
न किञ्चिन्मात्रचिन्मात्रनिष्ठोऽस्मि स्वस्थ आस्थितः।
भ्रमेणाहं विमुक्तोऽस्मि संसारेणाललोचने॥

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

न तुष्टोऽस्मि न खिन्नोऽस्मि नायमस्मि न चेतरत् ।
न स्थूलोऽस्मि न सूक्ष्मोऽस्मि सत्यमस्मि च सुन्दरि ॥
शान्तोऽस्मि साम्यनेतास्मि स्वस्थोऽस्मि विगताशयः ।
परिनिर्वाणएवास्मि सदृशोऽस्मि पतिव्रते ॥
यत्तदस्मि तदेवास्मि वक्तुं शक्नोमि नेतरत् ।
तरङ्गतरलापाङ्गे गुरुस्त्वं मे नमोऽस्तु ते ॥
प्रसादेन विशालाक्ष्यास्तीर्णोऽस्मि भवसागरात् ।
पुनर्मलं न गृह्णामि शतध्मातसुवर्णवत् ॥

योगवासिष्ठ, निर्वाण-प्र० पू० सर्ग १०६, श्लो० ४२-४८

शिखिध्वज-निर्वाण—

सूर्य-किरणों के साथ वे दम्पती प्रातःकाल उठ गए। उन्होंने उठकर प्रातः-सन्ध्या आदि कार्यक्रम सम्पन्न किया और तदनन्तर काञ्चन गुफा में जाकर पर्ण-निर्मित आसन पर बैठ गए।

चूडाला ने सातों समुद्रों के जल से परिपूर्ण रत्नकुम्भ को राज्याभिषेक के लिए सङ्कल्पित किया। पूर्वाभिमुख बैठे हुए राजा शिखिध्वज को राजपत्नी चूडाला ने रत्न-कुम्भ के जल से अभिषिक्त किया और कहा—"महाराज! मुनियों के तेज को छोड़कर अब आपको इन्द्रादि अष्ट लोकपालों के तेज को धारण करना है"।

राजा शिखिध्वज ने "तथास्तु" कहकर महाराज के स्वरूप को धारण कर लिया।

राजा ने अपनी प्रिय सहधर्मिणी चूडाला को महारानी पद पर अभिषिक्त किया और कहा—"प्रिये! तुम योगसिद्धि द्वारा सङ्कल्प से विविध शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित एक महती सेना तैयार करो"।

महारानी चूडाला ने सङ्कल्प से सेना एकत्र कर दी। उसमें हाथी-घोड़े गर्जन कर रहे थे, पताकाओं से नभोमण्डल आच्छन्न हो गया था, जङ्गल में तिल रखने को स्थान नहीं था। तुरही आदि विविध वाद्यों के शब्दों से पर्वत की गुफायें प्रतिध्वनित हो रही थीं और रत्नों के प्रकाश से अन्धकार नष्ट हो गया था। एक सुन्दर गजराज के ऊपर वे दोनों—महाराज एवं महारानी—सवार हुए। राजा धूमधाम से सेना के साथ महेन्द्र पर्वत से चल पड़ा। उसने मार्ग में पर्वतों, अनेक देशों, नदियों, जङ्गलों, गाँवों को देखते तथा जहाँ पर कोई विशेष घटना अथवा बात थी, उसे अपनी प्रिय रानी को दिखाते, कहते, सुनते अल्पकाल में ही अपनी नगरी में प्रवेश किया।

राजा के सामन्तगण जयघोष सुनते ही राजा की अगवानी के लिए नगर से बाहर निकल आये। सबके साथ राजा नगर में प्रविष्ट हुए। वहाँ नगर की स्त्रियों ने उनके ऊपर लाजा एवं पुष्पों की वर्षा की। राजा नगर की शोभा देखते हुए अपने

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

राजभवन में प्रविष्ट हुए, जो कि पताकाओं एवं ध्वजों से सुशोभित था, जहाँ स्त्रियाँ नृत्य और गान कर रही थीं, जो मोतियों के तोरण से अलङ्कृत था। वहाँ पहुँचकर राजा ने अपने विनीत मन्त्रियों, अमात्यों एवं प्रजावर्ग के सम्मान को स्वीकार किया तथा उन्हें भी सम्मानित किया। एक सप्ताह तक नगर में धूमधाम से उत्सव मनाया गया। पश्चात् राजा अपना कार्य करने लगे।

राजा शिखिध्वज ने दशसहस्र वर्षों तक चूडाला के साथ पृथ्वी पर अकण्टक राज्य किया और पश्चात् निर्वाण (कैवल्य) प्राप्त किया।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

२६. कचोपाख्यान

देवगुरु बृहस्पति के पुत्र कच ने बाल्यावस्था व्यतीत कर यौवन में प्रवेश करते ही संसार-सागर को पार करने के ध्येय से अपने पिता देवगुरु बृहस्पति जी से पूछा—"भगवन् ! आप सब धर्मों के ज्ञाता हैं। कृपया बतलायें कि मेरे सदृश जीव संसार-सागर को कैसे पार कर सकते हैं" ?

बृहस्पति ने कहा—"पुत्र ! जीव अनर्थरूप मकरों के आवासभूत इस संसार-सागर को बिना किसी उद्वेग के सर्वत्यागरूप महापोत के द्वारा पार कर सकता है"।

पिता जी के वचन को सुनकर कच ने सब कुछ त्याग कर वन के लिए प्रस्थान किया। पुत्र के वनगमन से बृहस्पति को कुछ भी क्लेश नहीं हुआ; क्योंकि महापुरुष संयोग और वियोग से उद्विग्न नहीं होते।

कच को वनवास में आठ वर्ष व्यतीत हो गए। उन्होंने किसी वन में अपने पिता जी को देखा। उन्होंने पिता जी को प्रणाम किया और उनकी पूजा की। पश्चात् आदरभाव से पूछा—"तात ! मैंने सर्वत्याग कर आठ वर्षों तक जङ्गल में वास किया; परन्तु मुझे विश्रान्ति नहीं मिली" ?

पुत्र के वचन को सुनकर बृहस्पति बोले—"सर्वत्याग करो"।

पिता जी के चले जाने पर कच ने वल्कल आदि का भी त्याग कर दिया। अब वह दिगम्बर हो गया। उसने गुफा आदि सब का त्याग कर दिया। वह किसी प्रकार साँस लेकर जीवित था। तीन वर्षों के बाद किसी जङ्गल में पुनः पिता जी मिले। उसने पिता जी का अभिवादन, पूजन आदि भक्तिभाव से किया और कहा—"भगवन् ! मैंने कन्था, दण्ड, कमण्डल आदि सब का त्याग कर दिया; पर मेरा चित्त विश्रान्त नहीं हुआ" ?

बृहस्पति ने कहा—"पुत्र ! विज्ञजन चित्त-त्याग को सर्वत्याग कहते हैं; क्योंकि चित्त ही सब कुछ है, अतः उसके त्याग के बिना सर्वत्याग नहीं हो सकता"।

ऐसा कहकर बृहस्पति आकाश में उड़ गये। कच ने बड़ी खोज की; परन्तु उसे चित्त नहीं मिला। तब वह पिता जी का ध्यान करने लगा। उसने विचार किया कि "देहादि पदार्थ तो चित्त हैं नहीं, वह कहाँ रहता है, यह भी मुझे ज्ञात नहीं है। अतः चित्त को जानने के लिए पिता जी के पास जाऊँ, जानकर उसका त्याग करूँगा"।

कच स्वर्ग में अपने पिता जी के पास गया और अभिवादन कर विनीतभाव से

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

उसने पूछा—"तात ! चित्त क्या है ? कृपया चित्त का स्वरूप बतलायें, जिससे मैं उसका त्याग कर सकूँ" ?

बृहस्पति ने कहा—"पुत्र ! महानुभाव लोग अपने अहङ्कार को चित्त कहते हैं। जीव का जो अहम्भाव है, वह उसका चित्त है"।

कच ने कहा—"तैंतीस करोड़ देवताओं के गुरु जी ! लोक में अहङ्कार आत्मा के रूप में प्रसिद्ध है। उसका त्याग बड़ा कठिन है। वह कैसे सम्भव होगा" ?

बृहस्पति ने कहा—"पुत्र ! अहङ्काररूप चित्त का त्याग पुष्पमर्दन से और नेत्रोन्मीलन से भी अधिक सुकर है। अतः उसके त्याग में क्लेश नहीं। जो वस्तु अज्ञान से उत्पन्न होती है, उसका ज्ञान से नाश हो जाता है। यह अहङ्कार मोह से उत्पन्न हुआ है, अतः मोह के नष्ट हो जाने पर उसका नाश सुतरां हो जायगा। जैसे बालकों को वेताल का मिथ्या भ्रम होता है, रज्जु में सर्प का भ्रम होता है, शुष्क मरुभूमि में जल का भ्रम होता है, वैसे ही अज्ञान से मिथ्या अहङ्कार का भ्रम होता है। जैसे चन्द्रमा एक है; परन्तु भ्रमवश उसमें द्वित्व की कल्पना हो जाती है, वैसे ही यह अहङ्कार मोह से उत्पन्न होता है। वह न तो सत्य है, न असत्य है, न सत्यासत्य है। आदि, अन्त से रहित एक चैतन्यमात्र, निर्मल, आकाश से भी अधिक स्वच्छ, आत्मा सत्य वस्तु है। उसकी सत्ता से जगत् की सत्ता है। यह अहम्भाव कहाँ से उत्पन्न हुआ ? कैसे उत्पन्न हुआ ? जल में धूलि कहाँ से आई ? क्या अग्नि से कहीं जल निकलता है ? पुत्र ! देह में अहम्भाव अज्ञानजन्य है, उसको त्याग दो। तुम देश, काल आदि परिच्छेदों से रहित, स्वच्छ, नित्य, उदयस्वभाव, व्यापक, सब पदार्थों में भासमान, निर्मल, अद्वय चिन्मात्रस्वरूप हो"।

परमार्थोपदेश—

परब्रह्म परमात्मा से सर्वप्रथम समष्टि मन (हिरण्यगर्भ) उत्पन्न हुए। जैसे पुष्पों में आमोद, सागर में तरङ्ग, आदित्य में किरणजाल हैं, वैसे तुम अनन्त, नित्य, चिदात्मस्वरूप हो। तुम परिच्छिन्न अहम्भाव-स्वरूप कैसे हो गए ?

अपि पुष्पावदलनादपि लोचनमीलनात्।
सुकरोऽहङ्कृतेस्त्यागो न क्लेशोऽत्र मनागपि॥
यथैतदेवं तनय तथा शृणु वदामि ते।
अज्ञानमात्रससिद्धं वस्तु ज्ञानेन नश्यति॥
वस्तुतो नास्त्यहङ्कारः पुत्र मिथ्याभ्रमो यथा।
असन् सन्निव सम्पन्नो बालवेतालवत् स्थितः॥
यथा रज्ज्वां भुजङ्गत्वं मरावम्बुमतिर्यथा।
मिथ्यावभासः स्फुरति तथा मिथ्याप्यहङ्कृतिः॥

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

अमदेव यथा द्वित्वं मोहादिन्दौ विलोक्यते।
तथा स्फुरत्यहङ्कारो न सत्यो वाप्यसन्न च॥
एकमाद्यन्तरहितं चिन्मात्रममलान्तरम्।
खादप्यतितरामच्छं विद्यते सर्ववेदनम्॥
सर्वत्र सर्वदा सर्वप्रकाशं सर्वजन्तुषु।
तदेवैकं कचत्यम्बु विलोलास्वब्धिवीचिषु॥
अत्र कोऽयमहम्भावः कुतो वा कथमुत्थितः।
क्वाप्सु जातो रजोराशिः क्वानलादुत्थितं जलम्॥
अयं सोऽहमिति व्यर्थं प्रत्ययं त्यज पुत्रक।
तुच्छं परिमिताकारं दिक्कालविवशीकृतम्॥
दिक्कालाद्यनवच्छिन्नं स्वच्छं नित्योदितं ततम्।
सर्वार्थमयमेकार्थ चिन्मात्रममलं भवान्॥
फलकुसुमदलानां सर्वदिक्संस्थितानां
रस इव जगतां त्वं संस्थितः सर्वदैव।
विमलतरचिदात्मा नित्यमेवास्यनन्तः
क इव कच तवाहं निश्चयो भावमूर्तेः॥

योगवासिष्ठ, निर्वाण-प्र० पू० सर्ग १११, श्लो० ३१-४१

गुरु के उपदेश को हृदयङ्गम कर गुरुपुत्र कच जीवन्मुक्त हो गए। वह ममता-रहित अहङ्कार-शून्य, शान्त, मोहग्रन्थि से विनिर्मुक्त परमपद में स्थित हो गए।

———

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

२७. मिथ्यापुरुषोपाख्यान

कोई एक मायायन्त्र से भरा पुरुष था, जो बालक की कोमल बुद्धि से विक्षिप्त तथा अज्ञान से आवृत था। वह किसी निर्जन प्रदेश में उत्पन्न हुआ था और उसी शून्य स्थान में रहता था। वह आकाश में केशोण्ड्रक के समान तथा मरुभूमि में मृग-तृष्णा जल के समान मिथ्या था। उससे अतिरिक्त दूसरा कुछ वहाँ नहीं था। उस मिथ्यापुरुष के मन में सङ्कल्प हुआ कि मैं आकाश का कारण हूँ और मुझे उसकी रक्षा करनी चाहिए। आकाश मेरी सर्वप्रिय वस्तु है, अतः मुझे उसकी रक्षा करनी है। ऐसा विचार कर उसने एक गृह का निर्माण किया। उस गृहाकाश को अपना परम-प्रिय समझकर उसकी रक्षा करने लगा और नितान्त सन्तुष्ट हो गया।

कालान्तर में वह गृह नष्ट हो गया। मिथ्यापुरुष गृहाकाश के लिए विलाप करने लगा। हा गृहाकाश ! तुम बड़े अच्छे थे। महान् शोक है, जो तुम नष्ट हो गए। उस मन्दबुद्धि मिथ्यापुरुष ने आकाश की रक्षा के लिए एक कूप का निर्माण किया और कूपाकाश की रक्षा करने लगा। कालान्तर में वह कूप विनष्ट हो गया और वह पुरुष कूपाकाश के लिए विलाप करने लगा। कुछ समय के बाद उसने घट का निर्माण किया और घटाकाश की रक्षा में संलग्न हो सन्तोष का अनुभव करने लगा। दुर्भाग्य-वश वह घट नष्ट हो गया और वह मिथ्यापुरुष घटाकाश के लिए पश्चात्ताप करने लगा। उसने कुण्ड की रचना की और कुण्डाकाश की रक्षा में तत्पर हो सुख का अनुभव करने लगा। वन्य गजराज ने उस कुण्ड को भी ध्वस्त कर दिया और वह पुरुष कुण्डाकाश के लिए शोक और विलाप करने लगा। पश्चात् आकाश की रक्षा के लिए उसने एक प्रशस्त चतुःशाला का निर्माण कराया और उसके आकाश की रक्षा में सुख का अनुभव करने लगा। महाबली काल ने उस शाला को भी ध्वस्त कर दिया और वह मिथ्यापुरुष शोकनिमग्न हो गिर पड़ा। पश्चात् उसने मेघाकार का एक कुसूल निर्मित किया और उसके आकाश की रक्षा में मग्न हो गया। कालान्तर में वह कुसूल भी नष्ट हो गया और वह मूर्ख-पुरुष कुसूलनाश से विशेष परितप्त हो गया। इस प्रकार वह मिथ्यापुरुष एक के बाद दूसरे दुःख का शोकभार वहन करता हुआ किसी प्रकार जीवन व्यतीत करता था।

———

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

२८. मनु-इक्ष्वाकु-आख्यान

महाराज इक्ष्वाकु ने अपने पूज्य पितामह मनु जी से पूछा—"भगवन् ! यह सृष्टि क्या है ? यह कहाँ से आई ? इसमे उद्धार कैसे होगा" ? मनु जी ने कहा—"आपका प्रश्न सुन्दर है। यह दृश्य-जगत् वस्तुतः कुछ नहीं है। यह गन्धर्व-नगर के समान तथा मरुस्थल में जल के समान असत् है। आत्मा अविनाशी सत् है और उस महान् आदर्श रूप चिदात्मा में यह जगत् प्रतिबिम्बित सा अवस्थित है। ब्रह्म की स्फुरणशील शक्तियाँ स्वभावतः ब्रह्माण्ड के रूप में, विभिन्न प्राणियों के रूप में तथा जगत् के रूप में दृश्य होती हैं। इस जगत् में न किसी का बन्ध है, न मोक्ष है, एकमात्र ब्रह्म की सत्ता है, जो द्वित्व, एकत्व से रहित हो विजृम्भित हो रहा है। जैसे जल तरङ्ग, फेन आदि रूप भेद से स्फुरित होता है, वैसे ही चिद्रूप ब्रह्म जगत् के नाना रूपों में कचित हो रहा है और वह कचन मायिक एवं असत् है।

जैसे जल तरङ्गरूपता को प्राप्त करता है, वैसे वे जीव इस संसार में विचरण करते रहते हैं और नाना प्रकार के सुख और दुःख आदि का अनुभव करते हैं। आत्मा का सुख-दुःखादि से कोई सम्बन्ध नहीं है। आत्मा अदृश्य है और अनुभवमात्र गम्य है। परमेश्वर शास्त्रों से अथवा गुरु के द्वारा गम्य नहीं है। वह अपनी सत्त्वस्थ बुद्धि के द्वारा अनुभवगम्य है। जैसे पथिक मार्ग में राग-द्वेष से रहित बुद्धि से चलते हैं, वैसे ही इन्द्रियादि को देखना चाहिए। ममत्व-बुद्धि नहीं रखनी चाहिए। देह आदि में पदार्थ मात्र की बुद्धि रखनी चाहिए और अपने अन्तःकरण को शीतल बनाकर आत्मदृष्टि से देखना चाहिए। "मैं देह हूँ" यह बुद्धि संसार में फँसाने वाली है, अतः मुमुक्ष लोगों को ऐसी बुद्धि कभी नहीं अङ्गीकार करनी चाहिए। "मैं चिन्मात्र स्वरूप हूँ, आकाश से भी सूक्ष्म हूँ" ऐसी बुद्धि संसार-बन्धन में नहीं डालती। जैसे निर्मल जल में भीतर और बाहर तेज रहता है, वैसे आत्मा सब वस्तुओं में भीतर और बाहर रहता है। जैसे कटक-केयूर आदि सुवर्ण के सन्निवेश मात्र हैं, वैसे ही जगदादि आत्मा के वैशिष्ट्य मात्र ही हैं। महान् काल-सागर में समस्त जगत्प्रपञ्च लीन हो जाता है। उस महाकाल के स्वामी आत्मारूपी चैतन्य की भावना सदा करनी चाहिए। इस देहादि में आत्मभावना का त्याग कर वासनारहित हो विशुद्ध आत्मतत्त्व में यथासुख अवस्थित रहना चाहिए। शरीर के नष्ट हो जाने पर "मैं मर गया" इस प्रकार का लोग विलाप करते हैं। वे नहीं समझते कि आत्मा अजर, अमर है और उसका विनाश कभी नहीं होता। जैसे जल परिस्पन्द के कारण नाना प्रकार का प्रतीत होता है, वैसे ही आत्मा चिद्रूप ब्रह्म—मन के सङ्कल्पवश नाना प्रकार के आकारों में प्रतिभासित होता है।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

पथिकाः पथि दृश्यन्ते रागद्वेषविमुक्तया ।
यथा धिया तथैवैते द्रष्टव्याः स्वेन्द्रियादयः ॥
एतेषु नादरः कार्यः सता नैवावधीरणम् ।
पदार्थमात्रताविष्टास्तिष्ठन्त्वेते यथासुखम् ॥
पदार्थमात्रं देहादि धिया सन्त्यज्य दूरतः ।
आशीतलान्तःकरणो नित्यमात्ममयो भव ॥
देहोऽहमिति या बुद्धिः सा संसारनिबन्धिनी ।
न कदाचिदियं बुद्धिरादेया हि मुमुक्षुभिः ॥
कुचकोटरसंसुप्तं विस्मृत्य जननी सुतम् ।
यथा रोदिति पुत्रार्थं तथात्मार्थमयं जनः ॥
अजरामरमात्मानमवुद्ध्वा परिरोदिति ।
हा हतोऽहमनाथोऽहं नष्टोऽस्मीतिवपुर्व्यये ॥
यथा वारि परिस्पन्दान्नानाकारं विलोक्यते ।
तथा सङ्कल्पवशतश्चिद्ब्रह्म परिबृंहति ॥

योगवासिष्ठ, निर्वाण-प्र० पू० सर्ग ११८, श्लो० ५-८, १५-१७

सर्वव्यापक परमात्मा अपनी अविद्याशक्ति से नाना प्रकार की सृष्टि करके अज्ञानियों के समक्ष बालवत् क्रीड़ा करते हैं और ज्ञानियों के समक्ष विद्याशक्ति से सृष्टि-संहार करके कूटस्थ अद्वैत आत्मा में स्थित रहते हैं। वह स्वयं रागात्मिका शक्ति से संसार के बन्धन में फँस जाते हैं और वैराग्यमूलक निवृत्ति-शक्ति से मुक्त हो जाते हैं। जैसे चन्द्र, सूर्य, वह्नि तप्त लोहा एवं रत्न आदि की प्रभा या ज्वाला, वृक्षों के पत्रादि, झरनों के कण कल्पित हैं, वैसे ही ब्रह्म में जगत् कल्पित है। वह ब्रह्म अज्ञानियों के लिए दुःखप्रद है। यह जगत् को मोहने वाली माया अतिविचित्र है, जिससे जीव सम्पूर्ण अङ्गों में व्याप्त आत्मा को भी नहीं देख पाता। "यह संसार चिदादर्श में प्रतिबिम्बित है" इस प्रकार की भावना कर जो ब्रह्म रूप में अवस्थित हैं, वे ही सुखी हैं। अहंकार से विमुक्त होकर सात्त्विक भाव से "यह समस्त दृश्य जगत् चिद्रूप ब्रह्म है" ऐसी भावना करनी चाहिए। "यह सुन्दर है और यह सुन्दर नहीं है" ऐसी भावना दुःख का कारण है। समत्वबुद्धि की भावना से उस तुच्छ धारणा को दूर कर देने पर प्राणी सर्वविध दुःखों से मुक्त हो जाते हैं। बाह्य अर्थों की भावना को दूर कर ब्रह्मभाव में दृढ़ स्थिति करने से मनुष्य शोकरहित हो जाता है।

आध्यात्मिक सात भूमिकायें—

पहली भूमिका श्रवण है, जो शास्त्र, गुरु, सत्पुरुष आदि की सहायता से सम्पन्न होती है। द्वितीय भूमिका विचारणा है। तृतीय असङ्गभावना है। चतुर्थ भूमिका विलायनी है, जिसमें समस्त वासनाओं का विलय हो जाता है। पंचमी भूमिका आनन्दरूपा है, जिसमें जीवन्मुक्त पुरुष अर्धसुप्त के समान रहते हैं। छठी

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

भूमिका स्वसंवेदनरूपा है, जिसमें स्वभावतः ब्रह्माकारानुभववृत्ति बनी रहती है। इसमें पुरुष सुषुप्त को सो स्थिति में रहता है। सप्तमी भूमिका मुक्तिरूप अवस्था है, जिसमें छठो भूमिका तुर्यावस्था विलीन हो जाती है और समता, स्वच्छता और परिपूर्णता आ जाती है। तुर्यातीत अवस्था परमोत्तम मुक्तिरूप अवस्था है जो विदेह मुक्ति में पर्यवसित हो जाती है; वह जीवन्मुक्तों का विषय नहीं है।

पूर्व की तीन अवस्थायें जाग्रद्रूप हैं, चतुर्थी भूमिका स्वप्नरूप है, पाँचवीं भूमिका सुषुप्ति रूप है, अतः उसमें आनन्द के साथ एकीभाव हो जाता है। स्वसंवेदनरूप छठीं भूमिका तुर्यशब्द से कही गई है, जिसमें एकमात्र स्वसंवेदन होता है। तुर्यातीत कही जाने वाली सप्तम भूमिका अन्तिम है, वह मन एवं वाणी से परे है। केवल स्वप्रकाश ब्रह्मरूप है। उस भूमिका में सब दृश्य प्रत्यगात्मा में लीन हो जाते हैं। विषय एवं उनके सङ्ग से उत्पन्न सुख-दुःख से जिसकी बुद्धि आकृष्ट न हो, वह पुरुष जीवन्मुक्त है, उसका शरीर रहे अथवा न रहे।

जीवन्मुक्त पुरुष न मरता है, न जीता है, न वह सत् है और न असत्। वह अपने स्वरूप में आनन्द करता है। वह व्यवहार करे अथवा न करे, गृहस्थ हो, अथवा एकाकी विचरण करने वाला हो, "मैं दृश्य नहीं हूँ, "मैं विशुद्ध चैतन्य हूँ" ऐसी भावना कर वह शोक से रहित हो जाता है। "मैं लिप्त नहीं हूँ, मैं अजर, वीतराग, वासनारहित, निर्मल, चिदाकाश हूँ" ऐसो भावना कर वह शोक से रहित हो जाता है। "मैं आदि, मध्य और अन्त से रहित हूँ। शुद्ध, बुद्ध, अजर, अमर, शान्त, समभाव से प्रकाशमान हूँ" ऐसा विचार कर प्राणी अशोक हो जाता है। "तृण में, अम्बर में, भानु में, नर-नाग में, अमरों में, जो सद्रूप है, मैं वही प्रत्यक् चैतन्य हूँ" ऐसी भावना शोक को दूर कर देती है। "समस्त दिशाओं में नीचे, ऊपर, पार्श्वभाग में मेरी ही महिमा विद्यमान है" परब्रह्म परमात्मा के इस असीम विलास को जानकर कौन मनुष्य दुःखी होगा?

जिस वस्तु से सुख होता है, उससे दुःख भी अवश्य होगा; क्योंकि सुख और दुःख ये दोनों अविनाभावी हैं। अल्प वासना से युक्त हो अथवा वासनारहित हो जो अर्थ सेवन किया जाता है, वह न सुखप्रद होता है और न दुःखप्रद। वासना-रहित बुद्धि से जो कर्म किये जाते हैं, वे दग्धबीज के समान दुःखरूप अङ्कुर उत्पन्न करने में समर्थ नहीं हैं। समस्त देहेन्द्रिय से भावना को दूर कर चन्द्र-सदृश शीतल ज्ञानी पुरुष दीप्ति से सूर्य के समान चमकता है। उसकी समस्त क्रियायें जलकर भस्म हो जाती हैं। वार वार परिशीलन न करने से सत् कलायें नष्ट हो जाती हैं; किन्तु ज्ञान कला उर्वर भूमि में वोये बीज के समान दिन प्रतिदिन बढ़ती रहती है। वह कभी क्षीण नहीं होती।

इक्ष्वाकु-प्रबोधन—

मनुष्य को जब तक विषयभोग की अभिलाषा बनी रहती है, तब तक उसका नाम जीव है। वह अभिलाषा भी अविवेक के कारण ही होती है। विवेक से जब

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

विषयभोग की आशा क्षीण हो जाती है, तब आत्मा जीवरूप छोड़कर ब्रह्म रूप हो जाता है। "यह प्रमादि मेरा है और मैं इसका हूँ" इस प्रकार के भ्रम का जो सेवन करते हैं, वे नीचे की ओर जाते है। उक्त भ्रम का परित्याग करने वाले महानुभाव ऊपर से ऊपर जाते हैं। अपने स्वरूप का आश्रयण कर समस्त जगत् को चिदाकाश-स्वरूप समझना सद्दृष्टि है। जब चिदात्मा के विशुद्ध स्वरूप का ज्ञान हो जाता है, तब मानव संसार को पार कर लेता है और परमेश्वर-स्वरूप हो जाता है। ब्रह्मा, विष्णु प्रभृति जो निर्माण करते हैं, उनको चिद्रूप मैं ही निर्मित करता हूँ ऐसी भावना होनी चाहिए। दर्शनशास्त्रों में जो विवेचन किया गया है, वह सत्य है; क्योंकि चिद्विलास पर किसी प्रकार का अङ्कुश नहीं लगाया जा सकता। जो ब्रह्मचैतन्य-स्वरूप हो गया है, उसने मृत्यु को जीत लिया है। उसका चित्त विलीन हो गया है। ऐसे महापुरुष को जो परमानन्द प्राप्त होता है, उसकी तुलना नहीं की जा सकती। यह जगत् न तो अशून्य रूप है, न शून्य है, न अचित् है, न चित् है, न आत्म रूप है, न अनात्म रूप है; अपितु अनिर्वचनीय है। परमात्मा का सत्स्वरूप जान लेने पर अविद्या स्वतः नष्ट हो जाती है और समस्या समाहित हो जाती है। सुतरां मोक्ष प्राप्त हो जाता है।

अविद्या के नष्ट हो जाने पर शास्त्रार्थों के विचार को चञ्चलता नष्ट हो जाती है, काव्य, नाटक आदि की उत्कण्ठा नष्ट हो जाती है, विकल्पजाल निरस्त हो जाता है और प्राणी ब्रह्मरूप होकर अवस्थित हो जाता है।

ज्ञानी पुरुष वस्त्रादि की चिन्ता नहीं करता, उसे कोई भी वस्त्रादि से आच्छन्न कर देता है। उसे भोजन की चिन्ता नहीं, जो कुछ जहाँ कहीं मिल गया, वह ग्रहण कर लेता है। शयन के लिए उसे पलङ्ग एवं आस्तरण की आवश्यकता नहीं, जहाँ कहीं भी वह सो जाता है। ऐसा महानुभाव सम्राट् के समान सुशोभित होता है। वह वर्णाश्रमधर्म एवं आचारशास्त्र के नियन्त्रण से मुक्त हो जाता है। उस पर किसी प्रकार का नियन्त्रण नहीं। जैसे सिंह पञ्जर से निकलकर स्वतन्त्र विचरता है, वैसे वह जगज्जाल के बन्धन से मुक्त हो स्वतन्त्र विचरण करता है। जैसे शरत् काल में आकाश निर्मल हो जाता है, वैसे वह सब विषयों से मुक्त तथा वाणी का अगोचर होकर अनुपम शोभा को धारण करता है। पर्वत पर स्थित महाह्रद के समान गम्भीर एवं प्रसन्न, परानन्द के आस्वादन में सलग्न, अपनी आत्मा में वह रमण करता है। वह समस्त कर्मों के फलों का त्याग करने वाला, नित्य तृप्त, निराश्रय, पुण्य-पाप तथा हर्ष-विषाद से लिप्त नहीं होता। जैसे स्फटिक मणि नील-पीत आदि वर्णों से रञ्जित नहीं होता, वैसे तत्त्वज्ञानी कर्म के फलों से लेशमात्र भी प्रभावित नहीं होता। ब्रह्मज्ञानी जनसमूह में विहार करता हुआ भी मानापमान से—देहकर्त्तन और पूजन से—लेशमात्र भी प्रभावित नहीं होता। ब्रह्मज्ञानी पुरुष पूजा करने वाले की स्तुति नहीं करता और अपमान करने वाले पर क्रोध नहीं करता। वह किसी भी स्थिति में प्रसन्नता एवं समता को नहीं छोड़ता। ऐसा पुरुष न लोक से उद्विग्न होता है और न

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

लोक उससे उद्विग्न होता है। वह राग, द्वेष, भय आदि किसी से भी संयुक्त अथवा बियुक्त नहीं होता।

ज्ञानी पुरुष तीर्थ में अथवा चाण्डाल के गृह में शरीर त्याग करे, कोई भी अन्तर नहीं है; क्योंकि वह ज्ञान-प्राप्तिकाल में ही मुक्त तथा विदेह हो चुका है। अहङ्कार को भ्रान्ति से बन्धन होता है, उसके क्षय से मोक्ष होता है। जो कल्याण चाहने वाले पुरुष हैं, उनको यत्नपूर्वक ब्रह्मज्ञानी महापुरुषों की पूजा, स्तुति, नमस्कार, दर्शन आदि करना चाहिए। आत्मज्ञानी पुरुषों के पूजन से जो फल मिलता है, वह यज्ञ, तीर्थ, तपस्या आदि से प्राप्त नहीं होता। अतः ऐसे महानुभाव सर्वथा पूजनीय हैं।

वाचामतीतविषयो विषयाशादशोज्झितः।
कामप्युपगतः शोभां शरदीव नभस्तलम्॥
गम्भीरश्च प्रसन्नश्च गिराविव महाह्रदः।
परानन्दरसात् क्षुब्धो रमते स्वात्मनात्मनि॥
सर्वकर्मफलत्यागी नित्यतृप्तो निराश्रयः।
न पुण्येन न पापेन लिप्यते नेतरेण च॥
स्फटिकः प्रतिबिम्बेन यथा याति न रञ्जनम्।
तज्ज्ञः कर्मफलेनान्तस्तथा नायाति रञ्जनम्॥
तनुं त्यजतु वा तीर्थे श्वपचस्य गृहेऽपि वा।
मा कदाचन वा राजन् वर्तमानेऽपि वा क्षणे॥
ज्ञानसम्प्राप्तिसमये मुक्तोऽसौ विगताशयः।
अहंभ्रान्तिर्हि बन्धाय मोक्षो ज्ञानेन तत्क्षणः॥
सम्पूजनीयः स स्तुत्यो नमस्कार्यः स यत्नतः।
स निरीक्ष्योऽभिवाद्यश्च विभूतिविभवैषिणा॥
न यज्ञतीर्थैर्न तपःप्रदानैरासाद्यते तत्परमं पवित्रम्।
आसाद्यते क्षीणभवामयानां भक्त्या सतामात्मविदां यदङ्ग॥

योगवासिष्ठ, निर्वाण-प्र० पू० सर्ग १२२, श्लो० ३-६, ११-१४

तुर्यपद में स्थिति—

परमेश्वर से जीवों की उत्पत्ति विना कारण के होती है। जीवभाव प्राप्त करने के बाद उनका पुनर्जन्म उनके कर्मों के अनुसार होता है। ससार में बन्ध का कारण सङ्कल्प है। सङ्कल्प का अभाव ही मोक्ष है। विषय और इन्द्रियों के विभ्रम से सावधान होना चाहिए; क्योंकि उससे सङ्कल्प उत्पन्न होता है। किसी पदार्थ के लिए एषणा नहीं करनी चाहिए; क्योंकि वह बन्ध है, उसका अभाव मोक्ष है। अतः तृण से लेकर हिरण्यगर्भपर्यन्त किसी भी पदार्थ के लिए अभिलाषा नहीं करनी चाहिए।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

सज्जन पुरुष अतीत और भविष्य की चिन्ता नहीं करते। वे वर्तमान में जो प्राप्त है उसको अङ्गीकार करते हैं। तृष्णा, मोह, भय आदि जितने भाव हैं, वे सब मन से संश्लिष्ट हैं। अतः मन से मन का उच्छेद कर देना चाहिए। मन ही भ्रमों का कारण है। अतः उसका समूल उच्छेद आवश्यक है। मल से मल दूर किया जाता है, विष का औषध विष है, लोहा को लोहा से काटते हैं। अत शुद्ध मन से दूषित मन को विनष्ट कर देना चाहिए। जीव के तीन रूप हैं—स्थूल, सूक्ष्म और पर। स्थूल रूप पाणि-पाद वाला शरीर है। सूक्ष्म रूप सङ्कल्पात्मक चित्त है, जो आतिवाहिक रूप है। आदि अन्त से रहित, सत्य, चिन्मात्र, निर्विकल्प समस्त जगत् का प्रकाशक जो रूप है, वह पर है। इसीको तुर्य भी कहते हैं। स्थूल एवं सूक्ष्म को छोड़कर इसी रूप में आस्थावान् बनना चाहिए।

अहंभाव का त्याग कर जो असक्त, सम, स्वच्छ स्वरूप है, वह तुर्य है। जीवन्मुक्तों में जिसकी अन्तिम स्थिति है, जो स्वच्छ, सम और शान्त है, जो व्यवहार-काल में साक्षी की अवस्था है, वह तुर्यावस्था है। यह अवस्था न जाग्रत् है, न स्वप्न है और न सुषुप्ति है। प्रवुद्ध महानुभावों का जो यह शान्त जगत् है, उसको तुर्य पद कहते हैं। अज्ञानियों के लिए वही जगत् यथास्थित है। अहङ्कार का त्याग होने पर समता उत्पन्न होती है और चित्त नष्ट हो जाता है. वही तुर्यावस्था कही जाती है।

अहंभावानहंभावौ त्यक्त्वा सदसती तथा।
यदसक्तं समं स्वच्छं स्थितं तत्तुर्यमुच्यते ॥
या स्वच्छा समता शान्ता जीवन्मुक्तव्यवस्थितिः।
साक्ष्यवस्थाव्यवहृतौ सा तुर्यकलनोच्यते ॥
नैतज्जाग्रन्न च स्वप्नं सङ्कल्पानामसम्भवात्।
सुषुप्तभावो नाप्येतदभावाज्जडतास्थितेः ॥
शान्तसम्यक्प्रवुद्धानां यथास्थितमिदं जगत्।
विलीनं तुर्यमेवाहुरबुद्धानां स्थिरं स्थितम् ॥
अहङ्कारकलात्यागे समतायाः समुद्भवे।
विशरारौ कृते चित्ते तुर्यावस्थोपतिष्ठते ॥

योगवासिष्ठ, निर्वाण-प्र० पू० सर्ग १२४, श्लो० २३-२७

परमार्थस्वरूप-वर्णन—

पुरुष दो प्रकार के होते हैं। प्रवृत्ति मार्ग के अनुयायी तथा निवृत्ति मार्ग के समर्थक। प्रवृत्ति मार्ग का पथिक स्वर्गाभिलाषी होता है और निवृत्ति मार्ग का पथिक मोक्ष का अभिलाषी। जो भोग के अभिलाषी हैं वे निर्वाण को नहीं चाहते। वैषयिक भोगों के लिये यह संसार तथा स्वर्ग उपयोगी है। उक्त अर्थ की सिद्धि के लिए प्रयत्नशील पुरुष प्रवृत्त कहे जाते हैं। उसके विपरीत जो पुरुष संसार की व्यवस्था का सारहीन समझकर तत्तत् क्रियाओं के आचरण में प्रवृत्त नहीं होते और कूटस्थ

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

चिदात्मा को परमविश्रान्ति का स्थान मानकर आत्मज्ञान की उपलब्धि के लिए सतत प्रयत्नशील हैं, वे निवृत्त कहे जाते हैं।

निवृत्ति मार्ग की प्रथम भूमिका के उपासक वे हैं जो विचार करते हैं कि इस संसार-सागर को कैसे पार किया जाय ? विषयों में आसक्ति का त्याग कर वैराग्य का उदय कैसे हो ? भोग-साधनों के प्रति उनके हृदय में नीरसता की भावना उत्पन्न होती है, चित्त-शुद्धि के अनुकूल क्रियाओं—सत्सङ्ग, उपासना आदि—में उनकी रुचि बढ़ती है। पामरों की ग्राम्य चेष्टाओं से उन्हें घृणा होती है। वे दूसरों का छिद्रान्वेषण नहीं करते और स्वयं शुभ कर्मों का आचरण करते हैं। मन को उद्विग्न न करने वाले अल्प-श्रमसाध्य कर्मों को वे करते हैं। वे पापों से डरते हैं और भोग की कामना नहीं करते। वे स्नेह एवं प्रणय से युक्त, कोमल, उचित, देश और काल के अनुरूप वचन बोलते हैं। ऐसे पुरुष शुभेच्छा-नामक प्रथम भूमिका में प्रविष्ट माने जाते हैं। वे मन, कर्म और वाणी से सज्जनों की सेवा करते हैं और खोज-खोज कर ज्ञानी पुरुषों की शरण में जाते हैं और उनके मुख से अध्यात्मशास्त्रों का श्रवण करते हैं।

उक्त गुणों एवं विशिष्टताओं से विभूषित साधक विचार-नामक द्वितीय भूमिका में अवतीर्ण होता है। वह श्रुति, स्मृति, सदाचार, धारणा, ध्यान और कर्मों के अनुष्ठाताओं में सुयोग्यतम विद्वानों की शरण में जाता है। ऐसे गुरुओं के मुख से अध्यात्मशास्त्र का श्रवण करता है और पश्चात् कर्म एवं अकर्म का निर्णय करता है। वह मद, अभिमान, मात्सर्य, मोह, लोभ आदि का त्याग उस प्रकार करता है जिस प्रकार सर्प केचुल का। ऐसा पुरुष शास्त्र, सज्जन और गुरु की सेवा से परमतत्त्व के रहस्य को यथावत् जान लेता है।

इस प्रकार वह तृतीय भूमिका - असङ्ग में प्रवेश करता है, वहाँ अध्यात्मशास्त्रों के वाक्यार्थ में स्थिर मति हो वह तपस्वियों के आश्रमों में, अध्यात्मशास्त्र की कथाओं के कथनोपक्रम में, विद्वान् महापुरुषों की सङ्गति में, शिला पर आसीन हो अपना जीवन व्यतीत करता है। वनवास से उसको उपशम की प्राप्ति होती है और असङ्गता का सुख भी विक्षेपों के न होने के कारण प्राप्त होता है। अध्यात्मशास्त्रों के अभ्यास से तथा पुण्य कर्मों के अनुष्ठान से उसकी आत्मदृष्टि विकसित होती है। इस भूमिका को प्राप्त कर ज्ञानी पुरुष दो प्रकार के असङ्ग का अनुभव करता है। प्रथम सामान्य तथा द्वितीय श्रेष्ठ। निष्क्रिय एवं नित्य तृप्त होने के कारण मैं न कर्त्ता हूँ और न भोक्ता। व्यापारशून्य होने के कारण मैं किसी की क्रिया का बाधक एवं बाध्य भी नहीं हूँ। यह सामान्य असङ्ग है। सुख-दुःख पूर्व कर्मों से निर्मित हैं तथा देवता के अधीन हैं। सुख-दुःख का मैं कर्त्ता नहीं। ये विषयभोग महारोग हैं, सम्पत्तियाँ विपत्तियाँ हैं। संयोग वियोग के लिए ही होता है, आधियाँ, मानसिक व्यथायें और व्याधियाँ शारीरिक रोग हैं। सबको ग्रसने के लिए काल सदा प्रस्तुत है। इस प्रकार से पदार्थों में जो अनास्था है, वह सामान्य असङ्ग है।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

पौरुष प्रयत्न तथा निरन्तर अभ्यास से आत्मतत्त्व के सुदृढ़ हो जाने पर "मैं कर्त्ता नहीं हूँ; किन्तु ईश्वर कर्त्ता है, पूर्व जन्म का तथा इस जन्म का मेरा कोई कर्म नहीं है" इस भावना से शान्त, मौन रहना श्रेष्ठ असङ्ग है। न भीतर, न बाहर, न ऊपर, न नीचे, न दिशाओं में, न आकाश में, न पदार्थों में, न जड़ में, न चेतन में, आलम्बनरहित होकर जो स्वप्रकाश, चिद्रूप, शान्त, आकाशसदृश स्वच्छ, एकरस, गम्भीर, आद्यन्तरहित, अज, अत्यन्त सुन्दर ब्रह्म की अनुभूति है, वह श्रेष्ठ असङ्ग है। यह तृतीय भूमिका विवेक-ज्ञान का फल है।

उक्त तीनों भूमिकायें जाग्रत् कही गई हैं; क्योंकि जाग्रत् में व्यावहारिक सत्ता से जगत् का भान होता है, वैसे ही इनमें होता है।

चतुर्थी भूमिका स्वप्न है। स्वप्न में जैसी जगत् की प्रातिभासिक सत्ता होती है, वैसी ही इस भूमिका में जाग्रत् की प्रातिभासिक सत्ता होती है। पूर्वोक्त तीन भूमिकाओं में अज्ञान का नाश हो जाने पर इस भूमिका में ज्ञान का उदय होता है। इस भूमिका में योगीजन जगत् को विभागरहित, आदि-अन्तरहित, आनन्दैकरस देखते हैं। अद्वैत भाव के स्थिर हो जाने पर योगीजन संसार को स्वप्न के समान देखने लगते हैं।

पञ्चम भूमिका का नाम सुषुप्ति है; क्योंकि सुषुप्ति में सभी व्यावहारिक एवं प्रातिभासिक ज्ञान—जाग्रत् एवं स्वप्न के—विलीन हो जाते हैं। इस भूमिका में पहुँचा हुआ ज्ञानी चैतन्य-सत्ता रूप बनकर स्थित रहता है। वह समस्त विकारों से रहित होकर अद्वैत ब्रह्म में स्थित रहता है। द्वैत भावना से रहित हो वह भीतर से प्रबुद्ध हो जाता है और गाढ़ सुषुप्त के सदृश स्थित रहता है। यद्यपि वह बाह्य व्यापार में भी रत रहता है, तथापि अन्तर्मुख होने से उसकी मुद्रा शान्त रहती है और वह निद्रालु के समान लक्षित होता है। वासनाशून्य हो इस भूमिका में अभ्यास करता हुआ वह छठी भूमिका में प्रवेश करता है।

षष्ठी भूमिका का नाम तुर्या है, वहाँ न सत् है, न असत् है, न अहंकार है और न अनहंकार। निर्विकल्पक होने के कारण वह द्वैत एवं अद्वैत दोनों से शून्य है। अहंग्रन्थि के विच्छिन्न होने से उसके सब सन्देह नष्ट हो जाते हैं। वह भावनारहित जीवन्मुक्त है। देह धारण करने पर भी वह निर्वाण को प्राप्त हुआ चित्र-प्रदीप के समान स्थित रहता है, वह बाहर और भीतर से शून्य, आकाश में शून्य घट के समान स्थित रहता है। बाहर और भीतर आनन्द से सर्वात्मना पूर्ण होने के कारण वह समुद्रस्थ पूर्ण कुम्भ के समान दृष्टिगोचर होता है, ऐसा योगी सप्तम भूमिका में प्रवेश करता है।

सप्तम भूमिका का नाम विदेहमुक्तता है, वह वाणी का विषय नहीं है और संसार की भूमियों की सीमा है। शैव उसे शिव कहते हैं, वेदान्ती उसे ब्रह्म कहते हैं,

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

सांख्य-योग वाले उसे प्रकृति-पुरुषविवेक कहते हैं। अन्य विद्वानों ने भी अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार उसे कल्पित रूपों में अङ्कित किया है। वह उपदेश के योग्य नहीं है, तथापि किसी प्रकार से उसका उपदेश किया जाता है।

उक्त सातों भूमिकाओं के अभ्यास से मनुष्य दुःखरहित हो जाता है। इच्छा-रूपी करिणी का विनाश किये विना इन भूमिकाओं में मनुष्य विजयी नहीं हो सकता।

इच्छा शरीर-रूपी कानन में रहती है। वह शोक, मोह आदि विविध उल्लासों को उत्पन्न करती है। इन्द्रियाँ उसके बच्चे हैं, जिह्वा उसके भाषण का माध्यम है, शुभाशुभ कर्म उसके दो दाँत हैं, वह मनरूपी गूढ़ स्थान में रहती है। वासनासमूह उसका मद है, संसार-दृष्टि उसकी समरभूमि है। उसका नाम वासना, ईहा, मन, चित्त, सङ्कल्प, भावना, स्पृहा आदि है। धैर्य-नामक श्रेष्ठ अस्त्र से इस इच्छारूपी करिणी पर विजय प्राप्त करनी चाहिए। जब तक इच्छा है, तब तक संसार का अस्तित्व है। इस इच्छा का विनाश ही मोक्ष है। विषयों की स्मृति का परित्याग करने से इच्छा का अङ्कुर नष्ट हो जाता है। इसके अङ्कुर को विष-वृक्ष के अङ्कुर के समान तुरन्त काट देना चाहिए। इच्छा करने वाला पुरुष कभी भी दीनता को नहीं छोड़ सकता। श्रेष्ठ उपाय यह है कि चित्त समस्त व्यापारों से मुक्त होकर भीतर निश्चेष्ट पड़ा रहे। सङ्कल्प (स्मरण) सब अनर्थों का मूल है। अस्मरण शिवरूप है। स्मृति का परित्याग कर शान्त हो बैठ जाना नितान्त श्रेयस्कर है।

मैं पूर्ण बल देकर उच्च स्वर से कह रहा हूँ कि असङ्कल्प परम कल्याणमय है। मौनभाव से परमपद प्राप्त किया जा सकता है, जहाँ कि साम्राज्य भी तृण के समान तुच्छ है। सब का सार यह है कि सङ्कल्प सब प्रकार का बन्धन है और उसका अभाव मोक्ष है। संसार को अज, शान्त, अनन्त, ध्रुव, अव्यय, चिद्रूप समझकर शान्तभाव में अवस्थित रहना सर्वोत्तम है। विषयों का अवेदन (विस्मरण) परम श्रेष्ठ योग है, वही सर्वत्याग है।

असंवेदनमात्रेण नोदेतीच्छाभवाङ्कुरः ।
मनागभ्युदितैवेच्छा छेत्तव्यानर्थकारिणी ॥
असंवेदनशस्त्रेण विषस्येवाङ्कुरावली ।
इच्छाविच्छुरितो जीवो विजहाति न दीनताम् ॥
स्वसंवेदनयत्नस्तु तूष्णीमेवान्तरासनम् ।
अवधानविनिर्मुक्तं सुप्तं शवशलं यथा ॥
स्मरणं विद्धि सङ्कल्पं शिवमस्मरणं विदुः ।
तत्र प्रागनुभूतं च नानुभूतं च भाव्यते ॥
अनुभूतां नानुभूतां स्मृतिं विस्मृत्य काष्ठवत् ।
सर्वमेवाशु विस्मृत्य गूढस्तिष्ठ महामतिः ॥

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

ऊर्ध्वंबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति तत्।
असङ्कल्पः परंश्रेयः स किमन्तर्न भाव्यते ॥
किल तूष्णीं स्थितेनैव तत्पदं प्राप्यते परम्।
परमं यत्र साम्राज्यमपि राम तृणायते ॥
अवेदनं विदुर्योगं चित्तक्षयमकृत्रिमम्।
अत्यन्तं तन्मयो भूत्वा तथा तिष्ठ यथासि भोः ॥
शिवं सर्वगतं शान्तं बोधात्मकमजं शुभम्।
तदेकभावनं राम सर्वत्याग इति स्मृतः ॥

योगवासिष्ठ निर्वाण प्र०-पू० सर्ग १२६, श्लो० ८७-८६, ६२-६५, १००-१०१

———

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

२९. भरद्वाजाख्यान

भरद्वाज मुनि ने अपने गुरु महर्षि वाल्मीकि से कहा—"भगवन्! मुझे विश्रान्ति कब मिलेगी और मैं संसार-सागर को कैसे पार कर सकूँगा"?

महर्षि वाल्मीकि ने कहा—"भरद्वाज! अविद्या का प्रपञ्च सर्वथा असत् है, मिथ्या है। पण्डित लोग इसको समझते है और अज्ञानी जन संसार में वृथा फँसे रहते हैं। चैतन्य से अतिरिक्त संसार कुछ नहीं है। इस रहस्य को तुम समझो और अध्यात्मशास्त्र के अभ्यास से अपने चित्त को विशुद्ध करो। इस जगत्प्रपञ्च का मूल शून्य है और उसका अन्त भी शून्य है। ऐसी स्थिति में उसका मध्य भी शून्य है। अनादि वासना के दोष से यह संसार दृश्यमान होता है। वस्तुतः वह गन्धर्व-नगर के समान असत् है और अनेक प्रकार के भ्रमों से परिपूर्ण है। तुम चैतन्य रूप अमृत-कन्दली को छोड़कर वासनारूप विष का सेवन क्यों कर रहे हो? सुधारस से परिपूर्ण चितिरूप नदी तब तक जगत्तरङ्गों से युक्त है, जब तक आत्मज्ञान नहीं होता। अविद्या से उत्पन्न ये समस्त भेद जल के बुद्बुद् के समान ज्ञानरूपी समुद्र में विलीन हो जाते हैं, अर्थात् ज्ञान हो जाने पर जगत् के भेदप्रपञ्च दूर हो जाते हैं। एकाकी अज्ञानरूप समुद्र ने समस्त जगत् को व्याप्त कर रखा है। उसमें अनादि वासना रूप वायु से उत्पन्न 'अहम्' नामक महान् तरङ्ग है। राग, द्वेष, ममता आदि साधारण तरङ्ग एवं विवर्त्त हैं।

इस संसरणशील जगत् से जब सबको जाना है, तब क्यों, किसलिए शोक मनाया जाय? विवेक से मोह को दूर करना चाहिए। "यह समस्त जगत् आत्म-स्वरूप है"। जब यह सिद्धान्त है, तब किस वस्तु के लिए शोक है? ब्रह्म का जगद्रूप में विवर्त्तन अज्ञानियों के लिए है। जो ज्ञानी हैं, वे तो जगत् को विशुद्ध चिदानन्द रूप में देखते हैं। अज्ञानी मनुष्य कभी शोक करता है और कभी आनन्द मनाता है और जो ज्ञानी हैं, तत्ववेत्ता हैं, वे तो सदा प्रसन्न रहते हैं। अविद्यामल से आवृत होने के कारण अज्ञानियों को तत्त्वज्ञान नहीं होता। वे जल को स्थल तथा स्थल को जल समझते हैं; क्योंकि उनको संशय सदा बना रहता है। ये जो मायिक आविर्भाव और तिरोभाव हैं, वे सब असत् हैं। अतः उनके लिए शोक करना नितान्त मूर्खतापूर्ण है। जन्म-जन्मान्तरीय वासनाओं एवं अदृष्ट के कारण मानव मायाजाल में फँस जाता है। अतः उद्धार के लिए परमेश्वर की उपासना आवश्यक है जिससे कि मन विशुद्ध हो जाय और परमपद—विशुद्ध चिदानन्द—को प्राप्त कर सके। साकार परमात्मा की उपासना से सत्त्व की वृद्धि होती है और परमात्मरूप परमतत्त्व को

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

ज्ञात करने की क्षमता आती है। केवल पौरुष-प्रयत्न से कार्य सिद्ध नहीं हो सकता। अतः भगवान् महेश की अनुकम्पा प्राप्त करनी चाहिए, जिससे कि प्राप्तव्य अर्थ की उपलब्धि हो सके।

केवल कुलीनता, सदाचारिता, नीति एवं पराक्रम से ही सफलता नहीं मिलती; क्योंकि जन्म-जन्मान्तर के संचित कर्म अत्यन्त प्रबल हैं। अतः महेश्वर के प्रसाद की कामना नितरां वाञ्छनोय है, जिससे कि वाञ्छित अर्थ की सिद्धि हो जाय। गुरु की अनिर्वचनीय शक्ति, शिष्य का वैदग्ध्य—जिससे वह रहस्य को समझ सके—तथा मोह-लता का विनाश, ये सब नियति के खेल हैं। ईश्वरेच्छा ही सबको एकत्र कर समुचित समाधान कर सकती है, अन्य में सामर्थ्य नहीं।

भरद्वाज! तुम विवेक से मोह का आवरण भङ्ग करो। निस्सन्देह तुम असाधारण ज्ञान प्राप्त करोगे। महात्मा लोग बड़ी-बड़ी आपत्तियों के आने पर भी धैर्य से उनका समाधान करते हैं। साधारण जन सामान्य संकटों के आजाने पर घबड़ा जाते हैं। तुम महासत्त्व बनकर आगे बढ़ो। आत्मज्ञान अनेक जन्मों के सुकृत-जन्य पुण्य-राशि से अवाप्त होता है। वह कभी न कभी अवश्य प्राप्त होगा। ऐसी भावना करनी चाहिए। विषयानुराग के कारण जो कर्म आज बन्धन में हेतु बन गए हैं, वे ही विषयानुराग के क्षीण हो जाने पर मोक्ष-साधक बन सकते हैं। जैसे वर्षा का जल दावानल को शान्त कर देता है, वैसे ही सत्कर्मों का प्रचण्ड वेग प्राचीन दुष्कर्मों को नष्ट कर ताप को शान्त कर देता है।

यदि तुम कल्याण चाहते हो, तो सब कर्मों को छोड़कर ब्रह्म में समाहित हो जाओ। जब तक तुम्हारी दृष्टि बाह्य विषयों में हैं, तब तक तुम्हें यह जगत् दिखाई देता है। जैसे चञ्चल तरङ्गों से युक्त समुद्र क्षुब्ध हो इधर उधर अपने तट की ओर बढ़ता है, तरङ्गों के शान्त हो जाने पर वह समुद्र भी शान्त हो जाता है, वैसे ब्रह्म की ओर उन्मुख होने पर यह जगत्प्रपञ्च शान्त हो जाता है और विशुद्ध सच्चिदानन्द घन की अनुभूति होने लगती हैं। वे लोग जो तृणों के समान संसार-सागर के हर्ष ओर शोक के तरङ्गों में बहते रहते हैं, महात्माओं की गणना में नहीं आते। नाना प्रकार की क्रीड़ाओं को करने वाला काल इस विशाल जगत् का संहार करता रहता है। काल कोई विचार नहीं करता। वह जगत् के समस्त जीव-जन्तुओं एवं पदार्थों को विनष्ट करता रहता है। मर्त्यलोक में रहने वाले अल्पायु जीवों की क्या कथा है, जब वह (काल) देवताओं का भी भक्षण कर लेता है। तुम्हें दूर से संसार का खेल, नृत्य आदि देखना चाहिए, उसमें स्वयं प्रवृत्त नहीं होना चाहिए। इस जगत् के क्षणभङ्गुर स्वभाव को देखकर ज्ञानोजन अल्पमात्रा में भी शोक नहीं करते। इसलिए तुम अमङ्गलस्वरूप शोक का त्याग करो और मङ्गलमय पदार्थों का विचार करो, सदा परम मङ्गलमय चिदानन्दघन परमात्मा की भावना करो। जो लोग देव, द्विज और गुरु पर श्रद्धा एवं भक्ति रखते हैं, निश्चय ही उन पर भगवान् महेश्वर अनुग्रह करते हैं।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

भरद्वाज जी ने कहा—"भगवन् ! आपके अनुग्रह से मैंने रहस्य जान लिया। वैराग्य से वढ़कर कोई दूसरा बन्धु नहीं है और संसार से बढ़कर कोई दूसरा शत्रु नहीं है। सत् शास्त्रों के अभ्यास एवं वैराग्य से तत्त्वज्ञान की पुनः पुनः भावना करनी चाहिए।

शून्यमूलः प्रपञ्चोऽयं शून्यताशिखरः सखे।
सारशून्यतया मध्येऽप्यनास्था सन्मनीषिणाम् ॥
प्राङ् नास्ति चरमे नास्ति वस्तु सर्वमिदं सखे।
विद्धि मध्येऽपि तन्नास्ति स्वप्नवृत्तमिदं जगत् ॥
तत्त्वमेकं यदात्मेति जगदेतत्प्रचक्षते।
ततोऽन्यः कस्तवातीतो यस्तात विषयः शुचाम् ॥
बालान् प्रति विवर्त्तोऽयं ब्रह्मणः सकलं जगत्।
अविवर्तितमानन्दमास्थिताः कृतिनः सदा ॥
कृतं पुरुषकारेण केवलेन च कर्मणा।
महेशानुग्रहादेव प्राप्तव्यं प्राप्यते नरैः ॥
नाभिजात्यं न चारित्र्यं न नयो न च विक्रमः।
बलवन्ति पुराणानि सखे कर्माणि केवलम् ॥
सखे संन्यस्य कर्माणि ब्रह्मणः प्रणयी भव।
नेष्यसे यदि संसारचक्रावर्त्तभ्रमः शमम् ॥
न जातु ते विगण्यन्ते गणनासु गरीयसाम्।
ये तरङ्गैस्तृणानीव ह्रियन्ते हर्षशोकयोः ॥
का कथा मर्त्यपिण्डानां निमेषान्तरवासिनाम्।
अपि देवनिकाया ये तेऽपि दुष्कालगोचराः ॥
देवद्विजगुरुश्रद्धाभरबन्धुरचेतसाम् ।
सदागमप्रमाणानां महेशानुग्रहो भवेत् ॥
संहृतिस्थितिसम्भूतिभेदैर्योऽनेकधा स्थितः।
एकोऽपि सन्नमस्तस्मै सच्चिदानन्दमूर्त्तये ॥

योगवासिष्ठ, निर्वाण-प्र० पू० सर्ग १२७, श्लो० १४, १९, २७-२९, ३१, ४७, ५०, ५४, ५८, ६२

महर्षि वाल्मीकि के उद्बोधन से भरद्वाज मुनि कृतार्थ हो गए।

———

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

३०. विद्याधरोपाख्यान

लोकालोक पर्वत के शिखर पर एक विद्याधर रहता था। उसने विषयभोग-वासना में अपना जीवन सुदीर्घ काल तक व्यतीत किया। अन्त में उसे वैराग्य हुआ। वह जिज्ञासु होकर विचार करने लगा कि "इस संसार से कैसे मुक्ति मिले? जन्म-मरण का चक्र निरन्तर चलता रहता है। सांसारिक वासनायें दुःख एवं सन्ताप की जननी हैं। कैसे उद्धार हो" यह विचार करता हुआ वह ज्ञानी गुरु की खोज करने लगा। सौभाग्यवश वह कागभुशुण्डि जी के पास पहुँच गया। उसने उनसे प्रार्थना की— "भगवन्! मुझे संसार-सागर को पार करने का मार्ग बतलायें"।

तदनुसार कागभुशुण्डि ने उसे उपदेश दिया और कहा—"विद्याधर! जहाँ अहंभाव है, वहाँ अज्ञान है, वहाँ बन्धन है, वहाँ जगत् है। आकाश के वर्ण के समान आविर्भूत जगत् का मूल कारण अहंभाव है। अहङ्काररूप बीज से ब्रह्मरूप चिदाकाश में वासना के रस से सिञ्चित जगद्रूप वृक्ष उत्पन्न हुआ है। तारागण इस वृक्ष के पुष्पसमूह हैं, समस्त पर्वत इसके पल्लव हैं, गङ्गा आदि नदियाँ इसकी नाड़ियों के प्रवाह हैं, नाना प्रकार के भोग इसके सुन्दर फल हैं।

यह जगत् अहङ्काररूप पवन का स्पन्द है। जैसे पवन और स्पन्द, जल और द्रवत्व, अग्नि तथा उष्णता अभिन्न हैं, वैसे अहङ्कार और जगत् अभिन्न हैं। अहङ्कार के भीतर जगत् है और जगत् के भीतर अहङ्कार है, ये दोनों परस्पर एक दूसरे के सहायक हैं तथा इन दोनों में आधाराधेयभाव सम्बन्ध है। जो मनुष्य जगत् के बीज अहङ्कार को ज्ञान से नष्ट कर देते हैं, वे मल से भरे जगद्रूप चित्र को ज्ञानरूप जल से धो डालते हैं। परमार्थ में यह अहङ्कार कुछ नहीं है; शशशृङ्ग के समान अकारण ही उत्पन्न-सा प्रतीत होता है, जबकि उसकी वास्तविक सत्ता नहीं है। सर्व-व्यापक, अनन्त, निर्विकल्पक परब्रह्म में अहङ्कार की कारणता नहीं है। अतः वह असत् है। वन्ध्यासुत के समान अहङ्कार का कोई अस्तित्व नहीं है। अहङ्काररूप बीज के अभाव से यह जगत् नहीं है। इस प्रकार चिन्मात्र निर्वाण ही अवशिष्ट रह जाता है। अतः शान्त होकर तुम सुखपूर्वक बैठो। अहङ्कार एवं जगत् के अभाव से तुम्हारा बाह्य एवं आभ्यन्तर जगत् शान्त हो गया है। कोई हेय दुःख नहीं रह गया है। तुम प्रबुद्ध हो चुके हो और शान्त ब्रह्मस्वरूप हो।

बाह्य एवं आभ्यन्तर दृश्यप्रपञ्च के कल्पनारूप कलङ्क से शून्य, शुद्ध, शान्त, नित्य, शिव ईश्वर को तुमने प्राप्त कर लिया है। अब मायाजाल के भ्रम में मत पड़ो"।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

कागभुशुण्ड के उपदेश से विद्याधर का चित्त शान्त हो गया और वह समाधिस्थ हो गया। बार-बार जगाने पर भी वह न जगा। स्वल्प उपदेश से ही विद्याधर को ज्ञान हो गया। शुद्ध चित्त में उपदेश शीघ्र प्रभावी होता है, जैसे जल में तैलबिन्दु। जैसे सूर्यकान्त मणि के भीतर प्रविष्ट होकर सूर्य-किरणें अग्निशिखा उत्पन्न करती हैं, वैसे भव्यपुरुषों के अन्तःकरण में प्रविष्ट होकर उपदेश विचार-नामक अग्नि-शिखा को उत्पन्न करते हैं। विचार से अकस्मात् ममता, राग-द्वेष, इच्छा, तृष्णा आदि का विनाश हो जाता है। फलस्वरूप तत्त्वज्ञान की अनुभूति होती है, जो परमपद को प्राप्त करने का उत्तम साधन है।

भ्रमस्य जागतस्यास्य जातस्याकाशवर्णवत्।
अहंभावोऽभिमन्तात्मा मूलमाद्यमुदाहृतम्॥
वासनारससंसिक्तादहंबीजकणादयम्।
ब्रह्माद्रौ व्योमविपिने जायते त्रिजगद्द्रुमः॥
अहन्त्वपवनस्पन्दो जगदित्यवगम्यताम्।
अहन्त्वपद्मसौगन्ध्यं जगदित्यवबुध्यताम्॥
नाहन्त्वजगती भिन्ने पवनस्पन्दवत्सदा।
पयोद्रवत्वमिव च वह्निरुष्णत्वमेव च॥
जगद्बीजमहन्त्वं यो मार्ष्टि बोधादवेदनात्।
अलं चित्रं जलेनेव तेन धौतं जगन्मलम्॥
व्यपगतकलनाकलङ्कशुद्धः शिवमसिशान्तमसीश्वरोऽसि नित्यः।
खमपि भवति पर्वतोपमानं जगदपि वा परमाणुरूपमेव॥

योगवासिष्ठ, निर्वाण-प्र० उ० सर्ग १५, श्लो० २, ३, १०, ११, १४, २०

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

३१. मङ्कि-उपाख्यान

महर्षि वसिष्ठ जी ने श्रीराघवेन्द्र से कहा—"प्रिय वत्स ! प्राचीन काल में मङ्कि नामक एक ब्राह्मण था। वह किसी जङ्गल में पहुँचा, जहाँ कड़ी धूप थी और वायु प्रचण्ड वेग से बह रहा था। आकाश में धूलि उड़ रही थी। तप्त वालू चमक रहे थे, जिनका कि अन्त दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था। वह स्थान विशाल था और जन-सञ्चार से शून्य था। महाराज अज के आमन्त्रण पर मैं आकाशमार्ग से अयोध्या जा रहा था। मैंने वहाँ एक पथिक को कुछ कहते सुना।

पथिक कह रहा था—"अहो ! दुर्जन का समागम जैसे परिताप के लिए होता है, वैसे ही प्रचण्ड आतप से युक्त यह सूर्य भी कष्ट दे रहा है। शरीर के अङ्ग गलते जा रहे हैं, धूप से मानो अग्नि निकल रहा है और वृक्षों के पत्ते सङ्कुचित हो सूख रहे हैं। मैं कुछ काल तक विश्राम के निमित्त अगले छोटे ग्राम में चलूँ"।

ऐसा निश्चय कर वह ग्रामोन्मुख हो रहा था कि मैंने उससे कहा—"पथिक ! आपका स्वागत है। आप उस निर्जन ग्राम में क्यों जा रहे हैं ? वहाँ आपको विश्रान्ति नहीं मिलेगी। वहाँ पामर जन निवास करते हैं और उनके साथ कोई सुख नहीं मिलेगा। नमक का पानी पीने से पिपासा और बढ़ती है। वे सब जङ्गली पुलिन्द जाति के लोग हैं और हरिण के समान इधर उधर दौड़ते फिरते हैं। वे कुछ विचार नहीं करते और दुराचार से नहीं डरते। वे काम और अर्थ के उपार्जन में लगे रहते हैं और आपातरमणीय विषयों में ही उनकी प्रवृत्ति होती है। सन्मार्ग से वे सदा दूर रहते हैं। अन्धकाराच्छन्न गुहा में वास श्रेयस्कर है, शिला के मध्य में कीट होना सह्य है, मरुस्थल में मृग होना वाञ्छनीय है; परन्तु ऐसे मूर्खों का समागम वाञ्छनीय नहीं है"।

पथिक ने कहा—"भगवन् ! आप कोई पूर्णात्मा, आत्मज्ञानसम्पन्न महात्मा प्रतीत हो रहे हैं, जो शान्त भाव से इस लोक को देख रहे हैं। क्या आपने अमृत-पान किया है ? क्या आप सम्राट् हैं ? अथवा विराट् पुरुष हैं ? आप पूर्णचन्द्र के समान शोभित हो रहे हैं ? आप शान्त, मनोहर, प्रदीप्त तथा सर्वसामर्थ्यवान् प्रतीत हो रहे है। यद्यपि आप पृथ्वी पर हैं तथापि समस्त लोकों के ऊपर आकाश में स्थित-से प्रतीत हो रहे हैं। आप कलावान्, कलङ्करहित, अन्तःशीतल, प्रकाशमय, समरूप, रसायनपूर्ण, पूर्ण चन्द्रमा के समान भासमान हैं। भगवन् ! आप हिरण्यगर्भ के समान संसार की सृष्टि करने की क्षमता रखते हैं; परन्तु आप वैसा न कर शान्त भाव में अवस्थित हैं"।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

"मैं शाण्डिल्यगोत्र में उत्पन्न मङ्कि-नामक ब्राह्मण हूँ। मैं तीर्थयात्रा के प्रसङ्ग में निकला था। अब घर जाने को समुद्यत हूँ। विद्युत् के समान जीवन क्षणभङ्गुर है, ऐसा समझकर मुझे वैराग्य हो रहा है और मैं घर जाना नहीं चाहता हूँ। आप कृपया मुझे आत्मज्ञान का उपदेश प्रदान करें; क्योंकि आपके सदृश महानुभाव दुर्लभ हैं। दर्शनमात्र से मित्र बना देने वाले आप जैसे महात्मा को पाकर कौन मनुष्य आनन्द-विभोर न हो जायगा ? मेरा मन मोह से संसार-भ्रमजाल में पड़ा है। कृपया अपने उपदेशों से मेरा उद्धार कीजिए"।

वसिष्ठ ने कहा—"हे महामुने ! मैं ब्रह्मलोकवासी मुनि वसिष्ठ हूँ। राजर्षि महाराज अज के कार्य से अयोध्या जा रहा हूँ। पथिक ! आप विषाद न करें। आप मनीषियों के मार्ग पर आ गए हैं। जब तक ज्ञान एवं वैराग्य का उदय नहीं होता, तब तक ऐसी भव्य आकृति, सुन्दर बुद्धि और शान्तस्वरूप नहीं हो सकता। आप क्या जानना चाहते हैं और संसार को किस प्रकार छोड़ना चाहते हैं ? स्पष्ट कीजिए"।

मङ्किवैराग्य—

मङ्कि ने कहा—"भगवन् ! संशय को दूर करने की क्षमता रखने वाले महा-पुरुष की खोज में मैंने दसों दिशाओं में भ्रमण किया; परन्तु कोई सज्जन पुरुष नहीं मिला। आज आपके दर्शन से मैं कृतार्थ हूँ। संसार में जन्म एवं मरण के दुःख का अनुभव कर मैं अत्यन्त चिन्तित हूँ। सांसारिक सुख दुःख में परिणत हो जाते हैं। अतः सुख की अपेक्षा मैं दुःख को ही अच्छा समझता हूँ। भोगविषयिणी अभिलाषाओं के बढ़ जाने के कारण मेरी बुद्धि परमपुरुषार्थ को प्राप्त करने में सचेष्ट नहीं हैं। मेरा जीवन व्यर्थ ही नष्ट हो रहा है। शुष्क लता के सदृश यह तृष्णा न फूलती है, न फलती है और न विवेकरूपी रस को ग्रहण करती है। पुत्र, कलत्र, बन्धु-बान्धव में आसक्ति के कारण मैं भवसागर पार न कर सका और दिन प्रतिदिन मेरी शक्ति क्षीण होती जा रही है। आशारूपी तरङ्गों से मेरा चित्त विषयों की ओर घूमता रहता है। इन्द्रियों पर विजय प्राप्त न करने के कारण विवेकी पुरुष हमें दूर रखते हैं। अहङ्कार-रूप यक्ष से संयुत यह अज्ञानरूप रात्रि अभी क्षीण नहीं हुई है; क्योंकि अज्ञानान्धकार-रूप मत्त हस्ती के लिए सिंह, कर्मरूप तृण के लिए अग्नि एवं वासनारूप रात्रि के क्षय के निमित्त विचाररूप सूर्य का उदय नहीं हुआ है।

चित्तरूप मत्त-मतङ्ग ने असार पदार्थों को तात्त्विक मान लिया है और इन्द्रियाँ स्वेच्छया क्रिया-कलाप की ओर आकृष्ट हैं। ऐसे भयङ्कर सङ्कट-काल में मेरे कल्याण के लिए—संसार-सागर को पार करने के लिए—जो युक्ति हो, कृपया उसका उपदेश करें"।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

भङ्गिबोधन—

वसिष्ठ जी ने कहा—"मुने! संवेदन, भावन, वासना एवं कलना, ये चार अनर्थों के मूल हैं। ये सब अविद्या में स्फुरित होते हैं। इन्द्रियों से विषयों का जो उपयोग है, वह संवेदन है। विषयों के नष्ट हो जाने पर उनका जो चिन्तन है, वह भावन हैं। चिन्ता करने से जो एक प्रकार का लाञ्छन उत्पन्न होता है, वह वासना है। वासना से भावी शरीर के लिए जो स्मरण है, वह कलना है। वेदन और भावन सब प्रकार के दोषों के आकर और आपत्तियों के घर हैं। विवेकी पुरुष का संसार वासना के साथ नष्ट हो जाता है, जैसे वसन्त के अन्त में पृथिवी का रस। वासना ही संसाररूपी गुल्म का विस्तार करती है, जैसे वसन्त ऋतु वन में फैलने वाली कदली का विस्तार करता है, जैसे पृथ्वी में मधुमास का रस बनकर स्थित रहता है, वैसे ही जीवचैतन्य में वासनारूपी रस संसार के रूप में उदित होता है। जैसे आकाश में शून्यता के अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु नहीं है, वैसे जगत् में अद्वैत, शून्य, निर्मल, चिन्मात्र से अतिरिक्त कुछ नहीं है।

"चिद्रूप वेदनात्मा देह, इन्द्रिय आदि से भिन्न नहीं है" इस प्रकार की जो अनादि भ्रान्ति है, वह अविद्या, भ्रम एवं संसार है। सत् के रूप में भासमान हो रहा यह असत् संसार अज्ञान के कारण है। परमात्मरूप तत्त्वज्ञान के प्रकाश से वह क्षण भर में नष्ट हो जाता है, जैसे बालक का वेताल। बोध से जगत् के दृश्य पदार्थों का बोध हो जाने पर सभी दृश्यपदार्थ चिद्रूप हो जाते हैं, जैसे जगत् की समस्त नदियाँ समुद्र में मिलकर एक हो जाती हैं। जैसे मिट्टी के पात्र मिट्टी से अन्य नहीं, वैसे चिन्मय जगत् के विषय चिति से अन्य नहीं। जो वस्तु तत्त्वज्ञान से अवगत होती है, वह ज्ञानस्वरूप ही है। अतः ज्ञान और ज्ञेय दोनों एकरूप हैं। द्रष्टा, दर्शन और दृश्य यह त्रिपुटी एकमात्र बोध है। अतः उससे अन्य कुछ नहीं है, जगत् के पदार्थ जगत् में मिल जाते हैं, जैसे जल जल में, दूध दूध में। अतः विभिन्न अनुभव भी मिल जाने से एक हो जाते हैं। इससे चिति की एकता सिद्ध होती है। काष्ठ, उपल आदि का यदि चिति के साथ अभेद न माना जाय, तो शशशृङ्ग के समान कभी उनका बोध ही न हो। यह दृश्य भी बोधमात्र है। अज्ञान के कारण इसकी प्रतीति अन्य रूप में होती है। बोध से यह चिद्रूप हो जाता है। समस्त दृश्य जगत् बोधरूप है, जैसे वायु स्पन्द-रूप है, समुद्र जलरूप है, वैसे ही जगत् बोधरूप है। दूध और पानी का ऐक्य है, द्रष्टा और दृश्य पदार्थों का भी ऐक्य है, परन्तु लाख और काष्ठ का ऐक्य नहीं है, उनका तो संयोगमात्र है।

'अहम्' बुद्धि बन्धरूप संसार को जन्म देती है, उसका अभाव मुक्ति को प्रदान करता है। इस बन्धन पर अधिकार कर लेने में अशक्तता क्या है? जैसे चन्द्रद्वय की प्रतीति, मृगतृष्णा में जलबुद्धि असत् है, वैसे ही यह अहङ्कार असत् है। उसकी उत्पत्ति ही नहीं है। 'यह मेरा है' यह बन्ध का कारण है, 'मैं नहीं हूँ' यह ममता का अभाव मुक्ति प्रदान करता है। इसको अपने आयत्त कर लेने पर अज्ञान का

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

अस्तित्व कहाँ? अजड़ वस्तु जड़ नहीं हो सकती, जड़ अजड़ नहीं हो सकता, ऐसी स्थिति में उनकी एकता कैसी? कुत्सित विचारों से, वासनाओं से तथा अभिमान मद से भरे लोग बाह्य दृष्टि से आत्मतत्त्व की समीक्षा करते करते ऐसे नीचे गिरते हैं, जैसे पर्वत से च्युत शिलायें। इसलिए स्ववासनारूप वायु द्वारा उड़ाए गए च्युत पुरुषरूप तिनके, दुःखसागर में डूबते-उतरते रहते हैं, जिसकी गणना सम्भव नहीं। अपनी वासना एवं अभिमान के अनुसार राग आदि दोषों में रँगे हुये लोग कन्दुक के समान इधर-उधर घूमते फिरते हैं। वे कालान्तर में स्थावर, कृमि आदि रूप में संसार की यातनायें सहते रहते हैं।

संसार में आगत जीवों को नाना प्रकार के क्लेश छेदन, भेदन, दहन, कर्तन आदि भोगने पड़ते हैं। संसार के ये सब पदार्थ परस्पर सम्बद्ध नहीं हैं, जैसे जङ्गलों में पत्थर के टुकड़े; परन्तु उनको भावना मिलाती है जैसे शृङ्खला। आश्चर्य है कि वासना के कारण लोग नाना प्रकार के दुःखों को विविध जन्मों में भोगते हैं। यह वासना अत्यन्त विषम है, जिसके वश में होकर मानव वृथा संसार-भ्रम का अनुभव करते हैं। ज्ञानी पुरुष आह्लादक, अमृत से पूर्ण, शुद्धप्रकाशस्वरूप और शान्त है। जो पूर्वापर का विचार किए विना जो चाहता है, करता है, ऐसे मूर्खजन तथा बालक में क्या भेद है? जो प्राण देकर भी सामने आए आमिष को नहीं छोड़ते, उन मूर्खों और मछलियों में क्या अन्तर है? मानव पक्ष में आमिषरूप विषय समझना चाहिए। शरीर, नारी, धन प्रभृति जितने विषय हैं, वे सब शुष्क बालू से निर्मित कसोरे के समान शीघ्र ही नष्ट होने वाले हैं। ब्रह्मा से लेकर तृणपर्यन्त सैकड़ों योनियों में घूमते हुए चित्त को तब तक शान्ति प्राप्त न होगी; जब तक वह शुभ मार्ग का अवलम्बन न करेगा। जिनका चित्त विवेक और अवधान से युक्त नहीं है, उन्हें कामरूप पिशाच डस लेगा; परन्तु जो सावधान और जागरूक हैं, पिशाच उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकता। जैसे ईक्षणरूप कार्य रूप का अवलोकनमात्र है, वैसे ही अहङ्कारयुक्त जगत् संवित् का प्रसरण मात्र है। जैसे आँख का आवरण रूपों के प्रकाश का बाधक है, वैसे संवित् का संवरण जगत् के सभी दृश्यों की शान्ति है।

शुद्ध संवित् अपने असत् स्फुरणरूप व्यापार से आकाश में अहङ्कारसहित जगत् का विस्तार करती है, जैसे पवन स्पन्दन का विस्तार करता है। ब्रह्मचिति अन्य का निर्माण न करती हुई जगद्रूप में स्फुरित होती है। वस्तुतः जगत् असत् है। जैसे मिट्टी या सुवर्ण में कल्पित कलश मिट्टी अथवा सुवर्ण से पृथक् होकर स्थित नहीं रह सकता, वैसे जगत् चिति से अलग होकर स्थित नहीं रह सकता। जैसे आकाश शून्यमात्र है, वायु स्पन्दमात्र है, तरङ्गादि जलमात्र हैं, वैसे जगत् संविन्मात्र है। जैसे जल में प्रतिबिम्बित पर्वत जलरूप है, वैसे आत्मा में प्रतीयमान तीनों जगत् शान्त, आकाशरूप तथा भेदरहित सँवित्स्वरूप ही हैं। विकारों से रहित, शान्त, ज्ञानी पुरुष के भीतर ऐसी शीतलता उत्पन्न होती है, जिसके समक्ष चन्द्रमा अग्निकण के समान प्रतीत होता है। ब्रह्म-शब्द से जो सत्ता कही जाती है, वह सबका निजी रूप है, उसमें किसी

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

प्रकार की बाधा नहीं है। यह समस्त जगत् तन्मय है। मन को रोककर प्रमातारूप से शान्त हो बैठना चाहिए। प्रमाता न नामरूपात्मक मनन है और न चक्षु आदि रूप-प्रमाण है, वह अनन्त, अज एवं अव्यय है। जो मनुष्य आकाशसदृश निर्मल आत्मस्वरूप में स्थित हैं, उसको नाम-रूप की प्रतीति नहीं होती। यह प्रतीति तो उनको होती है, जिनको स्वरूप में स्थिति का अभ्यास नहीं है।

हिरण्यगर्भ का मन जगद्रूप चित्र का निर्माण करता है। उसके पास न रङ्ग है, न कूची है और न कोई चित्र का आकार है। वह स्वेच्छया सङ्कल्प से उपादान का निर्माण कर लेता है। मन जिस किसी वस्तु का निर्माण करता है, वहाँ वह स्वयं उन वस्तुओं के समान बन जाता है। दृश्य वस्तुओं के अभाव में कौन, कहाँ और किसका निर्माण करता है? सुख-दुःख की भावना मन के शान्त हो जाने पर आत्मस्वरूप हो जाती है, जितने पदार्थ हैं, वे वास्तव में चिदाकाशरूप हैं। उनमें स्वप्न-शैलादि के समान मिथ्या पार्थिवरूपता स्थित है। ब्रह्मसत्ता में जब अहन्ता की भावना आती है, तब वह संसाररूप भ्रम को उत्पन्न करती है। जब उसका अभाव हो जाता है, तब वह शान्तिप्रदायिका हो स्वरूपनिष्ठ हो जाती है। सुवर्णनिर्मित कटक आदि सुवर्ण से पृथक् भासमान होते हैं; परन्तु आत्मा से व्यतिरिक्त अहन्ता का अस्तित्व नहीं है। विज्ञानात्मा शान्त, शून्य, निर्वाण, मौनी, कर्त्ता एवं शीतल है। जैसे यन्त्र की प्रतिभा वासना एवं स्पन्दरहित है, वैसे आत्मा व्यवहारकाल में भी वासना एवं स्पन्द से रहित है। जैसे झूले में सोये बालक के अङ्ग स्पन्दमान नहीं होते, वैसे तत्त्वज्ञानी के शरीर में किसी प्रकार की स्पन्दात्मक क्रिया नहीं होती है। वह अपने स्वरूपानुभव में स्थित है। बाह्यवृत्तियों से रहित, आशा, एषणा आदि से शून्य, जो स्वस्वरूपपरिज्ञान है, वह शान्त, अनन्त, आत्मस्वरूप है।

विषयों की अभिलाषा बन्ध है, उनकी उपेक्षा मुक्ति है। जो स्वरूप में विश्रान्त है, उसे क्या इच्छा होगी? यह पार्थिव शरीर भ्रममात्र और असत् है। इसके निमित्त किसको, कहाँ और किसकी अपेक्षा हो सकती है? ज्ञानी पुरुष की समस्त इच्छायें शान्त हो जाती हैं, उसकी उत्कण्ठायें दूर हो जाती हैं और वह अपने स्वरूप में स्थित रहता है"।

मेरे उपदेशों को सुनने के बाद मङ्कि मुनि का मोह दूर हो गया। प्रारब्धवश जो कुछ कर्तव्य करना था, उसको उन्होंने वासनारहित होकर किया। सौ वर्षों के बाद वह उसी पर्वत पर समाधिस्थ हो गए। उनकी सब इन्द्रियाँ शान्त हो गईं। जगाने पर वह जग जाते थे। इस प्रकार उन्होंने परम निर्वाणपद प्राप्त किया।

सर्व एव त्विमे भावा देहदारधनादयः।
क्षिप्रमाशुष्कसिकताशरावविशरारवः ॥
शून्यमात्रं यथा व्योम स्पन्दमात्रं यथानिलः।
जलमात्रं यथोर्म्यादि संविन्मात्रं तथा जगत् ॥

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

निर्वाणस्योपशान्तस्य ज्ञस्य सोदेति शीतता ।
अन्तर्यंत्रेन्दवोऽप्येते दीप्तज्वलनबिन्दवः ॥
या सत्ता ब्रह्मशब्दाख्या रूपं सर्वस्य तन्निजम् ।
न यत्र काचिद् बाधास्ति सर्वं तन्मयमव्ययम् ॥
सर्वेषामेव भावानां चिदाकाशात्मनामपि ।
मिथ्यैव स्वप्नशीलानामिव पार्थिवता स्थिता ॥
अहन्त्वोल्लेखतः सत्ता भ्रमभावविकारिणी ।
तदभावात्स्वभावैकनिष्ठता शमशालिनी ॥
अपेक्षैव घनो बन्धः उपेक्षैव विमुक्तता ।
सर्वशब्दान्विता तस्यां विश्रान्तेन किमीप्स्यते ॥

योगवासिष्ठ, निर्वाण-प्र० उ० सर्ग २६, श्लोक ६, १७, १६, २१, २८-२६, ३६

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

३२. मन-हरिणकोपाख्यान

समाधिरूपी वृक्ष विवेकरूपी जङ्गल में उगता है। उस वृक्ष का मूल-बीज वैराग्य है। परिष्कृत चित्तरूपो भूमि में वह उगता है। सत्सङ्गरूपी क्षीर तथा शास्त्र-रूपी अमृत से उसे सींचना चाहिए। त्रिविध तप एवं दान तथा पुण्यमय तीर्थस्थानों में वासरूपी यत्न से उस बीज की रक्षा करनी चाहिए। बीज के अङ्कुरित हो जाने पर उसकी रक्षा के लिए सन्तोष एवं उसकी प्रिया मुदिता को संरक्षक बनाना चाहिए। आशारूपी विहगों, पुत्र, मित्र आदि में अनुरागरूप पक्षियों तथा काम, गर्व आदि गृध्रों से सन्तोषरूपी रक्षक के द्वारा अङ्कुर की रक्षा करानी चाहिए। यम, नियम, प्राणायाम आदि सत्क्रियारूपी झाड़ू से वहाँ के रज (रजोगुण) को दूर करना चाहिए। सम्पत्ति एवं प्रमदारूप वज्रपात से धैर्य, औदार्य, दया आदि यत्नों से जप, तप, दम आदि के द्वारा प्रणव-जपरूप त्रिशूल से उस वज्रपात को बचाना चाहिए। इस प्रकार सुरक्षित ज्ञानबीज से विवेकरूपी अङ्कुर उत्पन्न होता है। विवेकरूपी अङ्कुर से प्रकाश-युक्त चिन्भूमि अतिसुन्दर प्रतीत होने लगती है। उस विवेकरूपी अङ्कुर से दो पत्ते निकलते हैं—एक का नाम शास्त्रविचार तथा दूसरे का नाम साधुसङ्गम है।

शास्त्रार्थरूपी वर्षा का जल पाकर तथा वैराग्यरूपी रस से सुपुष्ट वह अङ्कुर अल्प समय में ही उन्नति को प्राप्त होता है। शास्त्रार्थ, साधुसम्पर्क तथा वैराग्यरस से वह सुपुष्ट हो जाता है, फलतः राग-द्वेष-रूपी मर्कटों के हिलाने-डुलाने पर भी वह कम्पित नहीं होता।

विवेकरूपी अङ्कुर से दूर दूर तक फैलने वाली सत्यता, सत्ता, धीरता, निर्वि-कल्पता, समता, शान्ति, मैत्री, करुणा, कीर्ति, आर्यतारूप लतायें निकलती हैं। इन लताओं से परिपुष्ट ज्ञानरूपी वृक्ष कल्पवृक्ष-सा हो जाता है। लता, पत्र, पुष्प से सुशोभित वह ज्ञानवृक्ष ब्रह्मसाक्षात्काररूपी उत्तम फल का प्रदाता है, जिससे कि जीवों को परम विश्रान्ति प्राप्त होती है।

जन्म-जन्मान्तर के विविध दुःखों से जीर्ण-शीर्ण, श्रान्त मनरूपी मृगपथिक उस वृक्ष की शीतल छाया में विश्राम करता है। जिस भूमानामक आनन्द का नाम भी अज्ञानीजन नहीं जानते, उस पुनर्जन्म से रहित मोक्ष-नामक सुख को (आत्म-विश्रान्ति को) मनरूप मृग उस कल्पवृक्ष के नीचे बैठकर प्राप्त करता है।

मन विवेकरूपी वृक्ष पर अपना पैर दृढ़ रूप से जमा लेता है और उच्च पद को प्राप्त करता है। वह अपने प्राक्तन संस्कारों को छोड़कर उत्तम फल को प्राप्त

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

करने के लिए प्रयत्नशील होता है। उसे अपने पुराने कर्मों और विचारों पर हँसी आती है कि मैंने तुच्छ सांसारिक पदार्थों की प्राप्ति के लिए अपना जीवन लगा दिया था। वह प्राप्त वस्तुओं की उपेक्षा नहीं करता और अप्राप्त को कामना नहीं करता। वह समभाव से शान्त अन्तःकरणयुक्त रहता है। वह अपने उदात्त विचारों से महापुरुषों के समान शोभित होता है। अपने पुत्र, स्त्री, धन, मित्र आदि को वह स्वाप्निक पदार्थों के समान असत् देखता है।

वह लौकिक पदार्थों की चिन्ता न कर शुद्ध बोधमय, समुन्नत, आत्मज्ञान रूप फल को ही अपने सामने देखता है। अपनी पूर्वावस्था की विपत्तियों का स्मरण कर सन्तोषरूपी अमृत की उपलब्धि से अर्थनाश आदि होने पर दुःखी नहीं होता। बाह्यपदार्थों में हो रही विरक्ति का वह स्वागत करता है। विधिवश सम्प्राप्त भोगों में उसकी आस्था नहीं रहती। वह ज्ञानी पुरुष उच्च भूमिका में पहुँच जाता है। वहाँ वह ज्ञानी पुरुष निरतिशय आनन्दरूप फल (ब्रह्म को) प्राप्त करता है, उसको चखता है, उसका स्वाद लेता है तथा तृप्त होता है आत्मस्वरूप में उसकी विश्रान्ति हो जाती है और परमपद की प्राप्ति होती है। उसकी भेदबुद्धि विनष्ट हो जाती है और वह विशुद्ध सच्चिदानन्दरूप ब्रह्मभाव में अवस्थित हो जाता है।

लोकैषणा, दारैषणा तथा धनैषणा से रहित पुरुष ब्रह्मपद में विश्राम पाता है। जिस योगी पुरुष ने आत्म-साक्षात्कार कर लिया है, उसकी चित्तवृत्ति पृथ्वी पर पड़ी पुष्पमाला के समान है, अर्थात् वह माला जैसे रखी जाती है, अपने स्वरूप में पड़ी रहती है, वैसे ही ज्ञानी पुरुष का चित्त भी रहता है। जैसे काष्ठ अथवा पत्थर के स्तम्भ में शालभञ्जिका (मूर्त्ति) न सद्रूप है, न असद्रूप है, वैसे परमात्मा में यह विश्व है। दृश्य पदार्थों में जिस पुरुष की आत्यन्तिक विरक्ति होती है, वही प्रबुद्ध है, तत्त्वज्ञानी है; जो अप्रबुद्ध है, वह दृश्यपदार्थों का त्याग नहीं कर सकता। द्रष्टा और दृश्य का भेद जब विलीन हो जाता है और चित्त की वृत्ति आत्माकार में परिणत हो जाती है, तब ज्ञानी पुरुष समाधिस्थ कहा जाता है। दृश्य पदार्थों में विरक्ति और चिदानन्दैकरस में स्थिति तत्त्वज्ञानियों का लक्षण है। इसके विपरीत दृश्यपदार्थों में आसक्ति अज्ञानियों का स्वभाव (लक्षण) है। अज्ञजन विषय-सुख में ही फँसे रहते हैं। तृष्णा से रहित, त्रिविध एषणाओं (धन, दार, लोकविषयिणी) से मुक्त, आत्म-निष्ठ तत्त्वज्ञानी अनायास ज्ञान में प्रवृत्त रहता है। तृष्णा से रहित ज्ञानी का अनन्त ध्यान स्वयमेव प्रवृत्त हो जाता है, जैसे पक्षविहीन पर्वत की स्वस्थान में स्थिति। विशुद्ध तत्त्वज्ञान के हो जाने पर समाधि के लिए यत्न नहीं करना पड़ता है, उनकी समाधि स्वतः लग जाती है। विषयों से आत्यन्तिक विरक्ति ही समाधि है। जिन नररत्नों में उत्तमकोटि का वैराग्य उत्पन्न हो गया है, वे सर्वथा स्तुत्य हैं। जिनका वैराग्य अत्यन्त दृढ़ है, उनकी समाधि भी सुमेरुपर्वत के समान दृढ़ है। ऐसे योगियों को देवगण भी ध्यान से विरत नहीं कर सकते।

विश्व-शब्दार्थ अज्ञानियों के लिए है, तत्त्वज्ञानियों को तो विश्व एवं विश्वेश्वर,

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

मूर्ख एवं पण्डित में कोई भेदज्ञान नहीं है। अतः विश्व की विश्वेश्वर से पृथक् सत्ता ही नहीं है।

आत्मस्वरूप में विश्रान्ति के तीन उपाय हैं—

(१) शास्त्रार्थ, शास्त्रचिन्तन। (२) अध्यात्मशास्त्रज्ञों का समागम विद्वत्सङ्ग। (३) निर्वाण में ध्यान। यह तीसरा मार्ग सर्वश्रेष्ठ है। ज्ञान और वैराग्य इन दोनों में किसी एक की सिद्धि हो जाने से दोनों की सिद्धि हो जाती है। ज्ञानाग्नि से जगद्रूपी तूल दग्ध होकर बुद्धिरूपी झंझावात से उड़कर परमपद में न जाने कहाँ विलीन हो जाता है। ज्ञानी पुरुष के चित्त में जगत् की ज्ञप्ति तथा अभिलाषा दोनों चित्प्रकाशस्वरूप ही भासते हैं। निस्सन्देह, बोध हो जाने पर ज्ञानी को न अहङ्कार होता है और न जगत् की स्थिति रहती है। वासना ही मनरूपी मृग है और वह विचार से नष्ट हो जाती है। मन असद्वस्तु है और उसके रहते मोक्ष नहीं हो सकता। मन के नष्ट हो जाने पर ही उसको मोक्ष होता है। यही इस मन-हरिणकोपाख्यान का आशय है।

केवलं केवले शुद्धे बोधात्मनि महोन्नते।
दत्तदृष्टिः फले तस्मिन् परं समधिरोहति॥
लोकैषणाविरक्तेन त्यक्तदारैषणेन च।
धनैषणावियुक्तेन तस्मिन् विश्रम्यते पदे॥
यथाऽप्रकटिताङ्गान्तःसंस्थिता शालभञ्जिका।
न सती नासती स्तम्भे तथा विश्वस्थितिः परे॥
आत्यन्तिकी विरसता यस्य दृश्येषु दृश्यते।
स बुद्धो नाप्रबुद्धस्य दृश्यत्यागे हि शक्तता॥
स्वभावो दृश्यवैरस्यमेव तत्त्वविदो निजः।
दृश्यस्पन्दनमेवाहुरतत्त्वज्ञत्वमुत्तमाः॥
वितृष्णस्यात्मनिष्ठत्वादेषणात्रयमुज्झतः॥

योगवासिष्ठ, निर्वाण-प्र० उ० सर्ग ४५, श्लो० १८, ३१, ३४, ३६, ३९

———

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

३३. पाषाणाख्यायिका

महर्षि वसिष्ठ ने कहा—"रामभद्र ! एक समय की बात है—जब मैंने ज्ञान प्राप्त कर लिया था और मेरा मन भी शान्त हो चुका था—मैं आत्मविश्रान्ति के लिए एक सुन्दर विविक्त स्थान की खोज में था। लोकव्यवस्था को देखकर मैं खिन्न था। मैं अनुभव कर रहा था कि लौकिक स्थिति कितनी नीरस, क्षणभङ्गुर एवं दुःखदायिनी है। अतः मैं किसी ऐसे स्थान की खोज में था, जहाँ देवता, दानव, सिद्ध आदि न जा सकें और वहाँ जाकर गुप्त रूप से अदृश्य हो मैं निर्विकल्पक समाधि में स्थित हो अद्वितीय, शान्त परमपद में अवस्थित हो जाऊँ" ?

मैं खोज करने लगा कि ऐसा प्रदेश कौन है ? पर्वत मेघ, जल, सिंह आदि से आक्रान्त होने के कारण समाधि के योग्य नहीं है। भयङ्कर नागों, हिंसक पशुओं तथा कोल-भिल्ल आदि दुर्जनों से आक्रान्त होने के कारण वह उचित स्थान नहीं है। जङ्गल, समुद्र, आदि भी विविध प्रकार के जीवों से आक्रान्त होने के कारण समाधि-योग्य नहीं हैं, केवल आकाश ही अवशिष्ट रह जाता है।

वह (आकाश) भी विक्षेपों से भरा पड़ा है। कहीं सिद्धगण घूम रहे हैं, कहीं मेघ भयङ्कर गर्जन कर रहे हैं, कहीं विद्याधरों की बैठकें हो रही हैं, कहीं यक्ष-मण्डली विराजमान है, कहीं बड़े-बड़े नगर घूम रहे हैं, कहीं मेघ बरस रहे हैं, कहीं युद्ध हो रहा है, कहीं योगिनियाँ नृत्य कर रहीं हैं, कहीं ग्रह-मण्डल घूम रहा है, तो कहीं पर भयङ्कर झंझावात बह रहा है, कहीं पिशाचसङ्घ घूम रहा है, तो कहीं नगरों के समूह दृष्टिगोचर हो रहे हैं, कहीं आकाश सूर्य-मण्डल से आक्रान्त हैं, तो कहीं चन्द्रमण्डल से। कहीं पर अग्नि की धधकती ज्वालायें दिखाई दे रही हैं, तो कहीं भयङ्कर वेताल नृत्य कर रहे हैं।

यह सब देखकर, मैं आकाश में अत्यन्त दूर चला गया, जो आकाश का भाग सर्वथा विविक्त एवं विस्तृत था, वहाँ मन्द मन्द पवन बह रहा था। वह स्थान प्राणियों के लिए अगम्य था।

वहाँ (शून्य स्थान में) मैंने अपने सत्यसङ्कल्प से एक कुटी का निर्माण किया और उसमें प्रविष्ट हो गया। वहाँ पद्मासन लगाकर, शान्त चित्त, मौन हो मैंने निर्विकल्पक समाधि लगाई। एक सौ वर्ष तक मैं समाधिस्थ था। उसके बाद मेरी आँखें खुलीं। इतना बड़ा काल निमेष के समान व्यतीत हो गया; क्योंकि समाधि में ब्रह्मानन्द की अनुभूति का रसपान करने में समय का कुछ भी ध्यान नहीं रहता।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

पाषाणाख्यायिका के विषय में पूछने पर वसिष्ठ जी ने कहा—"राघवेन्द्र ! पाषाण के उदर में जो सर्वथा नीरन्ध्र है, अत्यन्त घना है, सहस्त्रों सृष्टियाँ हैं। गुल्म, लता, अङ्कुर आदि तथा प्राण, वायु, जल, तेज आदि के उदर में सैकड़ों सृष्टियाँ हो सकती हैं, यह बतलाने के लिए पाषाणोपाख्यान की चर्चा की जा रही है"।

श्रीराघवेन्द्र ने कहा—"भगवन् ! यदि जल, वायु, पाषाण आदि में सहस्त्रों सृष्टियाँ स्थित हैं, तो यह क्यों नहीं कहते कि चिदाकाश में सहस्त्रों सृष्टियाँ स्थित हैं"।

सर्ग ही ब्रह्म है—

वसिष्ठ जी ने कहा—"राघवेन्द्र ! यह सर्वथा सत्य है कि चिदाकाश में सहस्त्रों सृष्टियाँ विद्यमान हैं। यह सूचित करने के लिए पाषाणोपाख्यान का वर्णन किया गया है। परमार्थ दृष्टि से सर्ग के आदि में दृश्य उत्पन्न ही नहीं हुआ और आज भी नहीं है। जो अवभास हो रहा है, वह ब्रह्म ही ब्रह्म में स्थित है। अणुमात्र भी ऐसी पृथिवी नहीं है, जो सहस्त्रों सृष्टियों से भरी न हो। सृष्टि कहीं नहीं है, जो कुछ है, वह सब ब्रह्माकाश ही है। आरोप-दृष्टि से अधिष्ठानसत्ता के कारण अणु-अणु में सहस्त्रों सृष्टियाँ विद्यमान हैं। अपवाद-दृष्टि से न कोई परमाणु है, न कोई सृष्टि है। एकमात्र ब्रह्माकाश ही भासमान है। इसी प्रकार तेज, वायु, आकाश, पञ्च महाभूत, शैल, हिरण्यगर्भ आदि के विषय में है। सर्वत्र आरोप-दृष्टि से सृष्टियाँ विद्यमान हैं और अपवाद-दृष्टि से ब्रह्माकाश ही व्याप्त है। हिरण्यगर्भ की सृष्टि में ऐसा कोई अणु नहीं है, जो ब्रह्मरूप न हो। वस्तुतः सर्ग और ब्रह्म में कोई भेद नहीं है, केवल वाणी में भेद है। सृष्टियाँ ही ब्रह्म हैं और ब्रह्म सृष्टि है। जैसे अग्नि और उष्णता, सूर्य और उष्णता।

नीरन्ध्रैकघनाङ्गस्य पाषाणस्यापि कोरके।
सन्ति सर्गसहस्राणि कथयेति प्रदर्श्यते॥
कुड्यादौ सन्ति सर्गौघा इति चेत्कथ्यते मुने।
तत्त्वे विभान्ति सर्गौघा इति किं न प्रदर्श्यते॥
सर्गेषु नाणुरप्यस्ति न ब्रह्मात्मैव यः सदा।
ब्रह्मसर्गास्तथेत्येष वाचि भेदो न वस्तुनि॥
सर्गा एव परं ब्रह्म परं ब्रह्मैव सर्गता।
मनागप्यस्ति न द्वैतमत्राग्न्यर्कौष्ण्ययोरिव॥

योगवासिष्ठ, निर्वाण-प्र० उ०, सर्ग ५८, श्लो० ५, ८, १८-१९

जगज्जाल का वर्णन—

श्रीराघवेन्द्र ने कहा—"भगवन् ! उस नभःकुटीर में सौ वर्ष के बाद जब आपका ध्यान भङ्ग हुआ, तब क्या हुआ" ?

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

वसिष्ठ मुनि ने कहा—राघवेन्द्र ! ध्यान से जग जाने पर मैंने एक मधुर ध्वनि सुनी, जिसके शब्द अस्पष्ट थे। मैंने अनुमान किया कि वह ध्वनि किसी स्त्री के मुख से निःसृत है और समीपस्थ है। मैंने शब्दकर्ता की खोज के लिए सभी दिशाओं (दशों दिशाओं) में आँखें दौड़ाईं; परन्तु कुछ पता न चला। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि गगन के इस भाग में जो सिद्धों के मार्ग से लाखों योजन दूर है और जहाँ कोई आ नहीं सकता, वहाँ स्त्री का शब्द कैसे सुनाई देता है ? यहाँ आकाश निर्मल तथा असीम है। चारों ओर देखने पर भी कोई प्राणी दिखाई नहीं देता।

तब मैंने विचार किया कि इस शरीर को छोड़कर मैं चिदाकाशवपु हो जाऊँ, जिससे तुरन्त पता लग जाय। तदनुसार मैंने ध्यान किया और अपने शरीर को छोड़ दिया। मैं संवित्स्पन्दनरूप चिदाकाश बन गया। पश्चात् उसका भी त्याग कर मैं बुद्धितत्त्व में पहुँच गया। उसका भी त्याग कर अन्त में मैं चिदाकाशरूप वास्तविक स्वरूप में हो गया। वहाँ मैंने त्रैलोक्य के समूह को, अगणित संसारों को तथा लाखों ब्रह्माण्डों को देखा।

वे सर्ग अव्याकृत, निर्मल, आकाशमात्र थे। अतः एक दूसरे से छिपे थे। कहीं सुप्त पुरुषों की स्वप्नसृष्टियाँ थीं, कहीं समारोहपूर्ण थीं, कहीं शून्य थीं। कुछ सृष्टियाँ उत्पन्न हो रही थीं, कुछ नष्ट हो रही थीं, कुछ बढ़ रही थीं, कुछ विद्यमान थीं, कुछ अतीत थीं और कुछ भविष्य के गर्भ में थीं, कुछ अनेक चित्रों से शोभित थीं, कुछ बड़ी-बड़ी भित्तियों से युक्त थीं, कुछ राजाओं से आक्रान्त थीं। कुछ सृष्टियाँ निरावरण थीं, कुछमें आवरण था, कुछमें पाँच, कुछमें छः, कुछ में दस, कुछमें सोलह, कुछमें चौबीस तथा कुछमें छत्तीस आवरण थे, कुछ शून्य आकाशरूप थीं, कुछ प्राणियों से भरी थीं, कुछ पाँच महाभूतों से भरी थीं, कुछ पृथिवीमात्र से बनी थीं, कुछमें पृथिवी आदि चार महाभूत ही थे। किन्हीं सृष्टियों में पृथिवी और जल दो ही थे, किन्हींमें पृथिवी, जल, तेज तीन थे और किन्हींमें सात महाभूत (काल और दिशा को भूत मानकर) थे। कुछ सृष्टियाँ सूर्यादि से रहित निरन्तर अन्धकारपूर्ण थीं, कुछ सृष्टियों में हिरण्यगर्भ थे और कुछ में प्रजापति तथा अन्य देवता थे, कुछमें वेदादिशास्त्र थे और कुछमें शास्त्र नहीं थे, कुछ सृष्टियाँ प्रकाशमय थीं और कुछ प्रज्वलित अग्नि-सी देदीप्यमान थीं।

कुछ सृष्टियाँ जल से पूर्ण थीं, कुछ पवन से, कुछ निश्चल-सी थीं और कुछ निरन्तर चलती-फिरती थीं। कुछमें देवताओं की सृष्टि थीं, कुछमें मनुष्यों की, कुछमें दैत्यों की तथा कुछमें कीटाणु ही भरे पड़े थे। कुछ सृष्टियाँ असीम थीं, कुछ स्वच्छ आकाश के समान निर्मल थीं और कुछ विषम स्थिति वाली थीं। कुछ सृष्टियाँ ऐसी थीं, जो किसीके लिए परलोक बन जाती थीं। कुछ सृष्टियाँ ऐसी थीं, जो दूसरी सृष्टि के लिए नगर बन जाती थीं और कुछ सृष्टियों में महाभूत विभिन्न प्रकार के थे और कुछमें दिशायें एवं पर्वत भिन्न-भिन्न प्रकार के थे। कुछ सर्ग ऐसे थे, जो विनष्ट एवं

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

उत्पन्न होते रहते थे। ये सर्ग परमार्थरूप महावृक्ष के फल होते हुए भी उससे अन्य से प्रतीत होते थे और नहीं भी प्रतीत होते थे।

कुछ सर्गों में कल्प का काल अल्प था, कुछमें बड़ा लम्बा था, कुछमें देश, काल, वस्तु आदि का नियम नहीं था और कुछमें नियम था। सूर्य का अभाव होने से कुछ सृष्टियों में कालज्ञान नहीं होता था। चिति के चमत्काररूप आकाश में सैकड़ों समुद्र, सूर्य, आकाश, मेरु आदि से युक्त अनेक जगत् भासित हो रहे थे। वे सब जगत् स्वरूप से असत् हैं; परन्तु अधिष्ठान की सत्ता से सत् हैं। चिति के सङ्कल्परूप आकाश में असंख्य जगत् भासमान हो रहे हैं, जो वासनारूपी वायु से उड़ाये जा रहे हैं और अपनी चेष्टाओं से विलुण्ठित हो रहे हैं। ये सब जगत् चिदाकाश में चितिरूप परब्रह्म के बालक हिरण्यगर्भ आदि के संकल्प नगर के क्रीडनक मात्र हैं। ये जगत् परमार्थमय हैं; पर अन्य से उत्पन्नसदृश प्रतीत होते हैं। वस्तुतः ये अप्राप्त हैं, तथापि प्राप्त से प्रतीत होते हैं। असत् होते हुए भी ये सत् के समान भासमान हो रहे हैं। नरक, स्वर्ग, पाताल, भूमण्डल आदि बड़े-बड़े समारोहों से आक्रान्त होने पर भी परमार्थदृष्टि से शून्य ही हैं।

परमार्थरूप महाजङ्गल में मायोपहित चितिरूप गन्धर्व द्वारा निर्मित सूर्यरूप दीप द्वारा प्रकाशित ये जगद्रूप घर अत्यन्त गहन हैं। उनका स्वरूप जानना बड़ा ही कठिन है।

अहं त्रैलोक्यवृन्दानि संसाराणां शतानि च।
तत्र ब्रह्माण्डलक्षाणि पश्याम्यगणितान्यपि ॥
अभिजातस्वभावस्य सर्गारम्भकरस्य च।
शुद्धचित्तत्त्वबालस्य सङ्कल्पनगराणि खे ॥
परमार्थमयान्येव तदन्यद्वोदितान्यपि।
अलब्धान्येव लब्धानि सदाऽसन्त्येव सन्ति च ॥
नरकस्वर्गपातालबन्धुमित्रमयान्यपि।
महारम्भमयान्येव शून्यानि परमार्थतः ॥
आभासमात्ररूपाणि तेजस्यात्मविवस्वतः।
जातानीव स्वतस्तानि स्पन्दनानि नभस्वतः ॥
परमार्थमहारण्ये चिद्गन्धर्वकृतानि वै।
सूर्यदीपकदीप्तानि गृहाणि गहनात्मनि ॥

योगवासिष्ठ, निर्वाण-प्र० उ० सर्ग ५९; श्लो० १७, ५१, ५५, ५७, ५९, ६२

असंख्य संसारों को देखने के बाद मैं उस शब्द के स्रोत को खोजने लगा। कुछ समय पश्चात् मैंने वीणा के मधुर शब्द के समान सुन्दर शब्द सुना, उसके पद भी स्फुट थे और आर्या छन्द के प्रतीत होते थे, वहाँ मैंने एक स्त्री को देखा, जो कनक की प्रभा से आकाशमण्डल को प्रकाशित कर रही थी। उसकी ग्रीवा की माला और वस्त्र

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

वायु से उड़ रहे थे और वह अपनी अलौकिक कमनीयता से लक्ष्मी के समान शोभायमान हो रही थी। ऐसा प्रतीत होता था, मानो साक्षात् वनदेवी प्रकट हो गई हों। उसने एक आर्या छन्द पढ़ा और मेरा अभिवादन किया।

मैं उसे स्त्री समझकर उपेक्षाभाव से आगे बढ़ा। असंख्य जगत् के रूप में माया दृष्टिगोचर हुई। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसका भी अनादर कर मैं आगे बढ़ा। उस माया के स्वरूप को जानने के लिए मैं चिदाकाशरूप में परिणत हो गया। आश्चर्य है कि तत्काल वह मायिक सृष्टि तिरोहित हो गई। जैसे स्वप्न की सृष्टि अथवा मनोराज्य का जगत् हो जाता है।

पारमार्थिक दृष्टि से उन सर्गों का अस्तित्व नहीं है। वे सर्ग ऐसे हैं कि किसी दूसरे सर्ग के प्रलयङ्कर पुष्करावर्त्त मेघ के गर्जन तथा उन्मत्त प्रलयकारी वायु के झोकों द्वारा ह्रियमाण पर्वतों के विध्वंसात्मक भयङ्कर शब्दों को भी नहीं सुनते हैं। वे धधक रही प्रलयाग्नि के विस्फोटों से भयङ्कर शब्दों के साथ टूटते-फूटते, नष्ट-भ्रष्ट होते भवनों एवं द्वादश आदित्यों द्वारा भस्मसात् किये जा रहे जगत् को भी नहीं देखते हैं। वे काल के उस भयङ्कर आक्रमण को भी नहीं देखते, जिससे कि देवताओं के नगर व्यापक करुण-क्रन्दन के साथ ध्वस्त होते रहते हैं। वे देवों, दानवों एवं मनुष्यों के आवासों की बर्बर क्रन्दन ध्वनियों तथा समुद्रों को बढ़ाकर सूर्यलोक एवं चन्द्रलोक को आप्लावित करने के भयङ्कर दृश्यों को भी नहीं देखते।

राघवेन्द्र ! उन ब्रह्माण्डों में मैंने सहस्रों रुद्र, सैकड़ों करोड़ ब्रह्मा, लाखों विष्णु एवं असंख्य कल्प देखे। मैंने उन ब्रह्माण्डों का विनाश एवं उत्पत्ति भी चितिरूपी महाकाश में देखी। वस्तुतः चिद्वस्तु में न तो आदिम मण्डल है, न दिन-रात्रि है, न भूतल है, न कल्प है और न युग। सब कुछ चेतन में है, सब चेतन से है, सब चेतन ही है, चारों ओर चेतन ही चेतन है, वहाँ सत् है और सर्वात्मा है। वहाँ मैंने अनुभव किया कि यह दृश्य जगत् आकाश-मण्डल के समान सर्वथा भ्रमात्मक एवं असत् है। यह विशाल जगज्जाल निर्मल व्योमाकाश ही है। जगत् के अन्तर्गत दसों दिशायें, कला, काल, देश, प्रत्यय, क्रिया आदि सब कुछ चिदाकाश ब्रह्म ही हैं।

वासनानुसार विविध विभिन्नताओं को लिए जो असंख्य संसार दृष्टिगोचर हुए, उनमें मैंने अपने समान अनेक-वसिष्ठ नामक मुनीश्वरों को देखा, जो ब्रह्मा जी के पुत्र थे। मैंने बहत्तर त्रेतायुग देखे, जो रामावतार से युक्त थे। सैकड़ों सतयुग तथा सैकड़ों द्वापर देखा। ब्रह्म में न तो यह जगद्रूप नाम हैं और न जगद्रूप वस्तु। वह सब अज, आदि-अन्त शून्य ब्रह्म ही है।

जो लाखों प्रकार के जगत् अनुभूयमान होते हैं, उनमें कहीं पर चन्द्रबिम्ब उष्ण तथा कहीं पर सूर्यबिम्ब शीत अनुभूत होते हैं। कहीं पर प्रजागण अन्धकार में देखते हैं और प्रकाश में नहीं देखते, ठीक उलूक जैसा उनका व्यवहार है। कहीं पर वृक्षों के मूल शाखाओं के सदृश होते हैं। कहीं पर बालू से तेल निकलता है और

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

कहीं पर शिलाओं से अनेक सुन्दर कमल निकलते हैं। कहीं पर स्तम्भों में शालभञ्जिकायें (कठपुतलियाँ) देवाङ्गनाओं के साथ नृत्य-गान करती हैं और कथा-वार्ता करती हैं। कहीं पर लम्बे-लम्बे प्राणी मेघों को बड़े प्रेम से धारण करते हैं और एक ही वृक्ष प्रतिवर्ष भिन्न-भिन्न प्रकार के फल देते हैं। कहीं पर प्राणियों के शिर नीचे होते हैं और पैर ऊपर। भूमि आदि के नीचे का जगत् पशुओं से भरा हुआ है। वहाँ मनुष्य नहीं हैं और न वेद एवं शास्त्रों का विचार है। न कोई धर्म है और न उत्तम आचरण। कहीं पर सर्प ही सर्प हैं, कहीं पर रत्नों की पुष्कल राशियाँ हैं। कहीं पत्थर ही पत्थर हैं, कहीं पर प्राणियों में लोभ एवं अहङ्कार नहीं है।

कहीं पर अनन्त अपार शून्य है। प्राणियों के दर्शन दुर्लभ हैं। कुछ जगत् नक्षत्रचक्र से रहित हैं। अतएव वहाँ काल की गति नहीं है। कुछ स्थानों में लोग शोकहीन हैं और सङ्केतों से व्यवहार करते हैं। कहीं पर लोग नेत्रविहीन हैं और उनके लिए सूर्य-चन्द्र का प्रकाश निरर्थक-सा है। कहीं पर लोग त्वगिन्द्रियविहीन हैं, कहीं घ्राणेन्द्रियविहीन हैं, कहीं मूकवत् रहते हैं। कुछ जगत् केवल भूमिमय हैं, कुछ घनता से रहित हैं। कुछ केवल जल से भरे हैं, कुछमें केवल अग्नि ही है। कुछ जगद् मात्र वायु से परिपूर्ण हैं और वहाँ के लोग समस्त कार्य करते हैं। कुछ लोक आकाशरूप ही है, तथापि वे चिद्रूप आकाश में स्फुरित होते हैं। जो जगत् केवल भूमि से निर्मित हैं, उनके प्राणी शिलाकोश के मण्डूक अथवा क्रमि के समान जीवन व्यतीत करते हैं। जहाँ केवल जल है, वहाँ के प्राणी मकर के सदृश भ्रमण करते हैं। जहाँ केवल तेज है, वहाँ के प्राणी अलातचक्र के समान भ्रमण करते हैं। जो जगत् केवल वायु से परिपूर्ण हैं, उनके प्राणी वायु होकरघूमते-फिरते हैं। समस्त सृष्टियाँ विभ्रम के समान हैं, कोई सृष्टि पाताल में गिर रही है, कोई आकाश में उड़ रही है, कोई दिशाओं में स्थित है। ये सब सृष्टियाँ चितिरूपी समुद्र के बुद्बुदों के समान हैं। ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसे मैंने न देखा हो। सब प्रकार की असम्भव वस्तुएँ मैंने चिदाकाश में देखी हैं।

तत्र रुद्रसहस्राणि ब्रह्मकोटिशतानि च।
दृष्टानि विष्णुलक्षाणि कल्पवृन्दान्यलं मया॥
चिति सर्वं चितः सर्वं चित्सर्वं सर्वतश्च चित्।
चित्सत्सर्वात्मिकेत्येतद् दृष्टं तत्र मयाऽखिलम्॥
दृष्टा वसिष्ठनामानो ब्रह्मपुत्राः सदुत्तमाः।
ब्रह्मन् द्वासप्ततिस्त्रेताः सर्वा एव सराघवाः॥
नेदं ब्रह्माणि नामास्ति जगद्ब्रह्मण्यथत्विदम्।
ब्रह्मैवाजमनाद्यन्तं तत्सर्वं तत्पदादिकम्॥
तेषु नामानुभूयन्ते जगल्लक्षेषु तत्र वै।
उष्णानि चन्द्रबिम्बानि सूर्याः शीतलमूर्त्तयः॥
प्रजास्तमसि पश्यन्ति पश्यन्त्येव न तेजसि।
उलूकस्य समाचारास्तस्यैव सदृशस्वराः॥

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

दारुण्यश्मनि भित्तौ च चञ्चलाः शालभञ्जिकाः ।
देवाङ्गनाभिः सहितं गायन्ति कथयन्ति च ॥
मेघान् परिदधत्युच्चैर्भूतान्युच्चैः पयानिव ।
प्रतिवर्षं विजातीयान्युत्पद्यन्ते फलान्यगे ॥
पवनाशनभूतानि समरत्नाश्मकानि च ।
अजातार्थान्यिलुब्धानि निगर्वाणीव कानि च ॥
ऋक्षचक्रविहीनानि निष्कालकलनानि च ।
मूकसङ्केतसाराणि भूतजालानि कानिचित् ॥
भूमयान्त्येकनिष्ठानि निष्पिण्डान्येव कानिचित् ।
कानिचिद्वारिपूर्णानि वह्निपूर्णानि कानिचित् ॥
पातालपातिषु तथाम्बरमुत्पतत्सु
तिष्ठत्सु विभ्रमपदेष्वथ दिङ्मुखेषु ।
नानाजगत्सु क्रिमिवास्ति मया न दृष्टं
यन्नाम चिज्जलधिचञ्चलबुद्बुदेषु ॥

योगवासिष्ठ, निर्वाण-प्र० उ० सर्ग ६०, श्लो० २१, २३, २६, ३२, ३६-३७, ४२-४३, ४७, ५२, ५७, ६४

जगत् आकाशरूप ब्रह्म है—

श्री राघवेन्द्र ने कहा—"भगवन् ! महाप्रलय के अन्त में जब सबकी मुक्ति हो गई, तब यह सर्गसंवित्ति किसको और कैसे होगी" ?

महर्षि वसिष्ठ ने कहा—"राघवेन्द्र ! किसीकी न तो सृष्टि होती है, न कुछ नष्ट होता है और न कुछ उत्पन्न होता है। यह जो कुछ दृश्य है, वह सब अज, शान्त, ब्रह्मरूप ही स्थित है। यह जगत् उस महाचिति का शरीर है, जो अविनाशी है। उसके विनाश के विना जगत् कैसे नष्ट हो सकता है। जैसे स्वप्न में जगत् के रूप से संवित् का हृदय ही भासता है, वैसे ही आदि सर्ग से लेकर जो कुछ भासता है, वह सब चिदाकाशरूप ही है। चिद्रूप परब्रह्म में कैसे सृष्टि और प्रलय हो सकते हैं? भाव-विकार आदि धर्म भी निराकार ब्रह्म में (चिदाकाश में) कैसे हो सकते हैं ? जैसे स्फटिक में चित्र-विचित्र प्रतिबिम्ब स्फटिकरूप से ही स्थित हैं, वैसे चिद्ब्रह्म में स्थित ये जगत्, महाप्रलय आदि प्रतिबिम्बभाव भी ब्रह्मरूप से स्थित हैं। निर्मल परमाकाश में उत्पत्ति और विनाश की रञ्जना कहाँ ? आदि, मध्य और अन्त की कलना कहाँ ? लोकान्तर का भ्रम कहाँ ? वस्तुतः उस निर्मल चिदाकाश में ये सब रञ्जनायें एवं कलनायें अज्ञान-मूलक हैं और सर्वथा असत् हैं। ज्ञान से अज्ञान का नाश हो जाता है और बोध से यह ज्ञात होता है कि बन्ध-मोक्षरहित ब्रह्म ही सब कुछ है।

तस्मान्न कस्यचित् कदाचिन्नश्यति क्वचित् ।
न चैव जायते ब्रह्म शान्तं दृश्यमजं स्थितम् ॥

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

वपुर्जगदिदं तस्या ननु नाम महाचितेः ।
कथं नश्यत्यनष्टायां यस्यां सा च न नश्यति ।।
महाकल्पाद्यो भावा नामैतानि जगन्ति च ।
ब्रह्मात्मकतयैवास्मिन् संविद् ब्रह्मणि संस्थितम् ।।
निर्मले परमाकाशे क्व भावाभावरञ्जनाः ।
क्वादिमध्यान्तकलनाः क्व लोकान्तरविभ्रमाः ।।
अज्ञानं संपरिज्ञातं नासीदेवेति बुद्ध्यते ।
अबन्धमोक्षं ब्रह्मैव सर्वमित्यवगम्यते ।।
योगवासिष्ठ, निर्वाण-प्र० उ० सर्ग ६१, श्लो० ५, ७, १४, २१, २४

श्रीराघवेन्द्र ने कहा—"मुनिवर ! आपने जो जगन्मण्डल का अवलोकन किया, वह किसी एक देश में स्थित होकर किया अथवा आकाश में भ्रमण कर" ।

महर्षि वसिष्ठ ने कहा—"राघवेन्द्र ! जब मैं अनन्त, सर्वव्यापक, चिदाकाश रूप हो गया, तब गमनागमन का प्रश्न क्या है ? न तो मैं किसी एक स्थान में स्थित था और न गतिशील ही था । इस अपरिच्छिन्न आत्मस्वरूप चिदाकाश में स्थित होकर मैंने जगत्समूह को देखा । जैसे देही देह के शिर, भुजा, पाद, उदर आदि अङ्गों (अबययों को) को देखता है, वैसे मैंने समस्त लोकसमूह को चिति के नेत्रों से देखा । स्वप्न में जो कुछ दृश्य देखा जाता है, वह चिदाकाश ही है, अन्य कुछ नहीं । जैसे वृक्ष का अभिमानी जीव पत्र, पुष्प, फल आदि देखता है, वैसे ही मैंने ज्ञानरूपी नेत्रों से जगत्समूह को देखा । जैसे समुद्राभिमानी जीव समस्त जलचरों, तरङ्गों, आवर्तों आदि को देखता है, वैसे ही मैंने नाना प्रकार के जगत् को देखा । बोधात्मा के साथ ऐक्य को प्राप्त मैं आज भी उन नानाविध सृष्टियों को आकाश, शैल, समुद्र, वन, पृथिवी आदि के रूप में देखता हूँ । चिदात्मा के साथ ऐक्य प्राप्त करने पर समस्त जगत् अपने आप दृष्टिगोचर होने लगता है, किसी प्रयत्न की आवश्यकता नहीं ।

जैसे जल रसतत्त्व को जानता है, हिम शैत्य को जानता है, वायु स्पन्दन को जानता हैं, वैसे ही आत्मतत्वज्ञ पुरुष संसार को जानता हैं । जैसे पर्वतस्थ दिव्य पुरुष ज्ञान-नेत्रों से करोड़ों योजन दूर स्थित बाह्य एवं आभ्यन्तर पदार्थों को देखता है, वैसे ही मैंने जगत्समूह को देखा" ।

श्रीराघवेन्द्र ने कहा—'भगवन् ! जब आप इस प्रकार अनुभव कर रहे थे, तब आर्याछिन्द पढ़ने वाली उस स्त्री ने क्या किया" ?

महर्षि वसिष्ठ ने कहा—"चिदाकाश-स्वरूपधारिणी वह देवी अनुनय के साथ आर्याछिन्द का पाठ करती हुई मेरे समीप में स्थित हुई" ।

श्रीराघवेन्द्र ने कहा—"भगवन् ! शरीरस्थ जिह्वा, तालु, दन्त, ओष्ठ आदि स्थानों एवं प्राणवायु के सहयोग से वर्णों का उच्चारण होता है । आकाशरूपधारिणी उस स्त्री के मुख से शब्द कैसे निकले" ?

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

महर्षि वसिष्ठ ने कहा—"राघवेन्द्र ! जैसे स्वप्न में बाह्य और आभ्यन्तर ज्ञान, शब्दपाठ तथा वचन केवल आकाश में ही स्थित रहते हैं, वैसे हो सभी पदार्थ चिदाकाश में स्थित हैं। केवल उस समय के समस्त दृश्य चिदाकाशस्वरूप हैं, यह बात नहीं है। इस समय भी जितने पदार्थ हम लोगों की वुद्धि के विषय हैं, वे सब तथा यह समस्त जगत् स्वच्छ चिदाकाशरूप ही हैं। शरीर के अवयव कण्ठ, तालु, दन्त आदि में क्या प्रभा है? जैसे स्वप्न के देहादि हैं, वैसे जाग्रत् के भी हैं। ये सभी चिदाकाशस्वरूप ही हैं। आप, मैं, यह सभा एवं समस्त जगत् चिदाकाश रूप ही है। जैसे जीवन के विविध व्यापार एवं व्यवहार स्वप्न में होते हैं और वे सब चिदाकाश रूप हैं, वैसे जाग्रत् के समस्त व्यवहार एवं व्यापार चिन्मय हैं।

विद्याधरी द्वारा परिचय-प्रदान—

महर्षि वसिष्ठ जो ने विद्याधरी से पूछा—"भद्रे ! तुम कौन हो, मेरे पास क्यों आई हो, किसकी लड़की हो, किसकी भार्या हो और क्या चाहती हो ?"

विद्याधरी ने उत्तर दिया —भगवन् ! परमाकाशरूप चिदाकाश के एक कोने में (कोटर में) आपका यह जगद्रूपी घर स्थित है। इसके भीतर भूतल, पाताल एवं स्वर्ग ये तीन प्रकोष्ठ हैं। उसमें हिरण्यगर्भरूपी माया ने गृहस्वामिनी के रूप में एक कुमारी का निर्माण किया है। उन तीनों में जो भूतल है वह द्वीपों एवं समुद्रों से वेष्टित है, वह जगल्लक्ष्मी का करमूल (प्रकोष्ठ) बनकर स्थित है। उन सात द्वीपों तथा समुद्रों के अन्त में दस हजार योजन लम्बी-चौड़ी सुवर्णमयी पृथिवी स्थित है। वह पृथिवी स्वयं प्रकाशरूप है, वह सङ्कल्पों को (सात प्रकार की इच्छाओं को) पूर्ण करती है, वह आकाश के सदृश निर्मल है। उसमें चिन्तामणि की अधिकता है और अपनी अपूर्व शोभा से उसने स्वर्गलोक को भी जीत लिया है। वह अप्सराओं के साथ देवताओं एवं सिद्धों की लीलाविहारभूमि है, जहाँ इच्छामात्र से सब प्रकार के भोग सुलभ हैं। उस पृथिवी के अन्त में लोकालोक-नामक विख्यात पर्वत है, जिसने चारों ओर से इस भूखण्ड को वलयित कर दिया है, अर्थात् घेर दिया है।

यह पर्वत कहीं अन्धकार से व्याप्त है, जैसे मूर्ख पुरुषों का अन्तःकरण और कहीं पर प्रकाशमय है, जैसे सात्त्विक पुरुषों का अन्तःकरण। वह साधुसङ्गम के समान कहीं आह्लादजनक है और मूर्खों के समागम के समान कहीं उद्वेगजनक है, वह बुद्धिमान् पुरुषों के मन के समान कहीं स्पष्टार्थ है और कहीं मूर्ख पुरुषों के चित्त के समान अतिगहन है। कहीं पर तो चन्द्र किरणें नहीं पहुँच पातीं और कहीं पर सूर्य किरणें। कहीं पर तो मनुष्यों का भरपूर समागम है और कहीं पर सभी दिशायें शून्य हैं। कहीं पर देवताओं के नगर हैं और कहीं पर दैत्यों के नगर हैं। कहीं गहन पाताल है, तो कहीं पर्वतशिखर। कहीं पर भयङ्कर गर्त्त हैं, तो कहीं मनोहर शिखर हैं, जो ब्रह्मा जी के नगर की सुषमा को धारण करते हैं। कहीं पर शून्य जङ्गल हैं, जहाँ कल्पान्त के पवन बह रहे हैं और कहीं पर पुष्पोद्यान में विद्याधरियों के गान हो रहे हैं। कहीं पर पाताल के सदृश गहरी कन्दरायें हैं, जिनमें भयङ्कर कूष्माण्ड पिशाचों

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

का वास है, तो कहीं पर नन्दनवन के समान मुनियों के सुन्दर आश्रम हैं। कहीं पर क्षुब्ध नागरिकों द्वारा अश्वत्थ आदि के वृक्ष उच्छिन्न हो रहे हैं, तो कहीं पर देवतुल्य सत्पुरुषों का आवास है, जो स्वर्गसदृश है। कहीं पर मरुस्थली के झंझावातों द्वारा उत्पन्न झङ्कार-ध्वनि से भयङ्कर लगता है, तो कहीं पर कमलयुक्त सरोवरों में कलकल ध्वनि कर रहे सारसों का झुण्ड दृष्टिगोचर होता है। कहीं पर जलों का सुन्दर विलास है, तो कहीं पर मेघों का गर्जन है। कहीं पर अप्सराओं के दोलाविलास का मनोरम दृश्य है, कहीं पर सूर्य तप रहे हैं और जनता के सुन्दर आचरण हैं, तो कहीं अन्धकार में निशाचर नृत्य कर रहे हैं। कहीं पर शून्यता है, कहीं पर जनपदों का कोलाहल है, कहीं जल का समुद्र है, तो कहीं सूखा है।

कुछ शिखरों पर ऐसी बड़ी बड़ी शिलायें हैं, जो पर्वत के समान हैं। वे रत्नों से युक्त हैं और निर्मल आकाश के सदृश हैं।

मैं उत्तर दिशा में उन शिलाओं के मध्य निवास करती हूँ, जिनका ऊपरी भाग वज्रसारमणि के सदृश है। नियति ने मुझे वहाँ बाँध दिया है। मैं असंख्य युगों से वहाँ रहती हूँ। केवल मैं ही बद्ध नहीं हूँ; अपितु मेरे स्वामी भी उससे बद्ध हैं। मैंने अपने पति के साथ वहाँ चिरकाल तक वास किया। आजकल भी हम लोग ममता से बद्ध हो वहाँ वास कर रहे हैं और मुक्त नहीं हो रहे हैं। उस पाषाणकोटर में हम दोनों के पुत्र, पौत्र आदि भी फँसे हुए हैं।

मेरे पतिदेव अत्यन्त वृद्ध ब्राह्मण हैं। वह सैकड़ों युगों से जीवित हैं और वहीं पड़े हैं। अपने आसन से उठते नहीं हैं, वह बाल्यकाल से ब्रह्मचारी हैं, वेदाध्ययनशील हैं, दूसरों को पढ़ाते हैं, स्वयं आलसी हैं। उनका व्यवहार कोमल है और वह जितेन्द्रिय हैं। मैं उनकी पत्नी व्यसनिनी हूँ और एक क्षण भी उनके विना जीवन धारण नहीं कर सकती।

भगवन्! आप सुनें कि मैं कैसे उनकी भार्या हुई। मेरे पतिदेव श्रोत्रिय, सदाचारी ब्राह्मण हैं और अपने अनुरूप भार्या चाहते थे। उन्होंने अपने मानस-सङ्कल्प से मुझको उत्पन्न किया। जैसे चन्द्रमा से चन्द्रिका उत्पन्न होती है, वैसे मेरा जन्म हुआ। मैं उनकी मानसी भार्या मन्दारवृक्ष की लता के समान उत्तरोत्तर बढ़ने लगी, जैसे वसन्त में पुष्पमञ्जरी। मैं केवल लीलाविलास में रहती थी। मैं गान और वाद्य से प्रेम करती थी और भोगों से कभी तृप्त नहीं होती थी। मेरा भोगों में अनुराग दिन-प्रतिदिन वृद्धिगत होता रहा। मैं केवल ब्राह्मणपति के घर को ही धारण नहीं करती हूँ; अपितु उनके मन से कल्पित त्रैलोक्य को धारण करती हूँ। मैं कुल को बढ़ानेवाली भार्या हूँ, पोष्यवर्ग का पालन करती हूँ और मुझमें त्रिलोकीरूप घर की सर्वविध सामग्रियों के भार को वहन करने की क्षमता है। मैं पूर्णरूप से यौवन को प्राप्त हूँ और मेरे पति दीर्घसूत्री, स्वाध्याय में निरत और तपस्वी हैं। वह मेरी उपेक्षा करते हैं। जो पदार्थ सुन्दर, उचित, स्वादु, विचित्र और मनोहर हैं, उन्हें देखकर

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

मेरे नेत्र वाष्पपूर्ण हो जाते हैं। कमलिनी के नाल पर जब मैं सारस और सारसी को देखती हूँ, तो दीनवदन होकर अपने यौवन की निन्दा करती हूँ।

न केवलमहं गेहं धारयामि द्विजन्मनः।
यावत् त्रैलोक्यसदनमिदमङ्गं बिभर्म्यहम् ॥
अहं कुलकरी भार्या कलत्रभरणक्षमा।
त्रैलोक्यगृहसम्भारधारणैकभरोद्वहा ॥
यत्कान्तमुचितं स्वादु विचित्रं चित्तहारि च।
तदालोक्य भवाम्यन्तर्वाष्पपूर्णायतेक्षणा ॥
नलिनीनालदोलासु सारसीं सारसाश्रिताम्।
दीनानना विलोक्यान्तर्निन्दामि निजयौवनम् ॥

योगवासिष्ठ, निर्वाण-प्र० उ० सर्ग ६४, श्लो० ५४, ५५, ६४, ६८

विद्याधरी का जन्म-व्यवहारवर्णन –

विद्याधरी ने कहा—"भगवन् ! वह मेरा अनुराग शनैः शनैः वैराग्य में परिणत हो गया, जैसे शरत्काल में वृक्षों के पल्लव आदि नीरस होकर शुष्कप्राय से हो जाते हैं। मेरा पति एकान्तप्रेमी, नीरस, दूसरों पर स्नेह नहीं करने वाला, सरल एवं वृद्ध है। अतः मेरा जीवन निरर्थक-सा है। बचपन में ही विधवा हो जाना अच्छा है, मरण श्रेयस्कर है, आधियाँ, व्याधियाँ भी ठीक हैं, आपत्तियाँ भी सह्य हैं; परन्तु अपने मन के प्रतिकूल रहनेवाला पति कदापि इष्ट नहीं है। स्त्रियों के जीवन का साफल्य इसीमें हैं कि उनका पति तरुण, रसिक एवं मधुर व्यवहार करने वाला हो। जिस स्त्री का पति नीरस हो, उसका जीवन नष्ट है। जो बुद्धि असंस्कृत है, वह भी नष्ट ही है और जो लक्ष्मी दुर्जनों द्वारा भुक्त है, वह भी नष्ट है। वही स्त्री है, जो अपने पति की अनुगामिनी है, वही लक्ष्मी है, जो सज्जनों द्वारा अनुगत है। वही बुद्धि है, जो माधुर्य एवं औदार्य से अनुगत है तथा वही साधुता है जिसमें समदृष्टिता है। परस्पर अनुरक्त दम्पती को आधियाँ, व्याधियाँ, आपत्तियाँ एवं हीतियाँ, क्लेश नहीं पहुँचा सकती हैं। जिन स्त्रियों के पति प्रतिकूल हैं अथवा जो पति-विहीन हैं, उन स्त्रियों को कुसुमित पुष्प एवं नन्दनवन की उद्यानभूमियाँ मरुभूमि के सदृश नीरस प्रतीत होती हैं। संसार के जितने भी पदार्थ हैं, उन्हें गुण की अल्पता से अथवा प्रमाद से स्त्रियाँ छोड़ सकती हैं; परन्तु अपने पति को नहीं। हे मुनिनायक ! मैंने यौवनकाल में अनेक वर्षों तक इन दुःखों का सहा है; परन्तु हमारे दौर्भाग्य का अभी अवसान नहीं है। इन दुःखों के कारण मेरा राग वैराग्य के रूप में परिणत हो गया है। अब मैं वैराग्यभाव से सब कुछ देख रही हूँ और आपके उपदेश से अपनी मुक्ति चाहती हूँ। जिनके अभीष्ट अर्थ सिद्ध नहीं हैं और परमपद में जिनकी बुद्धि विश्रान्त नहीं है, ऐसे भयङ्कर दुःखों के प्रवाह में बह रहे मनुष्यों के लिए जीवन की अपेक्षा मरण अधिक श्रेयस्कर है"।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

"मेरे पतिदेव निर्वाण की कामना से अहर्निश मन पर विजय प्राप्त करने के लिए सचेष्ट हैं। उन मेरे पति तथा मेरे अज्ञान की निवृत्ति के लिए आप न्याययुक्त वाणी से आत्मा का प्रबोधन कीजिए। जब मेरी चिन्ता न कर मेरे पतिदेव आत्मबोधन के मार्ग में एकाकी प्रवृत्त हुए, तब जगत् की गति को देखकर मेरे मन में वैराग्य का उदय हुआ। फलस्वरूप सांसारिक वासनाओं से विरत होकर आकाश में सञ्चरण की शक्ति देने वाली खेचरी मुद्रा को धारण कर मैं आकाश में स्थित हूँ। आकाश में गमनशक्ति को अर्जित कर मैंने सिद्धों के साथ सम्भाषण आदि करने के निमित्त धारणा का पुनः अभ्यास किया। मैंने सिद्धि भी प्राप्त कर ली है। अपने ब्रह्माण्ड की वस्तुओं को देखने के पश्चात् मैं बाहर निकली और मैंने लोकालोक पर्वत के शिखर पर स्थित विशाल शिला को देखा। इतने सुदीर्घकाल तक हम दोनों की इच्छा उसे देखने की नहीं हुई थी। मेरे पति एकमात्र वेदार्थचिन्तन में लीन रहते हैं। वह सब प्रकार की एषणाओं से मुक्त हैं। उन्हें अतीत, वर्तमान एवं भविष्य के विषयों में कोई रुचि नहीं है। मेरे विद्वान् पतिदेव उक्त स्थिति में आत्मतत्त्व का ज्ञान नहीं प्राप्त कर सके। अब हम दोनों उस दिव्य ज्ञान की प्राप्ति के लिए नितान्त लालायित हैं। भगवन्! आप मेरी प्रार्थना को सफल करने में सर्वथा समर्थ हैं। कृपया उसे पूर्ण कीजिए। यतः आपके सदृश महानुभाव प्रार्थीजन को कभी निराश नहीं करते। मैं गगनमण्डल में सदा भ्रमण करती रहती हूँ और आपके अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष को अज्ञान-निवारण में समर्थ नहीं देख पा रही हूँ। सज्जन पुरुष करुणा के समुद्र हैं और वे अर्थिजनों की अभिलाषाओं को पूर्ण करते रहते हैं। अतः आप मुझ शरणागत अबला का तिरस्कार न करें"।

वरं वैधव्यमाबाल्याद्वरं मरणमेव च।
वरं व्याधिरथापद्वा नाहृद्यप्रकृतिः पतिः॥
एतावज्जन्मसाफल्यं सौभाग्यमविखण्डितम्।
रसिकः पेशलाचारो यन्नार्यास्तरुणः पतिः॥
अप्राप्ताभिमतार्थानामविश्रान्तधियां परे।
मरणैरुह्यमानानां जीवितान्मरणं वरम्॥
यदा मामनवेक्ष्यैव स मद्भर्तात्मनि स्थितः।
तदा विरागो वैरस्यमनयन्मे जगत्स्थितिम्॥
भ्रमन्ती सिद्धसेनासु सदा नभसि मानद।
त्वदृते नेह पश्यामि घनाज्ञानदवानलम्॥
ब्रह्मन् विनैव करुणाकरकारणेन
सन्तो यतोऽर्थिजनवाञ्छितपूरणानि।
कुर्वन्ति तेन शरणागततामुपेतां
मामर्हसीह न तिरस्करणेन योक्तुम्॥

योगवासिष्ठ, निर्वाण-प्र० उ० सर्ग ६१, श्लो० ३-४, १३, १६, २५, २६

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

शिला के मध्य का वर्णन—

महर्षि वसिष्ठ जी ने विद्याधरी से कहा—"बाले ! अवकाशरहित शिला के उदर में तुम्हारे जैसे शरीरधारी की स्थिति कैसे होगी ? वहाँ तुम किस प्रकार चल-फिर सकोगी और वहाँ रहने से तुम्हें लाभ क्या होगा" ?

विद्याधरी ने कहा—"मुनिवर ! जैसे आपका जगत् स्पष्टरूप से स्फुरित हो रहा है, वैसे ही मेरा भी जगत् वहाँ विराजमान है। वह संसार यहाँ की तरह विविध सृष्टियों से युक्त है। वहाँ पाताल में नाग रहते हैं, पृथिवी पर पर्वत स्थित हैं, जल छलछला रहे हैं, आकाश में वायु बह रहा है, जल से समुद्र सुशोभित हैं, शनैः शनैः प्रजावर्ग अपना क्रिया-कलाप करते हैं। प्राणी उत्पन्न होते हैं और मरते हैं। देवता, असुर एवं मानव की परम्परा वहाँ भी चलती है। वहाँ भी रात्रि में चन्द्रोदय होता है और निशा का अन्धकार दूर करता है। दिन में दसों दिशाओं में सूर्य का प्रकाश होता है और दिशायें, अन्तरिक्ष एवं जगत् चमकने लगते हैं। वहाँ भी यहाँ के सदृश भूमि समुद्रों एवं पर्वतों से व्याप्त है, आकाशमण्डल विभागों एवं नगरों से तथा पाताल दैत्य, दानव एवं नागों से परिपूर्ण है। नील भूतमण्डल त्रिजगतीरूप लक्ष्मी के चमकते कर्ण-कुण्डल के समान भासित होता है। पृथिवी, जल, तेज, वायु एवं आकाश का स्वरूप जैसा यहाँ दृष्टिगोचर होता है, वैसा वहाँ भी होता है। वहाँ भी पृथिवी पर मानव आदि, वृक्षों पर मर्कट आदि, पर्वतों पर मृग, व्याघ्र, सर्प आदि, जल में मगर, मत्स्य आदि तथा आकाश में पक्षी, देवता आदि सदा घूमते रहते हैं। अनन्त, अगाध, विपुल एवं गम्भीर कालरूपी महासागर में सुर, असुर, मानव, यक्ष, गन्धर्व, प्रभृति समस्त जगत् उत्पन्न होता है और उसीमें लीन हो जाता है। वहाँ भी यहाँ के सदृश पवन, भूकम्प, वृष्टि और घाम सहनेवाली दिशायें स्थित हैं। मेघ, विद्युत्पतन, भूकम्प तथा ग्रह आदि से प्राणियों की इष्टानिष्ट रूप गति वहाँ पर भी होती है"।

स्फुरन्ति नागाः पाताले तिष्ठन्ति भुवि पर्वताः।
आपश्छलच्छलायन्ते वहन्ति व्योम्नि वायवः॥
द्वीपाब्धिशैलैर्भूपीठं विमाननगरैर्नभः।
दैत्यदानवनागौघैः पूर्णं पातालमण्डलम्॥
अनन्तविपुलागाधगम्भीरे कालसागरे।
उत्पत्योत्पत्य लीयन्ते त्वावर्त्तविवर्त्तया॥
स्थिताः पवनभूकम्पमेघतापसहिष्णवः।
स्वं प्रदेशमनुज्झन्त्यः ककुभः स्तम्भिता इव॥

योगवासिष्ठ, निर्वाण-प्र० उ० सर्ग ६६, श्लो० ४, १३, १६, २२

अभ्यास-प्रशंसा—

विद्याधरी की प्रार्थना पर महर्षि वसिष्ठ उसके आकाशमण्डल में जाने को उद्यत हुए। वे दोनों उड़कर आकाश-मार्ग से लोकालोक पर्वत के शिखर पर पहुँचे।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

वहाँ मुनि वसिष्ठ ने सुवर्णमयी विशाल शिला को देखा; परन्तु उसके उदरस्थ जगत् को नहीं देखा।

महर्षि वसिष्ठ ने पूछा—"बाले! जिस जगत् का तुमने वर्णन किया था, वह कहाँ है? रुद्र, सूर्य, अग्नि, तारागण कहाँ हैं? समुद्र, आकाश एवं दिशायें कहाँ हैं? प्राणियों के जन्म और मरण कहाँ हो रहे हैं? पर्वतशिखरों की श्रेणियाँ कहाँ हैं? कहाँ समुद्र है और सातों द्वीप कहाँ हैं? ऋषि और मुनिगण कहाँ हैं? स्वर्ग-नरक कहाँ है? काल की कलाओं का विकास कहाँ है? देवासुर-सङ्ग्राम कहाँ हो रहा है"?

विद्याधरी ने कहा—"भगवन्! मैं भी पूर्व की भाँति शिला के जगत् को नहीं देख रही हूँ। जो कुछ थोड़ा-बहुत देख रही हूँ, वह मुकुर में प्रतिबिम्बित दृश्यों के समान स्थित मानव, नगर आदि को देख रही हूँ। वह भी कदाचित् इसलिये कि मुझे इस जगत् का अनुभव है। वह अनुभव आपको नहीं है अतः आप कुछ भी नहीं देख रहे हैं। दूसरी बात यह है कि हम लोग परस्पर की वार्त्ता में अपने विशुद्ध आतिवाहिक देह को भूल से गये थे। स्थूल शरीर से स्थूल जगत् में व्यवहार कर रहे थे। पूर्वाभ्यास की विस्मृति हो जाने से मैं स्वयं पाषाणोदरस्थ जगत् को देखने में असमर्थ हूँ।

जीवन में अभ्यास का बड़ा महत्त्व है। अहंभावरूप जो महान् अज्ञान जगत् में व्याप्त है, वह ज्ञानचर्चा के अभ्यास से ही निवृत्त हो सकता है। अभ्यास का माहात्म्य कितना बड़ा है। मैं अबला हूँ; परन्तु अभ्यास के बल से अस्पष्टरूप में शिलाजगत् को देख रही हूँ; परन्तु आप महान् ज्ञानी और हमारे गुरु होने पर भी अभ्यास के अभाव में उस जगत् को नहीं देख पा रहे हैं। यह जगत् अज्ञानान्धकार में इधर-उधर भटक रहा है, जो विचारशील हैं और शास्त्राभ्यास आदि कर्मों में निपुण हैं, वे अभ्यास-बल से अज्ञानान्धकार को पार कर परमपद में पहुँच जाते हैं। अभ्यास से कटु पदार्थ भी मधुर हो जाते हैं और विष भी अमृत हो जाता है। अभ्यास का बड़ा माहात्म्य है।

यह विशुद्ध आतिवाहिक देह भावना के अभ्यास से आधिभौतिक हो जाता है, धारणा के अभ्यास से यह स्थूल आधिभौतिक देह आकाशगमन आदि सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है। अभ्यास के कारण दुःसाध्य पदार्थ सिद्ध हो जाते हैं और शत्रु भी मित्र हो जाते हैं। अभ्यास छोड़ देने से इष्ट वस्तु की प्राप्ति नहीं हो सकती और अनिष्ट की सम्भावना बढ़ जाती है। अभ्यास के बल से विवेकी पुरुष संसार-सागर को पार कर जाते हैं।

जैसे कल्पवृक्ष की लता, चिन्तामणि और शरदृतु उत्तमोत्तम अभिमत फलों को प्रदान करते हैं, वैसे श्रवण, मनन आदि के अभ्यास से सर्वाभिमत मोक्ष-पदार्थ तक सुलभ हो जाता है। जितने प्राणी हैं, उन सबों का उद्धारकर्त्ता, प्रकाशकर्त्ता अभ्यासरूपी सूर्य है। चतुर्दश भुवनों में स्थित चतुर्दश प्रकार के प्राणियों को अभीष्ट-

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

वस्तु की प्राप्ति अभ्यास के विना नहीं हो सकती। संक्षेप में भूमि पर, जल में अथवा आकाश में अभ्यासरूपी सूर्य के प्रभाव से समस्त अभिलषित वस्तुएँ प्राप्त की जा सकती हैं"।

यावत्पश्याम्यहं शुभ्रां शिलां तां न च तज्जगत्।
कलधौतमयीमुच्चैरग्निलोकतटीमिव ॥
तदा मयोक्ता सा कान्ता क्क भवत्सर्गभूरिति।
क्क रुद्रार्काग्नितारादि क्क लोकान्तरसप्तकम् ॥
क्कार्णवाकाशककुभः क्कान्यज्जननिमज्जने।
क्क महाम्भोदसम्भारः क्क ताराम्बरडम्बरम् ॥
क्क शैलशिखरश्रेण्यः क्क महार्णवलेखिकाः।
क्क दीपवलयाः सप्त क्क तप्तकनकावनिः ॥
नित्यानुभव एवात्र दर्शने कारणं मम।
तदभावो मुने मन्ये ते कारणमदर्शने ॥
आतिवाहिकदेहोऽयं शुद्धचिद्व्योम केवलम्।
आधिभौतिकतामेति भावनाभ्यासयोगतः ॥
दुःसाध्याः सिद्धिमायान्ति रिपवो यान्ति मित्रताम्।
विषाण्यमृततां यान्ति सन्तताभ्यासयोगतः ॥
सर्वस्य जन्तुजातस्य सर्ववस्त्ववभासने।
सर्वदैवैक एवोच्चैर्जयत्यभ्यासभास्करः ॥

योगवासिष्ठ, निर्वाण-प्र० उ० सर्ग ६७, श्लो० ६-६, १५, ३०, ३३, ४१

दृश्य की अनुपपत्ति—

उस विद्याधरी के कथन पर मैं समस्त बाह्यपदार्थों की कल्पना का त्याग कर समाधिस्थ हो गया। चिदाकाशरूप होकर मैं शरत्काल के आकाश के सदृश निर्मल हो गया। देह में मेरी आधिभौतिकता समाप्त हो गई। उदय एवं अस्त से रहित, नित्य स्वप्रकाशरूप, अतिनिर्मल, महाचिदाकाशरूपता को प्राप्त कर मैंने देखा कि न तो वह पत्थर है और न वह जगत्। केवल परमार्थधन स्वच्छ परमतत्त्व भासित हो रहा है। जैसे स्वाप्निक जगत् केवल चिदाकाशरूप है और कुछ नहीं है, वैसे ही वह शिला कुछ नहीं थी, केवल चिदाकाश प्रस्तरशिला के रूप में स्फुरित हो रहा था।

जैसे स्वप्न में जिसका सिर कट गया है, वह तब तक दुःखी रहता है, जब तक जागरण में आकर वह अपने भ्रम को मिथ्या नहीं समझने लगता है, वैसे ही जगत् में ज्ञानरूप जागरण के हो जाने पर ही जागतिक भ्रान्तियाँ, जो स्वप्नजगत् के समान असत् एवं निराधार हैं, दूर हो जाती हैं। अतः बोध के पूर्व मैंने जो शिलामय आकृति देखी थी, बोध हो जाने पर उसे स्वच्छ चिद्घन ब्रह्माकाश के रूप में देखा। भूतों की आदि सृष्टि में जो शुद्ध पारमार्थिक ब्रह्मरूप है, वही तत्त्वज्ञानियों को ध्यान

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

से लभ्य होता है। वही प्राचीन ब्रह्म का रूप भूतों का (प्राणियों का) वास्तविक रूप है। वह साङ्कल्पिक अथवा मनोराज्यतुल्य है। मूर्ख-जन उसीको जगत् कहते हैं। वह मायाशबल ब्रह्म समस्त ब्रह्माण्ड का आतिवाहिक (सूक्ष्म) शरीर है। शुद्ध चिद्रूप ब्रह्म का वह कचन (स्फुरण) मात्र है। वह समष्टिभावापन्न हिरण्यगर्भात्मक आतिवाहिक शरीर भ्रमवश व्यष्टिभावापन्न हो जीव का आतिवाहिक शरीर (मन) बम जाता है। योगीजन उस समष्टिरूप आतिवाहिक शरीर का दर्शन करते हैं, शेष जन (अज्ञानी) व्यष्टिभावापन्न मनोरूप आतिवाहिक शरीर का मानस-प्रत्यक्ष करते हैं। आधिभौतिक स्थूल शरीर की कल्पना द्वारा यह मानसप्रत्यक्ष जो सर्वथा असत् है, किया जाता है। वस्तुतः तत्त्वज्ञानियों को जिस रूप का प्रत्यक्ष होता है, वही सत् है। यह माया का वैचित्र्य है कि साक्षी चेतन के समष्टि मन को जो सत् है और प्रत्यक्ष है, उसे जगत् परोक्ष के समान देखता है और जो असत् व्यष्टिभावापन्न रूप है, उसे सद्रूप समझता है। सृष्टि के आदि में जो हिरण्यगर्भात्मक प्रथम चिति का स्फुरण है, वह सत् है, सर्वव्यापक है। यह आधिभौतिक स्थूल शरीर सर्वथा असत् है, मिथ्या है। जैसे सुवर्ण में कटकता नहीं है, वैसे सूक्ष्म शरीर में आधि-भौतिकता नहीं है। जगत् की मूढ़ता है, जो अन्यथा देखता है, सत् को असत् और असत् को सत्।

विचार करने पर यह स्थूल आधिभौतिक शरीर सत्य नहीं प्रमाणित होता। आतिवाहिक शरीर ही सत् है, जो लोक और परलोक दोनों स्थानों पर काम आता है। सूक्ष्म शरीरोपहित चिति में आधिभौतिक शरीर की मिथ्या-कल्पना ऐसे प्रादुर्भूत हो गई है, जैसे मरुभूमि में जल की मिथ्या-कल्पना, जैसे स्थाणु में पुरुषबुद्धि की भावना, जैसे शुक्ति में रजत की कल्पना, मृगतृष्णा में जल की कल्पना, चन्द्र में द्वितीय-बुद्धि की कल्पना मिथ्या है, वैसे ही सूक्ष्म शरीर में स्थूल-बुद्धि की कल्पना मिथ्या है। जो मनुष्य आद्य सूक्ष्म शरीर को छोड़कर इस स्थूल शरीर में सत्यत्व की बुद्धि करता है, वह मृगतृष्णा-जल पीकर मानों पिपासा की शान्ति का अनुभव कर रहा है। तत्त्वज्ञानी पुरुष इन्द्रियजन्यसुख को क्षणिक समझकर दुःखरूप ही मानते हैं। वे अकृत्रिम, अनादि, अनन्त एवं शाश्वत सुख को मानते हैं।

त्रैलोक्यप्रसिद्ध सूक्ष्म चित्प्रत्यक्ष को छोड़कर जो स्थूल प्रत्यक्ष को ग्रहण करता है, वह महान् मूर्ख है। समस्त प्राणियों का जो सूक्ष्म शरीर है, वस्तुतः वही सत् है। स्थूल शरीर तो विभीषिकामात्र है और नितान्त अलोक है। जो उत्पन्न ही नहीं है तथा जो सङ्कल्पमय है, वह कैसे प्रत्यक्ष हो सकता है, जो स्वयं सत् नहीं है, वह कार्यकारी कैसे हो सकता है?

पूर्वोक्त से यह स्पष्ट है कि दृश्यप्रपञ्च प्रमाण से सिद्ध नहीं है। यह जो कुछ दृष्टिगोचर हो रहा है, वह सैन्धव-नमक के समान चिद्घन ब्रह्म ही है। जैसे स्वप्न-द्रष्टा का पर्वत, वन, नगर आदि केवल चिदाकाश है, वैसे ही हम दोनों द्वारा दृष्ट वह

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

शिला भी विशुद्ध चिदाकाश ही है। यह पर्वत, यह आकाश, यह जगत्, यह सब कुछ चिन्मय आत्मा ही है, वह स्वयं अपने स्वरूप में भासता है। इस तथ्य को प्रबुद्ध जन ही समझते हैं, अप्रबुद्ध नहीं। जैसे रामायण, महाभारत आदि की कथाओं को सुनने वाले महानुभावों को ही कथा का अर्थज्ञान हो सकता है, अश्रोताओं को नहीं।

अहो नु चित्रा मायेयं प्राक् प्रत्यक्षे परोक्षता।
निर्णीताऽस्मिंस्त्वनध्यक्षे प्रत्यक्षकलनागता॥
आतिवाहिकदेहत्वं प्रत्यक्षं प्रथमोदितम्।
सत्यं सर्वगतं विद्धि मायैव त्वाधिभौतिकम्॥
लोकत्रयानुभवदं त्यक्त्वा प्रत्यक्षमैहिकम्।
मायात्मकं यो गृह्णाति नास्ति मूढतमस्ततः॥
आतिवाहिकमेवैषां भूतानां विद्यते वपुः।
अत्राधिभौतिकव्याप्तिरसत्यैव पिशाचिका॥
अतः प्रमाणसंसिद्धं दृश्यं नास्त्येव कुत्रचित्।
अनन्यमिदमस्तीव तत्तद्ब्रह्मघनं घनम्॥
अयं शैल इदं व्योम जगदेतदिदं त्वहम्।
इति चिन्मय आत्मान्तः खं चमत्कुरुते स्वयम्॥
पश्यत्येतत्प्रबुद्धात्मा नाप्रबुद्धः कदाचन।
श्रोतुः कथार्थसंवित्तिर्नाश्रोतुर्भवति क्वचित्॥

योगवासिष्ठ निर्वाण-प्र० उ० सर्ग ६८, श्लो० २०, २१, २३, ३४, ३८, ४०, ४१

अन्य जगत् के ब्रह्मा जी के वचन—

वह विद्याधरी पाषाणसर्ग में प्रविष्ट हुई और उसके साथ मैं भी सङ्कल्पात्मा वहाँ गया। वह ब्रह्मा जी के समक्ष जाकर बोली—"मुनिवर! ये मेरे पति हैं और मेरी रक्षा करते हैं। इन्होंने विवाहार्थ मन से मेरा उत्पादन किया था। हम दोनों वृद्ध हो गए और मेरा विवाह नहीं हुआ। फलतः मुझे भी वैराग्य हो गया। हम लोग उस पद में जाने की इच्छा करते हैं, जहाँ न द्रष्टा है, न दृश्य है और न शून्य है। महाप्रलय आसन्न है और यह महात्मा ध्यानस्थ हैं और पर्वत के सदृश मौन (पाषाणमौन) हैं"।

ऐसा कहकर उस विद्याधरी ने मेरा परिचय कराया और अतिथिसत्कार के निमित्त प्रार्थना की।

उस जगत् के ब्रह्मा ने शनैः शनैः अपने नेत्र खोले। मुझे देखकर उन्होंने कहा—"मुनिवर! आपका स्वागत है। आप इस सुदूर स्थान में आए हैं। थक गये होंगे। आप इस आसन पर विराजिए"।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

उस जगत् के ब्रह्मा जी के कहने पर मैंने उनका अभिवादन किया और उनके द्वारा संकेतित स्थान एवं आसन पर बैठ गया। वहाँ पर उस लोक के अमर, ऋषि, गन्धर्व, मुनि, विद्याधर प्रभृति ब्रह्मा जी के पास आये, उनकी स्तुति की, अर्चना की और पारस्परिक प्रणाम आदि व्यवहार सम्पन्न हुए।

मैंने उस जगत् के ब्रह्मा जी से कहा—"भगवन्! इस विद्याधरी ने मेरे पास जाकर कहा कि आप हम लोगों को उपदेश प्रदान करें। आप समस्त प्राणियों के स्वामी हैं और समस्त ज्ञानराशि के भण्डार हैं। यह काममुग्धा स्त्री क्या कह रही हैं? कृपया मुझे अवगत करायें"।

उस जगत् के ब्रह्मा ने कहा—"मुनिवर! आप समस्त वृत्तान्त सुनिए। अज, शान्त, अमर, त्रिकालाबाधित चिद्रूप ब्रह्म है, उसके स्फुरण से मैं आविर्भूत हूँ। मैं चिदाकाशरूप हूँ और सदा अपने स्वरूप में स्थित रहता हूँ। सृष्टि के आविर्भाव होने पर लोग मुझे स्वयम्भू कहते हैं। तात्त्विक दृष्टि से मैं उत्पन्न नहीं होता और न कुछ देखता हूँ। चिदाकाशस्वरूप मैं चिदाकाश में स्थित रहता हूँ। यह जो हम लोगों का सम्भाषणादि व्यवहार है, वह उस प्रकार है, जिस प्रकार समुद्र की एक तरङ्ग दूसरे तरङ्ग को उत्पन्न करती है और वह तीसरे को और इस प्रकार बराबर तरङ्गमालायें उठती, गिरती तथा छलकती रहती हैं। एक विशेष प्रकार की ध्वनि और गर्जन सदा होता रहता है जबकि समुद्र एक है और ये तरङ्गादि सब उसके अङ्ग हैं। चिद्-ब्रह्म के कचन से जब मैं हिरण्यगर्भ के रूप में स्फुरित हुआ, उस समय चिदाभास-रूप मुझमें "मैं और मेरी" यह वासना हुई और वही वासना यह कुमारी है। आप लोगों को यह अन्य-सी भासित हो रही है; परन्तु मुझको अनन्य-सी भासती है। वह उदित है और नहीं भी उदित है। वह वासना की अधिष्ठात्री देवी है और न मेरी गृहिणी है और न मैंने गृहिणी के निमित्त इसका उत्पादन ही किया है"।

वासनादेवी (विद्याधरी) के वैराग्य का कारण—

"मुनिवर! अब मेरा दो परार्धवर्ष का आयुष्य समाप्त हो रहा है। अतः चित्ताकाशरूप मैं निरतिशयानन्दात्मक ब्रह्माकाशरूप कैवल्यस्थिति की इच्छा कर रहा हूँ। फलतः महाप्रलय होने जा रहा है और वासना विनाशोन्मुख हो रही है।

मैं जब चिदाकाशरूप हो जाता हूँ, तब अनिवार्यरूप से महाप्रलय होता है और सब प्रकार की वासनायें विनष्ट हो जाती हैं। आज कलियुग की समाप्ति का समय है और इन्द्र, मनु, काल आदि देवों का अन्त होने जा रहा है। जैसे जड़ समुद्र से स्वतः तरङ्गमालायें उठती रहती हैं, वैसे ही वासना में भी अपने विनाशहेतु आत्मदर्शनेच्छा स्वतः उत्पन्न होती है, कोई अन्य कारण नहीं है। आत्मदर्शन के निमित्त धारणाभ्यास आदि अपेक्षित होता है और उससे अन्यान्य ब्रह्माण्डों में गमन-शक्ति की सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। वासनादेवी उसी निमित्त आपके ब्रह्माण्ड में गईं और उन्होंने आत्मज्ञान के निमित्त आपसे प्रार्थना की। आकाश में विचरण

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

करती हुई इस देवी ने अपने जगत् की आधारभूत प्रस्तरशिला को भी देखा जो कि हम लोगों की दृष्टि में चिदाकाश ही है। ऐसे ऐसे अनेक जगत् इस जगत् के पदार्थों के भीतर विद्यमान हैं, जिन्हें व्युत्थान दशा में हम लोग नहीं देख पा रहे हैं; परन्तु समाधि में योगदृष्टि से देख सकते हैं। जैसे शिला के उदर में जगत् है, वैसे घट, पट, अवट, कुडप, आकाश, वायु, अग्नि, जल आदि में भी अनेक जगत् विद्यमान हैं।

तात्त्विक दृष्टि से जगत् की सत्ता नहीं है, जैसे स्वप्न के नगर, सिंह, व्याघ्र आदि की। स्वाप्निक जगत् के समान यह जगत् मिथ्या है। अधिष्ठानसत्ता के कारण वह सद्रूप है, परन्तु दृश्यमान जड़रूप में तो वह सर्वथा अलीक है। तत्त्वज्ञानीजन माया को समझते हैं। यतः वह उनके लिए चिदाकाशरूप हो जाती है; परन्तु मूर्खों के लिए तो वह भयङ्कर इन्द्रजाल के समान है। यहाँ न तो कोई कार्य उत्पन्न होता है और न विनष्ट होता है। केवल चिति ही दृश्य, काल एवं क्रियारूप से भासित होती है। देश, काल, द्रव्य, क्रिया, मन, बुद्धि आदि जो दृश्यमान जगत् है, वह चितिरूपी शिला की प्रतिकृतियाँ हैं, जिनका न उदय है और न अन्त। चिति ने शिला का रूप धारण किया है और यह समस्त जगत् उसका अङ्ग है, जैसे वायु का स्पन्दन। यह चिति शक्ति आदि-अन्त से रहित है, तथापि वह आदि-अन्त से युक्त बन जाती है। वह निराकार होती हुई भी जगत्रूप अङ्गों से साकार-सी बन जाती है। जैसे वह स्वप्नकाल में नगर आदि बन जाती है, वैसे वह जाग्रत् में पाषाण आदि जगद्रूप धारण कर लेती है"।

"मुनिवर! अब आप अपने लोक को चले जायें और अपने कल्पित स्थान पर आनन्द करें। यह मेरे द्वारा निर्मित जगत् अव्यक्त की ओर चला जाय और मैं भी कैवल्य पद में प्रतिष्ठित हो जाऊँ। अब रहने का समय नहीं है"।

आकाशत्वाद्यदाद्योऽयं पराकाशो भवाम्यहम्।
तदा महाप्रलयता वासनायाश्च संक्षयः॥
आत्मतत्त्वं तु पश्यन्त्या धारणाभ्यासयोगतः।
दृष्टोऽनया भवत्सर्गो वर्गव्यग्रनिरर्गलः॥
अनयाऽम्बरसञ्चारपरयाद्विशिरः शिला।
दृष्टा स्वजगदाधारभूताऽस्माकं तु खात्मिका॥
जगन्नात्र मुधा भ्रान्तिः किल स्वप्नपुरोपमा।
मिथ्यैवेयं क्व नामासौ चिद्रूपास्त्यथ नास्ति च॥
चिदेवेयं शिलाकारमवतिष्ठति बिभ्रती।
अङ्गं यस्या जगज्जालं मरुतः स्पन्दनं यथा॥
चिच्छिलेयमनाद्यन्ता साद्यन्तास्तीत्यबोधतः।
साकारापि निराकारा जगदङ्गेति संस्थिता॥
वसिष्ठ तद्गच्छ मुने जगत्स्वं त्वं चासने सम्प्रति शान्तिमेहि।
बुद्ध्यादिरूपाणि परं व्रजन्तु वयं बृहद् ब्रह्मपदं प्रयामः॥

योगवासिष्ठ, निर्वाण-प्र० उ० सर्ग ७०, श्लो० ३, १०, ११, १५, २१, २३, २८

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

कल्पक्षोभ वर्णन—

यह सृष्टि ब्रह्मा के सङ्कल्प से उत्पन्न है। जब उनका सङ्कल्प शिथिल होता है, तब इसका विनाश भी प्रारम्भ हो जाता है। ब्रह्मा जी ब्रह्मलोकवासियों के साथ पद्मासन लगाकर बैठ गए और समाधिस्थ हो गए। उनकी वासनारूपिणी विद्याधरी ने भी उनका अनुसरण किया। राघवेन्द्र! सङ्कल्पशून्य होकर जब ब्रह्मा जी उत्तरोत्तर सूक्ष्मभाव को प्राप्त होने लगे, तब मैं (वसिष्ठ) भी समाधि से सर्वव्यापक चिदाकाश बन गया और महाप्रलय का दृश्य देखने लगा।

ब्रह्मा जी का सङ्कल्प ज्यों-ज्यों नीरश होता गया, त्यों-त्यों पर्वत, द्वीप एवं समुद्रों से युक्त पृथिवी का उत्पादन-सामर्थ्य विनाशोन्मुख होने लगा। पृथिवी ब्रह्मा के विराट् स्वरूप की एक अङ्गमात्र है, अतः उनके संवेदन के उपसंहार के साथ ही पृथिवी का जर्जरित होना स्वाभाविक ही है। अकाल का ताण्डवनृत्य होने लगा, दस्युओं के उपद्रवों से जनता दीन और दरिद्र हो गई। स्त्रियाँ सतीत्व से भ्रष्ट हो गयीं और मर्यादाओं का लोप-सा हो गया। नीहार एवं धूलि से सूर्यमण्डल धुँधला-सा दिखाई देने लगा और दुर्बल एवं व्यसनी नर-नारियों से पृथिबी आक्रान्त हो गई। अग्निदाह, जलप्लावन एवं युद्धों से मण्डल के मण्डल छिन्न-भिन्न हो गए तथा अति-वृष्टि एवं अनावृष्टि से प्रजाजन का जीवन कष्टमय हो गया। भयङ्कर उत्पातों से पर्वत, नगर ध्वस्त होने लगे तथा बच्चों, श्रोत्रियों, मुनियों, आर्यजनों एवं गुणज्ञों के विनाश से लोग रुदन करने लगे। वर्णसङ्करों की सृष्टि वृद्ध्युन्मुख होने लगी। लोग आचरणहीन हो गए, प्रजाजन विविध द्वन्द्वों से आक्रान्त हो गए, नारियाँ अधार्मिक हो गयीं और नृपगण मद्यपानादि व्यसनों में रत हो गए। भूमण्डल अधार्मिकजनों से व्याप्त हो गया, नास्तिकता का प्रचार बढ़ गया, दुर्जन धनाढ्य तथा सज्जन लोग विपद्ग्रस्त हो गये।

उस समय अनार्यजन शासक बन गए, पण्डितों का प्रताड़न होने लगा। भूमण्डल लोभ, मोह, भय, द्वेष, राग, रोग का शिकार हो गया। लोग स्वधर्मपालन से विरत हो गए, ब्राह्मण लोग क्रोधी हो गए, परपीड़ा पहुँचाने में लोगों की प्रवृत्ति अधिकाधिक हो गई। नगर, ग्राम, देवस्थान तथा ब्राह्मणों के आवासों को छिन्न-भिन्न कर दिया गया तथा कुअन्न-भक्षण से लोगों का आयुष्य क्षीण हो गया। आलस्य के कारण धार्मिक पुरुषों ने नित्य सन्ध्या-बन्दन आदि कृत्यों को त्याग दिया। फलस्वरूप आपत्तियाँ एवं रोग बढ़ गए और मण्डल के मण्डल छिन्न-भिन्न हो गए। नगर एवं ग्राम भस्मावशेष हो गए और अनेक मण्डल उजड़ गए। ऋतुओं ने अपने धर्म छोड़ दिये और पृथिवी सर्वथा नीरस हो गयी।

पृथिवी के बाद जलधातु में विकार आ गया। समुद्रों ने अपनी मर्यादा छोड़ दी और वे तीव्रगति से बढ़ने लगे। अपने विशाल तरङ्गों से वे तटवर्त्ती वृक्षादि को (जङ्गलादि को) उच्छिन्न करने लगे। समुद्रों में अतर्कित बड़े-बड़े तरङ्ग उठने लगे,

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

महान् आवर्त्त भी होने लगे, फलस्वरूप जलचरों में हलचल मच गई। समस्त दिशायें उत्तुङ्ग जलतरङ्गो से आक्रान्त-सी हो गई। प्रलयकालीन मेघ भयङ्कर गर्जन के साथ जलधारा बरसाने लगे और पर्वतों के उन्नत शिखर जल में डूबने लगे, बड़ो-बड़ो पर्वत-कन्दरायें जलधारा से आप्लावित हो गयीं, उनमें रहने वाले सिंह आदि पशु भयङ्कर गर्जन करते हुए जलचरों के ऊपर टूट पड़े। उन्होंने अपने प्रहार से उन्हें क्षत-विक्षत एवं आहत कर दिया, समुद्रों से उछलते हुए मकरों के फूत्कारों से सूर्य-मण्डल आच्छन्न-सा हो गया और समुद्रीय प्रचण्ड तरङ्गों से पर्वत की श्रेणियाँ टूट-टूटकर गिरने लगीं। तरङ्ग ने वनसमूहों को उखाड़ फेंका और आकाशमण्डल को आच्छन्न कर दिया। समुद्र अपने बड़े-बड़े आवर्त्तों से मकर आदि जलचरों को ऊपर फेंक रहा था और उन्हीं आवर्त्तों से अनेक पर्वत एवं उनकी कन्दरायें समुद्र के उदरस्थ होती जा रही थीं। उन जलावर्त्तों के द्वारा समुद्र के कच्छपगण वृक्षों के शिखरों पर चिपक से गए थे और अपनी विविध चेष्टाओं से आकाशस्थ देववाहनों एवं दिग्गजों को चकित-सा कर देते थे। समुद्र में बड़ी खलबली मच गयी, बड़वानल भयभीत होकर छिपने लगे और जलमातङ्ग पर्वतशिखरों पर जाकर स्थलमातङ्गों के साथ युद्ध करने लगे। बड़े-बड़े पर्वत, वनसमूह तथा पशु-पक्षी समुद्र में डूबने लगे।

आकाशमण्डल से अमङ्गलसूचक धूमकेतु गिरने लगे, जो सुवर्ण, रत्न, मोती एवं सिन्दूर वर्ण के सर्पों के सदृश थे। दिशाओं, आकाशमण्डल एवं पृथिवीमण्डल पर अनेक प्रकार के उत्पातसूचक दृश्य दिखाई देने लगे। भूमण्डल तथा पातालवासी भूतसङ्घ क्षुब्ध हो उठे। इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, वायु, यम, अग्नि-प्रभृति देवगण अधिकार च्युत हो ब्रह्मलोक में विलीन हो गए। उस समय महान् भूकम्प हुआ और कैलास, मेरु एवं मन्दर को कन्दरायें काँप उठीं। कल्पवृक्ष रक्तवर्ण के पुष्पगुच्छों को गिराने लगे।

यावत्सङ्कल्पनं तस्य विरसीभवति क्षणात्।
तथैवाशु तथैवोर्व्याः साद्रिद्वीपपयोनिधेः ॥
तृणगुल्मलताशालिसमुद्भवनशक्तता।
समस्तैवास्तमागन्तुमारब्धा च शनैः शनैः ॥
दुर्भिक्षाकाण्डदौःस्थित्यदैन्यदारिद्र्यदुर्भगा।
दुःशीलाशेषवनिता निर्मर्यादनरादृता ॥
अनार्यवसुधापाला तदनादृतपण्डिता।
लोभमोहभयद्वेषरागरोगरजोरता ॥
यदा विक्षुभितान्यासीत्तदा नियतिलङ्घनात्।
समुत्सार्यार्यमर्यादामर्णवा विस्तृतार्णसः ॥
प्रफुल्लितवनव्यूहलूनकाननिताम्बराः।
सपक्षपर्वताकारतरङ्गापूरिताम्बराः ॥

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

आवर्त्तवलनाकाराः केतवः पेतुरम्वरात् ।
हेमरत्नमया मुक्ताः सिन्दूरभुजगा इव ।।
चन्द्रार्कानिलशक्राग्नियमाः कोलाहलाकुलाः ।
परिपातपरा आसन् ब्रह्मलोकगतेश्वराः ।।

योगवासिष्ठ, निर्वाण-प्र० उ० सर्ग ७१, श्लो० ५, ६, ११, १९, २७, ३७, ५०, ५३

आकाश में बारह सूर्यों का उदित होना—

महर्षि वसिष्ठ जी ने कहा—"राघवेन्द्र ! जव ब्रह्मदेव ध्यानस्थ हो गए, तब मैंने दिशाओं की ओर आँखें दौड़ायीं । मैंने पश्चिम दिशा में उदित एक सूर्य को देखा । इसके बाद सागर में वड़वानल के समान प्रदीप्त एक दूसरे सूर्य को नैर्ऋत्यकोण में उदित देखा । तदनन्तर दक्षिण दिशा में, आग्नेयकोण में, पूर्व दिशा में, ईशानकोण में, उत्तर दिशा में, वाणव्यकोण में मैंने एक-एक सूर्यदेव को उदित देखा । मैं इन सूर्यों को देखकर दैव की प्रतिकूलता पर विचार कर ही रहा था कि एक सूर्य पृथिवीमण्डल से बड़वानल के समान प्रादुर्भूत हो गए । दशों दिशाओं में दस सूर्यों के उदित हो जाने पर मध्याकाश में एकादश सूर्य उदित हुए । इस सूर्य के साथ तीन सूर्य और भी उदित हो गए । ये तीनों सूर्य भगवान् शङ्कर के तीन नेत्र हैं । ये सूर्य सभी दिशाओं को जलाने लगे, जैसे अग्नि शुष्क जङ्गल को जलाता है । राघवेन्द्र ! उस सौराग्नि से मेरा शरीर जलने लगा । अतः मैं सुदूर आकाश में बहुत दूर उड़ गया ।

मैंने वहाँ से दशों दिशाओं को जलाते हुए द्वादश सूर्यों को देखा । उनके प्रचण्ड ताप से समुद्र का जल खौलने लगा तथा सभी लोक, नगर एवं ग्राम जलने लगे । उस प्रचण्ड ताप से त्रैलोक्य जलने लगा, लोग इधर-उधर भागने, चिल्लाने एवं मरने लगे । मृतकों के शरीर से दुर्गन्ध फैलने लगी और चारों ओर हाहाकार मच गया । अनेक नगरों एवं ग्रामों में सामूहिक मरण हो जाने के कारण कोई रोने-वाला भी नहीं था । दिशाओं में भयङ्कर अव्यवस्था एवं दुर्गन्धि व्याप्त थी । द्वादश आदित्यों के भीषण ताप से समुद्र भी सूख गए और उसके भीतर रहने वाले मकर आदि हिंसक जल-जन्तु ग्रीष्म से पक्व हो और परस्पर लड़-भिड़कर विनष्ट होने लगे । पर्वतशिखरों पर रहने वाले सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष आदि भगवान् रुद्र के नेत्रों की ज्वालाओं से जलकर भस्म होने लगे । उन प्रचण्ड ज्वालाओं के ताप से अनेक पर्वतों, वृक्षों एवं गुहा-गृहों के साथ सुन्दर आकृतिवाला सुमेरु पर्वत सुवर्णद्रवरूप से ऐसे गल गया, जैसे आतप के कारण हिम । अन्तःशीतल हिमवान् पर्वत उस प्रलयाग्नि से क्षण भर में पिघल गया । उस भयङ्कर दशा में भी दक्षिण में मलयाचल ने अपने सौरभ-भ्रम को नहीं त्यागा । उदारात्मा स्वयं भले ही कष्ट सहे परन्तु दूसरों को कष्ट नहीं देते । उत्तम गुण और स्वभाव के लोग अपने स्वभाव एवं गुण के कारण विनष्ट नहीं होते । सुवर्ण प्रलयानल से दग्ध होने पर भी सर्वथा विनष्ट नहीं हुआ । उस भयङ्कार प्रलयाग्नि के आक्रमण पर भी दो पदार्थ विनष्ट न हुए । प्रथम आकाश तथा द्वितीय

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

सुवर्ण। ये दोनों नितान्त प्रशंसनीय हैं; क्योंकि सर्वनाश होने पर भी इन दोनों का नाश नहीं हुआ। वह प्रलयाग्नि कैलास पर्वत पर आक्रमण न कर सका, तब कुपित हो रुद्र भगवान् ने अपनी नेत्राग्नि से कैलास पर्वत को जला दिया। सृष्टि स्मरणीय दशा को प्राप्त हो गई, अर्थात् कल्पान्त में यह अनुभव होने लगा कि "कभी सृष्टि अवश्य रही होगी" ?

काञ्चनद्रवसाद्रीन्द्रद्रुमागारगुहागृहः ।
शनैश्चार्वाकृतिर्मेरुरासीद्धिम इवातपे ॥
क्षणेनैवानलात्तस्माद्धिमवान् जतुवद्द्रुतः ।
सर्वान्तःशीतलः शुद्धो दुर्जनादिव सज्जनः ॥
तस्यामपि दशायां तु मलयोऽमलसौरभः ।
आसीत्त्यजत्युदारात्मा न नाशेऽप्युत्तमं गुणम् ॥
न कदाचन संयाति वस्तूत्तममवस्तुताम् ।
प्रलयानलनिर्दग्धमपि हेम न नष्टवत् ॥
द्वे हेमनभसी तस्मिन्न नष्टे प्रलयानले ।
तयोरेव वपुः श्लाघ्यं सर्वनाशेऽप्यनाशयोः ॥
न लङ्घयति कैलासं यावदुल्लसितोऽनलः ।
तावत्तं कल्पकुपितो रुद्रो नेत्राग्निनाऽदहत् ॥
सर्गः कदाचिदेवासीदित्यगात्स्मरणीयताम् ।
कल्पान्तः स्मारयन्मूर्खानगादस्मरणीयताम् ॥

योगवासिष्ठ, निर्वाण-प्र० उ० सर्ग ७५, श्लो० ४९-५१, ५३, ५४, ५९, ६२

प्रलयकालिक मेघ पुष्करावर्त्त का उदय—

वसिष्ठ जी ने कहा—"राघवेन्द्र ! पर्वतों को कम्पित करने वाला प्रलयकालिक वायु बहने लगा, समुद्रों ने अपनी मर्यादा छोड़ दी थी, मेघ जल के दारिद्र्य से भग चुके थे, भूतल अग्नि की ज्वालाओं से झुलस गया था, समस्त सृष्टियाँ जीर्ण-शीर्ण हो चुकी थीं, दिशायें शोकाक्रान्त हो चुकी थीं, अकस्मात् आकाश के एक भाग से क्रुद्ध दैत्यगण के समान पुष्करावर्त्तकनामक मेघ गर्जन करने लगे। उनका गर्जन अत्यन्त भयङ्कर था। ब्रह्मा जी ने अपने अण्डे का जब भेदन किया था, उस समय जैसा हृदय को दहलाने वाला विस्फोट हुआ था, वैसा ही मेघ के गर्जन से हुआ"।

"राघवेन्द्र ! मैंने वह ध्वनि सुनी। मैं आश्चर्यचकित हो गया कि इस भयङ्कर प्रलयाग्नि के रहते मेघ कहाँ से आ गए ? जब दिशाओं में मैंने आँखें फैलाईं तो क्या देखता हूँ कि उल्मुकरूपी वज्रों की वृष्टियाँ हो रही हैं। उनसे दसों दिशाओं में करोड़ों योजन दूर तक के पदार्थ भस्म हो रहे हैं। उस सुदूरतम आकाश में मैंने नीचे से अग्निताप का तथा ऊपर से शीतल वायु का अनुभव किया।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

तदनन्तर पश्चिम दिशा से प्रलयकालिक वायु बहने लगा, जिसमें विन्ध्य, हिमालय, मेरु प्रभृति बड़े-बड़े पर्वत तृण के समान उड़ते दिखाई दे रहे थे। उस वायु के द्वारा अग्नि को प्रचण्ड ज्वालाओं की लपटें आग्नेय दिशा की ओर उड़ रही थीं। चारों ओर भूमण्डल अङ्गारों से भर गया। ब्रह्मलोक के निवासी, स्त्रियों, बालकों एवं वृद्धों के साथ जलकर आकाश में गिरने लगे।

कुछ समय के बाद भयङ्कर वर्षा होने लगी। वर्षा के साथ वज्रतुल्य निर्घोष एवं विद्युत् के चाकचिक्य एवं कड़ाके के शब्द के साथ आकाशमण्डल दुर्धर्ष हो गया। आकाशमण्डल सैकड़ों सिंहनाद-सदृश भयङ्कर गर्जन ध्वनियों से परिपूर्ण-सा हो गया। उस समय जल, अग्नि एवं वायु, तीनों का ताण्डव हो रहा था। बड़े-बड़े पत्थर आकाश में उड़कर जा रहे थे, उनका परस्पर आघात-प्रतिघात होता था, जिससे भयङ्कर टङ्कारध्वनि निकलती थी। आकाश से स्तम्भसदृश जल की धारा अविच्छिन्नरूप में गिरने लगी, फलतः कल्पान्त की अग्निज्वाला का विनाश होने लगा और छमछम शब्दों की सघन ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। उस जलधारा से त्रैलोक्य के समुद्र परिपूर्ण हो गये, अनेक पर्वतशिखर, द्वीप एवं नगर बहने लगे। आकाशमण्डल में ग्रहों एवं तारों में तुमुल युद्ध होने लगा और वे परस्पर टकराकर आकाश में गिरने लगे। पर्वतों का आधारपीठ भूतल जीर्ण-शीर्ण हो गया था। अतः वे हिलने लगे थे। इधर प्रलयकालिक पवन के प्रचण्ड वेग से पर्वत लुढ़क-लुढ़ककर इधर-उधर गिरने लगे। तीनों लोकों में प्रलयकालिक वायु द्वारा उद्वेल्लित अधजले, अधमरे अङ्गों वाले देव-दानव परस्पर एक दूसरे को मारने के लिए शस्त्र उठाने लगे। जल की पर्वताकार तरङ्गों के आघातों से देवों, दैत्यों, सिद्धों तथा गन्धर्वों के नगर छिन्न-भिन्न होकर पतनोन्मुख हो रहे थे। उस समय जगत् की दशा बड़ी शोचनीय थी। शिष्ट देवगण क्रन्दन कर रहे थे। कुछ प्राणी जल के ऊपर इधर-उधर तैर रहे थे और सैकड़ों धूमकेतुओं के उत्पात दृश्यमान हो रहे थे। पवन के द्वारा उड़ाये गये मृत अथवा अर्धमृत प्राणिसमूहों से आकाशमण्डल व्याप्त हो गया। त्रैलोक्य जल की प्रचण्ड धारा में बह रहा था। उस समय पातालस्थान च्युत भूखण्डों एवं द्वीपसमूह से परिपूर्ण हो गया।

प्रचण्ड पवन के आघात से समस्त जगत् एक समुद्राकार-सा हो गया। वह एक समुद्र द्रुतगामी सैकड़ों नदियों के जल-कल्लोलों से भुवन में बढ़ने लगा। वृष्टि की धारायें पहले मुसल के आकार में फिर स्तम्भ के आकार में और फिर तालवृक्ष के आकार में गिरने लगीं। उस महावृष्टि से प्रलयाग्नि शान्त हो गया और एकार्णव बनने लगा।

जलानलानिलोल्लासस्फुटत्कोटिगताश्मनाम् ।
प्रविघट्टनटङ्कारैर्जडीभूताक्षकश्रुतिः ॥

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

नभःस्तम्भनिभाबन्धधारानीरन्ध्रवर्षणैः ।
कर्षणैः कल्पवल्लीनां छमच्छमघनध्वनिः ॥
विशीर्णवसुधापीठखण्डखण्डैर्गलत्तटैः ।
उह्यमानैर्लुठच्छैलपतनैः सङ्कटार्णवम् ॥
मृतार्धमृतदग्धार्धदग्धाङ्गैर्देवदानवैः ।
अन्योन्यदर्शनाद्घातवेल्लितैर्भ्रामितायुधम् ॥
कुर्वज्जलाद्रिनिष्पेषैर्दिक्पालपुरकुट्टनम् ।
निपतद्देवदैत्येन्द्रसिद्धगन्धर्वपत्तनम् ॥
क्रन्दच्छिष्टामरगणं चलत्सज्जीवभूतकम् ।
भ्रमत्केतुशतोत्पातं दुष्प्रेक्ष्यमभवज्जगत् ॥
मृतार्धमृतया भूतसन्तत्याऽनिललोलया ।
अभून्नीरन्ध्रमाकाशं जीर्णपर्णसवर्णया ॥
भूमण्डलबृहत्खण्डैर्भ्रष्टैः सद्वीपसागरैः ।
पूर्णसप्तमपातालं लुठत्पातालमण्डलैः ॥
एकार्णवोऽथ ववृधे शनैः शीघ्रं सरिच्छनैः ।
भुवने जलकल्लोलैः कोपो मूर्खाशये यथा ॥
मुसलोपमया पूर्वं ततः स्तम्भनिभाङ्गया ।
ततस्तालद्रुमाकारधारयाऽऽसारसारया ॥

योगवासिष्ठ, निर्वाण-प्र० उ० सर्ग ७७, श्लो० ७, ८, १५, १६, २६, ३४, ३५, ४३, ४५-४६

एकार्णव-वर्णन—

वह समुद्र आकाशगङ्गा के प्रवाहों में पतित मेघधाराओं के गिरने से बहुत बढ़ गया। उसके उत्तुङ्ग तरङ्ग आकाशमण्डल में मेरु एवं मन्दर पर्वत के सदृश ऊँचे उठ रहे थे। उसने अपने आवर्तों से बड़े-बड़े पर्वतों को जीर्ण-शीर्ण तृणों के समान चक्कर में डाल दिया और अपनी तरङ्गमालाओं के अग्रभागों से आदित्यमण्डल को निगल लिया। उसने मेरु, मन्दर, कैलास, विन्ध्य, सह्य-प्रभृति पर्वतों को जलचरों के समान बना दिया तथा कीचड़ में भीतर लीन शेषादि नागराजों को कमलदण्ड के समान। उसमें अर्धदग्ध वृक्षों से वनसमूह शैवाल-सा प्रतीत हो रहा था। उस अर्णव में सुर, असुर एवं मानवसमूह काष्ठ के सदृश बह रहे थे। वह शनैः शनैः बढ़ता हुआ आदित्यमण्डल तक पहुँच गया। उस समय महागर्जन के साथ मेघमण्डलों से जो जलधारायें समुद्र में गिर रही थीं, उनके बुद्बुद (बुल्ले) महापर्वतसदृश उठ रहे थे। प्रवाहयुक्त जलराशि के घर्घर घोष से आकाश काँप उठता था और उस भीषण जल-प्रवाह ने सातों कुलपर्वतों को उदरस्थ कर लिया। उस महार्णव का औद्धत्य क्षण-क्षण में बढ़ता गया और उसने लाखों योजनों तक विस्तृत पदार्थों को आत्मसात् कर

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Fami

डाला। तरङ्गों में पर्वताराज तृण के समान झूला झूल रहे थे और उन पर्वतों के पत्थरों द्वारा वह (अर्णव) आदित्यमण्डल को ध्वस्त कर रहा था।

अदृष्टवश मृत्यु से बचे हुए तथा नगरच्युत देवगण को, जो जल पर विश्राम कर रहे थे, वह मशकों के समान फेनरूपी पर्वतशिखरों पर धारण कर रहा था। वह प्रलयकालिक समुद्र पक्षवान् पर्वतों के सदृश अपने उत्तुङ्ग तरङ्गों से पुष्करावर्त्तक आदि मेघों का आलिङ्गन-सा कर रहा था। राघवेन्द्र ! ऐसा प्रतीत होता था, मानो समुद्र त्रैलोक्य को ग्रसकर अपने घर्घर शब्दों से गान कर रहा हो तथा तरङ्गरूपी भुजाओं से नृत्य कर रहा हो। वह महासागर ऊपर से नदी के सदृश धाराओं वाले मेघों से, मध्य में दग्ध पर्वतों से तथा नीचे पङ्क में रहने वाले नागों से आवृत था। निरन्तर गिर रही धाराओं से सुशोभित गङ्गा जी की बाढ़ से वह परिपूर्ण था। उसमें पर्वतशिखरों के डूबने एवं उतराने से पानी के बुलबुले उठ रहे थे। उसमें स्वर्ग के अनेक देवगण हंस के रूप में तैर-से रहे थे। बहती हुई विद्याधरियों की पंक्तिरूपी पद्मिनियों से वह सुन्दर प्रतीत हो रहा था। त्रैलोक्य के संहारक उस महासागर के मध्य में वह रहे प्राणियों का कोई भी संरक्षक नहीं था। सत्य है, काल के गाल में पड़े हुए प्राणी की कौन रक्षा कर सकता है ?

राघवेन्द्र ! उस समय न आकाश था, न दिशायें थीं, न ऊपर था, न नीचे था, न भूत था, न सर्ग था, एकमात्र जल ही जल दृष्टिगोचर हो रहा था।

मेरुमन्दरकैलासविन्ध्यसह्यजलेचरः ।
गलितावनिपङ्कान्तर्लीनव्यालमृणालकः ॥
काष्ठवत्प्रोह्यमाणोग्रसुरासुरजनोत्करः ।
शनैः क्रमोच्छूनतया लिहन्नादित्यमण्डलम् ॥
महाप्रवाहवार्योघघोषधुङ्धुमिताम्बरः ।
एकप्रवाहमहितसव्योमकुलपर्वतः ॥
ब्रह्माण्डखण्डसंघट्टपरावृत्तिभिरुद्धतः ।
कुर्वन्योजनलक्षाणि विततान्युन्नतानि च ॥
तृणैरेव तरङ्गेषु दोलान्दोलनमद्रिभिः ।
कुर्वद्भिरुपलाघातभग्नभास्करमण्डलः ॥
मृतशिष्टायन् पुरभ्रष्टान् फेनाद्रितटिकोटिषु ।
दधज्जलबलश्रान्तांस्त्रिदशान् मशकानिव ॥
पुष्करावर्त्तकाभ्राणां बहुभिर्वीचिमण्डलैः ।
कुर्वन्नालिङ्गनानीव सपक्षाद्रिवदुत्थितैः ॥
त्रिजगद्ग्राससंतृप्तः प्रगायन्निव घर्घरैः ।
स्वैर्नृत्यन्निव चोग्राद्रिकटकैर्वीचिदोर्द्रुमैः ॥

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

नाकाशमासीन्न दिगन्त आसीदधोऽपि नासीन्न तदूर्ध्वमासीत् ।
भूतं न आसीन्न च सर्ग आसीदासीत्परं केवलमेव वारि ॥
योगवासिष्ठ, निर्वाण-प्र० उ० सर्ग ७८, श्लो० ५, ६, १२, १४, १५, २१, २२, २८

विधाता के निर्वाण का वर्णन—

महर्षि वसिष्ठ जी ने कहा—"राघवेन्द्र ! तपोलोकपर्यन्त प्रदेश जब महासागर में डूब गया, तब सत्यलोक के समीप में स्थित मैंने अपनी दृष्टि चारों ओर दौड़ाई। मैंने जीवन्मुक्त परिवार के सहित ब्रह्मा जी को समाधिस्थ देखा। वहाँ पर मैंने अधिकारी देवों तथा श्रेष्ठ मुनिसमूह को भी देखा। शुक्र, बृहस्पति, इन्द्र, कुबेर, यम, सोम, वरुण एवं अग्निप्रभृति देवगण के अतिरिक्त भी अनेक देव एवं ऋषि वहाँ उपस्थित थे। देव, गन्धर्व, सिद्ध और साध्यों के नायक भी उपस्थित थे। सब पद्मासन लगाकर समाधिस्थ थे। उसी स्थान पर प्रलयकाल के द्वादश आदित्य भी आकर पद्मासन लगाकर बैठ गये। क्षणमात्र में विधाता विदेह-कैवल्य को प्राप्त हो गए। परिवार के अन्य जन, देवगण, ऋषिसमूह आदि सब विदेह-कैवल्य को प्राप्त हो गए।

ब्रह्मदेव का वह लोक, जो कि उनके सङ्कल्प से निर्मित था, शून्य अरण्य के समान हो गया। ब्रह्मा जी के साथ समस्त परिवार निर्वाण को प्राप्त हो गया। वासना के विलीन हो जाने पर विशुद्ध परमपद की प्राप्ति हो जाती है। वासना के कारण यह भौतिक शरीर भासित होता है, उसके अभाव में वह चिदाकाशरूप हो जाता है। जाग्रत् अवस्था में जैसे स्वप्न के दृश्य भासित नहीं होते, वैसे वासना के अभाव में यह स्थूल शरीर विनष्ट-सा हो जाता है। जाग्रत्काल में वासना के विनाश से न तो आधिभौतिक शरीर दृश्य होता है और न आतिवाहिक, जैसे जाग्रत् में स्वप्न की सृष्टि।

प्रलय-क्रम का वर्णन—

ब्रह्मलोकवासियों के अदृश्य हो जाने पर उन बारह सूर्यों ने ब्रह्मलोक को भी भस्म कर दिया और पश्चात् वे भी निर्वाणरूप हो गए। महासागर ने बढ़कर विधाता के नगर को भी जल में आप्लावित कर दिया। राघवेन्द्र ! इस बीच मैंने एक भयङ्कर रूप देखा, जो आकाश के मध्य से आविर्भूत हुआ था। वह कज्जल के पर्वत के समान था। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो अन्धकार ही शरीर धारण कर खड़ा हो गया हो। वह रूप लाखों आदित्यों के तेज को धारण किये था। उसके तीन नेत्र थे, जो आदित्य के समान प्रकाशमान थे। उसके पाँच मुख थे और दस भुजायें थीं। वह आकाश के समान विशाल था। उसने हाथ में त्रिशूल धारण किया था। अपनी विशाल नासिका की वायु से वह महासागर को कम्पित कर रहा था। ऐसा प्रतीत होता था कि प्रलयकालिक महासागर पुरुष का रूप धारण कर खड़ा हो गया हो अथवा सबका कारण अहङ्कार मूर्तिमान् होकर खड़ा हो गया हो। सूक्ष्म दृष्टि से

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

देखने पर मैंने अनुभव किया कि "यह भगवान् रुद्र हैं"। मैंने दूर से भगवान् रुद्र को प्रणाम किया।

राघवेन्द्र ने कहा—"भगवन्! भगवान् रुद्र इतने भयानक कृष्णवर्ण के क्यों हैं? उनकी तीन आँखें, पाँच मुख और दस भुजायें क्यों हैं? इत्यादि"।

वसिष्ठ जी ने कहा—"राघवेन्द्र! रुद्र भगवान् व्योमाकृति हैं, वह व्योमवर्ण हैं। तत्त्वज्ञानी लोग शरीर की पाँच ज्ञानेन्द्रियों को रुद्र भगवान् के पाँच मुख कहते हैं। पाँच कर्मेन्द्रियाँ एवं उनके पाँच विषय—वचन, आदान, विहरण, उत्सर्ग और आनन्द, ये दसों मिलकर उनकी दस भुजायें हैं। समस्त प्राणियों में वायु के समान वह भगवान् नित्य स्थित रहते हैं। सत्तत्त्व, रज और तम, ये तीन गुण, भूत, भविष्य और वर्त्तमान, ये तीन काल, अ, उ, म्, ये तीन प्रणव के अक्षर, ऋक्, यजुः और साम, ये तीन वेद, उस रुद्र भगवान् के तीन नेत्र हैं। उन्होंने अपने हाथ में त्रिशूल धारण किया है, जो त्रैलोक्य का प्रतीक है। निर्मल चिदाकाशरूप परमात्मा महाकाल रुद्र का रूप धारण कर त्रैलोक्य का संहार कर उसे महासागररूप में परिणत करता है और उस महासागर का जल पीकर परमशान्ति को प्राप्त करता है।

राघवेन्द्र! मैंने देखा कि उस महारुद्र के श्वासवायु से आकृष्ट होकर महासागर उनके मुख में प्रविष्ट हो रहा है, जैसे वड़वानल में जलराशि। उनका विशाल मुख ज्वाला-मालाओं से व्याप्त था और उस भयङ्कर तेजोराशि में महासागर प्रविष्ट-सा हो रहा था। वह महारुद्र वड़वानल बनकर कल्पपर्यन्त समुद्र में जलपान करते रहते हैं और प्रलयकाल में समस्त जलराशि को पी जाते हैं। जैसे जल पाताल में, सर्प बिल में और पञ्चवायु प्राणियों के मुखाकाश में प्रविष्ट होते हैं, वैसे ही वह महासागर भगवान् रुद्र के मुख में बड़े वेग से प्रविष्ट होने लगा।

उस समय वहाँ केवल चार पदार्थ—जो निर्मल तथा स्पन्दशून्य थे—दृष्टि-गोचर हो रहे थे। प्रथम—भगवान् रुद्र, जो कृष्णवर्ण के थे और आकाश के सदृश आकृतिवाले थे, निराधार स्थित थे। द्वितीय—सप्तम पाताल से बहुत दूर पृथिवी तथा आकाश के सदृश ब्रह्माण्ड-सदन का अधोभाग, जो त्रैलोक्य के एवं भस्म जलराशि से क्लिन्न होकर पङ्करूप में परिणत समृद्धस्वरूप का था। तृतीय—ब्रह्माण्डखण्ड का ऊर्ध्वभाग, जो अनन्त दूरी पर स्थित होने के कारण नेत्रों से दुर्लक्ष्य था। चतुर्थ—आदि-अन्त से रहित सर्वत्र व्याप्त निर्मल ब्रह्माकाश जो, दोनों ब्रह्माण्ड-खण्डों के मध्य में अवस्थित था।

श्रीराघवेन्द्र ने पूछा—"भगवन्! उन ब्रह्माण्ड-खर्परों के बाहर क्या है? उसके कौन आवरण हैं? कितने हैं तथा वे वहाँ कैसे संस्थित हैं"?

महर्षि वसिष्ठ ने कहा—"राघवेन्द्र! उन ब्रह्माण्डखण्डों के पार उनसे दशगुण अधिक विस्तृत जल है। वह जल उन खण्डों के विशाल सन्ध्याकाश को छोड़कर

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

बाहर स्थित है। उसके वाद जल के दशगुण ज्वालात्मक तेज अवस्थित है, उसके अनन्तर तेज से दशगुण. निर्मल पवन स्थित है। उसके बाद पवन के समान दशगुण निर्मल आकाश स्थित है। तदनन्तर परम स्वच्छ अनन्त ब्रह्माकाश स्थित है"।

श्रीराघवेन्द्र ने कहा—"ब्रह्मन्! ब्रह्माण्डखण्ड के ऊपर तथा नीचे दश-दश-गुण अधिक जल, तेज, वायु एवं आकाश आदि महाकारसम्पन्न हैं। उन्हें कौन धारण करता है" ?

महर्षि वसिष्ठ ने कहा—"राघवेन्द्र! पार्थिव पदार्थों का जो भाग ब्रह्माण्ड-खर्पर है, वह कमलपत्र के समान स्थित है, उसी भाग को वे आधार मानकर स्थित हैं, जैसे वानरी के शिशु अपनी माँ को। जो ब्रह्माण्ड समीप में स्थित है, उसीकी ओर सब पदार्थ दौड़ते हैं, जैसे प्यासा जल की ओर। जैसे शरीर में हाथ, पैर, मुख आदि अवयव स्थित हैं, वैसे ही एक दूसरे का अवलम्बन कर तैजस आदि पदार्थ स्थित हैं"।

श्रीराघवेन्द्र ने कहा—"भगवन्! कृपया यह बतलाइये कि वे ब्रह्माण्डखण्ड कैसे अवस्थित हैं? उनका आधार क्या है" ?

महर्षि वसिष्ठ ने कहा—"राघवेन्द्र! ये ब्रह्माण्डखर्पर भगवान् की अचिन्त्य धारणात्मिका शक्ति से धृत हैं। वस्तुतः यह सम्पूर्ण जगत् आकृतिशून्य स्वप्न-नगर के समान है। चिति का स्फुरण ही जगत् है। इसका पतन अथवा धारण क्या है? अर्थात् कुछ नहीं। जैसे आकाश में श्यामता है, आकाश में शून्यता है, पवन में स्पन्दन है, वैसे ही चिति में गगन है। चिति में ब्रह्माण्ड सङ्कल्प-नगर के समान है। उस ब्रह्माण्ड में अनेक जगत् हैं। निराकार चिदाकाश साकाररूप में स्थित-सा प्रतीत होता है"।

पातालमिव पानीयं सर्पो बिलमिव क्षणात्।
पञ्चवायुरिवाकाशमविशत्तन्मुखं जगत्॥
समुपेत्यापिबद्रुद्रः स मुहूर्त्तेन तत्पयः।
कृष्णाङ्गोऽर्क इव ध्वान्तं सत्सम्पर्क इवागुणम्॥
केवलं तत्र दृश्यन्ते चत्वारो व्योम निर्मलाः।
इमे पदार्था निष्पन्दाः शृणु तान् रघुनन्दन॥
एकस्तावदसौ मध्ये रुद्रः कृष्णाम्बराकृतिः।
निराधारः स्थितो व्योम्नि निस्पन्दामोदबिम्बवत्॥
द्वितीयोऽत्रस्थितो दूरे पृथ्व्याकाशतलोपमः।
भागो ब्रह्माण्डसदनस्याधःपातालसप्तकात्॥
तृतीयोऽत्र पदार्थोऽभूदूर्ध्वं ब्रह्माण्डभागभूः।
दृष्टिक्षयात्सुदूरत्वाद् दुर्लक्ष्यगगनासितः॥

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

दूरविश्लिष्टयोर्मध्यं यत्तद्ब्रह्माण्डखण्डयोः ।
तदाकाशमनाद्यन्तं ब्रह्मनिर्मलमाततम् ॥
चतुर्थोऽसौ पदार्थस्तु तदा संलक्षितो मया ।
चतुष्टयादत्र नान्यदेतस्मादेव किञ्चन ॥
ब्रह्माण्डखण्डयोः पारे ततो दशगुणं जलम् ।
सन्ध्याकाशमनन्तं तद्वर्जयित्वा ततःस्थितम् ॥
ततस्तथैव ज्वालात्मतेजो दशगुणं स्थितम् ।
ततस्तथैव पवनः पवनो निर्मलः स्थितः ॥
ततस्तथैव विमलं नभो दशगुणं स्मृतम् ।
ततः परममत्यच्छं ब्रह्माकाशमनन्तकम् ॥
किमस्य नाम पतति किं वा केनास्य धार्यते ।
यथा संवित्तिकचनं तथैतदवतिष्ठते ॥

योगवासिष्ठ, निर्वाण-प्र० उ० सर्ग ८०, श्लो० ३६-३७, ३९-४५, ४७-४९, ५७

कालरात्रि का वर्णन—

महर्षि वसिष्ठ ने कहा—"राघवेन्द्र ! मैंने महाकाश में रुद्र भगवान् को नृत्य में प्रवृत्त देखा । उनका आकार आकाश के समान विशाल था, वह मेघ के समान श्याम-वर्ण के थे, उन्होंने दसों दिशाओं को व्याप्त कर लिया था । सूर्य, चन्द्र और अग्नि उनके तीन नेत्र थे, दसों दिशायें वस्त्रस्वरूप थीं । उनका शरीर चमक रहा था । ऐसा प्रतीत होता था, मानो प्रलयकालिक महासागर शरीर धारणकर आविर्भूत हुआ हो ।

इसके अनन्तर मैंने देखा कि भगवान् रुद्र के शरीर से मानो छाया निकल रही है । यह महान् आश्चर्यजनक है कि ऐसे घने अन्धकार में यह छाया कैसे आ गई ? मैं विचार ही कर रहा था कि वह नृत्य करती हुई भगवान् रुद्र के सामने आकर खड़ी हो गई । वह कृष्णवर्ण की थी, कृश थी । उसका शरीर शिरामय था और उसका मुख ज्वालाओं से व्याप्त था । वह तम के समान श्यामवर्ण थी । देखने में मूर्तिमती यामिनी जैसी आकाश की द्युति के समान प्रतीत हो रही थी । अपने दीर्घ एवं भयानक मुख से वह ऐसी खड़ी थी, मानो आकाश को नापने को उद्यत हो । अपनी दीर्घ भुजाओं एवं जानुओं के भ्रमण से वह समस्त दिशाओं को नाप-सी रही थी । ऐसा प्रतीत होता था कि वह अपने सुदीर्घ तथा कृश महाकाश से खड़ी होने में असमर्थ थी । अतः विधाता ने शिरारूपी रज्जुराशि से उसे बाँध रखा था । उसका शरीर इतना विशाल था कि योगबल से सहस्रों वर्ष ऊपर-नीचे जाकर मैंने उसके शिर और चरणों को देखा । उसके दोनों कानों में चञ्चल नाग झूल रहे थे तथा दो शव कुण्डल के रूप में विराजमान थे ।

वह महातरङ्गरूपी लम्बी भुजाओं वाली नृत्यरूपी आवर्तों से चञ्चल, प्रलय-कालीन महासागर की तरङ्गमाला-सी भासमान हो रही थी । क्षण में वह एक भुजा-

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

वाली, क्षण में अनेक भुजावाली तथा क्षण में अपनी अनन्त उग्रभुजाओं से जगद्रूपी नृत्यमण्डप को व्याकुल कर रही थी। क्षण भर में वह एकमुखवाली, क्षण में अनेक मुखवाली तथा दूसरे क्षण में अनेक उग्र-मुखवाली तथा विना मुख की हो जाती थी। कभी वह एक पादवाली हो जाती, कभी उसके सैकड़ों चरण हो जाते थे, कभी वह अनन्तचरणों वाली हो जाती, तो कभी विना पैर की हो जाती थी। उस रूप को देखकर मैंने अनुमान किया कि "यह भगवती कालरात्रि है"। भगवती की तीन आँखें थीं और उनका ललाट इन्द्रनील पर्वत के प्रस्थ के समान जल रहा था। नाच रही मञ्जुलतारूपो पुष्पों से युक्त नखों की शुभ्रप्रभारूपी मेघमण्डलों से वह आकाश में सैकड़ों पूर्ण चन्द्रों को नचाती हुई-सी प्रतीत हो रही थो। उस भगवती काली ने अपने कृष्ण एवं उग्र भ्रान्त भुजद्वयों से जो नखरूपी पुष्पों एवं अङ्गुलीरूपी लता-समूहों से सुशोभित थे, आकाशमण्डल को जङ्गल-सा बना दिया। उस भगवतो के केश अनन्त महाकाश में लटक रहे थे, वे सञ्चरणशील अन्धकाररूपी हाथी के समान प्रतीत हो रहे थे। वह भगवती अपने मुख से निःसृत निःश्वास पवन के साथ, जो मेरुप्रभृति पर्वतराजों को उड़ा देने में समर्थ थे, चली जा रही थी। वह एक ऐसे नट के साथ चली जा रही थी, जो अनुनयशील था और प्रबल वायु के फूत्काररूपी अव्यक्त शब्द से मानो गीत-सा गा रहा था।

नृत्य कर रही उस भगवती ने मलय, कैलास, सह्य, मन्दर, मेरु आदि पर्वतों की एक सुन्दर माला अपनी देह में धारण कर ली। उसने अपने दोनों कानों में हिमालय और सुमेरुपर्वतरूपी रजत एवं सुवर्ण की मुद्रिका धारण कर ली। शिखरों, वनों एवं नगरों से परिपूर्ण तथा ग्राम, वन, द्वीप आदि कोमल पल्लवों से युक्त सातों कुलपर्वत उसके गले की मालायें थीं, उसके अङ्गों में नगर, ग्राम, ऋतु, मास, दिन-रात तथा त्रैलोक्य विराजमान थे। गङ्गा, यमुना प्रभृति नदियाँ गले के हार के समान प्रतीत होती थीं। चारों वेद चार स्तनस्वरूप थे। त्रिशूल, प्रास, वाण, शक्ति, खड्ग, मुद्गर प्रभृति आयुधों से निर्मित माला पुष्पमाला के समान उसके गले में सुशोभित थी। चतुर्दश प्रकार की भूतजातियाँ उसकी रोमावलियों के समान थीं। नगर, ग्राम, पर्वत आदि पुनर्जन्म के आनन्द से उसके साथ-साथ नाच रहे थे। समस्त जगत् भगवती के साथ नृत्य कर रहा था, कोई भी पदार्थ, उस समय स्थावर नहीं दिखाई पड़ता था। समस्त जगत् को उदरस्थ कर भगवती अत्यन्त तृप्त हो नृत्य कर रही थीं। शैल, पर्वत, अरण्य आदि के साथ यह नाना रूप जगत् पुनर्जन्म प्राप्त कर आनन्द से नृत्य कर रहा था। मैंने दीर्घकाल तक उस नृत्य को देखा। वह नृत्य अद्भुत था। उसमें समस्त तारागण चल रहे थे। पर्वतसमूह घूम-सा रहा था और अमर तथा दानव मशकसमूह के समान कम्पित हो रहे थे। कहीं मेरुपर्वत कुलाचल-रूपी हाथों का सञ्चालन कर नृत्य कर रहा था। आभ्ररूपी वस्त्रों से आच्छन्न कल्प-वृक्षरूपी रोमावलि का स्पन्दन बड़ा मनोहर लगता था। समुद्र भी नाच रहे थे और वृक्ष कभी पृथ्वी से आकाश में तथा कभी आकाश से पृथिवी पर आते-जाते दिखाई

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

पड़ते थे। उस भगवती कालरात्रि के नृत्य के समय चन्द्र, सूर्य, दिवस, रात्रि आदि उसके नखाग्रभाग के आलोक में सुवर्णसूत्र के समान दृश्यमान हो रहे थे। भगवती ने नीहार के हार पहने थे, उसके वस्त्र नील मेघ थे तथा उनसे बरसाये जल-बिन्दु स्वेद-बिन्दु के समान प्रतीत हो रहे थे। आकाशमण्डल उसका केशपाश था, पाताल चरण था, भूमण्डल उदर था तथा दिशायें बाहुरूप थीं, द्वीप एवं समुद्र उसकी आँतें थीं, सभी पर्वत पसलियाँ थे।

उस भगवती के विशाल शरीर पर हिमवान्, मेरु, सह्य प्रभृति अद्रिगण झूले का आनन्द ले रहे थे। भगवती का शरीर चक्र के समान बराबर स्पन्दनशील था। उसकी गति कभी रुकती नहीं थी। वह विशद आकाश के समान विशाल थी, अञ्जन पर्वत के सदृश थी, द्वादश आदित्यों के समान उसकी कान्ति थी तथा उनकी जंघायें विशाल थीं। उनके शरीर पर कहीं विन्ध्याचल नृत्य कर रहा था, तो कहीं सह्य, कैलास, मलय, महेन्द्र, क्रौञ्च, मन्दर एवं गोकर्ण पर्वत नृत्य कर रहे थे। कहीं पर वसुमती एवं विद्याधरों के नगर नाच रहे थे। इस प्रकार उनके शरीर में स्थावर भी जङ्गमभाव को प्राप्त हो गये थे। उनके शरीर में पर्वत पर समुद्र नाच रहा था। पर्वत भी उच्च आकाश-कोटर में नाच रहे थे। आकाश भी सूर्य और चन्द्र के साथ पृथिवी के नीचे कहीं चला गया था। द्वीप एवं नगर से समन्वित वन सूर्यमण्डल में नाच रहे थे। जगत् समुद्र में तृण के समान नाच रहा था। आकाश में पर्वत घूम रहे थे, दिशाओं में समुद्र घूम रहे थे। पुर, नगर, मण्डल, नदियाँ, सरोवर ये सब अपने लोक से लोकान्तर में उड़ रहे थे, मत्स्य मरुभूमि में घूम रहे थे, आकाश में नगर स्थिर दिखाई दे रहे थे, आकाश में पर्वत दृष्टिगोचर हो रहे थे और प्रलयकालिक मेघ पर्वतों पर स्थित थे। उसकी देह में सूर्य, चन्द्र आदि रत्न बन गए थे, तारागण गले के हार के समान थे, अत्यन्त स्वच्छ गगनमण्डल स्वच्छ वस्त्र बन गए थे और विद्युत् अलातचक्र के सदृश प्रतीत हो रही थी। भगवती के शरीर में परस्पर विरुद्ध उत्पात, शान्ति आदि भाव एकत्र प्रतीत होते थे, जैसे एक कोश में रत्नों का समूह।

जैसे बालक के सङ्कल्प का सर्ग प्रतिक्षण परिणामशील हो परिवर्तित होता रहता है और पूर्व स्थिति को त्याग कर अन्य स्थिति को ग्रहण करता है, वैसे माया के प्रताप से भगवती के नृत्य के समय सभी पदार्थ पूर्व स्थिति को त्याग कर अन्य स्थिति को ग्रहण करते थे। भगवती एक क्षण में कुछ प्रतीत होती थी, तो दूसरे क्षण में कुछ और ही हो जाती थी, एक क्षण में अङ्गुष्ठ मात्र लघु शरीर हो जाती थी तो दूसरे क्षण में आकाश को भर देने वाली विशाल आकृति हो जाती थी। समस्त आकाशमण्डल का पूर्ण कर देने वाली वह भगवती देवी भैरवाकृति धारणकर उस कल्पान्त रुद्र के सम्मुख नृत्य कर रही थी। उस भगवती कालरात्रि से वन्द्यमान वह महारुद्र आकाशसदृश विशाल रूप धारण कर देवी के साथ ताण्डव नृत्य कर रहे थे।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

तथा नाम सुदीर्घा सा यथा तस्याः शिरःखुरम् ।
मया दृष्टं प्रयत्नेन शिरोर्ध्वाधोगमागमैः ॥
क्षणमेकभुजाकारा क्षणं बहुभुजाकुला ।
अनन्तोग्रभुजाक्षिप्तजगन्नर्तनमण्डपः ॥
क्षिप्रमेकमुखाकारा क्षिप्रं बहुमुखाकृतिः ।
अनन्तोग्रमुखी क्षिप्रं निर्मुखी चापि च क्षणम् ॥
नृत्यद्भुजलतापुष्पैर्नखशुभ्राभ्रमण्डलैः ।
पूर्णचन्द्रशतानीव भ्रामयन्ती नभस्तले ॥
तस्याश्च नगरग्रामगिरयो देहशोभिनः ।
नृत्यन्त्या सह नृत्यन्ति पुनर्जन्ममुदेव ते ॥
मेरुर्नृत्यति लोलोच्चकुलाचलबृहद्भुजः ।
भ्रमदभ्रपयेपेतनमत्तनुतनूरुहः ॥
खमेव तस्याः सम्पन्नं कबरीमण्डलं बृहत् ।
पातालं चरणौ भूमिरुदरं बाहवो दिशः ॥
द्वीपान्यपि तृणानीव समुद्रा वलया इव ।
सुरलोकालयः पद्मा आसंस्तद्देहवारिणि ॥
विन्ध्यो नृत्यति काञ्चनाचलवनेऽसह्यश्च सह्यो गिरिः ।
कैलासो मलयो महेन्द्रशिखरी क्रौञ्चाचलो मन्दरः ॥
गोकर्णो गगनाङ्गणे वसुमती विद्याधराणां पुरम् ।
सर्वे जङ्गमतां गता वनभुवस्तस्याः शरीरे सदा ॥
रत्नानि भास्करनिशाकरमण्डलानि
तारोत्करास्तरलमण्डलकान्तिहाराः ।
स्वच्छाम्बराणि वलितानि महाम्बराणि
कुर्वन्त्यनारतमनल्पमलातलेखाः ॥
नृत्यत्स्फुरत्प्रतापान्तर्जगदर्थाः प्रतिक्षणम् ।
स्थितिं त्यजन्ति गृह्णन्ति बालसङ्कल्पसर्गवत् ॥
महती भैरवी देवी नृत्यन्त्यापूरिताम्बरा ।
तस्य कल्पान्तरुद्रस्य सा पुरा भैरवाकृतेः ॥
वन्द्यमानस्तया सोऽपि तथैवाकाशभैरवः ।
तथैव वितताकारस्तदोच्चैः परिनृत्यति ॥

योगवासिष्ठ, निर्वाण-प्र० उ० सर्ग ८१, श्लो० १३, २१, २२, २८, ५५, ६०, ७३, ७५, ८१, ९०, ९१, १०१

शिवस्वरूपवर्णन—

श्रीराघवेन्द्र ने महर्षि वसिष्ठ जी से पूछा—"भगवन् ! महाप्रलय में जब जगत्

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

का विनाश हो गया, तब भगवती कालरात्रि विविध आकारों की माला धारण कर नृत्य कैसे कर रही थी तथा उसके शरीर में त्रैलोक्य कैसे स्थित था" ?

वसिष्ठ जी ने कहा—"राघवेन्द्र ! पारमार्थिक दृष्टि से न तो भगवान् रुद्र थे और न भगवती कालरात्रि थी, न उनका नृत्य था; परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से वह निरतिशयानन्दैकरस ब्रह्म ही योगियों द्वारा नीलकण्ठ त्रिनेत्र भैरव तथा भगवती कालरात्रि के रूप में दिखाई देते थे और महाप्रलय में नृत्य भी कर रहे थे। ऐसा उनका स्वभाव है, निराकार भी वह साकार हो जाते हैं। जैसे सुवर्ण कटक, केयूर आदि आकार में परिणत होने पर भी सुवर्ण ही है, वैसे चिद्घन ब्रह्म भी अपने स्वरूप में स्थित रहते हुए भी विविध चेत्याकार धारण कर स्फुरित हो जाते हैं। जैसे माधुर्य के विना इक्षुका रस नहीं रह सकता, विविध आकारों के विना सुवर्ण नहीं रह सकता, वैसे ही ब्रह्म भी नहीं रह सकता।

अतः आदि, मध्य और अन्त से रहित सर्वशक्तिसम्पन्न ब्रह्म की जो स्वसत्तामात्र स्थित है, वह त्रैलोक्य का सर्ग एवं प्रलय है। वह आकाश, पृथिवो एवं दिशायें हैं। ये सर्ग और प्रलय अविद्या के कारण प्रतीत होते हैं।

जन्म, मरण, माया, मोह, जड़ता, अवस्तुता, वस्तुता, विवेक, बन्ध, मोक्ष, शुभ, अशुभ, विद्या, अविद्या, साकारता, निराकारता, चञ्चलता, स्थिरता. तुम, मैं, अन्य, वह, सत्, असत्, मूर्खता, पाण्डित्य, देश, काल, क्रिया, द्रव्य, कलना, कल्पना, बाह्य, आभ्यन्तर, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, बुद्धि, पञ्चतन्मात्र एवं पञ्चमहाभूत, ये सब शुद्ध निरामय चिदाकाश हैं। वह अपनी चिदाकाशता का त्याग न करता हुआ सर्वात्मस्वरूप से अवस्थित है; जो कुछ दृश्यजगत् है वह सब निर्मल चिदाकाश है। उससे भिन्न कुछ नहीं है।

वही चिदाकाश सनातन 'शिव' है। उसीका महारुद्र, विष्णु, पितामह आदि नाम तत्त्वज्ञानियों द्वारा चर्चित है। वही चिदाकाश चन्द्र, सूर्य, इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर, अग्नि आदि विविध रूपों में अवस्थित है। विविध संज्ञायें आविद्यिक हैं। वस्तुतः तत्त्वबोध हो जाने पर सब चिन्मात्रस्वरूप ही हो जाते हैं। तात्त्विक दृष्टि से द्वैत एवं ऐक्य कुछ भी नहीं है। यह समस्त जगत् शान्त, अनन्त चिदाकाश ब्रह्मरूप है।

चिन्मयः परमाकाशो य एष कथितो मया।
एषोऽसौ शिव इत्युक्तो भवत्येष सनातनः॥
स एष हरिरित्यास्ते भवत्येव पितामहः।
चन्द्रोऽर्क इन्द्रो वरुणो यमो वैश्रवणोऽनलः॥
अनिलो जलदोऽम्भोधिर्यो यद्वस्त्वस्ति नास्ति च।
इत्येते चिन्मयाकाशकोशलेशाः स्फुरन्त्यलम्॥
एवंविधाभिः सञ्ज्ञाभिर्मुधा भावनयेदृशाः।
स्वभावमात्रबोधेन भवन्त्येते तु तादृशाः॥

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

अबोधो बोध इत्येवं चिद्व्योमैवात्मनि स्थितम् ।
तस्माद्भेदो द्वैतमैक्यं नास्त्येवेति प्रशाम्यताम् ।।

योगवासिष्ठ, निर्वाण-प्र० उ० सर्ग ८२, श्लो० २०-२४

विश्वरूप-दर्शन—

वसिष्ठ जी ने कहा—"राघवेन्द्र ! मैंने जो प्रलयकाल में भगवान् रुद्र एवं भगवती कालरात्रि के विशाल रूप और नृत्य का वर्णन किया है, वह तात्त्विक दृष्टि से सत् नहीं है। चिद्घनाकाश ही उस रूप में स्फुरित हो जाता है। वह कल्पान्त, रुद्र और भैरवी एवं उनके नृत्य आदि सब मायिक हैं। चिदाकाश उस रूप में कचित होता है, जिसका ज्ञान केवल योगियों एवं तत्त्वज्ञानियों को ही है। जैसे स्वप्न के नगर, वन, समुद्र आदि हैं, जैसे सङ्कल्प के युद्ध हैं, जैसे मनोराज्य का विलास है, वैसे चिद्घन में यह सब भ्रम-मात्र है। जो चिद्घन का स्पन्द है, वही शिव का स्पन्द है। वही उपासकों को वासनावश नृत्यरूप में भासित हो रहा है। भगवान् रुद्र एवं भगवती कालरात्रि का प्रलयकालिक नृत्य निर्मल चिद्घन का स्पन्दन मात्र है। वह चित्ति अपने स्वभावाकाशरूप कोटर में स्फुरित होतो है और क्षण, कल्प, जगत् आदि की भ्रान्ति को धारण करती है। वह तुम, मैं, यह, वह इत्यादि नाना प्रकार को कल्पना करती है। वस्तुतः न द्वैत है, न ऐक्य है, न शून्यता है, न चेतन है और न अचेतन है, एक चिन्मात्र ही स्थित है।

यथा नाम स कल्पान्तः स रुद्रः सा च भैरवी ।
मायामात्रं तथा सर्वं परिज्ञातमलं मया ।।
चिद्व्योमैव परं शून्यं सन्निवेशेन तेन तत् ।
तथा संलक्ष्यते नाम भैरवाकारतां गतम् ।।
यः स्पन्दश्चिद्घनस्यास्य शिवस्यास्य स एव नः ।
स्ववासनावेशवशान्नृत्यमेव विराजते ।।
स्वयमन्तः कचन्ती चित्स्वभावाकाशकोटरे ।
क्षणकल्पजगद्भ्रान्ति धत्ते कल्पनया स्वया ।।
तस्मान्न द्वैतमस्तीह न चैक्यं न च शून्यता ।
न चेतनाचेतनं वै मौनमेव न तच्च वा ।।

योगवासिष्ठ, निर्वाण-प्र० उ० सर्ग ८३ श्लो० ४-५, १७, २६, २८

विविध जगत् का वर्णन—

वसिष्ठ जो ने कहा—"राघवेन्द्र ! उस शिला में जब भगवतो के साथ भगवान् रुद्र विलीन हो गए, तब मैंने बड़े ध्यान से उस अङ्गना एवं उस शिला को स्मरण किया और अत्यन्त चकित हो गया। मैंने उस शिला के अन्य भागों को बड़े ध्यान से देखा और विविध सृष्टियों को देखकर मैं आश्चर्यचकित हो गया। उस शिला के जिस भाग को मैं देखता था, उसमें नाना प्रकार की सृष्टियाँ दिखाई पड़ती थीं। इस प्रकार

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

जहाँ भी पर्वत शिला, तृण, गुल्म, भूमि भाग आदि में मैंने दृष्टिपात किया, विविध आकारों से युक्त जगत् देखा। वे जगत् चर्मचक्षु से नहीं देखे जा सकते थे; अपितु दिव्य दृष्टि से देखे जा सकते थे। मैंने जो देखा, उसका वर्णन निम्नाङ्कित है—

किसी सृष्टि में प्रजापति उत्पन्न हो रहे थे, कहीं पर प्रजापति द्वारा सूर्य, चन्द्र, दिन-रात्रि, ऋतु, वत्सर आदि की कल्पना की जा रही थी। कहीं पर भूमण्डल मानव-समूह से भरा था, तो कहीं पर देवताओं से रहित तथा दानवों से परिपूर्ण था। कहीं पर सतयुग के आचरण थे और जगत् सज्जनों से भरा था, तो कहीं कलियुग के आचरणों से युक्त था तथा दुष्ट प्राणियों से भरा था। कहीं पर पर्वत-समूहों से व्याप्त था, तो कहीं पर सृष्टि ही उत्पन्न नहीं हुई थी, केवल ब्रह्मा जी ही उत्पन्न हुए थे। कुछ ऐसे लोक थे, जहाँ पर मानव जरा-मरण से मुक्त थे। कहीं ऐसे लोक थे, जिनमें देवगण मृत्युग्रस्त होते थे; क्योंकि अभी अमृत-मन्थन नहीं हुआ था और अमृत, उच्चैःश्रवा, ऐरावत, धन्वन्तरि, कामधेनु, लक्ष्मी और विष की उत्पत्ति नहीं हुई थी। कहीं पर देवगण शुक्राचार्य की मृतसञ्जीवनी महाविद्या पैदा करने वाली तपश्चर्या में विघ्न डालने को उद्यत थे, तो कहीं पर शत्रुओं के विनाश के निमित्त दिति के पेट में घुसकर देवराज इन्द्र गर्भ काटने को समुद्यत थे। कहीं पर जनता ब्रह्मज्ञान से परिपूर्ण थी और वेदशास्त्र के अनुसार धर्माचरण में संलग्न थी। कहीं पर देवगण दैत्यों के आक्रमण से क्षुब्ध थे, तो कहीं पर देवताओं के उद्यानों में गन्धर्व एवं किन्नर मधुर गान कर रहे थे। किसी जगत् में देवों तथा दानवों में समुद्र-मन्थन के लिए बड़ा सौहार्द दिखाई पड़ता था। किसी लोक में कुपित पुष्करावर्त मेघों का प्रलयङ्कर विध्वंस दिखाई पड़ रहा था, तो कहीं पर शान्ति का साम्राज्य दृष्टिगोचर हो रहा था, कहीं पर सूर्य के अभाव में अन्धकार का राज्य था, तो कहीं पर सूर्योदय से जन-समूह सानन्द अपने-अपने कार्यों में व्यस्त था। कहीं पर ब्रह्मा जी कमलदल पर सुप्त थे, तो किसी लोक में भगवान् नारायण अक्षयवट के पत्र पर विश्राम कर रहे थे। किसी लोक में समुद्र पृथिवी एवं पर्वतों का विनाश कर रहे थे तो कहीं त्रिपुर, वृत्र, बलि एवं अन्धकासुर के सङ्ग्राम हो रहे थे, कहीं पर कालनेमि राक्षस ने अपने विशाल आकृति से गगनमण्डल को आच्छन्न कर दिया था। कहीं पर देवराज्य चल रहा था, तो कहीं दानवराज्य।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

३४. अविद्योपाख्यान

इस विशाल भूखण्ड के जम्बूद्वीप में ततमिति नामक एक नगरी थी, जिसमें विपश्चित् नाम से विख्यात राजा था। विशिष्ट विद्वान् होने के कारण वह राजसभा में विशेष रूप से शोभित होता था। राजा विपश्चित् बड़ा धार्मिक एवं ब्रह्मज्ञ था। वह अग्निदेव का प्रबल उपासक था। उसके चार मन्त्री थे, जो बहुत ही योग्य थे और मन्त्री के विविध गुणों से अलङ्कृत थे। विभिन्न दिशाओं के गुप्तचरों ने आकर राजा से निवेदन किया—"महाराज ! शत्रुओं के विशाल सैन्य ने नगर को चारों ओर से घेर लिया है। उनके खड्ग, गदा, प्रास और भालों की श्रेणियाँ चमक रही हैं। पताका, शस्त्रास्त्र और योद्धाओं से भरे हुए सुन्दर रथ इधर-उधर दौड़ रहे हैं। हस्तियों के यूथ चिग्घाड़ कर रहे हैं। घोड़े हिनहिना रहे हैं। प्रलयकालिक सागर के प्रवाह के समान शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित सेना चारों दिशाओं में बढ़ रही है, आगे आपकी जैसी आज्ञा"।

इस बीच मन्त्रिपरिषद् के सदस्य राजा के पास आ गए। उन्होंने कहा—"महाराज ! हम लोगों ने यथाविधि विचार कर लिया है। शत्रुगण सीमाप्रान्त के निवासी, धनाढ्य, विविध देशीय, सुसङ्घटित, हमारी त्रुटियों को जानने वाले हैं। अतः उनके साथ साम, दाम, भेद आदि से काम नहीं चलेगा। शीघ्र युद्ध का उद्योग करना चाहिए। वीरों को युद्ध के लिए आज्ञा दीजिए, इष्टदेवताओं का पूजन कीजिए, सामन्तों का आह्वान कीजिए तथा रणभेरियाँ बजाने की आज्ञा दीजिए। योद्धागण सुसज्जित, अस्त्र-शस्त्रों से विभूषित हो युद्ध के लिए प्रयाण करें"।

राजा ने कहा—"संग्राम के लिए शीघ्र प्रस्थान कीजिए। नगर-रक्षा, व्यूह-रचना आदि की व्यवस्था कीजिए। मैं भी स्नान कर और अग्निदेव का पूजन कर शीघ्र युद्ध-भूमि में आ रहा हूँ"।

राजा ने स्थिति पर विचार किया कि मैं वृद्ध हो गया हूँ। बलवान् शत्रुओं ने चारों ओर से भीषण आक्रमण किया है। विजय में पूर्ण सन्देह है। अतः मैं अग्निदेव को अपने मस्तक की आहुति दे रहा हूँ। "अग्निदेव ! पुरोडाश की आहुति के समान मैं अपने मस्तक की आहुति दे रहा हूँ। आप कृपया प्रसन्न हों और मेरे शरीर से शोभा-युक्त बलिष्ठ चार नरेश उत्पन्न हों, जिनसे मैं शत्रुओं का विनाश कर सकूँ"। ऐसा कहकर राजा ने खड्ग से अपने शिर को काट कर अग्नि में डाल दिया।

अग्निदेव ने उसे ग्रहण किया और प्रसन्न हो राजा को ईप्सित वर दिया। राजा अग्निकुण्ड से चार दिव्य शरीर धारण कर बाहर निकला। राजा का शरीर

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

तेजःपुञ्ज से देदीप्यमान था। वह अस्त्र-शस्त्र, कवच, शिरस्त्राण, माला, विविध अलङ्करण आदि से विभूषित था। उसके पास दिव्य धनुष और सुवर्ण-बाणों से भरे तरकस थे। राजा जिस रथ, हाथी अथवा घोड़े पर सवार होता था, उसे मन्त्र, तन्त्र, अस्त्र, शस्त्र आदि से कोई आक्रान्त नहीं कर सकता था।

इस बीच भयङ्कर संग्राम छिड़ गया। नगर और ग्राम लूटे गए, प्रजागण व्याकुल हो चिल्लाने लगे, आग की प्रचण्ड लपटों से शरीर जलने लगे, बाणों की वर्षा से आकाशमण्डल आच्छन्न हो गया। शूल, मूसल, पत्थर आदि की वर्षा हो रही थी। हाथी चिग्घाड़ रहे थे और घोड़े हिनहिना रहे थे। कायरों के हृदय विदीर्ण हो रहे थे और वीर योद्धा उत्साह से लड़ रहे थे। इस प्रकार भीषण संग्राम हो रहा था। महाशङ्खों की ध्वनियाँ आकाश में गूँज रही थीं, तलवारें चमक रही थीं, धनुष की भयङ्कर टङ्कार-ध्वनियाँ गूंज रही थीं, राजा विपश्चित् की सेनायें हार रही थीं, उस समय राजा विपश्चित् के रणप्रयाण की दुन्दुभि जो प्रलयकालिक मेघगर्जन के समान थी, दिशाओं में गूँजती हुई बजी। राजा विपश्चित् चार शरीरों से चारों दिशाओं में रणभूमि की ओर चला। चतुरङ्गिणी सेना से सुरक्षित राजा ने उभय सैन्यबल का निरीक्षण किया।

राजा ने विजय प्राप्त करने के निमित्त जैसे शिव जी ने त्रिपुरासुर को मारने के लिए अस्त्र का सन्धान किया था, वैसे वायव्यास्त्र का सन्धान किया और उसकी सहायता के लिए श्रेष्ठ पर्जन्यास्त्र को छोड़ा। फलस्वरूप दिशाओं को आच्छादित करने वाली बाणों की नदियाँ, त्रिशूलों, शक्तियों, भुशुण्डियों, मुद्गरों, भालों, चक्रों, कुल्हाड़ों, तोमरों, भिन्दिपालों (तोपों), पत्थरों, वज्रों की नदियाँ बह चलीं। प्रलय-सूचक प्रचण्ड वायु बहने लगा।

उस अप्रतर्कित भयानक बाढ से विशाल शत्रुसेना विनष्ट होने लगी। अल्प-काल में ही वह चतुरङ्गिणी सेना युद्ध से विमुख हो चारों दिशाओं में भागने लगी। उस सेना में पारस, दरद, दशार्ण, शक, तङ्गण, हूण, चीन, किरात, कण्टक, विदूर, मन्द्र, हैहय, वंग, अङ्ग, कलिङ्ग, साल्व, प्रभृति देशों की सेनायें थीं। विभिन्न दिशाओं की ओर भाग रहे असंख्य भट तरङ्गों से व्याप्त सागर में विलीन हो गए। केवल सागर में ही नहीं, किन्तु खेतों में, जङ्गलों में, नगरों में, जलों में, स्थलों में, पर्वतों में, समुद्रों के तटों में, नदियों में, गुहाओं में विनष्ट हुए सैनिकों की गणना नहीं की जा सकती।

इस प्रकार भाग रही शत्रु सेना का पीछा करते हुए चारों विपश्चित् बहुत दूर चले गए। बिना विश्राम के दूर तक चलने से विपश्चित् के सैनिक थक गए और खाद्यसामग्री भी समाप्तप्राय हो गई। विपक्षियों की सेनायें पूर्णरूप से विनष्ट हो गयीं। विपश्चित् के शस्त्रास्त्र भी शत्रुसेना के अभाव में शान्त हो गए और तरकस, म्यान, आकाश आदि में विलीन हो गए।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

चारों विपश्चित् शनैः शनैः चलते हुए चारों दिशाओं में फैले हुए, सुविस्तृत चार समुद्रों के समीप पहुँचे। विपश्चित् के मन्त्रीगण, पार्श्ववर्त्ती एवं अनुचर आदि भी वहाँ पहुँच गए। विपश्चितों ने विस्तार से वन, वृक्ष, सागर, शैल, वनचरों आदि का वर्णन किया। श्वा, काक, कोकिल आदि की अन्योक्तियों का विशद वर्णन उत्तम रूप में किया। सहचरों ने कमल, कुइँ, नीलकमलों से सुशोभित तालाब का वर्णन किया तथा प्रसङ्गवश कमल, भ्रमर, हंस, सारस आदि का भी सुन्दर वर्णन किया। बक, जलकाक, मयूर, वियोगी पथिक, मत्स्य तथा चातकों के चरित्र का वर्णन भी किया गया।

विपश्चितों का निर्णय—

समुद्र-तट पर बैठकर चारों विपश्चितों ने मन्त्रिमण्डल से परामर्श कर राज्य-प्रबन्ध किया। उन्होंने मण्डलमर्यादा की स्थापना की। उन्होंने विचार किया कि हम लोग देवाधिदेव अग्नि भगवान् के प्रताप से इतने दूर तक आ गये हैं। यह दृश्यश्री कितनी विस्तृत होगी? इस जम्बूद्वीप के बाद क्षार समुद्र है, उसके बाद प्लक्ष द्वीप है, तत्पश्चात् इक्षु रस का महान् समुद्र है, उसके बाद कुशद्वीप है, कुशद्वीप के बाद सुरा का सागर हैं। इस प्रकार सात समुद्रों तथा सात द्वीपों के बाद क्या होगा? यह दृश्यश्री कितनी बड़ी है। हम उसे साङ्गोपाङ्ग देखना चाहते हैं। अतः अग्निदेव से प्रार्थना करें कि वह हमको वर दें और समस्त भूमण्डल को देखने की क्षमता प्रदान करें।

तदनुसार उन्होंने एक साथ भगवान् अग्निदेव का आह्वान किया। अग्निदेव प्रकट हुए। उन्होंने कहा—"पुत्रों! वर माँगो"।

विपश्चितों ने कहा—"देवाधिदेव! पञ्चमहाभूतरूप इस दृश्य का अन्त जैसे हम देख सकें, वैसा वर देने की कृपा कीजिए। शरीर से अगम्य स्थानों में वैदिक-मन्त्रों की सहायता से मानसप्रत्यक्ष तथा अनुमानगम्य पदार्थों एवं शब्दप्रमाणजन्य सकल पदार्थों को, जैसे हम देख सकें, तदनुसार वर देने की कृपा कीजिए"।

अग्निदेव 'तथास्तु' कहकर चले गए। तदनन्तर वे चारों विपश्चित् समुद्र-लंघन के निमित्त प्रस्तुत हुए। मन्त्रिवर्ग तथा परिवार के सदस्यों के अनुरोध को उन्होंने स्वीकार नहीं किया और दिगन्त को देखने की अपनी प्रबल इच्छा प्रकट की। अग्निदेव के प्रसाद से उनमें दिव्य शक्ति आ गई थी, अतः वे चारों चार दिशाओं की ओर जाने के लिए समुद्र में प्रविष्ट हुए। वे समुद्र में जाने लगे और तटवर्त्ती लोग उन्हें तब तक देखते रहे, जब तक वे दृश्य थे। वे चारों समुद्र में चलते रहे। वे मंत्र, विद्या, बल आदि से दुर्जेय थे तथा शस्त्रधारी भी थे। अतः समुद्र के हिंसक पशुओं, जलचरों ने उन पर आक्रमण नहीं किया। यदि किसी मकर आदि ने भूल से आक्रमण कर दिया, तो उसे उगलना पड़ा। क्योंकि वे पचा नहीं सकते थे। स्वच्छ फेन के पिण्डों पर पैर रखकर वे समुद्र में चले जा रहे थे। मानो राजहंस जा रहे हों।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

समुद्र के भयङ्कर गर्जन ध्वनि को सुनते हुए वे वीरभाव से चले जा रहे थे, उन्हें किसी प्रकार का भय नहीं था। उत्तुङ्ग तरङ्गों से आहत होकर वे कभी आकाश में ऊपर उछलते थे और कभी नीचे पाताल में चले जाते थे।

विपश्चितों का दिग्विहरण—

वे चारों विपश्चित् वरदान से सुरक्षित समुद्र से द्वीप को तथा द्वीप से समुद्र को लाँघते जा रहे थे। पश्चिम दिशा की ओर जा रहे विपश्चित् को विष्णुमीनकुल में उत्पन्न मत्स्य ने निगल लिया; परन्तु वह उसे पचा न सका और अन्त में क्षीर-सागर में पहुँच कर उसे उगल दिया। तदनन्तर क्षीरसागर को पार कर वह दूर चला गया। दक्षिण दिगन्त में जा रहे विपश्चित् को इक्षुरससागर में स्थित दक्ष-नगर में यक्षिणी ने अपने विद्याबल से अपनी ओर आकृष्ट कर अपना प्रेमी बना लिया। पूर्व दिशा में जा रहे विपश्चित् को गङ्गा जी ने पीछे वापस लाकर कन्नौज में छोड़ दिया। उत्तर दिशा में जा रहे विपश्चित् ने भगवान् की आराधना कर अणिमा, महिमा आदि सिद्धियाँ प्राप्त कर लीं। उसने अनेक वन-पर्वतों को पार कर लिया।

पश्चिम दिशा की ओर प्रवृत्त विपश्चित् को पक्षिराज गरुड़ ने अपनी पीठ पर बैठाकर कुशद्वीप तथा अनेक सागरों को पार करा दिया।

दक्षिण दिशा की ओर प्रवृत्त विपश्चित् यक्षिणी से मुक्त होकर शाकद्वीप में दक्ष के शाप से यक्ष बन गया और पश्चात् उसकी मुक्ति हो गई।

उत्तर दिशा की ओर प्रस्थित विपश्चित् स्वादुजल वाले महार्णव को पार कर सुवर्ण भूमि में सिद्ध के शाप से शिला बन गया। पश्चात् एक सौ वर्ष के बाद अग्नि-देव के अनुग्रह से वहाँ उसी सिद्ध ने उसे शाप से मुक्त कर दिया।

पूर्व दिशा की ओर प्रस्थित विपश्चित् कान्यकुब्ज देश से उत्तर की ओर गया। वहाँ आठ वर्ष तक नारियलों की उत्पत्ति वाले देश में राजा बन गया। उसे पूर्व जन्म की स्मृति हो गई। मेरुपर्वत के ऊपर स्थित कल्पवृक्ष वन में दश वर्षों तक अप्सरा के साथ रहा।

पश्चिम दिशा की ओर प्रस्थित विपश्चित् पक्षियों की वशीकरण विद्या में पारङ्गत था। वह शाल्मली द्वीप में शाल्मली वृक्ष पर पक्षी के घोंसले में उसके साथ क्रीड़ावश दस वर्षों तक रहा।

विपश्चितों का दुःस्थिति—

पूर्व विपश्चित् ने क्षीरसागर के तट पर स्थित नन्दन वन की देवियों के साथ सत्तर वर्ष व्यतीत किए।

श्रीराघवेन्द्र ने कहा—"भगवन्! एक शरीर के चार विभाग हो जाने से एक शरीर वाले वे सब विपश्चित्, जिनका जीव एक ही था, एक ही समय विविध इच्छावाले कैसे हो गए" ?

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

वसिष्ठ जी ने कहा—"रामभद्र ! जैसे स्वप्नावस्था में चित्त गिरि, समुद्र, नदी आदि रूप से नाना हो जाता है, वैसे ही अखण्ड चिद्घन ब्रह्म ही मायावश नाना-सा बन गया है। अतिस्वच्छ दर्पण में जैसे भवन, वृक्ष, आकाश आदि विविध रूप प्रतिबिम्बित होते हैं, वैसे अतिस्वच्छ संविन्मयाकाश में जगत् विविध आकारों से युक्त भासित होता है। उसी प्रकार विपश्चितों के कर्म का परिपाक होने पर एक ही देह चार प्रकार की हो गई तथा तत्तद् देश के विषयों का तत्तद्बुद्धि में प्रतिबिम्ब भी पड़ा। एक देश में स्थित अगस्त्यप्रभृति योगीजन अतीत, अनागत कालों में योगबल से विविध वस्तुओं का अनुभव करते हैं, वैसे ही विपश्चितों ने भी किया। जैसे मेघ एक ही समय विभिन्न स्थानों में—नगर, पर्वत, नदी, खेत आदि में—महल को धोना, तटों को तोड़ना, जल-बढ़ाना, धानों को पुष्टि करना आदि विविध क्रियाओं को करता है, वैसे ही विपश्चितों के विषय में भी समझना चाहिए। एक ही विष्णु भगवान् अपने विविध शरीरों से कहीं पर योगनिद्रा, कहीं तपस्या, कहीं वैकुण्ठ में विविध भोग आदि अनेक क्रियाओं को सम्पन्न करते हैं और उनका अनुभव भी करते हैं।

दसों दिशाओं में स्थित उन विपश्चितों ने—यद्यपि एक साक्षिचैतन्यवाले थे—वैसा व्यवहार किया और सुख दुःख आदि प्राप्त किया। उन्होंने भूमि पर शयन किया, विभिन्न द्वीपों में सुख-दुःख का उपभोग किया, वनश्रेणियों में विहार किया, मरुभूमि में भ्रमण किया, पर्वतमालाओं में निवास किया, सागरों के गर्भ में भ्रमण किया, विविध द्वीपों में विश्राम किया और मेघमालाओं में छिपकर रहे। उन्होंने आँधियों में, जल के तरङ्गों में, पर्वतों और समुद्रों के तटों पर तथा नगरियों में क्रीड़ा की"।

अब्दोऽपि व्याप्तिमानेकस्तुल्यकालं पृथक् क्रियाः।
आह्लादस्तेन पादेन करोत्यनुभवत्यपि ॥
एको विष्णुश्चतुर्भिः स्वैर्बाहुभिर्वा शरीरकैः।
पृथक्कुर्वन् क्रियाः पाति जगद्भुङ्क्ते वराङ्गनाः ॥
तथैव तैर्विपश्चिद्भिः सर्वदिक्कं तथा स्थितिः।
तथा व्यवहृतं प्राप्तमेकसंविन्मयैरपि ॥
सुप्तं तैर्भूमिशय्यासु भुक्तं द्वीपान्तरेषु च।
विहृतं वनलेखासु प्रक्रान्तं मरुभूमिषु ॥
उषितं गिरिमालासु भ्रान्तं सागरकुक्षिषु।
विश्रान्तं द्वीपलेखासु निलीनं घनमालिषु ॥
रूढमर्णवमालासु वात्यासु जलवीचिषु।
क्रीडितं भूभृदब्धीनां तटीषु नगरीषु च ॥

योगवासिष्ठ, निर्वाण-प्र० उ० सर्ग १२४, श्लो० ९, ११, १३-१६

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

जीवन्मुक्त-कलना—

पूर्व विपश्चित् जलधारगिरि पर विपन्न था, उसका उद्धार पश्चिम के विपश्चित् ने किया। संकटग्रस्त पाश्चात्य विपश्चित् का उद्धार दाक्षिणात्य विपश्चित् ने किया। दक्षिण विपश्चित् का उद्धार पश्चिम विपश्चित् ने किया।

वे विपश्चित् सभी दिशाओं में स्थित थे। वे परस्पर सब कुछ देखते थे, अनुभव करते थे और विचिकित्सा करते थे। वे विपश्चित् योगियों के समान प्रबुद्ध नहीं थे। वे वोध और अवोध के मध्य दोलायमान थे। उनमें मोक्ष के भी चिह्न थे और बन्धन के भी। वे अग्निदेव के प्रसाद से धारणा-योगी थे, ब्रह्मज्ञानसम्पन्न परमयोगो न थे। यदि वे पूर्ण ज्ञानी होते, तो अविद्या को देखने के लिए प्रवृत्त कैसे होते ?

जो तत्त्वज्ञानी हैं उनका अन्तरात्मा आह्लादयुक्त होता है और वे भक्त होते हैं; जिनका अन्तरात्मा सन्तप्त हो, वे वद्ध कहे जाते हैं। ज्ञानी पुरुष के शरीर को टुकड़े-टुकड़े करके काट दिया जाय अथवा उसे राजसिंहासन पर बैठाया जाय, दोनों अवस्थाओं में उसे न दुःख है और न सुख। ज्ञानी जीवन्मुक्त पुरुष मरकर भी नहीं मरता है, रोता हुआ भी नहीं रोता है और हँसता हुआ भी नहीं हँसता है। यह सुख है, यह दुःख है इत्यादि कल्पनायें उससे दूर रहती हैं, जैसे आकाश से अङ्कुर दूर रहते हैं। तत्त्वज्ञानी जीवन्मुक्त पुरुष शोक एवं मोह से रहित होते हैं। अरुचिकर प्रसङ्गों के उपस्थित होने पर भी वे शोक नहीं करते।

सामगान में तत्पर ब्रह्मा जी के शिर को भगवान् शङ्कर ने अपने नख से काट डाला। इस पर ब्रह्मा जी ने शोक नहीं किया और सामर्थ्य रहने पर भी उन्होंने उस पञ्चम शिर को पुनः उत्पन्न नहीं किया। विष्णु भगवान् असुर-निग्रह आदि कार्य स्वयं करते हैं और दूसरों से कराते हैं। समय-समय पर अवतार धारण करते हैं और सुख-दुःख से सर्वथा अप्रभावित रहते हैं। जीवन्मुक्त सूर्य भगवान् आकाश-मण्डल में निरन्तर भ्रमण करते रहते हैं और मर्यादा का पालन करते हैं।

नल, मान्धाता, सगर, दिलीप, नहुष प्रभृति नृपगण जीवन्मुक्त थे; परन्तु उन्होंने राजधर्म का पालन किया और किसी प्रकार का उपेक्षाभाव नहीं दिखलाया। बलि, प्रह्लाद, नमुचि प्रभृति जीवन्मुक्त थे, वीतराग थे; परन्तु उन्होंने रागियों का-सा व्यवहार किया।

ब्रह्माकाश के सदृश विशुद्ध, असङ्ग, अद्वितीय जीवन्मुक्त पुरुषों में भेदबुद्धि कैसे हो सकती है ? जैसे शून्यरूप इन्द्रधनुष, नाना वर्ण का प्रतीत होता है—जब सूर्य की किरणें धनुष् के रूप में दृष्टिगोचर होती हैं—वैसे यह दृश्य जगत् भ्रममात्र है, वास्तविक नहीं है। जैसे इन्द्रधनुपीप् में भाँति-भाँति के रङ्ग दिखाई पड़ते हैं, वैसे आकशरूपी प्राङ्गण में शून्यरूप ब्रह्माण्ड-परमाणु भासित होते हैं। जैसे दारुमय स्तम्भ काष्ठ है, उसमें अङ्कित शालभञ्जिका भी काष्ठ ही है, वैसे ब्रह्माकाश में प्रतीयमान यह जगत् भी ब्रह्म ही है।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

एवं ते सर्वदिक्संस्थाः सर्वमेव परस्परम् ।
पश्यन्त्यनुभवन्त्याशु चिकित्सन्ते च संकटम् ॥
विपश्चितो महाबाहो प्रबुद्धा निपुणं न ते ।
बोधाबोधदृशोर्मध्ये ते हि दोलायिताः स्थिताः ॥
मोक्षचिह्नानि दृश्यन्ते बन्धचिह्नानि चाभितः ।
नित्यमर्धप्रबुद्धानां तथाभूततया तथा ॥
विपश्चितो धारणया योगिनो न परंगताः ।
धारणायोगिनस्ते हि धारणाप्राप्तसिद्धयः ॥
अशोका एव शोचन्ते जीवन्मुक्ता जयान्विताः ।
अच्छिन्ना एकतद्भावा दृश्यन्ते तत्त्वदर्शिनः ॥
शिरः कमलजस्योच्चैः सामगायनतत्परम् ।
हरो नखेन चिच्छेद सुकुमारमिवाम्बुजम् ॥
शक्तोऽपि न पुनर्ब्रह्मा जनयामास तच्छिरः ।
व्योमैकतास्य चिद्व्योम्नो मुधा मूर्धेतरेण च ॥
शक्रचापे यथा भान्ति नानावर्णा नभोऽङ्गणे ।
तथा शून्यात्मका एव ब्रह्माण्डपरमाणवः ॥
जातं निरुद्धमस्त्येव ब्रह्म व्योमैव भासते ।
यथा दारुमयस्तम्भस्तथा तच्छालभञ्जिकाः ॥

योगवासिष्ठ, निर्वाण-प्र० उ० सर्ग १२५, श्लो० २०, २२, २४, २६, ४३-४५, ६६, ६९

विपश्चितों के जन्मान्तरीय आचरण—

विपश्चितों में से एक क्रौञ्च-द्वीप के पश्चिम तट में हाथी द्वारा चूर्ण-चूर्ण कर दिया गया। दूसरे विपश्चित् को राक्षस ने युद्ध में क्षत-विक्षत देखकर समुद्र के वडवानल में झोंक दिया, जहाँ वह भस्म हो गया। तृतीय विपश्चित् को विद्याधर देवराज इन्द्र की सभा में ले गया, वहाँ उन्होंने देवराज को प्रणाम नहीं किया। क्रुद्ध होकर उन्होंने शाप दे दिया, फलतः वह भस्म हो गया। चतुर्थ विपश्चित् को कुश-द्वीप गिरि के समीपस्थ नदी तट पर मकर ने निगल लिया। इस प्रकार चारों की मृत्यु हो गई।

विपश्चितों की संवित् आकाशात्मा बनकर पूर्वजन्म के संस्कारों से पृथिवी-मण्डल को देखने लगी। उसने उनके प्रातिभासिक देह में आधिभौतिक देहताप्रयुक्त स्थूलता, अवयव-सम्पन्नता आदि को देखा। यह दृश्य पृथिवीमण्डल कितना विशाल होगा यह देखने के लिए पूर्व संस्कारवश वे प्रस्तुत हुए। वे इधर-उधर भटकने लगे। पश्चिम विपश्चित् ने सात महासमुद्रों तथा सात द्वीपों को लाँघकर स्वर्णभूमि में क्रीड़ा करते हुए भगवान् विष्णु के दर्शन किए। भगवान् से अनुपम ज्ञान प्राप्त कर पाँच वर्षों तक वह वहाँ रहा। अन्त में उसे निर्वाण प्राप्त हो गया। पूर्व दिशा की

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

प्रस्थित विपश्चित् पूर्णिमा के दिन चन्द्रलोक पहुँच कर वहाँ स्थित हो गया, उसका पूर्व शरीर विनष्ट हो गया। दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थित विपश्चित् अपने शत्रुओं को विनष्ट कर शाल्मलि द्वीप में राज्य कर रहा है। उत्तर विपश्चित् ने स्वादिष्ट जलवाले महासागर में सहस्रों वर्षों तक मगर के उदर में वास किया। वहाँ से निकल कर वह बाहर निकला। दस सहस्र योजन की सुवर्णमय भूमि में उसकी मृत्यु हो गयी, देव बनकर पूर्व वासना के अनुसार वह लोकालोक पर्वत पर गया। पर्वत के उच्च शिखर पर जाकर वह पर्वत के अन्धकारमय विशाल महावात में गिर गया। उसका शरीर नष्ट हो गया; परन्तु आतिवाहिक शरीर से वह वहाँ दिगन्तदर्शनरूप कार्य से विरत नहीं हुआ।

वह मन की गति से चलता रहा। गाढ अन्धकारराशि के अन्त में उसने ब्रह्माण्ड-खप्पररूप भूमिखण्ड को देखा, जो वज्र के समान दृढ़, सुवर्णमय और करोड़ों योजन विस्तृत था। उसको पार करने पर उसे महार्णव मिला जो उस भूखण्ड से आठ गुना बड़ा था। मनःशरीर से विपश्चित् ने उसका लंघन किया। पश्चात् वह तैजस आवरण में पहुँचा, जो सूर्यसमूह के सदृश भीषण प्रलयाग्नि की ज्वाला के पिण्डीभूत कोटर के समान था। तैजस आवरण में भ्रमण कर रहे विपश्चित् ने दाह-शोक आदि से मुक्त मनोमय शरीर से वायुरूप आवरण में प्रवेश किया। वायु-सागर को पार करने के बाद उस विपश्चित् ने आकाशसागर में प्रवेश किया। वह आकाश वायुसागर से दश गुना अधिक विस्तृत था। उसको पार करने के बाद वह असीम मायाशवल ब्रह्माकाश में पहुँच गया जिसमें सब कुछ विलीन हो जाता है और जिससे सब कुछ आविर्भूत होता है।

वह मनोमय देह से वहाँ भ्रमण करने लगा। उसने वहाँ पृथिवी, जल, तेज, वायु और जगत् देखा, अनन्त सृष्टियाँ देखीं, अनन्त दिशायें देखीं। पर्वत, आकाश देखे, देवताओं को देखा, मानवों को देखा। पञ्च महाभूतों के पर्यन्त में ब्रह्म को देखा। पुनः सृष्टियाँ देखी, दिशायें देखी। इस प्रकार कहीं सृष्टियों का अन्त नहीं मिला। वह आज भी अविद्यारूपी सृष्टि का अवलोकन कर रहा है, वस्तुतः अविद्या का अन्त नहीं है, वह ब्रह्म ही है।

प्रधानदेवो भूत्वासौ लोकालोकगिरिं गतः।
अस्य भूमण्डलतरोरालबालमिव स्थितम्॥
तस्मात्प्रदेशात्तत्पारे तमस्तस्य महागिरेः।
चतुर्दिक्कं महाखातं नभः शून्यमनन्तकम्॥
तमसोऽन्ते विरिञ्चाण्डकवाटच्छेदभूतलम्।
वज्रसारं हेममयं कोटियोजनविस्तृतम्॥
तदन्ते प्राप सलिलं तस्मादष्टगुणं ततः।
कपाटभूम्यैव समं स्थितमर्णवपृष्ठवत्॥

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

तमतीत्य ततः प्राप तेजोऽर्कगणभीषणम् ।
प्रलयाग्निघनज्वालापिण्डकोटरभास्करम् ॥
इति बोधेन धीरात्मा तं ततारानिलार्णवम् ।
प्राप तद्वितत व्योम तस्माद्दशगुणं स्थितम् ॥
तदतिक्रम्य सम्प्राप ब्रह्माकाशमनन्तकम् ।
यत्र सर्वं यतः सर्वं यन्न किञ्चिच्च किञ्चन ॥
मनसा प्रभ्रमंस्तत्र दूराद्दूरतरं ययौ ।
तेन दृष्टं च पृथ्व्यापस्तेजो वायुस्तथा जगत् ॥
पुनः संसाररचनाः पुनः सर्गाः पुनर्दिशः ।
पुनर्महीधरा व्योम पुनर्देवाः पुनर्नरा ॥
पुनः पञ्चमहाभूतपर्यन्ते ब्रह्म निर्धनम् ।
पुनस्तत्र जगत्युच्चैः पुनः पुनर्दिशः ॥

योगवासिष्ठ, निर्वाण-प्र० उ० सर्ग १२६, श्लो० ३१-३३, ३६-४०,

विपश्चित् मृग बन गया—

श्रीरामचन्द्र ने पूछा—"भगवन् ! उन चार विपश्चितों में दो का अर्थात् पूर्व और दक्षिण विपश्चित् का आगे क्या हुआ" ।

महर्षि वासिष्ठ ने कहा—"राघवेन्द्र ! उन दोनों विपश्चितों में दक्षिण विपश्चित् चिरकाल से अभ्यस्तवासना के अनुसर विभिन्न द्वीपों में भ्रमण करता हुआ उत्तर विपश्चित् के समान ब्रह्माण्डों के विविध आवरणों का उल्लंघन करता हुआ चिदाकाश में करोड़ों संसारों में भ्रमण कर रहा है । द्वितीय विपश्चित् (पूर्व विपश्चित् चन्द्रमा के समीप स्थित मृग में अतिशय प्रेमासक्ति के कारण आज मृग बन कर स्थित है" ।

श्रीराघवेन्द्र ने कहा—"भगवन् ! कृपया बतलायें कि वे विपश्चित् किन जगतों में भ्रमण कर रहे हैं और वे जगत् कितनी दूरी पर स्थित हैं ?" ।

महर्षि वसिष्ठ ने कहा—"राघवेन्द्र ! पाश्चात्त्य का तो मोक्ष हो चुका है । शेष दो विपश्चित् दाक्षिणात्त्य और औदीच्य जिन जगतों में स्थित हैं, वे प्रयत्न करने पर भी बुद्धिगम्य नहीं हो रहे हैं । हाँ, तृतीय विपश्चित् जो मृग रूप में अवस्थित है, सम्भवतः बुद्धिगम्य जगत् में स्थित है" ।

श्रीराघवेन्द्र ने कहा—"गुरुवर ! कृपया बतलायें कि मृग रूप में अवस्थित विपश्चित् किस जगत् में स्थित है । वह जगत् कहाँ है ?"

महर्षि वसिष्ठ ने कहा—"राघवेन्द्र ! त्रिगर्त देश के राजा ने जो मृग आपको भेंट में दिया है, वह आपके क्रीडामृग घर में है और उसे आप विपश्चित् मृग समझें" ।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

महर्षि के वचन सुनकर राघवेन्द्र आश्चर्यचकित हो गए। उन्होंने मृग को लाने के लिए बालकों को भेजा। तदनुसार वह मृग सभा में लाया गया। सभी सदस्य कौतुक से उस मृग को देखने लगे। वह मृग सभास्तम्भों पर जटित मरकत मणि की कान्ति को हरा तृण समझकर खाने के लिए इधर-उधर दौड़ने लगा। वह कौतुक एवं भय से इधर-उधर भाग रहा था। उस मृग को देखकर राजा, मन्त्री और मुनिजन "भगवान् की माया अद्‌भुत है" कहते हुए आश्चर्यसागर में डूबने लगे।

मृग का वह्निप्रवेश—

श्रीराघवेन्द्र ने कहा—"मुनिवर ! किस उपाय से विपश्चित् अपने देह को पुनः प्राप्त कर सकेगा और ज्ञान प्राप्त कर दुःखों से विमुक्त हो जायगा" ?

महर्षि वसिष्ठ ने कहा—"राघवेन्द्र ! अग्निदेव इसके इष्टदेव हैं। अग्नि-प्रवेश से यह मृग अपने पूर्वजन्म के विपश्चित् शरीर को प्राप्त कर सकेगा। मैं अभी व्यवस्था कर रहा हूँ। यह मृग आप लोगों के समक्ष अग्नि में प्रवेश करेगा"।

ऐसा कहकर महर्षि वसिष्ठ ने कमण्डलु जल से यथाविधि आचमन किया और इन्धनरहित अग्नि का ध्यान किया। महर्षि के ध्यान से सभामण्डप में अग्नि की ज्वालायें धधक उठीं। वह अग्नि इन्धन, कज्जल, धूम एवं वह्निकणों से रहित था। स्वर्ण के समान ज्वालायें धधक रही थीं। सभासद् ज्वालामाल से दूर हट गये थे। उस वह्नि को देखकर वह मृग प्रवेश की इच्छा से कुछ पीछे हटा।

महर्षि ने ध्यानस्थ होकर कहा—"अग्निदेव ! इसकी पूर्वजन्म की भक्ति का स्मरण कर कृपया इस मृग को विपश्चित् बना दीजिए"।

तदनुसार मुनि के ऐसा कहते ही वह मृग छलाँग मारकर दौड़ता हुआ अग्नि में प्रविष्ट हो गया। सब के देखते-देखते वह मृग अग्नि की ज्वाला में मनुष्य के आकार का हो गया। ज्वालाओं के मध्य में सुवर्ण-सी कान्तिवाला और रमणीय आकृतिवाला पुरुष दिखाई दिया। जैसे वायु से दीपक बुझ जाता है, वैसे ही सभा के बीच से वह ज्वाला-पुञ्ज विलीन हो गया। वह पुरुष सभाभवन में खड़ा हो गया। उसने रुद्राक्ष की माला धारण की थी और सुवर्णमय यज्ञोपवीत धारण किया था। निर्मल वस्त्रों से सुशोभित वह शान्त चन्द्रमा के समान कान्तिमान् था। उसकी कान्ति को देखकर सभासदों ने उसका नाम "भास" रखा।

तदनन्तर उस भास ने वहाँ बैठकर ध्यानस्थ हो अपने पूर्वजन्म के वृत्तान्तों का स्मरण किया। सभासद् अपने-अपने स्थानों पर आश्चर्यचकित हो बैठे थे, भास मुहूर्त्त भर में अपना समस्त वृत्तान्त स्मरण कर जग गया। उसने एक बार सभासदों को ध्यान से देखा। महर्षि वसिष्ठ जी के पास जाकर प्रसन्नता से प्रणाम किया और कहा कि—"भगवन् ! मुझे जीवन देनेवाले आप महामुनि को सादर अभिवादन"।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

महर्षि वसिष्ठ ने सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—"राजन्! चिरकाल से अनुभूत तुम्हारी अविद्या का विनाश हो"। विपश्चित् श्रीराम का जय जयकार करने लगा। हँसकर महाराज दशरथ ने उससे कहा—"राजन्! आपका स्वागत है। आप इस आसन पर बैठिए, चिरकाल से भ्रमण कर रहे आप यहाँ पर विश्राम कीजिए"।

महाराज दशरथ के ऐसा कहने पर भास-नामधारी वह पुरुष विश्वामित्र-प्रभृति मुनियों को प्रणाम कर आसन पर बैठ गया।

महाराज दशरथ ने कहा—"खेद है, विपश्चित् ने अविद्या के कारण चिरकाल तक दुःख भोगा है। अविद्या की बड़ी विषम गति है, जो आकाश में असत् सृष्टि का आडम्बर खड़ा कर देती है। आश्चर्य है कि उसने चिदात्मा का आवरण कर चिदात्मा में ही विभिन्न कल्पित जगत् की सृष्टि कर जीवमात्र को भ्रम में डाल दिया है"।

वदत्येवं मुनौ दूराद् धावित्वा नृपसंसदि।
मृगोऽग्नि वेगनिर्मुक्तः शरो लक्ष्यमिवाविशत्॥
ज्वालाजालं प्रविष्टोऽसावादर्श इव बिम्बितः।
सन्ध्याभ्र इव विभ्रान्तो दृष्टस्पष्टशरीरकः॥
स पश्यत्स्वेव सभ्येषु मृगोऽत्र नरतामगात्।
ज्वालोदरे नभस्यभ्रवो रूपान्तरं यथा॥
अनन्तरं सभामध्याद्वातैर्दीप इवाहृतः।
ज्वालाजालं ययौ क्वापि सन्ध्याम्बुद इवाम्बरात्॥
स चागत्य वसिष्ठाय प्रणाममकरोन्मुदा।
ज्ञानार्कप्राणद ब्रह्मन्नमस्तेऽस्त्वित्युदाहरन्॥
तमुवाच वसिष्ठोऽपि हस्तेन शिरसि स्पृशन्।
अद्य ते सुचिराद्राजन्नविद्यायाः क्षयोऽस्त्विति॥
असम्यग्बोधदुर्दृष्टेरहो नु विषमा गतिः।
व्योम्न्येव दर्शयत्येषा सर्गाडम्बरसम्भ्रमम्॥
कियन्त्याश्चर्यमेतानि जगन्ति विततात्मनि।
संततानि चिरं तानि विभ्रान्तानि विपश्चिता॥

योगवासिष्ठ, निर्वाण-प्र० उ० सर्ग १३०, श्लोक १३-१५, १६, २७, २८, ३३, ३४

भाससंसार-वर्णन—

महाराज दशरथ के वचन सुनते ही महर्षि विश्वामित्र को वरधाना राजपुत्रों का वृत्तान्त उद्बुद्ध हो गया। उन्होंने कहा—"महाराज! आपने बहुत ठीक कहा। जिन लोगों को तत्त्वज्ञान नहीं है, उनको वासनामय अनन्त कोटि जगत् उत्पन्न होते ही रहते हैं। वरधाना के राजकुमार विपश्चित् के समान सत्रह लाख वर्षों से घूम रहे हैं। भूमि का अन्त देखने के लिए वे आज भी प्रसन्नचित्त हो प्रवृत्त हैं। द्वीप,

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

के बाद समुद्र और समुद्र के बाद द्वीप इस प्रकार चिरकाल से वे भ्रमण कर रहे हैं; परन्तु जगत् का अन्त नहीं पा रहे हैं। भिन्न-भिन्न प्रकार के देश उन्हें मिल रहे हैं। आकाशस्थ कन्दुक में जैसे पिपीलिकायें (चीटियाँ) घूम रही हों, वैसे वे घूम रहे हैं और खेद का अनुभव नहीं करते। इस भूगोल के नीचे, ऊँचे अथवा पार्श्व भाग में, जहाँ भी वे पहुँचते हैं, वहाँ भलीभाँति दिशाओं को देखते हैं। भूमि का अन्त न पाकर वे आगे बढ़ते रहते हैं। राजन् भास! आप बतलाइये, आपने कहाँ तक भ्रमण किया, क्या देखा? और आपको किसकी स्मृति हो रही है" ?

भास ने कहा—"मुनिवर! मैंने बहुत भ्रमण किया है, बहुत कुछ देखा है और बहुत कुछ स्मृति पथ पर है। असीम महाकाश में पहुँच कर मैंने बड़े-बड़े जगत् देखे और बड़े-बड़े दुःखों तथा सुखों का अनुभव किया। अग्निदेव के वरदान से मैंने अनेक शरीर प्राप्त किए और अनन्त दृश्य देखे। मृत्यु के समय वृक्षजनित संस्कार से सहस्रों वर्षों तक मैं वृक्ष बना रहा। सौ वर्ष तक मैं मेरु पर्वत पर मृग रहा। उस अवस्था में दूब के तिनकों को चरने तथा गीत सुनने में आसक्त रहता था। पचास वर्षों तक मैं क्रौञ्च पर्वत की सुवर्णगुफाओं में शरभ मृग बनकर रहा। मेघ की बूँदे तथा ओले मेरे शरीर पर गिर पड़े, जिससे क्रुद्ध होकर मैं मेघ से लड़ने को उद्यत हुआ। और छलाँगे भरने लगा। उसी समय मेरी मृत्यु हो गई। मैंने मलय पर्वत के शिखर पर विद्याधरियों के साथ चिरकाल तक विलासमय जीवन व्यतीत किया। तदनन्तर मैं ब्रह्मा जी के वाहन हंस का बालक बना। सुमेरु पर्वत पर मन्दाकिनी में विहार करते हुए मैंने पन्द्रह सौ वर्षों तक उसके मधुर जल का पान किया। सौ वर्षों तक क्षीरसागर के तट पर निवास कर भगवान् की दिव्य रमणियों के मधुर गीत सुने। कालञ्जर वन में मैं शृगाल बन गया और एक विशाल हाथी ने मुझे कुचल डाला।

सह्य पर्वत के कच्छ प्रदेश में बल्मीकनामक पक्षी होकर मैंने सौ वर्ष बिताए। महेन्द्र पर्वत पर मैंने रम्य विलासवती स्त्रियों को देखा और उनके साथ विलासमय जीवन व्यतीत किया। उसी पर्वत पर मैंने तपस्वी बनकर भी कुछ दिन बिताए।

मैंने आश्चर्यजनक एक वस्तु देखी, जो अनन्त ब्रह्माण्डों से भरो थी। उसमें जलचरों के तुल्य प्राणी रहते थे। एक स्थान पर मैंने एक स्त्री को देखा, जिसके शरीर में आकाश, पर्वत, दिशायें, काल, प्राणी आदि से परिपूर्ण त्रैलोक्य सुशोभित हो रहा था। मैंने पूछा कि "सुन्दरि! आप कौन हैं?" उन्होंने उत्तर दिया—"मैं चिति हूँ, ये समस्त जगत् मेरे अङ्ग हैं, मैं मूर्त्त और अमूर्त्त दोनों प्रकार के रूपों को धारण करती हूँ। जैसे जगत् मेरे शरीर के भीतर विद्यमान है, वैसे घट, पट, आदि प्रत्येक वस्तु के भीतर जगत् विद्यमान है। सकल पदार्थों में अनुगत पदार्थसत्ता सर्वजगद् घटित स्वभाववाली है; क्योंकि पर्वत आदि भी ब्रह्मसत्तारूप हैं। जब जड़ पदार्थों में चेतनता है, तब मानव शरीर में तो वह सुतरां प्रसिद्ध है"।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

मैंने यह भी देखा कि प्राणियों का जन्म एवं मरण एक भूत से हो रहा है। उसीसे जोवों की उत्पत्ति होती है और उसीमें जीव विलीन हो रहे हैं।

मैंने दूसरा आश्चर्य यह देखा कि इस जगत् में जितने ग्राम, गृह आदि हैं, वे सब अन्धकारमय आकाश में चल रहे हैं और दूरवर्ती दिगन्त में प्रविष्ट हो रहे हैं। यहाँ के गाँवों को मैंने वहाँ देखा।

एक आश्चर्य मैंने यह देखा कि स्थानविशेष में स्वर्ग, भूमि और पाताल के देव, मनुष्य, नाग आदि का अवान्तर विभाग नहीं है। सब एक से हैं। आकाश से सब भूतों की उत्पत्ति होती है और आकाश में वे लीन हो जाते हैं।

मैंने एक बहुत सुन्दर स्थान देखा। वहाँ न चन्द्र है, न सूर्य है और न तारागण हैं। वहाँ अन्धकार का नाम नहीं है। वहाँ के निवासी प्रकाशस्वरूप हैं। उस अलौकिक जगत् का मुझे पुनः पुनः स्मरण हो रहा है।

मुझे ऐसे असंख्य जगतों का स्मरण हो रहा है, जहाँ दैत्य, दानव, नाग, नर, सुर आदि जीव विलक्षण हैं। वृक्ष, पर्वत, नगर आदि अपूर्व हैं, जिनके व्यवहार अलौकिक हैं।

ऐसी कोई दिशा नहीं है, जिसमें मैंने विहार न किया हो, ऐसा कोई देश नहीं जिसे मैंने न देखा हो, ऐसा कोई कौतुक नहीं है, जिसका मैंने अनुभव न किया हो।

अन्यत्र दृष्टं गगनेन यावदिहान्धया ग्रामगृहाणि यान्ति।
विशन्त्यमुत्रान्त इहाभवद्वा ग्रामः स एवान्यत एव लब्धः॥
नरामराहिप्रविभागमुक्तान्यन्यत्र भूतानि समानि सन्ति।
खादेव सर्वाणि समुद्भवन्ति तत्रैव कालेन लयं प्रयान्ति॥
अचन्द्रतारार्कमनन्धकारं स्वयं प्रकाशाखिलभूतजातम्।
स्मरामि किञ्चिज्जगदेककान्त ज्वालोदराभं दिनरात्रिमुक्तम्॥
अपूर्वदैत्याहिनरामरादि भूतान्यपूर्वद्रुमपत्तनानि।
अपूर्वलोकान्तरकार्यवन्ति स्मराम्यनन्तानि महाजगन्ति॥
दिगस्ति सा नो विहृतं न यस्यां न सोऽस्ति देशः खलु यो न दृष्टः।
यन्नानुभूतं न तदस्ति कार्यमन्याश्रयं नापरमस्ति मर्शात्॥

योगवासिष्ठ, निर्वाण-प्र० उ० सर्ग १३१, श्लो० ५३-५७

भासजन्म-परम्परा—

भास ने कहा—मैंने मन्दराचल पर तप किया और मुझे सिद्धि प्राप्त हो गई। मैं उस पर्वत पर मन्दरा-नामक अप्सरा के साथ रहने लगा। अकस्मात् रात्रि में तिनके के समान मैं नदी के वेग में उस अप्सरा के साथ बहने लगा। मैंने उससे पूछा कि "यह क्या है?" उसने कहा कि "इस प्रदेश में चन्द्रोदय होने पर चन्द्रकान्तमणिमय

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

पर्वत के भागों से निकले हुए जलस्रोतों से ये नदियाँ उन्मत्त के समान बहने लगती हैं" । "पहले क्यों नहीं बतलाया, क्षमा करें" ।

ऐसा कहकर वह अप्सरा मुझको लेकर आकाश में उड़ गई । मैं सात वर्षों तक उस अप्सरा के साथ मन्दराचल के शिखर पर रहा ।

दूसरे जन्म में मैंने दूसरा जगत् देखा, जो ज्योतिश्चक्र से (सौरपरिवार से) रहित था । वहाँ पूर्व, पश्चिम आदि दिशाओं का विभाग नहीं था, दिन नहीं थे, शास्त्र नहीं थे, वेद नहीं थे, दैत्य, सुर, असुर आदि का भेद नहीं था । वह जगत् अपने प्रकाश से देदीप्यमान था ।

विद्याधरों एवं देवताओं की विहारभूमि में जो गगनचुम्बी पर्वतों के मध्य में स्थित थीं, मैं अमरसोम-नामक गन्धर्व बनकर चौदह वर्षों तक तप करता रहा । तदनन्तर अग्निदेव के प्रसाद से अविद्या का अन्त देखने के लिए गरुड़वेग से आगे बढ़ा । भूलोक से उठकर मैं आकाश में उड़ने लगा और नक्षत्रसमूह में मैंने दिन, रात्रि, मास, ऋतु आदि व्यतीत किये । अन्त में श्रान्त होकर मैं सो गया, स्वप्नावस्था में मुझे विश्वदर्शन हुआ ।

स्वप्नावस्था एवं जाग्रदवस्था दोनों में दृश्य तथा अदृश्य विषयों के दर्शन के उद्देश्य से गमन करते हुए मेरे अनेक वर्ष व्यतीत हो गए; किन्तु मैंने दृश्य अविद्या का अन्त नहीं पाया । जैसे हृदय में मिथ्या जमी हुई पिशाची का अन्त बालक को प्राप्त नहीं होता है ।

ताल, तमाल, बकुल से युक्त एक उन्नत शिखर की मुझे स्मृति आ रही है जहाँ वायु प्रचण्ड वेग से बहता है । वहाँ सूर्य, चन्द्र आदि का प्रकाश नहीं है, वह स्वयं अपने प्रकाश से जगमगा रहा है । वहाँ स्थावर एवं जंगम जगत् दृष्टिगोचर हो रहे थे ।

न दिग्विभागो न दिनानि यत्र न चैव शास्त्राणि न वेदवादाः ।
न चैव दैत्यादिसुरादिभेदो जगन्मया तादृगथाऽत्मदीप्तम् ॥
इति दृश्यमदृश्यं च गम्यं चागम्यमेव च ।
वेगाल्लंघयतो देशं मम वर्षगणा गताः ॥
दृश्याख्याया अविद्याया न त्वन्तं प्राप्तवानहम् ।
मिथ्यैव हृदि रूढायाः पिशाच्या इव बालकः ॥
तालीतमालवकुलातुलतुङ्गशृङ्गमुन्नादवातजवमेकमहं स्मरामि ।
सूर्यादिभिर्विरहितं प्रकटं स्वकान्त्या सस्थावराद्रितटजङ्गममेव विश्वम् ॥

योगवासिष्ठ, निर्वाण-प्र० उ० सर्ग १३२, श्लो० ७, १५, १६, १८

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

महाशववर्णन—

विपश्चित् (भास) ने कहा—"मुनिवर ! कहीं आकाश में—जहाँ आप लोगों की गति नहीं है – मैंने एक जगत् देखा। वहाँ सृष्टिक्रम विचित्र है, यहाँ के समान नहीं है वहाँ मैं निवास कर रहा था और अविद्या का अन्त खोजने के लिए दिशाओं में आँखें फैला रहा था। मैंने काली पर्वत-सी छाया को घूमते देखा। मैं विचार करने लगा 'यह छाया क्या हो सकती है ?' इतने ही में मैंने आकाश से चक्कर काट कर गिरती हुई पर्वत-सी पुरुषाकृति देखी। पर्वत के सदृश महान् यह ब्रह्मा है ? अथवा विराट् पुरुष हैं ? प्रक्षिप्त पर्वत के समान यह विशाल आकार नीचे आ रहा है, इसने समस्त आकाश को ढक दिया है।

मैं अपने मन में विचार कर ही रहा था कि अकस्मात् सूर्य भगवान् आकाश से पृथ्वी पर गिर पड़े। उनके देह का पारावार नहीं था, उन्होंने सप्तद्वीपा वसुन्धरा को ढक लिया था। पिशाच के भय से मैं समीपस्थ अग्नि में प्रविष्ट हो गया।

सैकड़ों जन्म-जन्मातरों में मैंने अग्नि की पूजा की थी। अतः अग्निभगवान् ने चन्दन-सा शीतल बनकर मेरी रक्षा की और कहा—"डरो मत, डरो मत"।

मैंने कहा—"भगवन् ! आपकी जय हो। आप सदा से हमारे रक्षक हैं। अनवसर में यह प्रलय प्राप्त है। कृपया मेरी रक्षा कीजिए"।

अग्निदेव ने कहा—"डरो मत। शोक न करो। चलो, हम लोग अग्नि-लोक चलें"।

ऐसा कहकर अपने वाहन शुक की पीठ पर मुझे बैठाकर और शव का एक भाग जलाकर छिद्र मार्ग से वह आकाश में उड़ गये। आकाश में पहुँचकर मैंने उस भयानक शवपतनरूप उत्पात को देखा। वह महाशव जब पृथिवी पर गिरा, तब समस्त पृथिवी सागर, पर्वत, वन, नगर और जङ्गलों के साथ काँप उठी, नदियों का प्रवाह रुक गया, मार्गान्तर से बहने वाले नूतन जलप्रपातों का निर्माण हुआ। भूमि पर चीत्कार हुआ, सभी दिशाओं में हाहाकार मच गया। समस्त जगत् ने प्रलय की आशङ्का से भयङ्कर चीत्कार, रोदन तथा हाहाकार किया। सभी दिशाओं में हृदयविदारक, भीषण, घनघोर शब्द हुआ जो प्रलयकालिक मेघनिर्घोष को भी अपनी भयङ्करता से जीत रहा था। उस महाशव के पृथिवी पर गिरने से कुछ पर्वतों के तट नष्ट-भ्रष्ट हो गये और हिमालय के शिखर पाताल में धँस गये, उस महाशवपात से पर्वतशिखर ध्वस्त हो गए। सागरों में ज्वार-भाटा आ गया। पर्वत रसातल चले गए, समस्त प्राणिवर्ग भय से कम्पित एवं क्षुब्ध हो गए। सूर्य पथिवी पर गिर पड़े, द्वीपसमूह मध्यम हो गये, पथिवीमण्डल छिन्न-भिन्न हो गया तथा समस्त जगत् अस्त-व्यस्त हो गया।

ध्यानपूर्वक देखने से वह मांसमय पर्वत निकला। उसका एक अङ्ग भी पृथिवी पर नहीं समा सकता था।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

मैंने अपने रक्षक अग्निदेव से पूछा—"भगवन्! यह क्या है? यह मांसमय शरीर कैसे गिरा? आकाश से सूर्य कैसे गिरा? यह इतना विशाल क्यों है, जो सप्तद्वीपा वसुन्धरा में समा नहीं पाता"!

अग्निदेव ने कहा—"वत्स! अभी क्षणभर प्रतीक्षा करो, मैं सब रहस्य बतला दूँगा"।

इतने ही में दसों दिशाओं से आकाशचारी सिद्ध, साध्य, अप्सरायें, दैत्य, गन्धर्व, नाग, किन्नर, ऋषि, मुनि, यक्ष, पितर, देवगण तथा षोडश मातायें आ गईं। उन्होंने भक्तिपूर्वक नतशिरस्क हो सर्वेश्वरी भगवती कालरात्रि देवी की स्तुति की।

आसीत्तत्पतनं तस्य मेरुशैलशिलाकृतेः।
दलनं शैल-शृङ्गाणां विदारणकरं भुवः ॥
क्षोभणं जलराशीनामद्रीणां भूतलार्पणम्।
पीडनं सर्वभूतानां क्रीडनं प्रलयार्थिनाम् ॥
पातनं भूतले भानोः स्थगनं द्वीपपद्धतेः।
चूर्णीकरणमद्रीणां दलनं मण्डलावनेः ॥
अथ तस्मिन् वदत्येवं समाजग्मुर्नभश्चराः।
तज्जगज्जालजातीया दिग्भ्यो गगनजाखिलाः ॥
सिद्धसाध्याप्सरोदैत्यगन्धर्वोरगकिन्नराः ।
ऋषयो मुनयो यक्षाः पितरो मातरोऽमराः ॥
अथ सर्वेश्वरीं देवीं शरण्यां ते नभश्चराः।
भक्तिनम्रशिरःकायाः कालरात्रिं प्रतुष्टुवुः ॥

योगवासिष्ठ, नि०-प्र० उ० सर्ग १३३; श्लो० १९-२१, २७-२९

देवपरिदेवन—

जब देवगण भगवती की स्तुति कर रहे थे, उस गिरे हुए पुरुष को, जिसने समस्त भूतल को आच्छन्न कर दिया था, मैंने शवरूप में देखा। वह इतना महान् था कि उसकी भुजायें, शिर आदि ब्रह्माण्ड से बाहर लोकालोक पर्वत के उस पार गिरे थे जहाँ मनुष्यों की पहुँच नहीं थी।

देवताओं की स्तुति करने पर देवी जी आकाश से प्रकट हुईं। भूत, प्रेतों के दल उनके पीछे-पीछे चल रहे थे। षोडश मातृकायें उनकी सेवा-शुश्रूषा में संलग्न थीं। कूष्माण्ड, यक्ष, वेताल आदि के झुण्ड से आकाशमण्डल व्याप्त हो गया था। देवी के शरीर की ज्वालाओं और नेत्रमवर्त्ती अग्नि की उष्णता से करोड़ों योजन तक लपटें फैल रही थीं। उनके अतिविशाल शरीर से आकाशमण्डल आच्छन्न हो गया था और वह निराधार आकाश में फैली हुई थी। वह सन्ध्याकालीन मेघ के समान रक्तवर्ण थी और आकाशसागर में बड़वानल का स्वरूप धारण कर रही थी।

देवताओं ने निवेदन किया—"देवि! अम्बिके! इस उपहार को भेंट रूप में समर्पित किया गया है। कृपया उसे स्वीकार कीजिए"।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

तदनुसार देवी जी प्राणवायु से उसका रक्तरूपी सार खींचने लगीं। जैसे सन्ध्याकालिक मेघमण्डल मेरु पर्वत की गुफाओं में प्रविष्ट हो जाता है, वैसे ही प्राणवायु द्वारा खींचा जा रहा उस शव का रक्त भगवती जी के मुख में प्रविष्ट हुआ। भगवती ने यथेच्छ रक्तपान किया और वह रक्तपान से पोन हो गईं। वह रक्त-वर्ण हो गईं। विषम सर्पों के आभूषणों से विभूषित, नाना प्रकार के आयुधों को धारण करने वालो, लम्बोदरा उस भगवती ने सन्तुष्ट होकर नृत्य करना प्रारम्भ किया। लोकालोक पर्वत के शिखरों पर आसीन देववृन्द उस नृत्य को देखने लगे।

पिशाच, कूष्माण्ड आदि महागणों ने उस शव को चारों ओर से घेर लिया और काट-काटकर यथेच्छ खाने लगे। रुधिर के पनाले वह रहे थे, वसा की दुर्गन्ध फैल रही थी।

उस बीभत्स दृश्य को देखकर देवतागण दुःखित हो चिन्ता करने लगे। "हा, खेद है कि पृथिवी कहाँ चली गई, सागर कहाँ चले गए, जनसमाज कहाँ गया और धरणीधर (पर्वत) कहाँ चले गए ? चन्दन, मन्दार और कदम्ब वृक्ष के वनों से सुशो-भित मलयाचल कहाँ चला गया ? हिमालय के उन्नत, स्वच्छ भू-भाग रुधिरस्राव से आप्लवित हो गये और उनकी शुभ्रता विनष्ट हो गई। क्रौञ्च द्वीप में क्रौंच नामक पर्वत पर जो विशाल कल्पवृक्ष था, वह भी नष्ट-भ्रष्ट हो गया। अमृत, लक्ष्मी, चन्द्रमा तथा कल्पवृक्ष को पैदा करनेवाला क्षीरसागर, दधिसागर तथा योगेश्वरियों का आवासभूत मधुसागर कहाँ चला गया ? ब्रह्मा जी के वाहनभूत हंसों और नलिनियों से भरा हुआ, कदम्बकानन की गुफाओं में विभ्रम करनेवाली विद्याधारियों की विलास भूमि पुष्कर-द्वीप कहाँ है ? गोमेघ तथा शाकद्वीप, जो विविध सुन्दर वृक्षों, लताओं आदि से सुशोभित हैं, कहाँ चले गये ? कल्पवृक्षों की उतमोत्तम शाखाओं, लताओं आदि से अलंकृत वनराशियाँ कहाँ चली गईं ? अब हम लोग कहाँ विश्राम करेंगे ? ताल, तमाल के वनों से युक्त, कदम्व और कल्पवृक्षों से सुशीतल, सुवर्णगृहों में वैठकर चन्दनलिप्ताङ्ग सुन्दरियों का मधुर गान एवं नृत्य कब देख सकेंगे" ?

वदव्येवं सुरानीके तं शवं प्राणवायुना।
देवी प्रववृते रक्तसारमाक्रष्टुमञ्जसा ॥
प्राणेनाकृष्यमाणं तद्रक्तं भगवतीमुखे।
आविशत् सान्ध्यमेघौघ इव मेरोर्गुहान्तरम् ॥
तावद्रक्तं तया पीतं प्राणाकृष्टं नमःस्थया।
यावच्छुष्का सती तृप्ता पीना सा चण्डिका स्थिता ॥
हा कष्टं क्व गता पृथ्वी क्व गता जलराशयः।
क्व गता जनसंघाताः क्व गताः धरणीधराः ॥

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

तादृक्चन्दनमन्दारकदम्बवनमण्डितः ।
मण्डपः पुष्पराशीनां कष्टं क्व मलयो गतः ॥

उच्चावदाता विपुला हिमवद्भूमयोऽपि ताः ।
नीताः शौक्ल्यरुषेवाशु रुधिरेणात्मपङ्कताम् ॥
क्रौञ्चद्वीपतले क्रौञ्चे योऽभूत्कल्पद्रुमो महान् ।
ब्रह्मलोकलसच्छाखः सोऽपि चूर्णत्वमागतः ॥
कदम्बकल्पद्रुमशीतलेषु तालोतमालीसवनाचलस्य ।
कदा नु तच्चन्दनसुन्दराणां पश्येम नृत्तं कनकालयेषु ॥

योगवासिष्ठ, निर्वाण-प्र० उ० सर्ग १३४, श्लो० १५-१७, ४४-४७, ५३

मशकव्याधबोधन—

भास ने कहा—"राजन् ! मैंने शुक्र की पीठ पर बैठे महादेव अग्नि भगवान् से पूछा—"भगवन् ! सब यज्ञ के अधीश्वर ! कृपया बतलाइये कि जिसका शव नाम पड़ा है, वह पहले क्या था ?"

अग्निदेव ने कहा—"राजन् ! सुनो । मैं आदि से अन्त तक समस्त वृत्तान्त कहता हूँ । सर्वव्यापक, निराकार, चिन्मय परमाकाश है, जिसमें ये असंख्य जगत् परमाणु के समान स्थित हैं । उस सर्वव्यापक, सर्वात्मक, शुद्ध चिदाकाश में स्वतः संवेदनमयी संवित् उद्भूत हुई । उसने अपने में तेजःपरमाणुभाव देखा अज्ञानावृत चैतन्य होने के कारण परमाणु ने अपनी अणुता देखी, उस अणुता ने चक्षुकायी । इन्द्रियों का अनुभव किया, पुनः वे इन्द्रियाँ शरीर में संलग्न हैं, ऐसा अनुभव किया उन इन्द्रियों ने अपने स्वभाववश रूप, रस, शब्द आदि विषयात्मक आधाराधेय-भावमय जगत् को देखा । उस जगत् में असुर-नामक कोई प्राणी था, जो बड़ा अभिमानी था, वह घमण्ड से फूला न समाता था । अतः उसने किसी महामुनि के सुन्दर आश्रम को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला ।

उसके दुर्व्यवहार से रुष्ट हो महामुनि ने शाप दिया—"असुर ! विशालकाय होने से तुमने मेरे आश्रम को तहस-नहस कर डाला है । अतः तुम नष्ट हो जाओ" ।

तदनुसार वह शापवश भस्म हो गया । वह भूताकाश में मिल गया और उसमें प्रतिष्ठित वायु के साथ एकत्व को प्राप्त हुआ । चेतन वायुरूप वह अणुरूप पार्थिव जलीय तैजस एवं आकाशीय मार्ग से व्याप्त हुआ । उस पाञ्चभौतिक चिन्मात्र क्लेश में क्रियाशक्ति का आविर्भाव हुआ । तदनुसार वायु में प्रतिष्ठित चैतन्य उद्बुद्ध हुआ । महामुनि के शाप को जानने वाली चित् संकल्पों से बिद्ध होकर मशकरूप में प्रकट हुई ।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

मशक की परमायु दो दिन की होती है। उस मशक ने ईख के झुरमुटों, घनी घास, काश, मूँज आदि स्थानों में गूँज रहे मशकों के साथ एक दिन अपनी आयु का अर्धभाग व्यतीत किया। हरी घास के मध्य में उसने अपनी पत्नी मशकी के साथ विहार किया और थककर विश्राम करने लगा। हरिण के खुर से दबकर वह चूर्ण हो गया और मर गया।

हरिण के द्वारा उसकी मृत्यु हुई थी, अतः वह दूसरे जन्म में हरिण हो गया। जङ्गल में वह इधर-उधर घूम रहा था और अकस्मात् किसी व्याध ने उसे मार डाला।

अतः दूसरे जन्म में वह व्याध हुआ। विविध वनों में घूम रहा वह व्याध अकस्मात् किसी मुनि के आश्रम पर पहुँचा। सौभाग्यवश मुनि जी से उसका सत्संग हुआ। मुनि ने उसे ज्ञानोपदेश दिया। मुनि ने कहा—"व्याध! तुम मृगों की हत्या कर क्यों पाप कर रहे हो। शिष्टजनों द्वारा अनुमोदित मार्ग का अनुसरण क्यों नहीं करते? क्या तुम नहीं जानते कि यह संसार असार है। आयु क्षणभङ्गर है, भोग विजली के समान चञ्चल है, यौवनविलास जल की गति के समान चञ्चल है, शरीर नश्वर है। अतः गुण और सत्सङ्ग के द्वारा आत्यन्तिक दुःखनिवृत्ति के लिए निरतिशय आनन्दरूप ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिए सर्वात्मना सचेष्ट हो"।

वह व्याध मुनि के साथ चिरकाल तक रहा। मुनि ने विविध आख्यानों, उपाख्यानों एवं कथाओं द्वारा उसको अध्यात्म मार्ग का उपदेश किया; परन्तु वह व्याध उसे हृदयङ्गम न कर सका। उन तत्त्वों का उसने मनन नहीं किया, फलतः वह लाभान्वित न हो सका। अभ्यास के विना परमपद में वह विश्रान्त न हो सका। जैसे जल में काष्ठ बहता रहता है, वैसे वह संसार-सागर में इधर-उधर ठोकर खाता रहा। जैसे चञ्चल युवक को शान्ति नहीं मिलती और वह संशय-पथ पर आरूढ़ होकर इतस्ततः घूमता रहता है, वैसे वह दिशाविहीन हो घूमता रहा। निर्वाण के प्रति उसकी निष्ठा दृढ़ न हो सकी।

उसने सोचा कि यह जगत् अविद्या से निर्मित है, अविद्या ब्रह्म की शक्ति है। अतः तद्द्वारा निर्मित यह जगत् भी सत्य है। मैं तपस्या द्वारा विशाल शरीर प्राप्त कर इस दृश्य जगत् का अवसान कहाँ है, यह देखूँ। मैं वहाँ सुखपूर्वक रहूँगा। अतः जहाँ आकाश भी नहीं है, वहाँ मैं पहुँच जाऊँगा।

उस व्याध ने ऐसा मूर्खतापूर्ण निर्णय किया। मुनि जी ने जो उपदेश दिया था, वह व्यर्थ हो गया।"

व्याध हिंसक कार्यों का परित्याग कर मुनिजन के साथ तपश्चर्या के लिए उद्यत हुआ। तपस्वियों के साथ निवास करते हुए उसने उनकी भावना के अनुसार सहस्रों वर्षों तक घोर तप किया। उसी प्रसङ्ग में उसने मुनिवर से पूछा—"भगवन्! मेरी आत्मा में विश्रान्ति कब होगी"?

उत्तर

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

मुनि जी ने कहा—"व्याध ! मैंने जिस ज्ञान का तुम्हें उपदेश दिया था वह जीर्ण इन्धन में स्थित स्वल्प अग्नि के समान तुम्हारे हृदय में स्थित है। इस समय उसमें जलाने की शक्ति नहीं है। अभ्यास न होने के कारण तुम तत्त्वज्ञान में विश्रान्त नहीं हो; परन्तु अभ्यास करने पर तुम पूर्ण रूप से विश्रान्ति को प्राप्त कर सकोगे। अब तुम अपना भावी वृत्तान्त सुनो जो कि अद्भुत है। तुम आत्मज्ञान के लिए प्रवृत्त हो, परन्तु तत्त्वज्ञानियों द्वारा प्रदर्शित मार्ग का अनुसरण नहीं कर रहे हो। अतः तुम्हारी बुद्धि दोलायमान है। तुम न पण्डित हो और न मूर्ख। अविद्यारूपी जगत् का अवसान कहाँ है ? यह जानने के लिए तुम तप करने को समुद्यत हो। तुम तप कर रहे हो। चिरकाल तक तप करने के पश्चात् ब्रह्मा जी प्रसन्न होकर तुम्हारे पास आयेंगे। तुम उद्दण्डतावश ब्रह्मा जी से निम्नाङ्कित वर माँगोगे—

"देवाधिदेव ! यह मेरा शरीर चिरकाल तक नीरोग रहे। मेरी मृत्यु स्वाधीन हो, यह गरुड़ के सदृश वेग से आकाशगामी हो। इसका प्रत्येक अङ्ग प्रतिक्षण एक योजन बढ़े, बढ़ते-बढ़ते त्रैलोक्य से बाहर हो जाय और आकाशतुल्य विशालकाय हो। मैं इस असीम दृश्य का अन्त देख सकूँ, यह वर मुझे दीजिए"।

तुम उक्त वर माँगोगे और ब्रह्मा जी तुम्हें वर देकर अन्तर्हित हो जायेंगे। ब्रह्मा जी के चले जाने पर तुम्हारा कृश शरीर चन्द्रमा के समान कान्तिमान् हो जायगा।

तत्पश्चात् तुम त्रिलोक का अन्त देखने के लिए मेरे आश्रम से आकाश में दूसरे चन्द्र अथवा दूसरे सूर्य के समान उड़ जाओगे। तुम्हारा शरीर सदा बढ़ता रहेगा और उन्मत्त प्रलयसागर के समान, अनन्त आकाश के समान बढ़ जायेगा। अनेक सृष्टियों को देखते तुम आगे बढ़ते जाओगे। पुनः सृष्टि, पुनः आकाश, पुनः सृष्टि, पुनः आकाश इस प्रकार देखते हुए तुम्हारा दीर्घकाल व्यतीत हो जायगा।

चिरकाल के बाद तुम स्वयं ऊब जाओगे। अनन्त आकाश को व्याप्त करने वाले अपने विशाल शरीर को देखकर तुम अनुभव करोगे कि "यह मेरा कुत्सित शरीर भी क्या है ? यह मेरे लिए भारभूत-सा हो गया है ? मेरा शरीर अत्यधिक बढ़ गया है और दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। आगे क्या होगा समझ में नहीं आता ? यह भीषण अविद्या असीम है। इसका कोई अन्त नहीं है। इस विशाल शरीर को लेकर मैं क्या करूँगा ? इससे न तो मैं साधुसंगति कर सकता हूँ और न शास्त्राभ्यास द्वारा मोक्ष प्राप्त कर सकता हूँ" ?

ऐसा विचार कर तुम प्राणवायु को योगधारणा से अपने शरीर का त्याग करोगे। तुम्हारा प्राणवायु भूत आकाश में स्थित होगा। तुम्हारा विशाल शरीर भूमण्डल पर गिरेगा और वहाँ के पर्वत आदि को चूर-चूर कर देगा।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

इस प्रकार तुमने अपना समस्त वृतान्त सुन लिया, अब तालीवन में तप कर जैसा चाहो वैसा करो।

यह सब सुनकर व्याध को महान् कष्ट हुआ। उसने कहा —"मुनिवर ! क्या मुझे यह दुःख अवश्य भोगना पड़ेगा। क्या मैंने क्लेश भोगने के लिए ही इतना महान् प्रयास (तपरूप) किया ? भगवन् ! आपने जो भविष्यबाणी की है, क्या वह किसी प्रकार टल सकती है ? कोई युक्ति है ? कृपया बतलायें"।

मुनि जी ने कहा—"हे व्याध ! कोई भी भवितव्यता को मिटा नहीं सकता ? मनुष्य में उसे मिटाने का सामर्थ्य नहीं है। ज्यौतिषशास्त्र से भावी पदार्थों का ज्ञान हो सकता है; परन्तु शास्त्र कोई अपूर्व कार्य नहीं कर सकता"।

व्याध राजा सिन्धु बन गया—

व्याध ने कहा—"भगवन् ! जब मेरा शरीर नीचे पृथिवी पर गिर जायगा, तब मेरा क्या होगा" ?

मुनिवर ने कहा—"सौम्य ! शरीर के गिर जाने पर तुम्हारा प्राणयुक्त जीव वायु बनकर आकाश में स्थित होगा। चित्तवृत्ति के जगदाकार से महान् होने के कारण तुम्हारा जीव "मैं राजा हूँ" इस प्रकार की कल्पना करेगा। तदनन्तर एका-एक प्रतिभा उदित होगी कि "मैं सामन्तों द्वारा सत्कृत श्रीमान् सिन्धु-नामक राजा हूँ। मेरे पिता जी ने आठ वर्ष की अवस्था में मुझे समुद्रान्त पृथिवी का राज्य प्रदान किया और वह स्वयं तपस्या करने के निमित्त वन चले गये। सीमान्त में विदूरथ नामक महाप्रतापी राजा मेरा शत्रु है, जिसे विना प्रबल प्रयत्न के परास्त करना कठिन है। यह राज्य करते मेरे सौ वर्ष व्यतीत हो गये और मैंने स्त्री, पुत्र, भृत्य आदि के साथ विविध राज्यसुख भोगे हैं। मेरा शत्रु विदूरथ राजा कोष, बल आदि में बढ़ा-चढ़ा है और उसके साथ मेरा घोर संग्राम उपस्थित है। तुम्हारा राजा विदूरथ के साथ तुमुल युद्ध होगा और अन्त में तुम उस महायुद्ध में विदूरथ को मारकर विजयी बनोगे। तुम्हारा अकण्टक राज्य भूमण्डल पर स्थापित हो जायगा और तुम मन्त्रियों के साथ निम्नाङ्कित चर्चा करोगे।

मन्त्री बोलेगा—"महाराज ! यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है, जो महाराज ने विदूरथ को युद्ध में परास्त किया और उसे मार डाला"।

राजा सिन्धु बोलेगा—"मन्त्रिवर ! मैं धनवान् हूँ और प्रलयकाल के समुद्र के समान मुझमें शक्ति है, ऐसी अवस्था में राजा विदूरथ मेरे लिए क्या अजेय है" ?

मन्त्री बोलेगा—"महाराज ! उसकी लीला-नामक भार्या है, जिसने माता सरस्वती को अपनी आराधना से प्रसन्न कर लिया है। माता सरस्वती ने पुत्री के रूप में स्वीकृत लीला को मोक्ष तक प्रदान कर दिया है। वह भगवती क्षणमात्र में जगत् का विनाश कर सकती है। उसके लिए कुछ भी असाध्य नहीं है"।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

राजा सिन्धु कहेगा--"मन्त्रिवर ! आपने उचित कहा है। ऐसी स्थिति में विदूरथ राजा की पराजय क्यों हुई" ?

मन्त्री कहेगा--"राजन् ! लीला ने भगवती जी से मोक्ष के लिए प्रार्थना की थी, युद्ध में विजय के लिए नहीं"।

सिन्धु कहेगा--"मन्त्रिवर ! मैं भी सरस्वती माता की पूजा करता हूँ। फिर वह मुझे मोक्ष क्यों नहीं देतीं" ?

मन्त्री कहेगा--"राजन् ! माता सरस्वती सबके हृदय में रहती है। उस भगवती से जो जिस अर्थ के लिए प्रार्थना करता है, उसे वह तदनुसार फल देती है। आपने मोक्ष के निमित्त माता जी से प्रार्थना नहीं की थी"।

सिन्धु कहेगा--मन्त्रिवर ! मैंने देवी सरस्वती जी से मुक्ति के लिए प्रार्थना क्यों नहीं की" ?

मन्त्री कहेगा--"राजन् ! शत्रुघाती महाराज का पूर्व-जन्म का अभ्यास अशुभ है। अतः आपने माता सरस्वती से मुक्ति के लिए प्रार्थना नहीं की। यह आबाल प्रसिद्ध है कि चित्तवृत्ति के अनुसार देवगण अनुग्रह करते हैं। राजन् ! इस त्रैलोक्य में कोई ऐसा पदार्थ नहीं है, जो पौरुष से प्राप्त न किया जा सके। जो जिस पदार्थ की दृढ़ अभिलाषा रखता है और उसके लिए प्रयत्नशील होता है, वह निश्चय ही उसे प्राप्त करता है"।

मुनिवर ने कहा--"मन्त्री के वचन को सुनकर राजा सिन्धु राज्य को तिलाञ्जलि देकर वन में दूर चला जायगा। साधु-समाज में सत्संग करने से उसको विवेक उत्पन्न होगा। निरन्तर विचार करने से वह यथासमय जीवन्मुक्त हो जायगा"।

शवनिर्णय--

मुनि ने कहा--"व्याध ! तुम्हारे जीवन में घटित होने वाली घटनाओं का मैंने वर्णन कर दिया। अब तुम यथोचित कार्य करो"।

अग्निदेव ने कहा--"विपश्चित् ! मुनि के बचन को सुनकर व्याध स्नान करने के लिये मुनि के साथ गया, दोनों व्याध और मुनि --अकारण मित्र--शास्त्रचिन्तन के साथ तप करने लगे। स्वल्पकाल में ही मुनि जी का निर्वाण हो गया; उन्होंने परम पद प्राप्त किया। चिरकालीन तपस्या के बाद ब्रह्मा जी प्रसन्न होकर व्याध के समीप आये और व्याध ने पूर्ववासना के अनुसार विशाल शरीर तथा अविद्यामय दृश्य का अन्त देखने के लिए वर माँगा।

ब्रह्मा जी ने 'तथास्तु' कहकर वर दिया और व्याध पक्षी के समान आकाश में उड़ गया। वह वर के प्रभाव से अत्यन्त विशाल शरीर प्राप्त कर आकाश में भ्रमण करने लगा। गरुड़ के वेग से वह ऊपर-नीचे उड़ने लगा और चिरकाल तक इसी प्रकार भ्रमण करता रहा। अविद्यारूप भ्रम का अन्त वह न देख सका। उसे बड़ा

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

क्लेश हुआ। मैंने यह महान् प्रयास व्यर्थ ही किया। शोकाभिभूत होकर उसने अपने विशाल शरीर का त्याग किया, जो विशाल शव के रूप में भूमण्डल पर गिरा।

उसका प्राणवायु से युक्त चित्त अव्यक्ताकाश में पृथिवी का पालक राजा सिन्धु के रूप में प्रतिष्ठित हुआ।

उसका विशाल शरीर, जो भूमण्डल पर गिरा, सैकड़ों मेरु पर्वत के आकार का था और उसने अपने आकार से समस्त भूमण्डल को आच्छन्न कर दिया। वह हम लोगों को जगत् के रूप में स्फुरित हुआ। उस शव के मेद से पूर्ण होने के कारण पृथिवी का नाम मेदिनी पड़ा। विशाल शव के कारण विनष्ट जगत् का शनैः-शनैः निर्माण हुआ और पुनः वन, पर्वत, समुद्र, नगर, गाँव आदि बसाए गए। पर्वत भी पाताल से बाहर निकले"।

विपश्चित् संसारभ्रमण—

अग्निदेव ने कहा—"विपश्चित्! तुम अपनी अभीष्ट दिशा में जाओ। देवराज इन्द्र के शततम यज्ञ में भाग लेने के लिए मैं आमन्त्रित हूँ। अब मैं इन्द्रलोक में जा रहा हूँ"।

भास (विपश्चित्) ने कहा—"ऐसा कहकर अग्निदेव अन्तर्हित हो गए और मैं भी अविद्या के अन्त का दर्शन करने की धारणा से दिगन्त में गमनरूप कार्य करने में प्रवृत्त हो गया। मैंने आकाश में असंख्य जगत् देखे, जिनके भिन्न-भिन्न आचार-विचार थे और भिन्न-भिन्न रूपरेखायें थीं, कहीं पर परस्पर मिले हुए छत्रमय अङ्ग-वाले प्राणी थे, जो मन्द गति से चलते थे और हृदयहारी थे। कहीं पर पर्वताकार प्राणी देहधारी थे, जिनमें चेतना थी और जो मन्द गति से चलते थे, कहीं पर काष्ठ-मय देहधारी जीव थे, कहीं पर पाषाणमय शरीर वाले प्राणी थे, कहीं पर पाषाण-प्रतिमा के समान सब एक ही जगह स्थित रहते थे। उनका व्यवहार केवल सम्भाषण आदि से होता था, गमन, आगमन आदि व्यवहार उनमें नहीं था।

चिरकाल तक मैं दृश्यावलोकन करता रहा। अन्त में दृश्य का अन्त न देख कर मुझे वैराग्य हो गया। मैं एकान्त में जाकर मोक्षप्राप्ति के लिए तप करने लगा"।

देवराज इन्द्र ने कहा—"विपश्चित्! चित्ताकाश में हम दोनों को मृगयोनि में जाना है। अतः यह तपस्या का समय नहीं है"।

विपश्चित् के आग्रह पर देवराज ने बतलाया कि दुर्वासा के शाप से मुझे भी हरिण-योनि में जाना है।

विपश्चित् ने देवराज से कहा—"भगवन्! मैं चिरकाल से जगत् में भ्रमण कर रहा हूँ। अब ऊब गया हूँ। मुझे मुक्ति का मार्ग बतलाइये"।

देवराज ने कहा—"विपश्चित् मैंने अध्यात्म दृष्टि से देख लिया है। मृग-योनि तुम्हारी अन्तिम योनि होगी। मृग रूप में तुम महाराज दशरथ की सभा में जाओगे। वहाँ तुम्हें अखण्ड ज्ञान प्राप्त होगा। तुम भूतल पर हरिण बनो। दशरथ

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

की सभा में महर्षि वसिष्ठ के अनुग्रह से तुम्हें यह समस्त आत्मवृत्तान्त विदित हो जायेगा। जब तुम मृग-योनि से मुक्त होकर पुरुष का रूप धारण करोगे, तुम्हें आत्मतत्त्व स्फुरित होगा। आत्मतत्त्व के स्फुरण से तुम चिरकालिक अविद्या-भ्रान्ति का उच्छेद कर निर्वाण प्राप्त करोगे"।

देवराज इन्द्र के वैसा कहते ही मेरी प्रतिभा "मैं हरिण हूँ" इस रूप में उदित हुई और मैं हरिण बन गया। मैं चौकड़ी मार कर इधर उधर भागने लगा। किसी सामन्त ने मुझे पकड़ लिया और तीन दिन के बाद आपकी क्रीडा के लिए मुझे आपके क्रीडागृह में रख दिया।

महाराज ! मैंने अपना समस्त वृत्तान्त निवेदित कर दिया, जो कि अद्भुत है और ऐंद्रजालिक की माया के समान है। इस अविद्या का अन्त नहीं है। आत्मज्ञान से अतिरिक्त किसी अन्य प्रकार से वह शान्त नहीं हो सकती। ऐसा कहकर विपश्चित् चुप हो गया।

श्रीराघवेन्द्र ने जिज्ञासा की कि "अन्य की स्वाप्निक एवं सङ्कल्पमय सृष्टि का दर्शन दूसरों को कैसे हो सकता है। अन्य के सङ्कल्प से उत्पन्न यह मृग हम लोगों को दृश्य कैसे हो सकता है" ?

इस पर विपश्चित् ने कहा—"राजन् ! देव, महर्षि आदि महापुरुषों के शाप अथवा वर से अन्यसंकल्पित वस्तुयें भी दूसरों को दृश्य हो सकती हैं। एक समय की बात है कि देवराज इन्द्र उस भूमि की ओर जा रहे थे, जहाँ शव गिरा था। वह घण्मड से अन्ध पुरुष के समान जङ्गल में चल रहे थे। मार्ग में ध्यानस्थ दुर्वासा मुनि मिले। मदोन्मत्त देवराज ने उन्हें ठोकर मार दी। इस पर ऋषि क्रुद्ध होकर बोले—"देवराज ! अभिमान से जिस भूमि पर तुम जा रहे हो, वह शव से आच्छादित मिलेगी तथा तुम विपश्चित् मृग के साथ मृग बनकर वहाँ रहोगे"।

यद्यपि मेरी मृगता सङ्कल्पवश हुई थी, तथापि ऋषि के वचनों से मैं दृश्य हो गया और इस समय आप लोगों के सम्मुख उपस्थित हो सका"।

वस्तुतः विचार करने पर न यह जगत् सत्य है और न सङ्कल्पित जगत्। दोनों समान हैं। अतः क्या सत् है और क्या असत् ? जिसमें सब कुछ है, जिससे सबका आविर्भाव हुआ है, जो सर्वात्मक है, सर्वव्यापक है, उस सर्वशक्तिमान् सर्वात्मक ब्रह्म में क्या नहीं हो सकता है ? सङ्कल्प से उत्पन्न पदार्थ आपस में मेल नहीं खाते, यह भी उसमें उपपन्न है और सङ्कल्पजनित पदार्थ परस्पर मेल खाते हैं, यह भी उसमें उपपन्न है। सर्वशक्तिमान् ब्रह्म में सब कुछ सम्भव है। मन को मोह में डालनेवाली माया अतिविषम है, उसके कारण विधि और निषेध दोनों एक जगह स्थित हैं। यदि त्रैलोक्य-ज्ञप्ति का विकास न होता, तो महाप्रलय में नष्ट भुवनों का पुनः अनायास सर्जन कैसे होता ? अग्नि, वायु एवं भूमि की सत्ता कैसे होती ? अतः चिति

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

के स्फुरण स्वभाव से अतिरिक्त जगत् अन्य कुछ नहीं है। चिद्दृष्टि से सब कुछ क्षण भर में प्रमाण हो जाता है, अन्य दृष्टि से प्रमाण नहीं होता। अतः विद्वान् पुरुष ज्ञानदृष्टि से सिद्ध वस्तु को सारभूत समझते हैं। जैसे स्पन्दन से वायु स्फुरित होता है, वैसे ज्ञप्तिरूप ब्रह्म "मैं अविद्या हूँ" ऐसे चिन्तन से जगत् रूप में स्फुरित होता है। यहाँ पर न मरण है और न जीवन। चिन्मात्र स्फुरण में दोनों हैं अथवा दोनों नहीं हैं। जिस तत्त्वदृष्टि में वाच्य और वाचक दोनों चिदाकाशरूप हैं, उसमें भिन्न और अभिन्न रूप में द्वित्व अथवा एकत्व कहाँ ? पूर्ण दृष्टि होने पर ज्ञानी और अज्ञानी तथा सत् और असत् का प्रश्न नहीं उठता। वहाँ सब कुछ चिद्रूप है। जो दृश्य है, वह ब्रह्म है, अनन्त है, परम पद है। यह सब कुछ ब्रह्म ही है, जिस चिदाकाश का स्फुरण यह जगत् है, वह चिदाकाश अपने स्वरूप में इस प्रकार स्फुरित होता है।

जैसे समुद्र और जलबिन्दुओं का क्षण में विश्लेष और क्षण में संश्लेष होता है, वैसे ही ब्रह्मरूपी सागर में स्फुरित हो रहे चिदणुभूत जीवों की—जब तक अज्ञान रहता है—अंशांशिभाव से स्थिति होती है। सृष्टि के आदि में चिदाकाशमयी सृष्टि स्वप्न के समान प्रतिभासित होती है, अतः यह समस्त दृश्यप्रपञ्च शान्त ब्रह्म है, यह प्रमाणित होता है। मैंने अनन्त वैभववाले अनेक जगत् देखे, अपने कर्मों के परिपाक से प्राप्त हुए सुख-दुःखरूप फलों का भोग किया, चिरकाल तक दिशाओं में भ्रमण किया, अन्त में निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि ज्ञान के विना दृश्यरूप दोष का निवारण नहीं हो सकता है।

वस्तुतस्तु न चैकं सन्न द्वितीयं न चाप्यसत्।
सा तथा प्रतिभोदेति किं सत्किमथवाऽप्यसत्॥
यस्मिन्सर्वं यतः सर्वं यत्सर्वं सर्वतश्च यत्।
ब्रह्म तस्मिन्महाभाग किं न सम्भवतीह हि॥
अहो नु विषमा माया मनोमोहविधायिनी।
विधयः प्रतिषेधाश्च यदेकत्र स्थितिं गताः॥
न ज्ञप्तिमात्रकचनं यदि स्यात् भुवनत्रयम्।
तन्महाकल्पनस्थानां सृष्टिः स्यात्कथमञ्जसा॥
शुद्धा ज्ञप्तिर्ब्रह्मसत्ता त्वविद्यास्मीति चेतनात्।
स्फुरतीयं जगद्रूपा वातश्रीः स्पन्दनादिव॥
तस्मान्नेहास्ति मरणं तन्नैवेहास्ति जीवितम्।
कस्मिंश्चिन्मात्रकचने द्वयं वाप्यस्ति नैव वा॥
तज्ज्ञतातज्ज्ञते चेह न सती नाप्यसत्स्थिती।
सत्ये सदसती चैकं काष्ठमौनमतोऽखिलम्॥
एवं नामैष चिद्धातुः कचत्येवं यदात्मनि।
यस्येदं कचनं व्योम्नो रूपमप्रतिघं जगत्॥

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

यथाब्धिजलविन्दूनां क्षणविश्लेषसंगमम् ।
चिदणूनां तथा व्रह्मवारिधौ स्फुरतां मिथः ॥
स्वप्नवद् भाति सर्गश्रीः सर्गादौ चिन्नभोमयी ।
अतः सर्वमिदं व्रह्म शान्तमित्युपपद्यते ॥
दृष्टान्यनन्यविभवानि मया जगन्ति
भुक्तानि कार्यपरिणामविजृम्भितानि ।
भ्रान्त्वा दिशो दश बहूनि युगानि याव-
ज्ज्ञानादृते क्षयमुपैति न दृश्यदोषः ॥

योगवासिष्ठ, निर्वाण-प्र० उ० सर्ग १५६, श्लो० ३४, ३६, ४१, ४३, ४७, ५० ६०, ६२, ६८-७०,

—·—

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

३५. शिलोपाख्यान

नीलाकाश के समान विशाल एवं निर्मल एक शिला है, जिसका विस्तार सहस्रों करोड़ योजन है। उस शिला में कहीं जोड़ नहीं है, वह ठोस वज्र के समान सुदृढ़, अत्यन्त पुष्ट, सुन्दर, अविनाशी, कठोर उदरवाली तथा आकाश के समान निर्मल है। उसकी कोई जाति नहीं है। वह कैसी है ? किस देश और काल में रहती है ? यह भी कोई नहीं जानता। उसके उदर के मध्य में स्वरूपभूत रेखायें, कमलदल, शङ्ख, गदा, चक्र आदि विद्यमान हैं, जो कि आकाश, वायु, जल, तेज, पृथिवी आदि के स्वरूप हैं। उसके भीतर रेखारूप असंख्य वृक्षराशियाँ, पर्वतश्रेणियाँ, नगर एवं ग्राम हैं। उसमें रेखारूप साकार और निराकार देव, दानव, मानव आदि नामधारी जीव प्रतिमाओं के समान विद्यमान हैं। वहाँ आकाशरूपिणी विशाल रेखा है और उसके भीतर चन्द्र, सूर्य प्रभृति अन्यान्य उपरेखायें भी हैं।

श्रीरामचन्द्र जी ने कहा—"भगवन् ! शिला के उदरस्थ उन रेखाओं को किसने देखा है ? वे किस प्रकार की हैं और पत्थर के भीतर कैसे देखी जा सकती हैं" ?

वसिष्ठ जी ने कहा—"राघवेन्द्र ! मैंने उन रेखाओं को देखा है। यदि तुम्हारी इच्छा हो तो तुम भी समाधिस्थ हो देख सकते हो"।

श्रीरामचन्द्र ने कहा—"भगवन् ! वज्र के समान सुदृढ़ तथा अभेद्य उस शिला के मध्य में स्थित रेखाओं को आपने कैसे देखा" ?

वसिष्ठ जी ने कहा—"राघव ! मैं भी शिला के गर्भ में स्थित रेखा ही हूँ। अतः मैंने वहाँ स्थित रेखाओं को विधिवत् देखा है। उस शिला को तोड़ने का सामर्थ्य किसी में नहीं है। उदरस्थ होकर ही वे रेखायें देखी जा सकती हैं"।

श्रीरामचन्द्र जी ने कहा—"भगवन् ! वह शिला कौन है ? आप कौन हैं और कहाँ स्थित हैं" ?

वसिष्ठ जी ने कहा—"राघवेन्द्र मैंने रूपक-शैली में चित्रण किया है। वस्तुतः वह शिला नहीं है; अपितु वह परमात्म महासत्ता है। उसके गर्भ में हम सब

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

शिला के अंशभूत हो स्थित हैं। आकाश उस शिला का अङ्ग है, वायुप्रभृति पञ्चमहाभूत उसके अङ्ग हैं। मन की वासनायें और काल की कल्पनायें दिन, मास, वर्ष, कल्प आदि सब उसके अङ्ग हैं। हम सब उसके अङ्ग हैं, अनन्य हैं, पर भ्रान्तिवश अपने को अन्य समझते हैं, चिद्ब्रह्मरूपिणी जो यह महती शिला है, उससे अन्य जगत् में कौन हो सकता है? जैसे तरङ्ग, आवर्त, फेन, बुद्बुद आदि जल से भिन्न नहीं हैं, वैसे यह समस्त जगत् चिद्रूप ब्रह्म है। उससे भिन्न कुछ नहीं है। उस ब्रह्म की अखण्ड सार्वभौम सत्ता है।

———

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

३६. ब्रह्माण्डोपाख्यान

महर्षि वसिष्ठ जी ने कहा—"राघवेन्द्र ! अणु-अणु में असंख्य जगत् हैं और उनके अनन्त व्यवहार एवं कार्य हैं ? उनका वर्णन करने की क्षमता किसमें है ? मैंने एक समय अपने पिता जी पद्मजन्मा ब्रह्मा जी से पूछा—"भगवन् ! यह जगज्जाल कितना विशाल है और कहाँ पर इसका अन्त है" ?

ब्रह्मा जी ने कहा—"मुनिवर ! ब्रह्म ही सम्पूर्ण जगद्रूप से भासता है । ज्ञानियों की दृष्टि में ब्रह्मसत्ता से वह अनन्त है और अज्ञानियों की दृष्टि में जगद्रूप से अनन्त है। आप वर्ण्यमान ब्रह्माण्डाख्यान को सुनें" ।

"आकाश से अभिन्न चिदाकाश परमाणु है, उसने अपने तात्त्विक स्वरूप के अदर्शनात्मक निद्रारूप स्वप्न में समष्टिजीवत्व को देखा जैसे आकाश अपने में शून्यत्व को देखता है और वायु अपने में स्पन्दनत्व को देखता है। पश्चात् उसने अपनी अविकारिता, असंगता, पूर्णता एवं सूक्ष्मता आदि रूपों का त्याग न करते हुए अपने को अहङ्कार से समन्वित देखा। उस अहङ्कार ने अपने को बुद्धिरूप में देखा। बुद्धि ने स्वप्न में अपने को मनरूप में देखा। जैसे अज्ञानावृत जीवचैतन्य स्वप्न में आत्मस्वरूप को विविध नगर, ग्राम, पर्वत आदि रूप में देखता है, वैसे ही मन ने स्वप्न में पाँच ज्ञानेन्द्रियों—कर्ण, नेत्र, त्वक्, नासिका, जिह्वा—को देखा। उस मनोरूप चिदाकाश-परमाणु ने पश्चात् विराट् त्रिभुवनस्वरूप शरीर को देखा, जो भूतों से वेष्टित, विविध स्थावर, जङ्गम जीवों से युक्त कल्पना और काल से व्याप्त तथा परस्पर सङ्गमयुक्त था। इस स्वप्नात्मक समष्टि जगत् में व्यष्टि जीव दर्पण में प्रतिबिम्बित, नवरङ्गों से मनोहर द्रष्टा, दर्शन, दृश्य, भोक्ता, भोग्य, भोग, कर्ता, कर्म, करण इत्यादि त्रिपुटी से संवलित त्रैलोक्य को देखता है" ।

इस जाग्रत् जगत् में भी व्यष्टिजीव तथैव त्रिपुटीसंवलित, नवरङ्गों से मनोहर त्रिजगत् का अनुभव करता है। इस प्रकार चित्परमाणुओं के अतिसूक्ष्म उदर में असंख्य जगत् विविधताओं से परिपूर्ण विद्यमान हैं और तत्त्वज्ञ महानुभावों के दृष्टि-गोचर हैं। यह अविद्या अनन्त है और अविद्यारूप से ज्ञात होने पर अज्ञानमयी है, यही ब्रह्मरूप से परिज्ञात होने पर विशुद्ध ब्रह्मस्वरूप हो जाती है।

इस प्रकार विशुद्ध तात्त्विक दृष्टि से देखने पर न द्रष्टा है, न दृश्य है, न द्वैत है, और न द्वैत का कारण है। केवल आद्यन्तरहित, स्वच्छ, प्रशान्त, भेदशून्य, सर्वात्मक ब्रह्म सब ओर से भासित हो आत्माकाश में स्थित है। जैसे समुद्र में असंख्य

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

जलतरङ्गों की राशियाँ स्पन्दमान हैं, वैसे अज्ञानावस्था में असंख्य जगत् परमात्मा में विद्यमान से दृष्टिगोचर हैं।

अविद्येयमनन्तेयमविद्यात्वेन चेतिता।
ब्रह्मत्वेन परिज्ञाता भवति ब्रह्म निर्मलम् ॥
एवं द्रष्टापि यः स्वप्नजालं दृष्टे न किञ्चन।
कोऽत्र द्रष्टा कुतो दृश्यं क्व द्वैत क्व च कारणम् ॥
सर्वं निःशान्तमाभातं खात्म निर्मित्ति केवलम्।
ब्रह्मात्मनि स्थितं स्वच्छमाद्यन्तपरिवर्जितम् ॥
ब्रह्माण्डलक्षनिचयाः परमात्मनीति-
नित्यं स्थिता निपुणमन्यवदप्यनन्ये।
वारिण्यवारितविसारितरङ्गवेगा-
लोलं स्थिताम्बुपरमाणुचया यथैते ॥

योगवासिष्ठ, निर्वाण-प्र० उ० सर्ग १७६, श्लोक २२-२५

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

३७. कुन्ददन्तोपाख्यान

तापसोपाख्यान—

श्रीराघवेन्द्र ने कहा—"मुनिवर! एक समय जब कि मैं विद्यामन्दिर में विद्वानों की सभा में उपस्थित था, एक तपस्वी ब्राह्मण जो विद्वान् और कान्तिमान् था, विदेहराज के देश से आया और द्विजसभा को प्रणाम कर आसन पर बैठ गया। मैंने भी खड़ा होकर उनका अभिवादन किया और पूछा—"विद्वन्! आप सुदूर देश से आने के कारण कुछ श्रान्त से हैं। ऐसे प्रतीत होता है कि आप कार्यविशेष से आये हैं। कृपया बतलायें कि क्या सेवा की जाय?

ब्राह्मण ने कहा—"महाराज! आप ठीक ही कह रहे हैं। मेरा प्रयोजन सुनें, इस भूमण्डल पर सब प्रकार के सौभाग्य से युक्त वैदेह-नामक देश है। वहाँ मैं ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ। मैंने विद्याध्ययन किया। कुन्द पुष्प के समान चमकीले दाँत होने से मेरा नाम कुन्ददन्त रखा गया। मुझे वैराग्य उत्पन्न हुआ और मैं सांसारिक क्लेशों की निवृत्ति के लिए तपस्वियों एवं मुनीन्द्रों के पवित्र स्थानों एवं आश्रमों में घूमने लगा। श्रीपर्वत पर पहुँच कर मैंने दीर्घकाल तक तपस्या की।

उस पर्वत पर एक ऐसा वन था, जो वृक्ष, पुष्प, लता आदि से रहित था और आकाश के समान शून्य था। उस वनाकाश में एक छोटा सा वृक्ष था, जिसकी शाखा में एक पवित्र आकृति वाला मनुष्य रज्जु से बँधा था, जिसके पैर ऊपर थे और मस्तक नीचे। मैं उसके पास भ्रमण करता हुआ गया। उसकी चेष्टाओं से ऐसा प्रतीत होता था कि वह जीवित है। अनेक क्लेशों को सहकर मैंने उस तपस्वी ब्राह्मण की सेवा की। शनैः-शनैः मैं उसका विश्वासभाजन हो गया।

एक दिन मैंने पूछा—"भगवन्! आप कौन हैं? और इस प्रकार दारुण तप क्यों कर रहे हैं"?

उस तपस्वी ने कहा—"तापस! तुम्हें क्या प्रयोजन है जो ऐसा प्रश्न कर रहे हो"।

मेरे विशेष आग्रह करने पर तापस ने कहा—"मैं मथुरा में उत्पन्न हुआ, घर में मेरा लालन-पालन हुआ, मैंने विद्याध्ययन किया। मैंने शास्त्रों में पढ़ा था कि राजा समस्त ऐश्वर्यों का उपभोक्ता होता है। मेरे मन में प्रवल इच्छा हुई कि मैं सप्तद्वीपा वसुन्धरा का राजा बनूँ और याचकों को यथेष्ट अभिलषित वस्तुयें प्रदान

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

करूँ। इसी उद्देश्य से मैं यहाँ आया और गत बारह वर्षों से इस प्रकार जीवन व्यतीत कर रहा हूँ। मैंने आपके प्रश्न का उत्तर दे दिया। आप मेरे अकारण मित्र हैं। अब आप कृपया अपने स्थान पर जायँ और मैं भी तपश्चर्या करूँ"।

मैंने निवेदन किया है कि "आपका वृतान्त बड़ा रोचक है, जब तक आप अपना अभिलषित अर्थ प्राप्त नहीं कर लेते, तब तक मैं आपकी सेवा-परिचर्या आदि करता रहूँगा"।

मेरे ऐसा कहने पर वह तपस्वी पाषाणमूर्ति के समान मौन हो गए, उनकी आँखें बन्द हो गईं और वह मृत के समान हो गए।

मैं छः मास तक शान्तभाव से वहाँ पड़ा रहा। एक दिन मैंने सूर्य के समान देदीप्यमान एक पुरुष को सूर्यमण्डल से निकलकर वहाँ उपस्थित देखा। तपस्वी ने मन से उसकी पूजा की और मैंने अर्घ्यादि प्रदान कर उनकी पूजा की।

उस दिव्य पुरुष ने कहा—"ऐ शाखा में लटके हुए तपस्विन्! अपनी तपश्चर्या को समाप्त करो और मुझसे ईप्सित वर माँगो। तुम सप्त सहस्र वर्षों तक सप्तद्वीपा वसुन्धरा का पालन करोगे और राज्यसुख भोगोगे"। ऐसा कहकर वह दिव्य पुरुष अन्तर्हित हो गया। तब मैंने शाखा-तपस्वी से कहा—"भगवन्! आपके तप का फल आपको मिल गया। अब आपका अग्रिम कार्यक्रम क्या है? उनके सङ्केत पर मैंने उनका रज्जुबन्धन शिथिल किया। उन्होंने स्नान किया और अघमर्पण मन्त्र का जप किया। उसी वृक्ष से प्राप्त दिव्य फलों को मेरे साथ खाकर उन्होंने व्रत की पारणा की। हम दोनों तीन दिन तक आराम से वहाँ रहे और उस वृक्ष के दिव्य फलों को खाकर सर्वात्मना तृप्त रहते थे।

स्वस्थ हो जाने पर वह ब्राह्मण मेरे साथ अपनी जन्मभूमि मथुरा जाने को उद्यत हुआ।

गौर्याश्रमवर्णन —

कुन्ददन्त ने कहा—भगवन्! हम दोनों मित्र सन्ध्या समय तक चलते रहे। सायंकाल हो जाने पर विश्रान्ति के लिए मार्ग में रुक गये। वेधा-नामक ग्राम में पहुँच कर आम्र-वन से भरपूर सालीनामक नगर में सुखपूर्वक दो दिन विश्राम किया गया। पश्चात् विविध प्रकार की कथा-वार्ता कहते, सुनते, जङ्गलों, पर्वतप्राय प्रदेशों, विविध ग्रामों, नगरों, नदियों, स्रोतों, सरोवरों आदि को पार करते हुए हम दोनों ने सन्ध्या समय कदली वृक्ष के घने वन में केलों के पत्तों पर आसीन होकर रात्रि व्यतीत की।

प्रातःकाल नित्य-क्रियादि से निवृत्त होकर हम लोग जङ्गल में चलने लगे। मेरे मित्र तपस्वी ने कहा कि "हम लोग गौरी के आश्रम में चलें। यह आश्रम मुनि-जन से सुशोभित है। यहाँ मेरे सात भाई मेरे ही समान सप्तद्वीपा पृथिवी पर शासन

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

करने के निमित्त पृथिवीपति बनने के अभिप्राय से वास कर रहे हैं। हम आठ भाई हैं और हम सब एकनिष्ठ होकर उक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिए तपश्चरण करने को समुद्यत हुए। वे मेरे भाई इस गौरीकानन में आये थे। मैं भी उनके साथ छः मास तक इस कानन में रह चुका हूँ। अतः उस पवित्र आश्रम में चला जाय। वहाँ हम लोगों के पाप धुल जायेंगे और बड़ा कल्याण होगा"।

उस तपस्वी के कहने पर हम दोनों मुनियों के आश्रम पर गए। वहाँ का दृश्य सर्वथा परिवर्तित था, वहाँ न कोई वृक्ष था, न कुटिया थी, न झाड़ी थी, न कोई मनुष्य था, न कोई मुनि था, न कोई देवी थी और न काई आश्रम था। वह जङ्गल सर्वथा शून्य था। उस तपस्वी के आश्चर्य का ठिकाना न रहा और वह हाय-हाय करने लगा कि भगवन्! यह क्या हुआ? हम दोनों इधर-उधर भटकते रहे। अन्त में एक वृक्ष दिखलाई पड़ा, उसकी छवि आकर्षक थी, छाया घनी थी, शीतल थी और हरियाली बड़ी मनोहर थी। उस वृक्ष के नीचे एक वृद्ध तपस्वी समाधि लगाये बैठा था।

हम दोनों मुनि के समीप हरी घास से आच्छन्न भूमि पर बैठ गए। चिर-काल तक प्रतीक्षा करने पर भी मुनि महाराज समाधि से विरत नहीं हुए। तब उद्विग्न होकर मैंने तारस्वर में कहा—"मुनिवर! कृपया उठिए"।

मेरे उच्चस्वर से मुनि जी जग गए। उन्होंने पूछा—"आप लोग कौन हैं? गौरी आश्रम कहाँ गया? मैं यहाँ कैसे आया? यह कौन युग (काल) है"?

मैंने कहा—"भगवन्! हम दोनों कुछ नहीं जानते। आप महात्मा हैं, सर्वज्ञ हैं, कृपया समाधि से सब वृत्तान्त जान लीजिए"।

मुहूर्त भर ध्यानस्थ होने के बाद जगकर उस मुनि ने कहा—"आर्यजन! आपलोग इस आश्चर्यमय वृत्तान्त को सुनें, यह कदम्ब वृक्ष जो आपको दिखाई दे रहा है, अतिपवित्र है। उसके नीचे भगवती पार्वती किसी कारणवश सरस्वती बनकर दस वर्षों तक रहीं और सब ऋतुयें उनकी सेवा में तत्पर थीं। उनके यहाँ रहने के कारण यह विशाल जङ्गल हो गया और "गौरीवन" इस नाम से विख्यात हुआ। यह वन भ्रमरी एवं कोकिला के मधुर गीतों से गुञ्जायमान था। कमल के पराग से दिगन्तराल व्याप्त थे। यहाँ मन्दार और कुन्द के मकरन्दों से दिशायें सुगन्धित रहती थीं, पुष्पराशि चारों ओर विकसित थी, सन्तानक वृक्ष के पुष्पस्तवकरूपी घास से यह अत्यन्त रमणीक था, लतायें सुगन्धित वायु से सदा परिपूर्ण रहती थीं। ऐसा यह गौरीवन वसन्त ऋतु का सुन्दर नगर-सा था। यहाँ भ्रमरों का अपूर्व गुञ्जन था। पुष्पमालाओं पर सदा देवाङ्गनायें एवं सिद्धाङ्गनायें झूला झूलती थीं।

इस वन का प्रत्येक भाग हारीत, हंस, शुक, कोकिल, चक्रवाक, सारस एवं (गौरैया) के झुण्ड से भरा रहता था तथा भेरुण्डा, तीति, कलविङ्क, मयूर, वक आदि

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

की विविध क्रीडाओं की आश्रयभूमि था। यहाँ गन्धर्व, यक्ष देवता, सिद्ध आदि सरस्वती माता के चरणकमलों की वन्दना करते थे। यह वन सदा शीतल रहता था और कदम्ब, कनेर, नारियल, ताल, तमाल आदि वृक्षों के समूह से बड़ा रमणीक था।

भगवान् शङ्कर की अर्धाङ्गिनी जगदम्बा भगवती पार्वती किसी कारणवश चन्द्रवदना कदम्बसरस्वती बनकर चिरकाल तक इस वन में रहीं। उनके रहने से यह वन अलौकिक शोभा एवं समृद्धि से सम्पन्न था।

पुष्पाकरस्य नगरं नवगीतभृङ्गम्
भृङ्गाङ्गनाकुसुमखण्डकमण्डपाढ्यम् ।
चन्द्रांशुजालपरिकोमलपुष्पदोला-
दोलायमानसुरसिद्धवधूसमूहम् ॥
हारीतहंसशुककोकिलकोककाक-
चक्राह्वभासकलविङ्ककुलाकुलाङ्गम् ।
भेरुण्डकुक्कुटकपिञ्जलहेमचूड-
राढामयूरबककल्पितकेलिरम्यम् ॥
तस्मिन्वने चिरमुवास हरार्धदेहा
केनापि कारणवशेन चिराय गौरी ।
भूत्वा प्रसन्नशशिबिम्बमुखीकदम्ब-
वागीश्वरी शशिकलेव शिवस्य मूर्ध्नि ॥

योगवासिष्ठ, निर्वाण-प्र० उ० सर्ग १८१, श्लो० ३४, ३५, ३६

सप्तद्वीपेश्वरोपाख्यान—

वृद्ध तपस्वी ने कहा कि भगवती गौरी इसी कदम्ब-वन में अपनी इच्छा से दस वर्ष रहकर शिव जी के पास चली गईं। उनके सान्निध्य से यह वृक्ष (कदम्ब वृक्ष) कभी पुराना नहीं होता। भगवती श्री गौरी के चले जाने पर यह सुन्दर वन सामान्य वन बन गया और लोग जीविका के लिए इन्धन, घास, फल, फूल आदि काटकर और तोड़कर यहाँ से उठाने लगे। मैं मालव देश का राजा था और किसी समय राज्य त्याग कर मुनियों के आश्रमों में घूमता फिरता इस प्रदेश में आ गया। यहाँ सत्कार पाकर मैं कदम्ब वृक्ष के नीचे समाधि लगाकर बैठ गया। कुछ समय पश्चात् आप अपने सात बन्धुओं के साथ इस आश्रम पर आए। आप आठों ने घोर तप किया और आप लोग आश्रमवासी मुनियों के भी पूज्य हो गए। कालान्तर में उसमें से एक श्रीवन चला गया, द्वितीय स्वामी कार्तिकेय की उपासना में क्रौञ्च पर्वत पर गया, तृतीय काशी गया और चतुर्थ हिमालय पर्वत पर गया। अवशिष्ट चार भाइयों ने यहीं पर तपस्या की। सब भाइयों की एक ही कामना थी, वे सब समस्त भूमण्डल का अधिपति बनना चाहते थे। कालान्त में इष्ट देवताओं ने सबको वर दिया और उनकी अभिलाषायें पूर्ण कर दीं। आपको छोड़कर शेष आपके बन्धु अपने घर चले गए। वरदान के समय सभी बन्धुओं ने इष्टदेव से प्रार्थना की—"देवी भगवती! हमारे

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

राज्य में प्रजागण असद् व्यवहार न करें। आश्रमवासीजन अपने-अपने आश्रमधर्म का पालन करें तथा वर्णाश्रम धर्म का पालन राज्य भर में यथाविधि हो"।

इष्टदेवता ने 'एवमस्तु' कहकर उनको वर दिया और अन्तर्हित हो गईं।

आश्रम से सब लोग चले गए। मैं एकाकी यहाँ रह गया। पश्चात् स्थानीय जनता ने समय-समय पर वन को काट-पीटकर छिन्न-भिन्न कर दिया। दूरस्थ कदम्ब वृक्ष को भगवती वागीश्वरी का मन्दिर समझकर सब पूजते हैं और मेरा भी आदर-सत्कार करते हैं। आप महानुभावों को मैंने समस्त वृत्तान्त सुना दिया। अब आप लोग यथेच्छ अपने स्थान पर जायँ और मैं भी समाधिस्थ हो जाऊँ।

कुन्ददन्त ने कहा—"सभासद्गण! आश्चर्यचकित हो मैंने उस वृद्ध तापस से पूछा—"भगवन्! पृथिवीमण्डल एक है और वह सप्तद्वीपों से आवृत है। अतः एक काल में आठों भाई समुद्र पार वसुमती के अधिपति कैसे होंगे"?

वृद्ध तापस ने कहा—"तापस! इन लोगों के सम्बन्ध में इतना ही असम्बद्ध वृत्तान्त नहीं है। उससे भी अधिक आश्चर्य की बात है कि वे सब आठों भाई देहनाश होने पर अपने घर के अन्दर ही सप्तद्वीपा वसुन्धरा के अधिपति होंगे। उन आठ भाइयों की आठ पतिव्रता स्त्रियाँ थीं। पति के प्रवास में उन्होंने कठोर व्रत किये और भगवती जी उन पर प्रसन्न हो गईं। उन्होंने कहा—"तुमने अपने तथा पति के लिए घोर तप किया है, अतः वर माँगो"।

भगवती जी का वचन सुनकर सौभाग्यवती बहुयें अत्यन्त प्रसन्न हुईं और भगवती जी की स्तुति, पूजा, अर्चा आदि करके बोली—"मातः! आपके अनुग्रह से हमारे पतिदेव अमर हों"।

भगवती जी ने कहा—"सृष्टि के विधान में तपस्या, दान आदि के द्वारा अमरत्व नहीं मिल सकता। अतः दूसरा वर माँगो"।

तब उन्होंने वर माँगा कि "हम लोगों के पतिदेवों के प्राण देहपात हाने पर घर से बाहर न जायँ"।

भगवती जी 'तथास्तु' कहकर अन्तर्हित हो गईं।

यथासमय सातों भाई अपने घर पहुँच गए। अब आठवाँ भाई भी अपने घर जाय और सब भाइयों का समागम हो, उत्सव हो।

इस प्रसङ्ग में एक आश्चर्यमयी, भयावह घटना और है। ये आठों भाई जब तप करने चले गये, तब इनके माता-पिता अपनी आठों बहुओं के साथ मुनियों के आश्रमों के दर्शनार्थ तपोवन गए। अपने दुःख-सुख की चिन्ता न कर उन्होंने अपने पुत्रों के कल्याणार्थ कलापनामक तीर्थ स्थान में जाने के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में उन्हें एक वृद्ध पुरुष दिखाई पड़ा, उसका शरीर भस्म से आच्छन्न था, वह कपिल वर्ण का था और उसके सिर के बाल खड़े थे। त्वरा में उन लोगों ने उस वृद्ध पुरुष पर ध्यान

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

नहीं दिया और धूलि उड़ाते हुए आगे बढ़े। तव क्रुद्ध होकर उस मुनि ने कहा— "मूर्ख पथिक ! तीर्थाभिलाषी होकर तुम लोगों ने मुझ दुर्वासा ऋषि का अपमान किया है, अतः तुम्हारी वहुओं और पुत्रों को तपस्या से उपार्जित वर भी दुःखदायक हो"।

इसके बाद मुनि को प्रसन्न करने के लिए वे लोग प्रवृत्त हुए और इसी बीच मुनि जी शाप देकर अन्तर्हित हो गए।

वे लोग दुःखी होकर बहुओं के साथ घर लौट आए। उनका मुख विवर्ण हो गया और विधि के विधान पर वे रोने-पीटने लगे।

उनके अनेक वृत्तान्त असमञ्जस से भरे पड़े हैं। जैसे आकाश में गन्धर्व-नगर, धूमकेतु, कबन्ध, उल्कापात आदि अनेक अशुभ दृश्य स्फुरित होते हैं, वैसे चिदाकाश के सङ्कल्पभूत इस दृश्य महानगर में अगणित असमञ्जसपरम्परा घटित होती रहती है।

अतो वदाम्यहं तेषां नैकं नामाऽसमञ्जसम्।
असमञ्जसलक्षाणि गण्डे स्फोटाः स्फुटा इव ॥
चिद्व्योमसङ्कल्पमहापुरेऽस्मिन् इत्थं विचित्राण्यसमञ्जसानि।
निःशून्यरूपेऽपि हि संभवन्ति दृश्ये यथा व्योमनि दृश्यजम्भाः ॥

योगवासिष्ठ, निर्वाण-प्र० उ० सर्ग १८१, श्लो० ५२-५३

वर-शाप-निरूपण—

कुन्ददन्त ने कहा—"हे आर्य सभासदो ! मैंने उस गौरी आश्रम के महातापस से पूछा—"भगवन् ! जब एक ही सप्तद्वीपा वसुन्धरा है, तब वे आठों अधिपति कैसे होंगे ? जब उनके जीव घर से वाहर नहीं निकलेंगे, तब वे दिग्विजय कैसे करेंगे ? वर और शाप दोनों के विपरीत फल एक ही व्यक्ति को साथ-साथ कैसे मिल सकता है ? छाया, आतप साथ साथ कैसे रह सकते हैं।

गौरी आश्रम के तपस्वी ने कहा—"सत्पुरुषो ! इतना ही असमञ्जस नहीं है। कुछ बाद की घटना सुनो। आज के आठवें दिन आप दोनों मथुरा पहुँच जायेंगे। कुछ काल तक आप लोग बन्धु-बान्धवों के साथ सुखपूर्वक रहेंगे। पश्चात् शनैः शनैः सबका स्वर्गवास होगा। और्ध्व-दैहिक क्रिया के बाद वर-शापरूप कर्म के फल आकाश में संघटित होंगे। उनके शरीर का निर्माण होगा। वर सुन्दर, हाथ में कमल लिये, ब्रह्माण्ड से विभूषित चन्द्रमा के समान शुभ्र, चतुर्भुज होंगे। शाप तीन नेत्रवाले, शूलहस्त, भयानक, कृष्णमेघसम, द्विभुज तथा भ्रुकुटीमुख होंगे।

वरगण कहेंगे—"शापगण ! आप लोग भग जायें। हम लोगों का समय उपस्थित है। उसका उल्लंघन कौन कर सकता है" ?

शाप कहेंगे—"वरगण ! आप लोग दूर भग जाँय। हम लोगों का सयय आ गया है। उसके उल्लंघन का सामर्थ्य किसमें है" ?

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

इस प्रकार वर, शाप में विवाद होगा । अन्त में वे दोनों ब्रह्मा जी के पास निर्णय के लिए जायेंगे। अभिवादन के पश्चात् वे दोनों ब्रह्मा जी के समक्ष अपने-अपने पक्ष का उपस्थापन करेंगे।

ब्रह्मा जी निर्णय करेंगे—आप दोनों में जो अन्तःसारवान् होगा, उसकी विजय होगी। आप दोनों परीक्षा करा लें कि कौन अधिक सारवान् है" ।

तदनुसार दोनों एक दूसरे के हृदय में प्रविष्ट हो गए और परीक्षा करने लगे। परीक्षण के अनन्तर शाप कहने लगे—"भगवन् ! हम लोग अन्तःसारवान् नहीं हैं। इसलिए वरों की जीत है, वर ही अन्तःसारवान् हैं। वर और शापरूप हम लोग संविन्मय हैं। संवित् के अतिरिक्त हमारा कोई रूप नहीं है। तपस्याकालिक दृढ़ निश्चय से वरदाता वर प्रदान करता है और तदनुसार चित् फलावस्था में परिपुष्ट होती है। अतः वह अन्तःसारयुक्त है। शापजन्य चित् अन्तःसारयुक्त नहीं होती है। विशुद्ध संवित् प्रबल होती है और आपेक्षिक रूप से अशुद्ध संविद् दुर्बल होती है" ।

ऐसा कहकर शापगण दूर चले गए ।

द्वीपसप्तकाष्टक-वर्णन—

वरगण कहेंगे—"भगवन् ! सप्तद्वीप वाले आठ भूमण्डल कहाँ हैं ? उनके विविध ऐश्वर्य कहाँ हैं ? भूपीठ एक ही सुना गया है। आठ भूपीठ न देखे गए हैं और न सुने गए हैं। एक छोटे से घर के भीतर ये सात द्वीप वाले भूखण्ड कैसे हो सकते हैं" ?

ब्रह्मा जी कहेंगे—वरगण ! यह समस्त जगत् सच्चित् परमाणु के अन्दर स्थित है, जिसका अनुभव स्वप्न रूप से किया जाता है। जब अणु के भीतर त्रैलोक्य का अनुभव किया जा सकता है, तब घर के भीतर सप्तद्वीपात्मक भूखण्ड का अनुभव क्यों नहीं किया जा सकता ? जो यह जगत् का भान होता है, वह तत्त्वतः चित्तत्त्व ही है। जैसे शून्य रूप से आकाश स्फुरित होता हैं, वैसे ही चिन्मात्र जगद्रूप से भासित होता है, अतः जगत् कहीं मूर्त नहीं है, जो घर के भीतर न समा सके" ।

ब्रह्मा जी के उपदेश को सुनकर वरगण का मोह दूर हो गया। वे प्रणाम के अनन्तर आतिवाहिक रूप धारण कर उन सप्तद्वीपों में गये, जहाँ वे आठों भाई अधिनायक बनकर राज्य कर रहे थे। वे आठों भाई वर के प्रभाव से सप्तद्वीपा वसुन्धरा के अधिपति बनकर राज्यव्यवस्था देख रहे थे और राज्यसुख-भोग रहे थे।

उनमें एक जम्बूद्वीप के अपने गृहमण्डप में उज्जैनी-नामक महापुरी में राजधानी बनाकर स्थित है। शाकद्वीप निवासी दूसरा भाई दिग्विजय के लिए उद्यत है और नागलोक जीतने की इच्छा से सागर के उदर में विचरण कर रहा है। तीसरा भाई जिसकी प्रजा सन्तुष्ट है तथा जिसने सभी दिशाओं की विजय कर ली है, कुशद्वीप

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

में सुख-भोग रहा है। चौथा भाई शाल्मलिद्वीप पर्वत के शिखर पर स्थित नगरी के क्रीडासरोवर में विद्याधारियों के साथ जलक्रीडा कर रहा है। पाँचवाँ भाई क्रौञ्चद्वीप में सुसमृद्ध हेमपुर में अश्वमेध यज्ञ द्वारा भगवान् का पूजनार्चन आदि कर रहा है। छठाँ भाई शाल्मलिद्वीप में सैन्यव्यूहन कर अन्य द्वीप के राजाओं के साथ युद्ध करने को उद्यत है। गोमेदद्वीप में रहने वाला सातवाँ भाई पुष्करद्वीप के राजा की पुत्री का बलात् अपहरण करने में प्रवृत्त है। पुष्करद्वीप में रहने वाला आठवाँ भाई लोकालोक पर्वत के राजा की निधि को देखने के लिए वहाँ गया है।

वे दोनों प्रकार के वर अपने अभिमान को छोड़कर उन आठों जीवों के साथ एकता को प्राप्त करेंगे, जैसे आकाश आकाश के साथ करता है। चिरकाल से अभीप्सित सप्तद्वीपेश्वरता को प्राप्त कर वे आठों भाई सन्तुष्ट होकर राज्य करेंगे।

कुन्ददन्तोपदेश—

कुन्ददन्त ने कहा कि मेरे यह पूछने पर कि आठों भाइयों के छोटे से गृह को अवकाश में करोड़ों योजन से अधिक विस्तार वाले जगतों का भान कैसे हुआ? उस कदम्ब तापस ने कहा—"चिदाकाश का ऐसा ही स्वभाव है। वह सर्वव्यापक होने से जहाँ-जहाँ रहता है, अपने सच्चिदानन्दघन स्वरूप का त्याग किये विना अपने को त्रैलोक्य के रूप में अथवा सुसुप्त एवं तुरीय के रूप में देखता है"।

कुन्ददन्त ने कहा—"भगवन्! एक, विमल, शान्त, शिव, परम कारण में नाना प्रकार की भिन्नता कैसे स्थित है"?

कदम्ब तापस ने कहा—"मुने! जैसे जल में आवर्त्त दृश्यमान जल से भिन्न नहीं है, वैसे ही यहाँ पर सब कुछ शान्त चिदाकाश है। यह दृश्यमान जगत् का भेद कुछ नहीं है। जैसे स्वप्न और सुषुप्ति में चिदाकाश विभिन्न रूपों में भासता है, वैसे ही जाग्रत् में चिदाकाश नाना रूपों में भासता है। उन पदार्थों की सत्ता सर्वथा असत् है। परमार्थदृष्टि से न सृष्टि है और न उसके पदार्थ हैं। सृष्टि के आदि में जो रूप जैसे स्फुरित हुआ, वह आज भी वैसे ही स्थित है। जैसे स्वप्न में एकमात्र निर्मल जीव चित् नाना रूपों में असंख्यरूपता को प्राप्त होती है, वैसे ही चित् की पदार्थता स्फुरित होती है? चित् अपने स्वच्छतम स्वरूप में स्वतः देदीप्यमान हो स्फुरित होती है और वह जगद्रूप से भासित होती है। जैसे स्वप्न में अग्नि के न रहने पर भी स्वप्नचित् उष्ण रूप से भासती है, वैसे ही संविदाकाश में असत् पदार्थ भासते हैं। जैसे पुष्प, पत्र, फल, शाखा आदि में वृक्ष ही व्याप्त हैं, वैसे ही सर्वत्र सर्वात्मा परब्रह्म है। परमार्थ रूप महासमुद्र में सृष्टि-परम्परा जलरूप है, परमार्थकाश में सृष्टि-संवित् शून्यता है। फलतः परब्रह्म में जगत् अभिन्न है। जैसे तरु और वृक्ष पर्यायवाची हैं, वैसे ही परमार्थ और सृष्टि पर्यायवाची हैं। बोध होने से दोनों एक हैं और अबोध से द्वैत है, जो सब दुःखों का मूल कारण है। अध्यात्मशास्त्र के बोध से 'परमार्थ ब्रह्म

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

और जगत् एक ही हैं' ऐसा निश्चित होता है और यही मुक्ति है। सर्वात्मा, अद्वितीय, चिद्ब्रह्म में भावाभाव रूप वस्तुओं की क्या सृष्टि होगी और क्या प्रलय होगा ? घट, पट आदि सब पदार्थ चिन्मात्र स्वरूप होने के कारण स्फुरित होते हैं और वे सब अमूर्त्त, चिन्मात्रसार हैं। स्वाप्निक सृष्टि के समान यह जगत् अविद्यमान दिखाई देता है और अनुभूति का विषय होता है।

जैसे रोगाक्रान्त दृष्टि वाले पुरुष को आकाश में केशोण्ड्रक (केशो का वर्तुलाकार गोला) दिखाई देता है, एक के स्थान पर दो चन्द्र दिखाई देते हैं, वैसे ही अज्ञानावृत चिद् दृष्टिवाले पुरुष को स्वात्माकाश में जगद्भ्रान्ति का अनुभव होता है। जैसे सङ्कल्प-नगर सङ्कल्प के अनुसार जब जैसा सङ्कल्प किया जाय, तब और तैसा बन जाता है, वैसे ही यह जगत् भी सङ्कल्प के अनुसार जब और जहाँ स्फुरित हो जाता है। पितामह ब्रह्मा के सङ्कल्प के अनुसार नियति, नियन्त्रण और व्यवस्था करती है। स्थावर से स्थावर और जङ्गम से जङ्गम उत्पन्न होते हैं। जल नीचे की ओर बहता है और अग्नि की ज्वाला ऊपर को धधकती है। उसीके अनुसार सूर्य और चन्द्र देहादि धारण करते हैं और तपते हैं, वायु स्पन्दनशील होता है और पर्वत आदि स्थिर होते हैं। ऋतु, काल ,दिन, रात्रि का भी वही नियन्त्रण करती है। सागरों एवं पर्वतों का सन्निवेश भी तदनुसार ही होता है।

कुन्ददन्त ने कहा—"भगवन् ! पूर्वदृष्ट वस्तु स्मृति पथ पर आती है तब तदनुसारी सङ्कल्पादि होते हैं। यह बात द्वितीय, तृतीय आदि कल्पों को सृष्टि में सम्भव है; परन्तु प्रथम कल्प की सृष्टि में स्मृति की सम्भावना कहाँ है" ?

तापस ने कहा—"मुनिवर ! ब्रह्मा का सङ्कल्प स्मृति के अधीन नहीं है। उनको अतीत, अनागत आदि सबका यथार्थ ज्ञान है। अतः उनके सङ्कल्प में कोई कठिनाई नहीं है। स्वप्न में स्वमरणादि सब कुछ अपूर्व ही दिखाई देता है। उसके स्मृति की आवश्यकता नहीं। उसी प्रकार प्रजापति ब्रह्मा अपनी इच्छानुसार सब कुछ कर सकते हैं"।

"संवित् का आभास ही जगत् है और वह जगत् केवल शान्त चिदाकाश है, और कुछ नहीं। जिसमें सब हैं, जिससे सब है, जो सब है, वही सर्वात्मा सर्वदा सर्व रूप से स्थित है। इस ब्राह्मी सृष्टि के विषय में मैंने सब कुछ कह दिया है। ब्राह्मणों ! अब आप लोग प्रातःकाल अपने अभीष्ट स्थान पर जायँ और अपने कर्तव्य का पालन करें। मैं भी समाधिस्थ होना चाहता हूँ। मुझे समाधि से विरत अवस्था में क्लेश की अनुभूति होती है"।

कुन्ददन्त-प्रबोध—

कुन्ददन्त ने कहा कि उस वृद्ध तापस ने इतना कहकर आँखे मूंद लीं। हम दोनों के विनय और स्तुतिमय वाक्यों से पुनः पुनः प्रार्थना करने पर भी उसने कुछ

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

उत्तर नहीं दिया। हम दोनों निराश होकर उस स्थान से चल दिये। कुछ दिनों के बाद हम दोनों मथुरा में अपने घर पर पहुँचे, वहाँ महान् उत्सव आयोजित हुआ और हम लोग परिवार में मिलकर आनन्द से जीवन व्यतीत करने लगे। कुछ समय पश्चात् सातों भाई धीरे धीरे दिवङ्गत हो गए। हमारे सुहृद् भी कालधर्म से कवलित हो गए।

मैं बहुत दुःखी हुआ। कोई अन्य साधन न देखकर मैं पुनः उस कदम्ब तापस के पास गया। वह मुनि तीन मास के बाद समाधि से विरत हुए। नम्रतापूर्वक निवेदन करने पर वह बोले—"मैं समाधि से क्षण भर भी विरत नहीं रहना चाहता। मेरे उपदेश से तुम्हें लाभ नहीं होगा। अभ्यास अत्यावश्यक है। अतः तुमको उपाय बतला रहा हूँ, वैसा करो। अयोध्या नाम की नगरी है, वहाँ महाराज दशरथ राजा हैं। उनके पुत्र 'राम' नाम से विख्यात हैं। वहाँ तुम जाओ। उनके कुलगुरु महर्षि वसिष्ठ श्रीरामचन्द्र जी के लिए सभा में मोक्षवाद की दिव्य कथा कहेंगे। चिरकाल तक उसे सुनकर तुम परम पद में विश्रान्ति प्राप्त करोगे"।

इतना कहकर वह मुनि पुनः समाधिस्थ हो गये और मैं आपके देश में आ गया। मैंने सब वृत्तान्त जैसा देखा और सुना है, आपके समक्ष निवेदित कर दिया, अब आपकी जैसी आज्ञा।

श्रीरामचन्द्र जी ने कुन्ददन्त का परिचय कुलगुरु वसिष्ठ जी से कराया। वसिष्ठ जी प्रसन्न होकर बोले कि "कुन्ददन्त! तुमने मेरे द्वारा कथित इस मोक्षशास्त्र को सुनकर क्या समझा?"

कुन्ददन्त ने कहा—"भगवन्! संशयराशि का प्रवर्धक चित्त है। उस पर विजय प्राप्त कर ली गई है। मैंने ब्रह्मतत्व को जान लिया है, अतः मेरे सभी संशयों का उच्छेद हो गया है। ज्ञातव्य तत्त्व को मैंने जान लिया है, द्रष्टव्य को मैंने देख लिया है, प्राप्तव्य को मैंने प्राप्त कर लिया है और मैं परमपद में विश्रान्त हूँ। आत्मचित् परमार्थघन आकाश में जगत् रूप से स्फुरित है। आत्मा सर्वात्मक और सर्वव्यापक है; वह सब कुछ कर सकता है। सरसों के कर्ण के भीतर चित्त का अस्तित्व होने से अनन्त जगतों की सम्भावना है, पूर्णज्ञान होने पर जगत् की सम्भावना ही नहीं है। पारमार्थिक दृष्टि से आत्मा से अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है"।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

३८. कीरवैवधिकोपाख्यान

कीरक देश में बँहगी ढोने वाले लोग थे। वे दुःख से सूख गए थे, जैसे ग्रीष्म में प्राचीन वृक्ष। वे जीविका के लिए चिन्तित रहते थे कि किस युक्ति से परिवार का पालन-पोषण किया जाय। उन्होंने निश्चय किया कि जङ्गल से लकड़ी लाकर और बेचकर जीविकोपार्जन किया जाय।

ऐसा विचार कर वे प्रतिदिन जङ्गल जाते थे और वहाँ से लकड़ी काटकर लाते और विक्री कर जीविका चलाते थे।

जिस जङ्गल में वे काष्ठ के लिए जाते थे, उसमें सुवर्ण, रत्नों की राशि भी छिपी थी। उनमें से कुछ भाग्यवान् अल्पकाल में ही सुवर्ण, रत्न आदि प्राप्त कर सुखी हो गए। कुछ चन्दन की लकड़ियाँ, उत्तमोत्तम पुष्प, फल आदि बेंचकर जीविका चलाने लगे।

कुछ भाग्यहीन उत्तम वस्तुओं को न प्राप्त कर जलावन की लकड़ियाँ काट-कर और बेंचकर जीवन-यापन करते थे।

भाग्यवश उन्हें चिन्तामणि रत्न प्राप्त हो गया। उसको प्राप्त कर वे धन-धान्य से सम्पन्न हो गए। वे सुख से जीवन व्यतीत करने लगे और उनके दुःख-दारिद्र्य का अवसान हो गया।

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

CSU-Jaipur Campus Collection

Digitization: HHFA(USA). Funding: Shastry Family, Mattur, Shivamogga KN

सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालय
श्रुतम् मे गोपाय

CSU-Jaipur Campus Collection